आलोचनात्मक अध्ययन

भगवती चरण वर्मा और उनका भूले बिसरे चित्र

रीगल बुक डिपो नई सड़क, दिल्ली ६

भगवतीचरण वर्मा और उनका

भूले-बिसरे चित्र

डॉ० कृष्णदेव झारी

एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

पी० जी० डी० ए० वी० कॉलेज, (सांध्य)

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली-६

संस्करण : प्रथम, सन् १९७२

मूल्य : ५.०० रु०

मुद्रक :
मेहता प्रिंटर्स, दिल्ली-६

दो शब्द

श्री भगवतीचरण वर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन श्रेष्ठ कृतिकारों में प्रथम पंक्ति के अधिकारी हैं जिन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के आलोक से हिन्दी-साहित्य के विस्तृत क्षितिज को देदीप्यमान किया है। वर्माजी ने न केवल एक सफल आधुनिक कवि के रूप में ख्याति अर्जित की है, अपितु गद्य-साहित्य के विविध रूपों को भी उन्होंने कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की। वस्तुतः कथाकार के रूप में उनका हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक कथात्मक गद्य-साहित्य के सभी क्षेत्रों में सफल लेखनी चलाई। उपन्यासकार के रूप में तो प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य को उनकी अमूल्य देन सर्वमान्य है।

वर्माजी के 'चित्रलेखा' उपन्यास ने ही हिन्दी जगत् को आन्दोलित कर दिया था। नई विचार-दृष्टि नये शैली-शिल्प का हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम सूत्रपात इसी रचना द्वारा हुआ था। श्री भगवतीचरण वर्मा ने उसके बाद अपनी कई रचनाओं से हिन्दी उपन्यास-साहित्य को समृद्ध किया है। 'भूले-बिसरे चित्र' उनकी सर्वाधिक सशक्त रचना है। साहित्य-अकादमी द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास एक युग-बोधकारी सफल रचना है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री भगवतीचरण वर्मा की उपन्यास-कला का सामान्य अध्ययन करते हुए उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध और सशक्त उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आरम्भ में वर्माजी के प्रत्येक उपन्यास के आधार पर उनकी उपन्यास-कला के क्रमिक विकास का अध्ययन किया गया है। उपन्यासकार की दुर्बलताओं पर भी यथामति प्रकाश डाला गया है। समीक्षा का उद्देश्य न तो आँखें बन्द करके भूरि-भूरि प्रशंसा करना होता है और न ही बिना बात लेखक की टाँगें खींचना समीक्षक को शोभा देता है।

मैंने प्रथम बार 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास की सांगोपांग निष्पक्ष आलोचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रयास विद्वानों के सामने है। यदि भगवती बाबू की उपन्यास कला—विशेषतः उनके 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास के अध्येताओं को इस प्रयास से जरा भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सार्थक मानूंगा। और समझूंगा कि मैंने रचनाकार के प्रति भी न्याय किया है।

भूल भुल्लैयां रोड
महरौली, नई दिल्ली-३०

—कृष्णदेव झारी

अनुक्रमणिका

प्रमुख आलोचनात्मक व साहित्यिक प्रकाशन

आलोचनात्मक

संस्कृत साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डा० गोविन्दराम शर्मा	१०.००
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डा० गोविन्दराम शर्मा	१२.००
भ्रमरगीत का काव्य-वैभव	डा० मनमोहन गौतम	१०.००
महादेवी की साहित्य साधना	डा० सुरेशचन्द गुप्त	३.५०
प्रेमचन्द और उनकी रंगभूमि	डा० शान्तिस्वरूप गुप्त	४.००
प्रेमचन्द और उनका गबन	डा० राजपाल शर्मा	४.००
	विशेष संस्करण	८.००
युगकवि दिनकर और उनकी उर्वशी	डा० कृष्णदेव शर्मा	३.००
समीक्षायन : एक विवेचन	प्रो० कृष्णमोहन अग्रवाल	५.००
प्रसाद और उनकी ध्रुवस्वामिनी	प्रो० कृष्णमोहन अग्रवाल	३.५०
भगवतीचरण वर्मा और उनका भूले बिसरे चित्र	डा० कृष्णदेव झारी	५.००
कसौटी पर	डा० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
बिहारी की काव्य-कला	डा० उदयभानु 'हंस'	१०.००
सेवासदन : विवेचन	प्रो० बलदेव कृष्ण	२.५०
शकुन्तला नाटक : एक अनुशीलन	प्रो० सुधांशु चतुर्वदी	२.५०

सटीक ग्रंथ

कबीर ग्रंथावली	डा० एल. बी. राम 'अनन्त'	१२.००
कबीर साखी दर्शन	डा० एल. बी. राम 'अनन्त'	३.५०
सूर सारावली	डा० मनमोहन गौतम	१०.००
साहित्य लहरी	डा० मनमोहन गौतम	१०.००
जायसी ग्रंथावली	डा० मनमोहन गौतम	१२.००
विद्यापति पदावली	श्री कुमुद विद्यालंकार	१०.००
मीराबाई पदावली	डा० कृष्णदेव शर्मा	६.००
उत्तर कांड	श्री भवानी शंकर त्रिवेदी	२.५०

मित्र लाभ	श्री भवानी शंकर त्रिवेदी	१.५०
रघुवंश (१३ वां सर्ग)	प्रो० भरत राम भट्ट	१.००
शकुन्तला नाटक	प्रो० सुधांशु चतुर्वेदी	३.५०
	विशेष संस्करण	५.००

आलोचनात्मक टीकाएँ

साकेत सौरभ	प्रो० नगीनचन्द सहगल	१५.००
साकेत सौरभ (नवम सर्ग)	प्रो० नगीनचन्द सहगल	३.५०
साकेत सौरभ (प्रथम व नवम सर्ग)	प्रो० नगीनचन्द सहगल	४.५०
साकेत सौरभ (तृतीय सर्ग)	प्रो० नगीनचन्द सहगल	३.००
कामायनी दीपिका	प्रो० नगीनचन्द सहगल	१.५०
कामायनी दीपिका (दर्शन, रहस्य तथा आनन्द)	प्रो० नगीन चन्द सहगल	३.००
प्रियप्रवास की टीका	प्रो० नगीनचन्द सहगल	५.००
आधुनिक कवि पन्त	प्रो० भारतभूषण 'सरोज'	३.५०
पन्त और उनका आधुनिक कवि	डा० कृष्णदेव शर्मा	४.५०
पन्त और उनका रश्मिबन्ध	डा० कृष्णदेव शर्मा	६.५०
पन्त और उनका तारापथ	डा० कृष्णदेव शर्मा	६.५०
'पंत' और उनका युगान्त	डा० कृष्णदेव शर्मा	२.५०
आधुनिक कवि महादेवी	प्रो० भारतभूषण 'सरोज'	३.५०
संधिनी की टीका	प्रो० सरोज एवं अग्रवाल	४.००
'प्रसाद' और उनकी लहर	प्रो० पुरुषोत्तम लाल विज	४.००
'प्रसाद' और उनका आँसू	प्रो० पुरुषोत्तम लाल विज	३.५०
महाकवि निराला और उनकी अपरा	डा० कृष्णदेव शर्मा	५.००
महाकवि निराला और उनकी राम की शक्तिपूजा	डा० कृष्णदेव शर्मा	२.५०
गुप्त जी और उनका द्वापर	श्री भवानीशंकर त्रिवेदी	४.५०
गुप्त जी और उनकी पंचवटी	प्रो० ओमप्रकाश शर्मा	१.५०
गुप्त जी और उनका नहुष	डा० कृष्णदेव शर्मा	२.००
गुप्त जी और उनकी यशोधरा	प्रो० कृष्णमोहन अग्रवाल	६.००
अंधायुग : एक विवेचन	डा० देशराज सिंह भाटी	३.५०
कनुप्रिया दीपिका	डा० कृष्णदेव झारी	३.५०
युगकवि दिनकर और उनकी उर्वशी	डा० कृष्णदेव शर्मा	१.५०

उपन्यास : स्वरूप, तत्त्व और शैली-शिल्प

उपन्यास साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सशक्त साहित्य-विधा है। साहित्य की इस गद्य-विधा के लिए 'उपन्यास' शब्द का अभिधान सम्भवतः बंगला के अनुकरण पर ही हुआ। बंगला में विस्तृत गद्य कथात्मक रचना का 'उपन्यास' नाम प्रचलित हो चुका था।

यद्यपि हमारे यहाँ संस्कृत की प्राचीन साहित्य-परम्परा में 'दशकुमार चरित', 'कादम्बरी' आदि कुछ गद्य-कथा-प्रबन्ध रचे गये थे किन्तु आधुनिक काल में विकसित होने वाली उपन्यास नाम की यह कथात्मक गद्य-साहित्य-विधा सुबंधु, दण्डी और बाणभट्ट की गद्य-कथा-काव्य परम्परा से सर्वथा भिन्न रूप में, पश्चिम की देन है। सम्भवतः संस्कृत के 'कादम्बरी' कथा-प्रबन्ध से साम्य समझकर ही मराठी में इस विधा को 'कादम्बरी' कहा जाने लगा था। गुजराती में इसे 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई।

'उपन्यास' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ उसके विधात्मक अर्थ से बहुत ही कम साम्य रखता है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत की 'अस्' धातु से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है 'रखना'। इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग तथा घञ् प्रत्यय का प्रयोग हुआ है—जिससे इसका अर्थ हुआ—सम्यक् रूप से स्थापन या प्रस्तुतीकरण। इस अर्थ-प्राप्ति से यदि उपन्यास का स्वरूप बताया जाय तो कहा जा सकता है कि साहित्य की ऐसी गद्य-रचना जिसमें जीवन के विविध पक्षों का सम्यक् रूप से प्रस्तुतीकरण हो, उपन्यास कही जाती है। पर इससे उपन्यास का विशेष स्वरूप-बोध नहीं होता, यह तो साहित्य का सामान्य लक्षण-सा ही है। इसमें संदेह नहीं कि उपन्यास में जीवन का सर्वाधिक निकटता और विस्तार के साथ वर्णन सम्भव होता है, और इस दृष्टि से इस अर्थ-प्राप्ति में कुछ सार्थकता भी है, पर इससे उपन्यास का विशेष स्वरूप-बोध नहीं होता।

हमारे यहाँ आधुनिक काल से पूर्व उपन्यास शब्द का प्रयोग साहित्य की

किसी विधा के लिये तो नहीं होता था, हाँ, नाट्य-शास्त्र में रूपक की प्रतिमुख संधि के एक अंग या भेद के लिए 'उपन्यास' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द-प्रयोग का वर्तमान साहित्य-विधा उपन्यास से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः 'उपन्यास' एक नूतन साहित्य-विधा है। हिन्दी में इसका प्रयोग भारतेन्दु काल में प्रायः पुस्तकाकार की एक कथात्मक रचना के लिए होता था। आरम्भ में आख्यायिका या लम्बी कथा से इसका भेद स्पष्ट नहीं था। यही कारण है कि 'परीक्षागुरु' (लाला श्रीनिवास दास) के साथ ही 'नूतन-ब्रह्मचारी' (बालकृष्ण भट्ट) को भी उपन्यास मानने की भूल प्रचलित हो गई, यद्यपि कथा-विस्तार, चरित्र-चित्रण आदि के अभाव से 'नूतन ब्रह्मचारी' को किसी प्रकार भी उपन्यास नहीं माना जा सकता। बीस-पच्चीस पृष्ठों की यह रचना एक लम्बी कहानी ही है। इसी प्रकार १८८८ ई० में प्रकाशित 'विधवा विपत्ति' (केवल १७ पृष्ठ), गोपालराम गहमरी कृत 'सुभद्रा' (केवल १०-१५ पृष्ठ) आदि लघु कथाओं को भी उस युग में पुस्तकाकार छपने के कारण 'उपन्यास' की संज्ञा दे दी गई थी। किन्तु अब उपन्यास का लघु कथा या कहानी से भेद स्पष्ट हो चुका है। आगे हम इस भेद का स्पष्ट निरूपण करेंगे, पहले उपन्यास की परिभाषा पर विचार करते हैं।

उपन्यास की परिभाषा :

उपन्यास पाश्चात्य साहित्य-विधा है। अतः एतत्सम्बन्धी कतिपय पाश्चात्य परिभाषाओं का उल्लेख आवश्यक है। 'न्यू इंगलिश डिक्शनरी' में उपन्यास की यह परिभाषा दी गई है : "A ficticious prose tale or narrative of considerable length in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot." अर्थात् नॉवल (उपन्यास) पर्याप्त आकार की उस कल्पित गद्य कथा या कथात्मक रचना को कहते हैं जिसमें यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उनके कार्य-व्यापार को एक कथानक के रूप में चित्रित किया जाता है।

पाश्चात्य विद्वान् वेब्स्टर, अर्नेस्ट ए० बेकर आदि ने भी उपन्यास की लगभग यही परिभाषा की है। कथा-रोमांस से उपन्यास का भेद स्पष्ट करते हुए क्लारारीव आदि कुछ अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है कि समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण करना उपन्यास का प्रमुख धर्म है, इसके विपरीत रोमांस में वर्णन की अतिरंजना और कल्पना की प्रधानता रहती है और ऐसी

वस्तुओं और घटनाओं का वर्णन किया जाता है जो न कभी घटित हुईं और न जिनके घटित होने की सम्भावना होती है। प्रसिद्ध विद्वान् राल्फ फॉक्स (Ralphfox) ने उपन्यास में मानवीय जीवन की पूर्णता का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है कि उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, वह तो सम्पूर्ण मानव-जीवन का गद्य है। यह साहित्य की पहली गद्य-विधा है जिसमें मानव के सम्पूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है : "The Novel is not merely fictional prose, it is the prose of man's life, the first attempt to take the whole man and give him expression."

मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपनी पुस्तक 'कुछ विचार' में उपन्यास को मानव-जीवन-चित्रण का सर्वोपयोगी साधन माना है। उनका कथन है : "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से उपन्यास के स्वरूप का सामान्य बोध यही हुआ है :

(१) उपन्यास बड़े आकार की गद्य रचना है।

(२) वह कथात्मक रचना है।

(३) उसमें मानव-जीवन का यथार्थ चित्रण कथारूप में प्रकट किया जाता है।

(४) उसमें मानव-जीवन का व्यापक और पूर्ण चित्रण होता है।

(५) उपन्यास में कथा कल्पित हो सकती है, पर रोमांस की तरह अस्वाभाविक या अघटनीय नहीं होती।

(६) उपन्यास में मानव-जीवन के पात्रों और उनके क्रिया-कलापों का यथार्थ चित्रण होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं और लक्षणों के आधार पर हम सभी कथात्मक रचनाओं को उपन्यास नहीं मान सकते। यथार्थ मानव-जीवन-चित्रण के अभाव से देवकीनन्दन खत्री आदि लेखकों की कुछ ऐसी रचनाएँ जिनमें बाल-कौतूहल और मनोरंजन के सिवा कुछ नहीं, उपन्यास के क्षेत्र से बहिष्कृत करनी होंगी। इसी प्रकार परियों या पशु-पक्षियों की प्राचीन, अर्वाचीन कथाओं या इसी प्रकार के काल्पनिक रोमांसों को भी 'उपन्यास' संज्ञा नहीं दी जा सकती।

उपन्यास के तत्त्व :

औपन्यासिक संरचना निम्न सात तत्त्वों पर आधारित है :

(१) कथानक या कथावस्तु (Plot)
(२) पात्र और चरित्र-चित्रण (Characters)
(३) जीवनोद्देश्य (जीवन की व्याख्या)
(४) रस-भाव-चित्रण या उदात्त भावाभिव्यक्ति
(५) देशकाल-वातावरण (युगधर्म)
(६) कथोपकथन (संवाद-शैली)
(७) भाषा-शैली

कथानक या कथा-वस्तु : कथा (Plot) उपन्यास का आधारभूत मूल तत्त्व है जिसके बिना उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं होता। कथा-निर्माण में पहली बात उपन्यासकार के लिए आवश्यक यह है कि वह जीवन की ऐसी मार्मिक घटनाओं का चयन करे, जो स्वाभाविक और रोचक हों। कथा-चयन करने में लेखक को जीवन के सरस प्रसंग ही अपनाने चाहियें। नीरस वर्णनों से कथा का कोई उपकार नहीं होता। जीवन की मार्मिक अनुभूतियों से सम्बन्धित कथा में रोचकता का गुण स्वतः ही विद्यमान रहता है। कथाकार की सफलता का पहला रहस्य यही है कि उसे अपनी कथा-सामग्री जीवन के मार्मिक पहलुओं से ग्रहण करनी चाहिये।

कथा-सामग्री-चयन के बाद कथावस्तु की उत्सुकतापूर्ण संगठित नियोजना का प्रश्न आता है। उपन्यासकार किस्सा-गो की तरह कथा को अनघड़ रूप में ग्रहण या नियोजित नहीं करता। वह कथा को कथानक का नया रूप प्रदान करता है। कथानक के रूप में कथा एक व्यवस्थित साहित्यिक संगठन प्राप्त करती है, कार्य-कारण रूप से सम्बद्ध होती है। प्रेमचन्द की तरह भगवतीचरण वर्मा ने कथा-नियोजना में विशेष प्रयोग नहीं किये हैं, उनका कथा कहने का ढंग सीधा, सरल और स्वाभाविक ही है। पर कथानक में समय के स्थगन (Suspension) तथा समयानुक्रम के विपर्यय (Time-Shift) द्वारा रहस्यात्मक तत्त्वों का समावेश कथा-नियोजना में चमत्कार उत्पन्न कर देता है। आजकल फ्लैश बैक (Flash-back) पद्धति से भी कथानक में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है।

कथानक की नियोजना उत्सुकता-वर्द्धक होनी चाहिए। सारी रचना में

आद्योपांत भिन्न-भिन्न कथा-प्रसंगों और घटनाओं की रोचक उद्भावना और पाठक की उत्सुकता एवं जिज्ञासा-वृद्धि का पूरा प्रयत्न कथा-योजना की सफलता है।

कथा का क्रमिक विकास स्वाभाविक होना चाहिए। वह कार्य-कारण रूप से क्रमबद्ध होनी चाहिये। कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त सब व्यवस्थित और सन्तुलित होने चाहियें। प्रासंगिक वृत्त मुख्य कथा से सम्बद्ध होने चाहियें। कथानक में अप्रत्याशित घटनाओं और प्रसंगों का समावेश उत्सुकता और कौतूहल बढ़ाता है और जिज्ञासा, उत्सुकता और कौतूहल कथारस के आवश्यक अंग हैं, पर आज का पाठक कथानक में 'आगे क्या हुआ ?' के साथ 'कैसे हुआ ?' का प्रश्न बराबर उठाये रहता है। अतः कोई ऐसी घटना या कार्य-व्यापार न होना चाहिये, जो अस्वाभाविक और अविश्वसनीय प्रतीत हो। आज के बौद्धिक-भौतिक युग का पाठक इसी धरती के मानव की कथा पढ़ना-सुनना पसन्द करता है, किसी देव-लोक के देवता या दानव-लोक के राक्षस की नहीं। अतः मानव-जीवन की स्वाभाविक कथा ही उपन्यास की वर्णन-सामग्री बन सकती है।

इस प्रकार सरसता, रोचकता, उत्सुकता-वृद्धि, कार्य-कारण क्रम-बद्धता, संगठन, स्वाभाविक विकास, यथार्थता और विश्वसनीयता आदि कथावस्तु के गुणों का निर्वाह उपन्यास में आवश्यक होता है। आजकल स्थूल कथानक की अपेक्षा उसे सूक्ष्म रूप में ग्रहण करना उचित माना जाने लगा है। कुछ लोग कथानक को अनावश्यक मानकर कथावस्तु की उपेक्षा करने लगे हैं। उनका तर्क यह है कि जब जीवन ही अव्यवस्थित और क्रमहीन है, तो कथानक में व्यवस्था और क्रम खोजना बेकार है। इसी से आजकल वृहत्काय उपन्यासों में एक मुख्य और क्रमबद्ध कथा—एक नायक से सम्बद्ध कथा की अवतारणा के स्थान पर युग की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। पर चाहे जो हो, उपन्यास में कथा-तत्त्व की उपेक्षा वांछनीय नहीं है। चाहे कथानक के संगठन-सूत्र नये ढंग से संयोजित किये जाएँ, कथानक की रोचक उपस्थापना के बिना कोई उपन्यास सफल नहीं बन सकता।

पात्र-चरित्र-चित्रण : पात्र और उनका सजीव चरित्रांकन भी उपन्यास का आवश्यक तत्त्व है। उपन्यासकार की काल्पनिक सृष्टि के वास्तविक प्राणी पात्र ही होते हैं। पात्रों का चरित्र पूरी सजीवता से प्रकट होना चाहिए।

पात्रों की मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक प्रकाशन ही चरित्रों को स्थायी बनाता है।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष और परोक्ष नाटकीय सभी शैलियों का प्रयोग संभव है। प्रत्यक्ष शैली में लेखक अपनी ओर से पात्रों की आकृति-प्रकृति का उल्लेख करता है। बहुधा उपन्यासकार पात्रों के रूप-रंग-आकृति (हुलिया) का ऐसा रेखाचित्र-सा प्रस्तुत करता है कि पात्र का बाह्य व्यक्तित्व आंखों के आगे नाचने लगता है। प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा आदि ने प्रायः इस पद्धति को खूब अपनाया है। बाह्य व्यक्तित्व के साथ-साथ लेखक पात्रों की आंतरिक चारित्रिक विशेषताओं का भी अपनी लेखनी से उल्लेख कर देता है। पर यह प्रत्यक्ष उल्लेख इतना अच्छा नहीं रहता जितना चरित्रांकन का नाटकीय ढंग। चरित्रांकन के नाटकीय ढंग में पात्र स्वयं अपने कथनों और क्रिया-कलापों से अपना चरित्र प्रकट करते हैं। दूसरे पात्रों के कथनों से भी अन्य पात्रों के चरित्र उद्घाटित होते हैं।

पात्र मन-वचन-कर्म से अपने युग के प्रतिनिधि होने चाहियें। उनके चरित्रों में मनोवैज्ञानिक संगति होना आवश्यक है। पात्र चाहे स्थिर प्रकृति के हों या परिवर्तनशील, वर्गगत हों या व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण, सबमें व्यक्तित्व की सजीवता होनी चाहिये। पात्र हाड-मांस के इसी धरती के सजीव यथार्थ मानव हों। आज का यथार्थ दृष्टिकोण यही है कि पात्र न तो किसी देवलोक के देवता हों, न दानवलोक के राक्षस। वे अपने ही 'कु' और 'सु' से युक्त यथार्थ मानव होने चाहियें। आदर्श पात्रों में भी यथार्थ मानवीय संवेदनाओं का स्पंदन आवश्यक है।

पात्रों का चरित्र उनके संस्कार, उनकी परिस्थितियों तथा प्रवृत्तियों के अनुसार मनोवैज्ञानिक होना चाहिये। लेखक को उन्हें अपने हाथ की कठपुतली नहीं बनाना चाहिये। परिवर्तन-शील पात्रों के चरित्र-परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक कारण अवश्य रहने चाहियें, अन्यथा चरित्र-परिवर्तन अस्वाभाविक हो जाता है।

चरित्र-प्रधान उपन्यासों में जटिल पात्रों के रहस्यमय चरित्र का उद्घाटन बड़ी सूक्ष्मता से किया जाता है। उपन्यासकार ऐसे पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को उनके ही आत्मचिंतन, दिवास्वप्नों, चेतन-अवचेतन के घात-प्रतिघातों द्वारा प्रकट करता है।

रस-भाव-चित्रण : रस-भाव साहित्य का प्राण-रूप अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना कोई रचना साहित्य की परिधि में आ ही नहीं सकती। बहुत-से आलोचक साहित्य-समीक्षा—विशेषकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-भाव की अवहेलना करने लगे हैं। उनका विचार है कि रस के बंधे-बंधाये चौखटे से नव-साहित्य की परख नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि रस-भाव की अवहेलना से काम न चलेगा। रस-तत्त्व में जीवन की सम्पूर्ण उदात्तता को समाहित करने की शक्ति है।

आज के हमारे अनेक आलोचक समीक्षा के कुछ बाह्य मानदण्डों को सत्य मानकर साहित्य के मूल तत्त्व रस-भाव की अवहेलना करते प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा आग्रह है कि साहित्य-समीक्षकों को युग-साहित्य के नियमों की विवेचना करते हुए साहित्य के मूलभूत शाश्वत मानदण्ड-रस या उदात्त भाव-रस—को नहीं भुलाना चाहिये। चाहे हम महाकाव्य के लक्षणों की विवेचना कर रहे हों या उपन्यास के तत्त्वों की, हमें सदा उन तत्त्वों को प्रमुखता देनी चाहिये जो साहित्य के मूल तत्त्व हैं। खेद है कि उपन्यास, कहानी आदि आधुनिक साहित्य-विधाओं के तत्त्व-निरूपण में हम पाश्चात्य समीक्षकों के अनुकरण पर मूल तत्त्व रस-भाव को भुला रहे हैं। उपन्यास-कहानी आदि के तत्त्व निरूपित करते हुए बहुत-से आलोचक भावानुभूति—रस-भाव तत्त्व—को गिनाते ही नहीं। प्रेमचन्द आदि के उपन्यासों की समीक्षा करने वाले समीक्षकों ने भाव-संवेदनाओं की दृष्टि से मूल्यांकन छोड़ ही दिया है। क्या प्रेमचन्द आदि हमारे उपन्यासकारों की महानता केवल इस बात में है कि उन्होंने समाज की विविध समस्याओं का बोध कराया जो कार्य कि एक समाज-शास्त्री भी कर सकता था? मैं समझता हूँ कि प्रेमचन्द, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा आदि इसलिए महान् हैं कि उन्होंने जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हमारी भाव-संवेदनाएँ जगाईं, जो युग के महान् सांस्कृतिक निर्माण से सम्बन्ध रखती हैं। अनुभूति-क्षेत्र के रागात्मक तत्त्वों के माध्यम से ही इन लेखकों के प्रगतिशील तत्त्वों का अध्ययन करना समीचीन है। इसके बिना उनकी समीक्षा अधूरी ही कही जा सकती है। हमारे श्रेष्ठ उपन्यासों की भी सबसे बड़ी शक्ति उनमें व्यक्त उदात्त भाव-रस ही है।

जिस रचना में उदात्त भावों का जितना अधिक व्यापक और गहन चित्रण होगा, उतनी ही वह श्रेष्ठ मानी जायगी। उदात्त मानवीय संवेदनाओं का ही

पाठक के मन पर अमिट प्रभाव पड़ता है। विश्व के महान् उपन्यासों में सफल रस-संचार ही वह गुण है जो उन्हें देशकाल के घेरे से बाहर लोकप्रिय बनाये हुए है। अतः उपन्यास की श्रेष्ठ संरचना में उदात्त रस-भावों की व्यापक और गहन योजना आवश्यक है।

उद्देश्य : जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, उपन्यास जीवन की व्याख्या का सबसे बड़ा साधन है। उपन्यास में समाज और जीवन की समस्याओं का खुलकर चित्रण होता है। जीवन की आदर्श प्रेरणाएँ जगाने की क्षमता जिस रचना में जितनी अधिक होती है, वह उतनी ही महान् समझी जाती है। जितना ही उद्देश्य महान् होगा, उतनी ही रचना श्रेष्ठ होगी। जो लेखक जितनी अधिक उदात्त मानवीय संवेदनाओं के रूप में अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करता है, वह उतना ही महान् कलाकार बनता है। संकुचित विचारों के लिए रचना में कोई स्थान नहीं होता। लेखक का जीवन-दर्शन अत्यन्त व्यापक, उदार, प्रगतिशील और जीवन को नव गति प्रदान करने वाला होना चाहिये।

इस उद्देश्य का प्रतिफलन जहाँ तक हो नाटकीय ढंग से परोक्ष रूप में होना चाहिये। बौद्धिक अनुभूतियों को रागात्मक बनाना चाहिये। उद्देश्य की सिद्धि उदात्त रागों के रस-रूप में ही करनी चाहिये अन्यथा लेखक के उपदेशक या जीवन-व्याख्याता समाज-शास्त्री बन जाने का डर रहता है। बहुधा उद्देश्य की व्यंजना कथानक से ही होनी चाहिये। पात्रों के कथोपकथन, क्रिया-कलाप तथा विभिन्न प्रसंगों और परिस्थितियों में उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया से ही उद्देश्य व्यंजित होना चाहिये। प्रायः उपन्यासकार अपने उद्देश्य की व्यंजना अपने किन्हीं विशिष्ट पात्रों के माध्यम से ही करता है। उपन्यास के जिन पात्रों से हमारा भाव-तादात्म्य होता है उपन्यासकार प्रायः उन्हीं में बोलता है। इस प्रकार की परोक्ष उद्देश्य-व्यंजना अधिक कलात्मक रहती है। पर कभी-कभी लेखक को अपनी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष टिप्पणियों के रूप में भी प्रकट करनी होती है। प्रेमचन्द ने यह ढंग भी अपनाया है। इस ढंग की सफलता इसी बात में है कि सटिप्पण प्रतिक्रिया घटना या नाटकीय कार्य-व्यापार के बाद की गई हो और उसकी शैली व्यंग्य-विनोदपूर्ण रोचक हो। प्रेमचन्द की सफलता का यही रहस्य है।

कथोपकथन : कथोपकथन या संवाद भी उपन्यास का आवश्यक तत्त्व है। उपन्यास के व्यापक संसार में संवाद अनिवार्य हैं। हमारा जीवन बात-चीत,

वार्तालाप से ही कटता है। व्यापक और विस्तृत जीवन-प्रसंगों की वार्तालाप के बिना कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः कथोपकथन एक ओर जीवन-प्रसंगों को स्वाभाविक बनाते हैं, दूसरी ओर उनके समावेश से प्रबन्ध में रोचकता की वृद्धि होती है।

कथोपकथन की सार्थकता इन तीन बातों में सिद्ध होती है :

(१) संवाद कथानक के विकास से सम्बंधित हों और कथा-विकास में सहायक होने चाहिये।

(२) संवादों द्वारा पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश पड़ना चाहिए अर्थात् पात्रों के संवाद उनके चरित्रोद्घाटन के द्योतक होने चाहिएं।

(३) संवाद-शैली से उपन्यास में रोचकता की वृद्धि होनी चाहिए अर्थात् संवाद रोचक और चटुल-चुस्त होने चाहिएं।

उपन्यास के कथा-प्रबंध में अनावश्यक और लम्बे-लम्बे संवादों से अरोचकता और प्रबंध में शिथिलता उत्पन्न होती है। अतः जहाँ तक हो सके संवाद छोटे-छोटे संक्षिप्त, किन्तु चुस्त और चटुल होने चाहिये। लम्बे कथन ऊबाहट उत्पन्न कर देते हैं। लम्बे-लम्बे सैद्धांतिक वाद-विवाद, जो कथारस का रूप नहीं अपना पाते रचना को नीरस और बोझल बना देते हैं।

कथोपकथन का पात्र-प्रसंग-परिस्थिति-अनुरूप होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार का पात्र हो, जैसे मानसिक और बौद्धिक स्तर और संस्कारों का पात्र हो, उसके मुंह से वैसी ही बात कहलानी चाहिये। इसी प्रकार प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार संवादों में विदग्धता, हाजिर-जवाबी (प्रत्युत्पन्न-मति), व्यंग्य-विनोद, रोष-उग्रता आदि भाव-संचार होना चाहिये। भावानुरूपता से ही संवादों में रोचकता और वैचित्र्य उत्पन्न होता है।

संवादों को नाटकीय बनाने के लिए, उनके साथ पात्रों की अनुरूप भाव-भंगिमाएं और चेष्टाएं भी प्रकट करनी चाहिएं : जैसे "धनिया ने हाथ मटका कर कहा", "होरी ने अपने झुर्रियों से भरे माथे को सिकोड़ कर कहा", "उसने आँखें तिरेर कर कहा" आदि प्रयोगों से पात्रों का अभिनय साकार आंखों के आगे नाचने लगता है और संवाद मार्मिक बन जाते हैं।

अतः संवाद कलात्मक, रोचक, संक्षिप्त, स्वाभाविक, चटुल, नाटकीय, सजीव, पात्रानुरूप, भावानुरूप, प्रसंगानुकूल सार्थक होने चाहिएँ।

देशकाल-वातावरण : कथात्मक साहित्य में देशकाल-वातावरण का निर्वाह भी आवश्यक होता है। इसीसे इसे पृथक् तत्त्व माना जाता है। देश और काल का चित्रण ही रचना में यथार्थ परिस्थितियाँ लाता है। समय और स्थान के सूत्र में बंधी कथा ही यथार्थ और स्वाभाविक होती है। पुराने कथाकारों का तो 'एकदा' या 'प्राचीनकाल की बात है' आदि के उल्लेख से काम चल जाता था, पर आज का कथाकार तो—विशेषतः उपन्यासकार समय की विशिष्टता पर निर्भर रहता है। जिस काल का वह कथानक अपनाता है, उसकी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का ब्योरेवार चित्रण कर वह युगधर्म की सजीवता उत्पन्न करता है।

काल के साथ ही स्थान (देश) की विशिष्टता भी आवश्यक है। जिस देश या स्थान से कथा सम्बन्धित होती है, जहाँ घटनाएँ और कार्य-व्यापार घटित होते हैं, उसका भी ब्योरेवार चित्रण आवश्यक है। वस्तुतः काल और स्थान का सम्यक् नियोजन ही युगधर्म की यथार्थता प्रकट करता है। पात्रों की योजना देश-काल-सापेक्ष्य ही होती है, होनी चाहिए। देशकाल के विरुद्ध कोई भी बात सहन नहीं की जा सकती। यदि शिमला के स्थान पर दिल्ली में हिमपात का वर्णन किया जायगा, या अकबर के समय के पात्रों को कोट-पतलून पहने बताया जायगा, तो यह कितना अस्वाभाविक होगा!

ऐतिहासिक, सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों में तो देशकाल का विशेष विस्तार रहता है। इनमें उपन्यासकार को ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आंचलिक वातावरण उत्पन्न करना पड़ता है। पात्रों को मन-वचन-कर्म से ही नहीं, वेश-भूषा, चाल-ढाल आदि सब तरह से देशकालानुरूप बनाना पड़ता है। इन उपन्यासों की सफलता देशकाल के सफल निर्वाह पर ही निर्भर करती है।

पर उपन्यासकार को यह ध्यान रखना होगा कि देशकाल चित्रण कथा-प्रबंध में सहायक या साधन बनकर ही आए। वह अपने में साध्य नहीं है। जहाँ उपन्यासकार देशकाल के वर्णन को ही अपना लक्ष्य बना लेता है, स्थानों और रीति-रिवाजों, प्रथाओं, परिस्थितियों के शुष्क वर्णन करने में लग जाता है, उन्हें कथारस में नहीं घुला पाता, वहाँ उसकी रचना नीरस और ऊबा देने वाली बन जाती है। ऐसे स्थल कथानक की स्वाभाविक गति में बाधक बन जाते हैं। अतः देशकाल का सजीव चित्रण कथानक की ही आवश्यक पूर्ति के निमित्त होना चाहिये।

भाषा-शैली : भाषा साहित्य का माध्यम-रूप अनिवार्य तत्त्व है। सभी प्रकार के साहित्य में भाषा की सरलता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, सजीवता, साहित्यिकता का गुण रहना ही चाहिये। भाषा में व्याकरण-सम्मत परिष्कार और निर्दोषता होनी चाहिए। भाषा का स्वरूप कथा-साहित्य में सरल और सुबोध ही होना चाहिए। प्रेमचन्द आदि हमारे उपन्यासकारों ने जिस सरल लोकप्रचलित भाषा का आदर्श कथा-साहित्य के लिए स्थापित किया था, उसे ही स्वीकारना समीचीन है। हमारे अनेक कथाकारों ने आजतक कमोबेश उसी राह का अनुसरण किया है। उपन्यासों में वातावरण और आंचलिक (स्थानीय रंग) उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्रामीण पात्रों से जनपद-विशेष की बोली का प्रयोग भी कराया जाने लगा है, पर इस सम्बंध में यह ध्यातव्य है कि भाषा का यह आंचलिक प्रयोग भी सीमा में ही होना चाहिए, अन्यथा भाषा की दुर्बोधता से रचना अपने पाठक नहीं बना सकेगी। पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग भी एक सीमा तक ही उचित रहता है। उपन्यास को भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाया जा सकता। शिक्षित नागरिकों और अशिक्षित ग्रामीणों की भाषा में कुछ अंतर रखना ही स्वाभाविक रहता है।

भाषा के सरल, सुबोध, स्वाभाविक, प्रवाहयुक्त, व्याकरण-सम्मत, परिष्कृत स्वरूप के साथ उसमें भाषा-शक्ति के साधनों की योजना से उसे साहित्यिक प्रभावशाली बनाना भी आवश्यक है। लोकोक्तियों, मुहावरों, स्वाभाविक लाक्षणिक प्रयोगों, स्वाभाविक अलंकरण, बिम्बों आदि भाषा की शक्ति के प्रसाधनों से भाषा को साहित्यिक सशक्त बनाना चाहिए। लेखक की भाषा में पात्रानुरूपता के साथ-साथ भावानुरूपता का गुण भी होना चाहिए। प्रसंग और भाव के अनुरूप भाषा-शैली के विविध सफल प्रयोग करने की क्षमता होनी चाहिए।

कथात्मक स्थलों की भाषा-शैली कथात्मक हो, वर्णनात्मक स्थलों पर सजीव वर्णनात्मक, भावपूर्ण प्रसंगों में भावात्मक भाषा-शैली का प्रयोग होना चाहिए और विचार और चिंतन के क्षणों की भाषा-शैली विचारात्मक गंभीर होनी चाहिए। संवाद-शैली की भाषा में बात-चीत का-सा मज़ा रहना चाहिए। इस प्रकार प्रसंग, भाषा और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों के सफल प्रयोग की लेखक में क्षमता होनी चाहिए। भावानुसार उसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज गुण का समावेश होना आवश्यक है।

अतः भाषा में सरलता, स्वाभाविकता, निर्दोषता, प्रवाह, परिष्कार, साहित्यिकता, लाक्षणिकता, अलंकृति, चित्रात्मकता, पात्रानुरूपता, भावानुरूप विविध शैलियाँ आदि गुण होने चाहिएँ।

दृश्य काव्य नाटक और उपन्यास :

नाटक और उपन्यास दोनों गद्य-कथासाहित्य के दो प्रमुख रूप हैं। कथानक, चरित्र-चित्रण आदि तत्त्व दोनों में समान होते हैं, किन्तु इन्द्रिय-गोचरता की भिन्नता के कारण नाटककार और उपन्यासकार की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों में अन्तर होने से दोनों के तत्वों में भी पर्याप्त अन्तर रहता है। नाटक दृश्यकाव्य है, उपन्यास श्रव्य या पाठ्य विधा है। अतः नाटककार को रंगमंच के प्रतिबंधों का ध्यान रखना पड़ता है। वह एक निश्चित सीमा तक ही अपनी कथा का विस्तार कर सकता है, जबकि उपन्यासकार के लिए इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं। उपन्यासकार अपने कथा प्रयोगों में पूर्ण स्वतंत्र है, वह चाहे तो कथा का चार-पाँच सौ क्या आठ-नौ सौ पृष्ठों तक विस्तार कर सकता है। वह शताब्दियों के समय में बिखरी घटनाओं का चयन कर सकता है और अधिक-से-अधिक सामग्री जुटा सकता है। उसके लिए देश-काल का कोई प्रतिबंध नहीं। इसीलिए तो उपन्यास युग-महाकाव्य का गौरव पा सकता है। नाटक अपनी सीमा-बंध के कारण ऐसा नहीं हो सकता। नाटककार को रंगमंच की सीमा का ध्यान रखना पड़ता है।

नाटक दृश्य काव्य है, उसका वास्तविक आनन्द रंगशाला में एक साथ तीन-चार घण्टे बैठने से ही प्राप्त हो सकता है, जबकि उपन्यास को 'जेबी थ्येटर' कहा जाता है। उसे कमरे में, रेल के सफर में या सोने के पलंग पर जब-जहाँ सप्ताह-दो सप्ताह तक पढ़ा जा सकता है।

उपन्यास में सभी प्रकार की घटनाओं और दृश्यों का वर्णन किया जा सकता है। नाटक में भी यद्यपि विद्युत् और यंत्रकला के आधुनिक प्रयोगों से बहुत-कुछ कठिन दृश्य-विधान जुटाया जा सकता है, पर फिर भी मनुष्य-जीवन और जगत् के लाखों ऐसे दृश्य तथा परिस्थितियाँ हैं जो नाटक में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। इसके विपरीत उपन्यास में समुद्र के गर्भ में काम करने वाले श्रमिकों और सैनिकों से लेकर खानों में काम करने वाले, पर्वतों पर बसने वाले मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्रकट किया जा सकता है। इसीसे तो उपन्यास जीवन की व्याख्या का सर्वाधिक उपयोगी साधन माना जाता है।

उपन्यास में कथा-घटनाओं की व्यापकता, विविधता, प्रासंगिक कथाओं की अपेक्षाकृत अधिकता के कारण कथागति मंथर और व्यापक होती है। नाटक अपने अंतिम फल की ओर शीघ्रता से बढ़ता है। उपन्यास में कथा की शिथिलता इतनी नहीं अखरती, जितनी नाटक में। कथा-गति और प्रभावान्विति की दृष्टि से उपन्यास की अपेक्षा छोटी कहानी नाटक के अधिक निकट पड़ती है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी दोनों का विधान भिन्नता रखता है। नाटककार के पात्रों का चरित्र नाटकीय शैली पर ही उद्‌घाटित होता है, नाटककार अपनी ओर से कुछ नहीं कह सकता। इसके विपरीत उपन्यासकार अपनी लेखनी से अपने पात्रों का चरित्र-विश्लेषण कर सकता है। उसे अपने पात्रों की आकृति-प्रकृति, भाव-भंगिमाओं और व्यक्तित्व का पूरा दिग्दर्शन स्वयं करना होता है। उपन्यासकार चरित्र-चित्रण के दोनों ढंग—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (विश्लेषणात्मक और नाटकीय)—अपना सकता है, नाटक में केवल नाटकीय शैली काम आती है। नाटककार उपन्यासकार की भांति पात्रों के सूक्ष्म अंतः विश्लेषण और चेतन-अवचेतन के द्वन्द्वों का खुलकर प्रकाशन नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी अपनी लेखनी अदृश्य होती है। यही कारण है कि नाटक में जटिल पात्रों की अवतारणा कठिन रहती है। उपन्यास में गहरे स्तर की मनोवैज्ञानिक एक्स-किरणों से काम लिया जा सकता है।

नाटककार उपन्यासकार की भांति बहुत अधिक पात्र नहीं अपना सकता। वह पात्रों के चरित्रों को भी आरंभ से अंत तक विस्तारपूर्वक विकसित होते नहीं दिखा सकता। उसे संक्षेप और संकेतों से काम चलाना पड़ता है।

वातावरण के सृजन में भी जहाँ उपन्यासकार अपनी लेखनी से स्थानों, परिस्थितियों आदि का विस्तृत वर्णन कर सकता है और देश-काल-वातावरण को सजीवता प्रदान करता है, वहाँ नाटक में यह कार्य सीमित रूप में रंगशाला के पर्दे, चित्र, पात्रों की वेशभूषा, दृश्य-विधान आदि ही कर सकते हैं।

जितनी सुगमता, विस्तार और गहराई के साथ जीवन की व्याख्या उपन्यास में की जा सकती है, वैसी नाटक में क्या साहित्य की किसी भी विधा में संभव नहीं। उपन्यासकार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी प्रकार से जीवन की नाना-विध परिस्थितियों का व्यापक चित्रण कर सकता है। नाटक की इस दृष्टि से निश्चित सीमा है। साथ ही नाटक में जीवन और उसकी समस्याओं को

समझने का सारा भार पाठक पर ही रहता है, क्योंकि उसमें उपन्यासकार की प्रत्यक्ष शैली का अभाव रहता है।

पर नाटक के दृश्य-विधान में संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, वस्त्राभूषण, सजावट आदि सभी कलाओं का सजीव समावेश उसकी रसवत्ता को चरम अवस्था पर पहुँचा देता है। ऐसी प्रभाव-शक्ति उपन्यास में उत्पन्न नहीं की जा सकती। इसी कला-संगम और सजीवता के कारण ही तो 'काव्येषु नाट्यम् रम्यम्' कहा गया था। उपन्यास में सामूहिक तन्मयता की ऐसी स्थिति कम ही उत्पन्न की जा सकती है। कारण यह है कि उपन्यास में पाठक को बहुत-सी बातों में अपनी कल्पना द्वारा ही विषय-बोध करना होता है। कल्पना में इतना मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं जो नाटक में दृश्य-द्वारा हो जाता है। साथ ही अन्यान्य कलाओं का समावेश भी उपन्यास में नहीं हो सकता। नाटक में दर्शक को अपनी कल्पना पर कम ज़ोर देना पड़ता है इसीसे नाटक को सर्व-साधारण के लिए भी पूर्ण उपयोगी माना गया है, उसे पंचम वेद कहा गया है।

उपन्यास और कहानी :

किसी कटे-छटे उपन्यास को कहानी कहना उतना ही हास्यास्पद है जितना किसी बड़ी कहानी को छोटा उपन्यास कहना। यद्यपि उपन्यास और कहानी दोनों के—कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण आदि कई तत्त्व समान हैं, पर इन तत्त्वों की अनिवार्यता तथा प्रयोग की दृष्टि से दोनों की संरचना में मौलिक अंतर है।

कहानी की कथा अत्यन्त संक्षिप्त होती है। उपन्यासकार जीवन के नाना पक्षों से सम्बंधित व्यापक कथा-सामग्री का चयन करता है, किन्तु कहानीकार किसी एक ही मार्मिक पहलू की झांकी देता है। कहानी में उपन्यास के विपरीत जटिल कथा-रूपों और प्रासंगिक कथाओं का समावेश संभव नहीं। कहानीकार सीधा अपने एक ही कथा-लक्ष्य की ओर बढ़ता है। उपन्यासकार विभिन्न प्रासंगिक कथाओं में से घूमता हुआ अपनी मुख्य कथा को मंथर गति से अंत की ओर ले जाता है।

जहाँ उपन्यास में कथा-विकास के प्रायः पांच सोपान—आरंभ, विकास, चरम सीमा, निगति और अंत—होते हैं, वहाँ कहानी में केवल पहले तीन सोपान ही रहते हैं। श्रेष्ठ कहानियाँ द्रुत गति से विकसित होकर तीव्रगति से अपनी चरम सीमा (Climax) पर समाप्त हो जाती हैं।

यद्यपि कथावस्तु कहानी का अनिवार्य तत्त्व है, किन्तु उपन्यास की भाँति उसमें कथा-सूत्रों का विकास अनिवार्य नहीं। बहुत-सी आधुनिक चरित्र और प्रभाव-प्रधान कहानियों में कथावस्तु अत्यल्प होती है, जैसे प्रेमचन्द की 'पूस की रात' में।

कहानी में दो-तीन पात्र ही स्थान पाते हैं, उपन्यास की तरह दर्जनों नहीं। चरित्र-विकास भी कहानी में वैसा संभव नहीं जैसा उपन्यास में हो सकता है। कहानी में प्रायः अपरिवर्तनशील पात्र ही चित्रित होते हैं। चरित्र-चित्रण भी कहानी का उतना अनिवार्य तत्त्व नहीं है, जैसाकि उपन्यास का है। कुछ कहानियों में चरित्र-चित्रण अत्यन्त नगण्य होता है, जैसे जैनेन्द्र की 'तत्सत्' कहानी में।

संवाद या कथोपकथन भी कहानी का सर्वथा अनिवार्य तत्त्व नहीं। कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखी गई हैं जिनमें कथोपकथन का प्रायः अभाव रहता है। उपन्यास में कथोपकथन अनिवार्य है, यद्यपि अर्नेस्ट हैमिंग्वे का विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास 'सागर और मनुष्य' संवाद-रहित है, पर उपन्यास के वृहत् कलेवर में संवादहीनता उसे अस्वाभाविक और नीरस बना देती है।

उपन्यास के वृहत् कलेवर में तो फिर भी कुछ सैद्धांतिक या अप्रासंगिक संवाद खप सकते हैं, पर कहानी में बिल्कुल नहीं।

देशकाल-वातावरण की भी कहानी में, उपन्यास के विपरीत, अधिक गुंजाइश नहीं। इसी प्रकार भाव-रस-रूप संवेदनाओं और जीवनोद्देश्य की जैसी व्यापकता और विस्तार उपन्यास में संभव है, वैसी कहानी में नहीं। इस प्रकार उपन्यास में कथा, चरित्र, वातावरण आदि सब तत्त्वों का विस्तीर्ण समावेश हो सकता है। पर कहानी में कथा, पात्र आदि में किसी एक तत्त्व को ही प्रधानता प्राप्त हो सकती है, अन्य अत्यन्त गौण हो जाते हैं। कहानी में वृत्त की एकता, लक्ष्य और प्रभाव की एक देशीयता के कारण पूर्ण संगठन रहता है। उपन्यास शिथिल प्रबंध का भी खप जाता है। कहानी एक ही बैठक में पढ़ी जाने वाली रचना है, उपन्यास कई सौ पृष्ठों का आकार ले सकता है और कई-कई दिन तक पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार उपन्यास और कहानी का टेकनीक भिन्न है।

२

हिन्दी उपन्यास का विकास-क्रम और भगवतीचरण वर्मा

प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास :

यद्यपि संस्कृत की हमारी प्राचीन साहित्य-परम्परा में 'दशकुमार-चरित', 'कादंबरी', आदि कुछ गद्य-कथा-प्रबंध मिलते हैं किन्तु आधुनिक काल में विकसित होने वाली उपन्यास नाम की कथात्मक गद्य साहित्य-विधा सुबन्धु, दण्डी और बाण की गद्य-काव्य-परम्परा से सर्वथा भिन्न रूप में, पश्चिम की देन है। आधुनिक उपन्यास से पूर्व कथा, आख्यायिका, कहानी आदि नामों से छोटी-बड़ी कथात्मक रचनाएँ होती थीं। हिन्दी में भारतेन्दुकाल से ही उपन्यास का जन्म हुआ। इससे पूर्व 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाएँ पुराने ढंग की कथाएँ ही थीं। हिन्दी में उपन्यास के जन्म के पूर्व संस्कृत से अनूदित पौराणिक और धार्मिक कथाएँ तथा उर्दू-फारसी के परम्परागत किस्से—'किस्सा चार दर्वेश' 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा साढ़े तीन यार' आदि ही प्रचलित थे।

बंकिम आदि के मौलिक बंगला उपन्यासों की देखा-देखी एक ओर १९वीं शती के अंतिम दो चरणों में श्रद्धाराम फिल्लौरी ('भाग्यवती' सन् १८७८), श्रीनिवास दास ('परीक्षा गुरु' सन् १८८०), राधाकृष्ण दास ('निस्सहाय हिन्दु' सन् १८८६), राधाचरण गोस्वामी आदि लेखकों ने नवीन सामाजिक विषयों से सम्बन्धित उपदेश-प्रधान उपन्यासों की रचना की, दूसरी ओर 'तिलस्मे होश-रुबा', 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस वृत्तान्त माला' आदि फारसी-उर्दू के किस्सों के प्रभाव से तथा एडगर वेलेस और रेनाल्ड्स जैसे अंग्रेजी नावलिस्टों के औपन्यासिक ढंग पर देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि उपन्यासकारों ने तिलस्मी-जासूसी और प्रेम-सम्बन्धी उपन्यासों

की परम्परा चलाई। प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व (सन् १८८० से १९१५ तक के ३५ वर्षों में) हिन्दी उपन्यासों की निम्न धाराएँ प्रचलित थीं, किन्तु इन सब में औपन्यासिक कला अपने शैशवकाल में ही रही।

(१) **उपदेश-प्रधान उपन्यास**—श्रद्धाराम फिल्लौरी, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास आदि भारतेन्दु-काल के लेखकों के उपदेश-प्रधान उपन्यासों में औपन्यासिक तत्त्व-विधान बहुत हल्का है। न तो कथानक के निर्माण में कौशल दिखाई देता है, न चरित्र-चित्रण का ही प्रयास है। कथा-तत्त्व में उत्सुकता, रोचकता और सम्बद्धता का भी प्रायः अभाव रहा। यद्यपि हमारे इन लेखकों की दृष्टि जीवन पर केन्द्रित रही, परन्तु जीवन के नाना पहलुओं और विभिन्न यथार्थ समाज-चित्रों को ये प्रकट नहीं कर सके। इनमें केवल समाज की नैतिक, पारिवारिक आचार-विचार-सम्बन्धी शिक्षा देना ही उपन्यासकारों का उद्देश्य था। जीवन की समस्या का केवल सतही तौर पर निर्देशन रहता था। सामाजिक समस्याओं में गहरे पैठने की इन लेखकों में दृष्टि नहीं थी। उपदेश और नैतिकता के बोझ से कला दबी ही पड़ी रही। संवाद-कला का भी अभाव रहा। संवाद होते ही कम थे और जो होते थे उनमें प्रायः कृत्रिमता का दोष रहता था। बहुधा पात्रों के स्थान पर लेखक ही बोलता दिखाई देता था। नीति, धर्म, पाप-पुण्य और सदाचार-सम्बन्धी दृष्टि भी इन लेखकों की परम्परागत ही रही।

(२) **घटना-प्रधान तिलस्म-ऐयारी के उपन्यास** प्रेमचन्द से पूर्व खूब लिखे जा रहे थे। श्री देवकीनन्दन खत्री इस धारा के अग्रणी लेखक हैं। मीर हमजा के तिलस्मी दास्तानों-जैसी फारसी-उर्दू की रचनाओं का हमारे लेखकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। खत्री जी की 'चन्द्रकान्ता' (रचना काल १८९०), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (१८९६ ई०) और भूतनाथ (१९०८) आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। श्री रामलाल वर्मा का 'पुतली महल' भी इस परम्परा का प्रसिद्ध उपन्यास है। इन उपन्यासों में तिलस्म के बटुए खोले जाते थे। घटना-वैचित्र्य ही इनकी विशेषता है। अतिप्राकृत और अविश्वसनीय घटनाओं और प्रसंगों की इनमें भरमार है। जीवन की वास्तविकता से इन उपन्यासों का विशेष सम्बन्ध नहीं, कल्पना की उड़ान ही पाई जाती है। न चरित्र-चित्रण का प्रयास है, न कथोपकथन की स्वाभाविकता। कथानक में संगठन,

कौतूहल, रोचकता का गुण तो आया पर अयथार्थता और अस्वाभाविकता का अंश इन्हें आज के बुद्धिवादी पाठक के योग्य नहीं रहने देता। अतः इन उपन्यासों का साहित्यिक महत्त्व विशेष नहीं, हाँ ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य मानना चाहिए। इतने पर भी यह अवश्य कहना पड़ता है कि असली ढंग पर उपन्यास का रूप इन रचाओं में ही सर्वप्रथम दिखाई दिया। उत्सुकता-वर्द्धक कथा-नियोजन, रोचक शैली, आरम्भ से अन्त तक कथा का क्रमिक विकास— ये इनकी विशेषताएँ हैं। भाषा भी इन लेखकों की अपेक्षाकृत प्राणवान् और अभिव्यंजनापूर्ण है। उर्दू की चुस्ती और मुहावरा-बन्दी तथा हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी इनमें पर्याप्त पाई जाती है।

(३) टेकनिक की दृष्टि से उपर्युक्त तिलस्मी धारा से मिलती-जुलती जासूसी उपन्यासों की परम्परा भी अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल जैसे उपन्यासकारों के प्रभाव से चली। गोपालराम गहमरी इस धारा के प्रमुख लेखक हैं। उनके 'अद्भुत लाश', 'झण्डा डाकू', 'गुप्त भेद' आदि तथा मथुराप्रसाद खत्री का 'आनन्द-महल' आदि उपन्यास प्रसिद्ध हुए। इनमें भी कलात्मकता की दृष्टि से वे ही विशेषताएँ या दुर्बलताएँ हैं, जो उपर्युक्त तिलस्मी उपन्यासों में हैं। हाँ, इनमें हमें जीवन की कुछ यथार्थता के भी दर्शन हो जाते हैं। फिर भी पश्चिम के डायल जैसे उपन्यासकारों की-सी सूक्ष्मता, विश्वासोत्पादिनी शक्ति तथा बुद्धि-चातुर्य इनमें नहीं आ पाया।

(४) प्रेमचन्द से पूर्व प्राचीन संस्कृत-कथा-प्रणाली को नवीन ढंग से ढालने वाले कुछ लेखकों ने कुछ पौराणिक और धार्मिक उपन्यासों की भी रचना की। श्री द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी का 'सावित्री-सत्यवान्' (१९१२ ई०), रामचरित उपाध्याय का 'देवी द्रौपदी' (१९१६) तथा नरोत्तम व्यास का 'लवकुश' आदि उपन्यास इसी परम्परा के द्योतक हैं। ये उपन्यास उपर्युक्त तिलस्मी-जासूसी उपन्यासों की अपेक्षा बहुत कम लिखे गये हैं। औपन्यासिक शिल्प का इनमें भी अभाव ही रहा।

(५) कुछ उपन्यास विज्ञान के विषयों को लेकर भी लिखे गये, जैसे— गंगाप्रसाद गुप्त का 'हवाई नाव' (१९०३ ई०), विनय गोपाल बख्शी का 'चन्द्रलोक की यात्रा' (१९१० ई०) तथा शिवसहाय चतुर्वेदी का 'बेलून बिहारी' (१९१८) आदि। इन उपन्यासों में विज्ञान की सत्यता के साथ उपर्युक्त

तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की स्वच्छन्द कल्पना भी रहती थी। उपन्यास-कला इनमें भी विकसित न हो पाई।

(६) कुछ उपन्यास केवल हँसी-मजाक द्वारा मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गये। उपर्युक्त तिलस्मी-जासूसी उपन्यासों का उद्देश्य भी मनोरंजन ही था। 'गोबर गणेश संहिता' (गोपालराम गहमरी), 'शैतान मण्डली' (बेचन शर्मा उग्र) तथा 'ठलुआ क्लब' (गुलाबराय) आदि हास्य से ओत-प्रोत हैं। उपन्यास-कला का इनमें भी अभाव रहा।

(७) प्रेमचन्द से पूर्व अन्य भाषाओं से अनूदित उपन्यास भी खूब निकलने लगे थे। आरम्भ में केवल मनोरंजन-प्रधान तिलस्मी, जासूसी आदि घटना-प्रधान उपन्यासों—जैसे, अंग्रेजी से 'टाम काका की कुटिया', 'लन्दन रहस्य' आदि तथा उर्दू-फारसी से 'तिलस्मे होशरूबा', 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस-वृत्तान्त माला' आदि का अनुवाद हुआ। किन्तु शनैः-शनैः बंगला, अंग्रेजी और मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद निकलने लगा। हिन्दी में बंकिम, रवि बाबू, शरत्, राखालदास बैनर्जी आदि बंगला लेखकों के उपन्यासों-जैसे श्रेष्ठ मौलिक उपन्यासों का अभाव खलने लगा।

(८) प्रेमचन्द से पूर्व भाव-प्रधान उपन्यास भी लिखे गये थे। इनमें काव्यात्मकता रहती थी। इनके पात्र भावुक होते थे। कवित्वपूर्ण अलंकृत शैली में भावव्यंजना ही लेखक का उद्देश्य रहता था। कथा-तत्त्व, चरित्र-चित्रण आदि का इनमें अभाव ही रहा। ब्रजनन्दन सहाय का 'सौन्दर्योपासक' और चण्डीप्रसाद हृदयेश का 'मनोरमा' इस ढंग के उपन्यासों में उल्लेख-नीय हैं।

(९) प्रेम-प्रधान उपन्यासों की परम्परा भी चल रही थी। यद्यपि तिलस्मी आदि घटना-प्रधान उपन्यासों में भी प्रेम-चित्रण रहता था, पर इन प्रेम-प्रधान उपन्यासों में प्रेमाख्यानों की ही प्रधानता रही। किशोरीलाल गोस्वामी इस परम्परा के अग्रणी लेखक कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों में रीति काव्य-परम्परा का शृंगार-मान, हास-परिहास, छिछली और अश्लील रसिकता, अभिसार, अवैध प्रेम आदि, तिलस्मी उपन्यासों का तिलस्मी और ऐयारी का घटना-चमत्कार तथा इतिहास का झीना और विकृत आधार पाया जाता है। 'तारा', 'कुसुम कुमारी', 'अंगूठी का नगीना', 'लखनऊ की कब्र', 'रजिया बेगम' आदि दर्जनों उपन्यासों की गोस्वामी जी ने (सन् १८८९ से १९१९ ई० तक)

रचना कर डाली थी। किशोरीलाल गोस्वामी के कुछ उपन्यासों में सामाजिकता का पुट भी पाया जाता है। पारसी नाटक-मण्डलियों के प्रभाव से भी कुछ प्रेम-प्रधान उपन्यास नाटकीय शैली में लिखे गये। फारसी काव्य के प्रेम-चित्रण के ढंग पर नाटकीय शैली में रामलाल वर्मा ने 'गुलबदन उर्फ रजिया बेगम' की रचना की थी।

(१०) जिस सुधारवादी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को अपनाकर भारतेन्दु-युग के लेखकों ने उपन्यास-रचना की थी, उसका विकास द्विवेदी-काल में प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हो रहा था। प्रेमचन्द इसी मार्ग से साहित्य-क्षेत्र में आए। उन्होंने इस सुधारवादी सामाजिक प्रवृत्ति को और भी सुन्दर कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द से पूर्व सुधारवादी उपन्यासों की धारा कई रूपों में प्रचलित हो चुकी थी। कुछ उपन्यास केवल पारिवारिक आदर्श और शिक्षा से सम्बन्धित लिखे गये, जैसे—गोपालराम गहमरी के 'बड़ा भाई', 'सास-पतोहु' (सन् १८८६ ई०), 'आदर्श दम्पति' (१६०४), 'हिन्दु गृहस्थ' (लज्जाराम मेहता) तथा 'आदर्श बहू' (उमराव सिंह, रचनाकाल १६१३) और 'छोटी बहू' (गिरजा कुमार घोष) आदि। इनका आरम्भ घर के ही संसार से हुआ। सास-बहू, ननद-भाभी के झगड़े और बाल-विवाह के दोष तथा स्त्री-शिक्षा आदि से सम्बन्धित नैतिकता ही इनमें रहती थी।

इस पारिवारिक घेरे के बाहर कुछ व्यापक सामाजिकता को अपनाकर भी सुधारवादी उपन्यास लिखे गये, जिनमें विधवा समस्या, बाल-विवाह, नारी-उत्थान, छुआछूत, जाति-भेद तथा दहेज-प्रथा आदि की सामाजिक समस्याओं को सतही तौर पर प्रस्तुत किया गया। लज्जाराम मेहता का 'सुशील विधवा' (१६०७) तथा चाँदकरण का 'कालेज होस्टल' (१६१६ ई०) आदि ऐसे भी उपन्यास हैं। इस परम्परा में एक-दो रचनाएं राजनीति और प्रेम से सम्बन्धित भी हुईं—जैसे उग्र जी का 'घण्टा' तथा उदयनारायण वाजपेयी का 'स्वदेश-प्रेम' (१६१०)।

प्रेमचन्द का आगमन : उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रेमचन्द के हिन्दी में आगमन ('सेवासदन' १६१८ ई०) से पूर्व हिन्दी उपन्यास अपने शैशव के प्रयोग-काल में था। उपन्यास के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के अभ्यास हो रहे थे। यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक विषयों पर रचनाएं लिखी जाने लगी थीं, किन्तु न तो अभी हमारे उपन्यासों में उपन्यास-कला का

विकास हुआ था, न सामाजिक समस्याओं को गहराई से पकड़ने की क्षमता ही लेखकों में दिखाई पड़ती थी, और न जीवन की व्यापक नाना-विध समस्याओं पर ही उनकी दृष्टि जाती थी। वास्तव में प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यास मुख्यतः दो उद्देश्यों से लिखे जाते थे—एक कोरे मनोरंजन के लिए, दूसरे सुधार और उपदेश की खातिर। तिलस्मी-ऐय्यारी, जासूसी, हास्य और प्रेम-प्रधान उपन्यासों में पहली प्रवृत्ति है, तो पौराणिक, धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक उपदेश-प्रधान उपन्यासों में दूसरी। फिर भी 'तिलस्म होश रूबा' को चाव से पढ़ने वाले प्रेमचन्द ने तिलस्मी अस्वाभाविक कथानकों के स्थान पर, सुधारवादी रचनाओं के प्रभाव से, हिन्दी कथा-साहित्य को जीवन की यथार्थता और आदर्श प्रेरणाओं से बाँधने का निश्चय किया, यह साहित्य के लिए बड़े सौभाग्य की बात थी। 'सेवा-सदन' जैसी प्रौढ़ रचना प्रस्तुत करके प्रेमचन्द जी ने हिन्दी उपन्यास-कला को प्रौढ़ता प्रदान की।

जीवन का व्यापक चित्रण, अनेक सामाजिक समस्याओं का यथार्थ अनुभूतिपूर्ण प्रकाशन, स्वाभाविक विश्वसनीय मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण कथानक, भिन्न-भिन्न वर्गों और पेशों के अनेक पात्रों का यथार्थ चरित्र-चित्रण, पात्रानुरूप एवं स्वाभाविक सजीव-संवाद, युग-धर्म की सजीवता, सुन्दर, सरल, परिष्कृत और प्रभावात्मक भाषा-शैली, जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं और आदर्शों का महान् उद्देश्य आदि गुणों की अवतारणा हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी की लेखनी द्वारा ही प्रस्तुत हुई। मानवता का इतना दुःख-दर्द और दलित-दुखित शोषित निम्न वर्ग के प्रति इतनी सच्ची सहानुभूति लेकर आने वाला शायद ही दूसरा कलाकार कहा जा सके। भारतीय जीवन के पिछले पचासों वर्षों का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संघर्ष और विकास जितनी सत्यता से उनके उपन्यासों में पाया जाता है, वैसा इतिहास की पुस्तकों में ढूँढ़े से भी नहीं मिल सकता। निश्चय ही प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य के लिए वरदान-सदृश सिद्ध हुआ। वे हमारे सांस्कृतिक गुरु थे। नव भारत के निर्माण में उनका योग किसी राजनैतिक या सामाजिक नेता से कम नहीं है। जो कार्य राजनीति के क्षेत्र में गांधी जी-जैसे राजनीतिज्ञ नेता ने किया वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ। अपने व्यक्तिगत जीवन तथा युग-जीवन से बहुत-कुछ पाकर उन्होंने सब-कुछ अपने युग और भावी युग को दे दिया, अपने निज के लिए कुछ भी नहीं रखा—कुछ भी नहीं चाहा।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यास का शिल्प-विकास :

कथा-शिल्प—प्रेमचन्द के उपन्यासों तथा प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यासों में शिल्पगत नाना प्रकार का विकास हुआ। हिन्दी-उपन्यासों में कथावस्तु की निर्दोषता बहुत समय तक नहीं आ पाई। न केवल प्रेमचन्द-पूर्व के घटना-प्रधान उपन्यासों में अद्भुत, अस्वाभाविक और कृत्रिम घटना-वैचित्र्य वाला कथानक होता था और उपदेश-प्रधान उपन्यासों में उपदेश या सुधार की खातिर कथा को मनमाने ढंग पर चलाया जाता था, अपितु प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर युग में भी आज तक अधिकांश उपन्यास कथानक की दृष्टि से सदोष ही दिखाई देते हैं। आकस्मिक घटनाओं और संयोगों (Coincidence) का बाहुल्य बहुत रचनाओं में पाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन में आकस्मिक घटनाएँ भी घटती हैं, पर कभी-कभी ही। उनकी अधिकता उपन्यास में अस्वाभाविक-सी प्रतीत होने लगती है। प्रेमचन्द के भी 'वरदान', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'काया-कल्प' आदि गोदान-पूर्व के उपन्यासों में यह दोष कुछ हद तक पाया जाता है। प्रेमचन्द-काल तथा प्रेमचन्दोत्तर-युग में उपन्यास मानव जीवन से तो सम्बद्ध हो गए, पर उनमें किसी निश्चित आदर्श या उद्देश्य की सिद्धि का ध्यान १९वीं शती के उपन्यासों का-सा तो नहीं, पर कुछ-न-कुछ रहता ही था। आकस्मिक घटनाओं के प्रयोग द्वारा लेखक कभी-कभी कथा की गति लक्ष्य की ओर बढ़ाता रहा। प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों में भी कथा उद्देश्य के इशारे पर मोड़ी-सी प्रतीत होती है।

आकस्मिकता के अतिरिक्त दूसरा दोष लक्ष्य या उद्देश्य की महत्ता से यह रहा कि कई बार कथा-वस्तु में सन्तुलन नहीं रहता था। अनावश्यक घटना कई बार विस्तार पा जाती थी और आवश्यक घटना और प्रसंगों का विस्तार नहीं हो पाता था। प्रासंगिक वृत्तों के अनावश्यक विस्तार का यह दोष प्रेमचन्द के भी बड़े उपन्यासों में, यहाँ तक कि 'गोदान' में भी पाया जाता है।

तीसरा दोष यह है कि अपने उद्देश्य, रुचि और सिद्धान्त के मोह में लेखक स्वयं या किसी पात्र के लम्बे-लम्बे भाषण, लम्बे संवाद या ऊबा देने वाली व्याख्याएं अथवा वर्णन (कैफियतें) देने लगा था। इससे भी कलात्मकता को हानि पहुँची है। कथा-वस्तु-सम्बन्धी ये तीन दोष हिन्दी के अच्छे उपन्यासकारों—प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, 'प्रेत और छाया'-जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास रचने वाले इलाचन्द्र जोशी, 'दादा कामरेड'-आदि प्रगतिवादी रचनाएँ करने

वाले यशपाल, नागार्जुन प्रभृति लेखकों के कई उपन्यासों में भी पाये जाते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में यदि कहीं-कहीं वर्णन की अधिकता, जैसे 'झाँसी की रानी' में लम्बे-लम्बे ऐतिहासिक-वर्णन कथा की गति में बाधा और ऊबाहट पैदा करने लगते हैं तो मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोविश्लेषण और व्याख्याएँ दोष उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार मार्क्सवादी रचनाओं में सैद्धान्तिक कथनों का दोष कथा को निर्जीव बनाता है। 'बाबा बटेसर नाथ', 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड'—आदि उपन्यास इसी दोष से भरे हैं।

हमारे आरम्भिक उपन्यासों में घटनाओं की अधिकता चरित्र-चित्रण को दबाए रहती थी। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही सर्वप्रथम चरित्र-चित्रण का प्रयास दिखाई देता था। पर उनकी भी आरम्भिक रचनाओं में चरित्र-चित्रण कुछ दबा हुआ था। वर्मा जी के उपन्यासों में भी कई बार घटनाएँ पात्रों को आच्छादित कर लेती हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' तथा बाद के लेखकों की अनेक रचनाओं में कथानक और पात्रों का सामंजस्य आने लगा। हमारे उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ती गई और मनोवैज्ञानिक या मनोवैश्लेषिक उपन्यासों में तो कथा या घटना की अवहेलना-सी ही होने लगी। कथा गौण हो गई, चरित्र-चित्रण या विश्लेषण ही मुख्य उद्देश्य हो गया। 'संन्यासी', 'शेखर—एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' आदि में यह प्रवृत्ति दूसरी अति तक पहुँच गई।

हिन्दी में कथानक की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष उपन्यास कम ही दिखाई देते हैं। मुन्शी प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ('माँ', 'भिखारिणी'), बेचन शर्मा उग्र ('सरकार तुम्हारी आँखों में' आदि), प्रतापनारायण श्रीवास्तव ('विदा' आदि), गोविन्दवल्लभ पंत, अश्क जी, यशपाल (झूठा सच आदि), इलाचन्द्र जोशी ('जहाज का पंछी' आदि), गुरुदत्त आदि के कुछ उपन्यासों में ही सीधी-सादी निर्दोष कथा के दर्शन होते हैं। वास्तव में पहले उद्देश्य-उपदेश या घटना-बहुलता के कारण कथा में दोष उत्पन्न होते थे, प्रेमचन्दोत्तर-काल में बौद्धिक जागरूकता के बढ़ने से उपन्यास में बुद्धि-प्रधानता रहने लगी। विभिन्न प्रकार की मार्क्सवादी, मनोविज्ञानवादी, राष्ट्रवादी, सांस्कृतिक आदि विचारधाराओं ने हमारे उपन्यासकारों को घेर लिया और यह सब विचार-तत्त्व कथा-रस में घुलकर आने की बजाय, कथा-वस्तु की अवहेलना-सी करने लगा। यह बात हम यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, रांगेय राघव, नागार्जुन,

फनीश्वर रेणु आदि हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकारों के भी बहुत से उपन्यासों को दृष्टि में रखकर कह रहे हैं। अज्ञेय के 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' में कथा का भारी दोष है और सच तो यह है कि शैली-शिल्प की कुछ नवीनता के कारण जितनी इनकी चर्चा-प्रचार एवं प्रसिद्धि हुई है, उतना कुछ शायद उनमें नहीं है। रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' की कहानी और भी दुखद है। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र', 'सुनीता' आदि कुछ सन्तुलित उपन्यासों को छोड़कर सब उपन्यास, इलाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया', 'जिप्सी' आदि, नागार्जुन के 'बाबा बटेसर नाथ' आदि में भी कथा-रस का दोष बहुत ही अखरता है। फिर भी प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर काल में हिन्दी उपन्यास के कथा-शिल्प का पर्याप्त विकास हुआ है। कई प्रकार के प्रयोग भी हुए हैं।

चरित्र-चित्रण : पहले कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का अभाव था। पात्रों की कोई स्वतन्त्र, स्वाभाविक, सजीव रेखाएँ उभर नहीं पाती थीं। यथार्थ चरित्र-सृष्टि सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही प्रकट की। उनका 'सेवासदन' सुमन, पद्मसिंह शर्मा, शान्ता, सदन आदि सजीव पात्रों की अमर चरित्र-सृष्टि लेकर आया था। प्रेमचन्द विविध प्रकार के पात्रों की मनोवृत्तियों से अच्छी तरह अभिज्ञ थे। उनका मानव-जीवन-अनुभव व्यापक था। इसीसे उनकी चरित्र-सृष्टि बहुत व्यापक एवं विशाल है। हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण-कला को उन्होंने बहुत विकसित किया, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि प्रेमचन्द की चरित्र-कला सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकती क्योंकि उनके 'गोदान'-पूर्व के कुछ उपन्यासों में घटनाओं की बहुलता तथा उद्देश्य के आग्रह से कई बार कुछ पात्र दब गए हैं या उनका अस्वाभाविक गति-विकास हुआ है जो मनोवैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता, जैसे, 'प्रेमाश्रम' में गायत्री, ज्ञानशंकर आदि, 'ग़बन' में जोहरा, 'निर्मला' में डा० सिन्हा की आत्महत्या अस्वाभाविक ही हैं। पात्रों की ऐसी अस्वाभाविक परिणति या परिवर्तन के कारण ही तो पं० इलाचन्द्र जोशी ने प्रेमचन्द पर मनोविज्ञान के कच्चे होने का दोष लगाया था तथापि उनके अन्तिम सफल उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचन्द ने इन दोषों का परिहार करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इस रचना में शायद किसी पात्र के चरित्र में ऐसा दोष नहीं है। 'गोदान' के होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, मेहता, मालती, खुर्शेद आदि प्रायः सब पात्र प्रेमचन्द की अमर

कला का नमूना हैं। प्रेमचन्द और प्रेमचन्द-युग के सामाजिक उपन्यासों में अधिकतर चरित्र-सृष्टि वर्गगत रहती थी ; इतनी कि कई बार तो पात्रों का व्यक्तित्व सजीव नहीं हो पाता था।

सन् १६३६ के आसपास, प्रेमचन्दोत्तर काल में, कुछ उपन्यास ऐसे प्रकाश में आने लगे थे जिनमें चरित्र-चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक, सजीव, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और स्वतन्त्र वैयक्तिक दिखाई दिया। प्रेमचन्द-युग के उपन्यासों में 'प्रतिनिधि-पात्र' ही स्थान पाते थे तथा उनके चरित्र का वही रूप सामने आता था, जिसमें उनके वर्ग की विशिष्टता स्पष्ट हो सके। पर अब जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी, अज्ञेय आदि के चरित्र-प्रधान उपन्यासों में मानव अपनी विचित्रताओं में प्रकट होने लगा। परम्परागत आदर्श या नैतिक मर्यादाओं का बँधा हुआ भय अब समाप्त हुआ है। प्रेमचन्द और उनसे पहले के उपन्यासों में 'सुनीता' (१६३६ ई०) की तरह पर-पुरुष के सामने नारी के आक्रोश के साथ नंगा हो जाने की कल्पना भी कोई लेखक नहीं कर सकता था। इस प्रकार सन् १६३५-१६३६ ई० से हमारी उपन्यास-कला ने एक और मोड़ लिया। हमारे उपन्यासकारों के दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता, यथार्थता, उदारता और व्यापकता आती गई। पहले उपन्यासों के नायक प्राय: उच्च वर्ग के बर्जुआ मनोवृत्ति के व्यक्ति ही होते थे पर 'चित्रलेखा' (भगवतीचरण वर्मा), 'गोदान', 'सुनीता' में दृष्टि-भेद स्पष्ट है।

कुछ उपन्यासों में यथार्थवाद के मोह से अतिशय दुश्चरित्र, हीन और व्यभिचारी पात्रों का भी चित्रण हुआ। बहुत-सी रचनाओं में बुरे पात्रों का चित्रण भी स्वस्थ यथार्थवादी प्रवृत्ति से सहानुभूतिपूर्वक किया जाता है। १६३६-४० से चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' (१६४१), अज्ञेय का 'शेखर' (१६४१-४४), जैनेन्द्र के 'सुनीता', 'त्यागपत्र' आदि उपन्यासों में चरित्र-चित्रण कला का भव्य विकास लक्षित हुआ है। पात्रों के मन की विचित्रताओं तथा विसंगतियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकट करने में हमारे ये उपन्यासकार पर्याप्त सफल हुए हैं। इन चरित्र-प्रधान उपन्यासों में सारा कथानक ही चरित्रों द्वारा परिचालित होता है। अन्य अधिकांश उपन्यासों में 'गोदान' की तरह कथा और चरित्र-चित्रण का सामंजस्य रहा। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास कला

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अपनी आरम्भिक अवस्था को पारकर प्रौढ़ बन गई है।

संवाद-कला : आरम्भिक उपन्यासों में संवाद-कला भी 'अकला' ही थी। संवाद अस्वाभाविक और कृत्रिम से होते थे। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम सुन्दर स्वाभाविक, पात्र-परिस्थिति-प्रसंग-अनुरूप संवादों को जन्म दिया। प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर काल में संक्षिप्त, रोचक, चटुल, चुस्त, हास्य-व्यंग्य और हाजिर-जवाबी से युक्त सार्थक संवादों का समावेश हुआ। विचार और सिद्धान्त के प्रकाशन का मोह, हमारे आगे के उपन्यासकारों में हुआ। अतः बीच-बीच में कहीं-कहीं सैद्धान्तिक वार्तालाप कथा की गति और रोचकता के लिए कुछ हानिकारक भी प्रतीत हुए। विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा (देखिए 'कचनार'), विष्णु प्रभाकर-जैसे कुछ उपन्यासकारों ने तो संवादों को अत्यन्त संक्षिप्त रखने का प्रयास किया है। वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में संवाद-शैली का खूब प्रयोग किया है। प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के समावेश से अस्वाभाविकता और कृत्रिमता का दोष तो प्रायः समाप्त हुआ पर कहीं-कहीं लम्बे विचार-गांभीर्य से युक्त संवाद रचना को बोझल बना देते हैं। फिर भी सामान्य रूप से हमारे उपन्यासों में पात्रों की अवस्था, परिस्थिति, बुद्धि-संस्कार आदि के अनुरूप सुन्दर नाटकीय, स्वाभाविक, सजीव, सार्थक, रोचक संवाद-शैली का पर्याप्त विकास हुआ।

देश-काल-वातावरण : प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में इस तत्त्व की भी कमी ही रही थी। किशोरीलाल गोस्वामी ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का जो प्रयास किया था, उसमें ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता का ध्यान नहीं रखा गया था। तिलस्मी-ऐय्यारी के उपन्यासों में सब वातावरण कृत्रिम रहता था। जीवन की वास्तविकता से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं था। प्रेमचन्द से पूर्व के पारिवारिक तथा कुछ सामाजिक उपन्यासों में ही पारिवारिक और सीमित सामाजिक वातावरण उतरा, पर उसमें भी सजीवता, विस्तार या व्यापकता का अभाव ही रहा। सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही अपने 'सेवासदन' आदि सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की परिस्थितियों का सजीव चित्रण किया। प्रेमचन्द का चित्रपट जितना व्यापक, विस्तृत और सजीव है वह उन्हें विश्व के बड़े-बड़े उपन्यासकारों—टालस्टाय, बालझाक आदि के समकक्ष खड़ा करता है। शरत्,

रवि बाबू, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी-जैसे श्रेष्ठ भारतीय उपन्यासकारों का भी चित्रपट (Canvas) इतना व्यापक नहीं, जितना प्रेमचन्द का है। ग्राम-जीवन के चित्रण में तो प्रेमचन्द अद्वितीय रहे हैं। युग-धर्म की इतनी सजीवता प्रेमचन्द के उपन्यासों को ऐतिहासिक वातावरण-प्रधान उपन्यासों का दर्जा प्रदान करती है। निश्चय ही उनके उपन्यासों में भारतीय जीवन के कम-से-कम पचास वर्षों की सच्ची झाँकी प्राप्त होती है, जो इतिहास की पुस्तकों में शायद ढूँढ़े से भी नहीं मिलेगी।

स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों—'गढ़कुण्डार', 'कचनार', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिक वातावरण की सजीव सृष्टि की है। बुन्देलखण्ड और उसकी अतीत संस्कृति को उन्होंने अपने उपन्यासों में साकार कर दिखाया। हिन्दी में अनेक वातावरण-प्रधान उपन्यास लिखे गये हैं, न केवल सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का सजीव अंकन हुआ है, अपितु ऐतिहासिक उपन्यासों में—जैसे चतुरसेन शास्त्री के 'वैशाली की नगर वधू', 'गोली' आदि, यशपाल की 'दिव्या', राहुल जी के 'सिंह सेनापति', 'सोने की ढाल', 'जय-यौधेय' आदि। आनन्द प्रकाश जैन का 'कठपुतली' आदि उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की पर्याप्त सजीवता है।

गत पन्द्रह-बीस वर्षों में हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों का भी प्रयोग हुआ है। ये उपन्यास भी वातावरण-प्रधान ही हैं। पूर्णिया जिला (बिहार) के जीवन पर फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आँचल' और 'परती-परिकथा' नामक उपन्यास लिखे। कुछ आंचलिक सामाजिक उपन्यासों में अछूते चित्रण भी हुए। नटों के जीवन पर रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', मछुओं के जीवन पर उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', ज़िला दरभंगा (बिहार) के जीवन पर नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसर नाथ' भी आंचलिक उपन्यास हैं जिनमें किसी जनपद-विशेष अथवा वर्ग-जाति-विशेष के सांस्कृतिक जीवन का जनपदीय भाषा में सजीव चित्रण किया गया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में पात्रों के क्रिया-कलापों, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, संस्कार, प्रथाएँ, स्थान, प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण तथा भाषा-शैली आदि के द्वारा युग-धर्म और वातावरण की सजीवता आई। पर जहाँ इन उपन्यासों में यह देशकाल चित्रण ही उद्देश्य बन गया है, वहाँ स्थानीय रंगों का चित्रण कथा के प्रवाह में बाधक बन बैठा है और रचनाएँ नीरस-सी हो गई हैं। 'मैला आँचल',

जिसकी चर्चा बहुत हुई है, इस दोष से ग्रस्त है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अन्तर्संघर्ष के कारण बाह्य वातावरण की अत्यन्त संक्षिप्त झाँकियाँ रहती हैं।

उद्देश्य : पहले कहा जा चुका है कि आरम्भिक उपन्यासों में या तो केवल मनोरंजन का उद्देश्य रहता था या सुधारवादी प्रवृत्ति के प्रभाव से कला दबी रहती थी। प्रेमचन्द भी समाज-सुधार का उद्देश्य लेकर आए, पर उन्होंने सामयिक सामाजिक समस्याओं पर इस ढंग से लेखनी चलाई कि कला की हानि न हो। प्रेमचन्द इसलिए महान् हैं कि उन्होंने हमारी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं को संवेदनात्मक रूप देकर प्रस्तुत किया ; उन्होंने जीवन को काव्यरस के रूप में प्रस्तुत किया। जहाँ-कहीं स्वयं प्रेमचन्द ने कोरे सुधारवाद या जीवनवाद का चोला पहनना चाहा है, वहाँ उन्हें भी मुँह की खानी पड़ी है।

प्रेमचन्द के ही सामाजिक उद्देश्य को अपनाने वाले प्रेमचन्द-काल में श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद ('कंकाल') आदि तथा प्रेमचन्दोत्तर-काल में भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि अनेक उपन्यासकार हुए हैं। इन लेखकों ने प्रेमचन्द के ही स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद को अपनाया। कुछ लेखकों ने यथार्थवाद के नाम पर समाज के अति प्राकृत वीभत्स चित्रों का अनावरण करना आरम्भ किया। बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन तथा वर्तमान काल में गुलशन नन्दा, दत्त भारती, ख्वाजा अहमद अब्बास, आदिल रशीद, कुशवाहा कान्त आदि ने समाज का ज्यों-का-त्यों फोटो प्रस्तुत कर डाला। इन लेखकों की भी बहुत-सी यथार्थवादी रचनाओं का उद्देश्य सामाजिक ही है, किन्तु नग्न यौन-विकार के जैसे चित्र 'दिल्ली का दलाल' (उग्र जी), 'व्यभिचार के अड्डे' आदि ऐसे उपन्यासों में हैं, जिनसे पाठकों का मानसिक स्खलन होता है, स्वस्थ प्रतिक्रिया दब जाती है। अतः ऐसे लेखकों को संयम से काम लेना चाहिए।

प्रेमचन्दोत्तर-काल के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक जागरण है। प्रेमचन्दोत्तर-काल में साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासों का उद्देश्य भी सामाजिक है। इनमें भी समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके सर्वहारा वर्ग की उन्नति-कल्पना, पूंजीपतियों का पतन, पूँजीवाद और सामन्तवाद आदि शोषक शक्तियों को मृत्युदण्ड देने का प्रयत्न

पाया जाता है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रचार ने कहीं-कहीं इनमें कला को हानि पहुँचाई है।

हिन्दी-उपन्यासों की सामाजिक मनोभूमि : हमारे उपन्यास-साहित्य में सामाजिक चेतना और सामाजिक समस्याओं तथा जीवन-मूल्यों के अध्ययन में उत्तरोत्तर बड़ा परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासकारों में समाज की विकृतियों, अत्याचारों और बुरी परम्पराओं का खुल्लमखुल्ला विरोध करने की शक्ति और साहस नहीं था। समस्याओं को गहरे में पकड़ने तथा समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं को व्यापक रूप में दर्शाने एवं समाज की जड़ों में घुसी कुरीतियों को कुरेदने की दृष्टि उनमें नहीं थी। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम इस क्षेत्र में व्यापक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया। प्रेमचन्द ने समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं को अत्यन्त मानवीय सहानुभूति के साथ दर्शाया। किन्तु उन्होंने भी व्यक्ति को समाजसापेक्ष ही स्वीकार किया; व्यक्ति का समाज के साथ खुल्लम-खुल्ला संघर्ष और विद्रोह प्रेमचन्द अच्छी तरह नहीं दिखा सके। प्रेमचन्द-काल में ही व्यक्ति को परम्परागत समाज के पंजे से मुक्त कराने की भावना का जन्म हो गया था। प्रेमचन्द, प्रसाद ('कंकाल' में) आदि ने भिन्न-भिन्न सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं का खोखलापन दिखाकर प्रचलित सामाजिक परम्पराओं और उनके प्रति जमे हुए विश्वासों पर ज़बरदस्त आघात तो किया था, पर यह आघात आघात ही रहा। इससे नये मूल्य और नई जीवन-दृष्टि नहीं मिली।

संभवतः सर्वप्रथम भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' में सामाजिक परंपरा को नया रूप मिला। उन्होंने पाप-पुण्य के सम्बन्ध में नई धारणा प्रकट की। व्यक्ति को समाज के बंधे आदर्शों से स्वतन्त्र होने की प्रेरणा मिली। जीवन के नये मूल्यों की स्थापना, समाज की परिस्थितियों के बजाय, व्यक्ति की ही परिस्थितियों के आधार पर करने का प्रयास हुआ। व्यक्ति की महत्ता के कारण सामाजिक मूल्यों में मनोवैज्ञानिक नैतिकता का प्रवेश हुआ। हिन्दी-उपन्यासों में यह दिशांतर प्रेमचन्द के पश्चात् स्पष्ट रूप में दिखाई दिया। प्रेमचन्द-युग में वेश्या-समस्या का चित्रण तो हुआ, वेश्या के प्रति लेखक ने सहानुभूति भी दिखाई, पर 'सदनों' की स्थापना में ही उसे उसका हल दृष्टिगोचर होता था। वेश्या को समाज में घुलाने-मिलाने—शादी-ब्याह कराकर समाज में रहने देने की दृष्टि उस युग में न थी। अब दृष्टिकोण

बदला। परंपरागत नैतिक बन्धन ढ़ीला हुआ। अब वेश्या के साथ—सुमन-जैसी पवित्र वेश्या के साथ नहीं, अपितु घोर नारकीय जीवन बिताने वाली से—शादी कराने वाले को समादृत किया जाने लगा। प्रेमचन्द-युग में यदि शादी की बात होती भी तो केवल सुमन-जैसी से, उन्हें पवित्र दिखाकर ही।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना उत्तरोत्तर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की परिचायक हुई। व्यक्ति के आचरणों की अच्छाई-बुराई की परख परंपरागत नैतिकता के स्थान पर व्यक्ति की ही परिस्थितियों के आधार पर नवीन मूल्यों के प्रकाश में की जाने लगी। इससे हिन्दी उपन्यास की भावधारा अन्तर्मुखी होती गई। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने व्यक्ति का ही अध्ययन आरम्भ कर दिया। व्यक्ति और मानवता का कल्याण व्यक्ति के ही अतल में दबी हुई मलिनता के परिशोधन और संस्करण में समझा जाने लगा।

व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक विचारधारा के विपरीत, मार्क्सवादी उपन्यास-कारों ने व्यक्ति के स्थान पर सामूहिकता को महत्त्व दिया, किन्तु परम्परागत रूढ़ियों, पूंजीवाद, सामंतवाद आदि को समाप्त करके नये सामाजिक विधान की कल्पना की गई। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास की मनोभूमि का क्रमिक विकास संकुचित पारिवारिक-सामाजिक घेरे से अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और व्यापक सामाजिक एवं उससे आगे विश्व-मानवतावादी प्रगति के सोपान पर पहुँचने का परिचायक है। व्यक्तिवादी उपन्यासों की वैयक्तिकता में भी मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। हमारे उपन्यासकार अधिकाधिक उदार संस्कृति के पोषक होते गए हैं।

रस-भाव—हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में भावों का अत्यन्त सीमित प्रकाशन होता था। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में ही सर्वप्रथम मानवीय संवेदनाओं का व्यापक और उदात्त रूप दृष्टिगोचर हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रेम, घृणा, करुणा, हास्य, वात्सल्य, साहस, उत्साह आदि सभी प्रकार के उदात्त भाव रस की चरमस्थिति को पहुँचे हैं। उनकी सफलता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि वे इन मानवीय संवेदनाओं का सफल चित्रण कर पाये। जीवन की बुराइयों तथा दुष्ट, अत्याचारी, व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी पात्रों के प्रति हमारी तीव्र घृणा जगाकर प्रेमचन्द ने समाज-सुधार की अद्भुत प्रेरणा दी है। आधुनिक सामाजिक यथार्थ-परक उपन्यासों में अन्य रसों के अतिरिक्त बीभत्स (घृणा) का बहुत व्यापक और प्रभावी प्रकाशन हुआ है। सामाजिक

बुराइयों को हमारे लेखकों ने खोलकर रख दिया है। वीभत्स रस के अनेक आलम्बन प्रकट हुए हैं। जिन उपन्यासों में भाव-संवेदनाओं का समुचित प्रकाशन नहीं हो पाया है, वे सफल उपन्यास नहीं माने जाते। हिन्दी के सभी प्रसिद्ध उपन्यासों, जैसे प्रेमचन्द के उपन्यास, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास, जैनेन्द्र के 'सुनीता', 'त्यागपत्र' आदि, इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी', 'सुबह के भूले,' 'जहाज का पंछी' आदि सबमें रस-भावों का व्यापक, गहन एवं उदात्त प्रकाशन ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। 'मैला आंचल', 'नदी के द्वीप', 'शेखर' आदि बहुचर्चित होने पर भी रस-परिपाक के अभाव में दुर्बल पड़ जाते हैं।

हिन्दी उपन्यासों में भाषा-शैली की दृष्टि से भी विकास की अनेक मंजिलें दिखाई देती हैं। आरम्भिक उपन्यासों में भाषा-शैली का भी सुष्ठु रूप नहीं मिलता। कथा-साहित्य की कोई एक आदर्श भाषा-शैली निश्चित नहीं हो पाई थी। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम कथा-साहित्य की स्वाभाविक, सरल, सजीव, प्रवाहपूर्ण, मुहावरेदार, चुस्त एवं प्रभावी भाषा का आदर्श स्थापित किया। कितने ही लेखकों ने आज तक मामूली व्यक्तिगत विशिष्टता के साथ प्रेमचन्द की ही भाषा-शैली को अपनाया हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, निराला, अश्क जी, भगवतीचरण वर्मा, उग्र जी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि अनेक उपन्यासकारों ने वैसी ही सुन्दर जनभाषा का प्रयोग किया है जिसकी दिशा प्रेमचन्द ने दी थी। इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की भाषा प्रौढ़ साहित्यिक तत्सम-बहुला भाषा है। जैनेन्द्र की भाषा में बातचीत का-सा मजा आता है। गद्य-शैलियों के सभी रूपों का विकास हिन्दी उपन्यासों में हुआ है।

हिन्दी में आजकल सब प्रकार के उपन्यास रचे जा रहे हैं। कथानक या घटना-प्रधान उपन्यास भी साहसिक या जासूसी रचनाओं के रूप में लिखे जा रहे हैं, पर अभी ऐसे उपन्यासों का पश्चिम के उपन्यासों-जैसा स्तर नहीं हो पाया है। हमारे लेखकों में वैसी बौद्धिकता और रचना-चातुरी नहीं दिखाई देती। चरित्र-प्रधान उपन्यासों की तो अखण्ड परंपरा प्रेमचन्दोत्तर काल में प्रवाहित रही है। पर आजकल अधिक उपन्यास ऐसे ही लिखे जा रहे हैं जिनमें घटना और चरित्रों का समन्वय रहता है। अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', इलाचन्द्र जोशी का 'ऋतुचक्र', जैनेन्द्र का 'मुक्ति-बोध', अज्ञेय का 'अपने-अपने अजनबी', भगवती बाबू का 'सीधी सच्ची बातें' आदि हिन्दी के ऐसे ही नवीन उपन्यास हैं। भाव-प्रधान उपन्यासों का चलन

तो हुआ था, पर वास्तव में उपन्यास का कलेवर बड़ा होने पर इसमें भावुकता का विस्तार अस्वाभाविक ही प्रतीत होने लगता है। आरम्भ में ब्रजनन्दन सहाय आदि के जो दो-चार उपन्यास प्रेमचन्द-पूर्वकाल में मिलते हैं, वे अस्वाभाविकता के दोष से ही युक्त हैं। प्रसाद जी का 'तितली' सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास है। भाव-प्रधान उपन्यासों का एक रूप पिछले वर्षों में हास्य-प्रधान उपन्यासों का विकसित हुआ है। निराला जी के 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्ली भाट' सामाजिक व्यंग्य-प्रधान रचनाएँ हैं। श्री द्वारकाप्रसाद का 'गुनाह बेलज्जत', अमृतलाल नागर का 'सेठ बांकेमल' आदि भी हास्य रस के उपन्यास हैं।

विषय की दृष्टि से उपन्यासों की कोई सीमा नहीं। धार्मिक-पौराणिक विषयों पर हिन्दी में बहुत कम उपन्यास लिखे गये हैं। पं० गौरीशंकर मिश्र के 'बलिदान का मंदिर' (१९४१) और 'जयदेव' (१९४२ ई०) आदि एक-दो अप्रौढ़ धार्मिक उपन्यास ही उल्लेख-योग्य हैं। सामाजिक विषयों पर ही अधिक उपन्यास लिखे गए हैं। पारिवारिक विषयों पर पारिवारिक उपन्यास, वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित वैयक्तिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक, जासूसी, साहसिक आदि अनेक विषयों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं।

शैली-प्रयोग : वर्तमान हिन्दी उपन्यासों में शैलियों की भी विविधता पाई जाती है। शुद्ध वर्णन-विवरणात्मक शैली का प्रयोग हिन्दी के तिलस्मी, जासूसी-ऐय्यारी के उपन्यासों में हुआ है। सारी कहानी लेखक के वर्णन और घटना-विवरण के रूप में प्रकट की जाती है। संवाद-शैली का प्रयोग भी कम होता था और विश्लेषण की तो आवश्यकता ही नहीं थी। आरम्भिक उपन्यासों के बाद हमारे उपन्यासों में कोरा वर्णन और विवरण नहीं रहा, जीवन की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाने लगी। अब वर्णन-विश्लेषण-शैली का प्रयोग होने लगा। प्रेमचन्द के 'गोदान' में इस समन्वित शैली के दर्शन होते हैं। चरित्र-प्रधान उपन्यासों में तो विश्लेषण शैली की ही प्रधानता हो गई। इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि ने विशेष रूप से विश्लेषण शैली का प्रयोग किया। 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' आदि इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में घटनाओं का वर्णन मामूली होता है पर पात्रों की मनःस्थितियों, अन्तर्द्वन्द्वों तथा परिस्थितियों का विश्लेषण अधिक रहता है। संवाद-प्रधान शैली में भी कई

उपन्यास लिखे गए हैं। आरम्भ में कुछ उपन्यास पारसी नाटकीय मंडलियों के प्रभाव से नाटकीय शैली में रचे गए थे, जैसे रामलाल का 'गुलबदन उर्फ रजिया बेगम' (सन् १९१३), नयन गोपाल का 'उर्वशी' (१९२५ ई०) आदि। बाद में यह शैली कुछ वर्णन शैली को साथ लेकर चली। वृन्दावनलाल वर्मा के कुछ उपन्यासों में वर्णनयुक्त संवाद-प्रधान शैली के ही दर्शन होते हैं। उनका 'कचनार' इसका सुन्दर उदाहरण है, जिसमें समस्त कथा-सामग्री छोटे-छोटे सुन्दर संवादों के रूप में ही प्रकट हुई है। बीच-बीच में वर्णन शैली मामूली है।

हिन्दी में अधिकतर रचनाएँ इतिहासकार की द्रष्टा-शैली में रची गई हैं। प्रेमचन्द तथा अन्य अनेक लेखकों ने यही शैली अपनाई है। आत्मकथा शैली में मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यास बहुत रचे गये हैं। इसमें एक या एकाधिक पात्र अपनी कथा 'मैं' शैली में प्रस्तुत करते हैं। इस शैली का सफल निर्वाह लेखक से सतर्कता चाहता है। इससे कथा और भी विश्वसनीय प्रतीत होने लगती है। जैनेन्द्र के 'सुखदा', 'व्यतीत', अज्ञेय का 'शेखर', इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी', 'जिप्सी' आदि में एक प्रमुख पात्र अपनी कथा कहता है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', इलाचन्द्र जोशी के 'पर्दे की रानी' में एकाधिक पात्र अपनी-अपनी परस्पर सम्बद्ध कथा कहते हैं। पत्र-शैली का विशेष चलन हिन्दी में नहीं हुआ। वैसे भी यह शैली अधूरी शैली है। बेचन शर्मा उग्र का 'चंद-हसीनों के खतूत', प्रफुल्लचन्द ओझा 'मुक्त' का 'पाप और पुण्य' आदि दो-चार रचनाएँ ही इस शैली में हुई हैं।

डायरी शैली का प्रयोग भी बहुत कम हुआ है। यह भी आत्मकथा शैली का ही एक रूप है, क्योंकि डायरी लिखने वाला 'मैं' शैली ही अपनाता है। इस शैली में 'शोणित-तर्पण' नामक केवल एक उपन्यास ही देखने में आया है। वैसे कई उपन्यासकारों ने बीच-बीच में पात्रों की डायरी से काम लिया है, जैसे इलाचन्द्र जोशी के 'लज्जा' और 'निर्वासित' में।

इसके अतिरिक्त कथा और भी कई रूपों में प्रस्तुत की गई है। कुछ उपन्यासों में असम्बद्ध घटनाओं के रूप में कथा प्रकट की गई है; घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता; विभिन्न व्यक्तियों या सामाजिक वर्गों से सम्बन्धित जीवन अलग-अलग झाँकियों के रूप में प्रकट किया जाता है। पं० इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' में यह ढंग बहुत सुन्दर रूप में अपनाया

गया है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन की झाँकियों को एक नायक द्वारा दर्शाया गया है। एक और ढंग पात्रों के आधार पर कथा-शैली के प्रयोग का होता है। इसमें लेखक दो-तीन पात्रों को लेता है, और उनकी बारी बारी कथा प्रकट करता हुआ अन्त में किसी एक परिस्थिति में उनको मिला देता है। राजा राधिकारमण सिंह का 'राम-रहीम' इसका सुन्दर उदाहरण है।

असम्बद्ध घटनाओं की उपर्युक्त शैली से मिलती-जुलती विभिन्न कहानियों के रूप में उपन्यास लिखने की पद्धति भी हिन्दी में पिछले कुछ वर्षों से प्रचलित हुई है। श्री धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का 'बहती गंगा' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इसमें परस्पर स्वतंत्र कहानियों में कौशल के साथ सम्बन्ध-सूत्र जोड़ दिया जाता है। समय-विपर्यय (Time-Shift) पद्धति का भी कुछ उपन्यासों में प्रयोग हुआ है। इसमें काल-क्रम के अनुसार क्रमिक रूप में कथा-प्रसंग और घटनाएँ प्रस्तुत नहीं की जातीं। जैसे जोशी जी के 'पर्दे की रानी' में पहले निरंजना के होस्टल-प्रवेश की कथा प्रस्तुत की गई है, फिर अगले प्रकरण में उसकी पूर्व कथा पर प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र की 'कल्याणी' रचना भी समय-विपर्यय पद्धति का सुन्दर उदाहरण है।

कुछ उपन्यास चेतना-प्रवाह पद्धति पर भी लिखे गये हैं। हिन्दी में यद्यपि जेम्स ज्वायस के 'यूलिसिस', वर्जिनिया वुल्फ के 'लाइट हाऊस' जैसा चेतना-प्रवाह नहीं मिलता, तो भी अज्ञेय, प्रभाकर माचवे आदि के कुछ उपन्यासों में इस शैली का अच्छा प्रयोग हुआ है। माचवे जी का 'परन्तु' उपन्यास इसका सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार कथा-शिल्प में हमारे उपन्यासकारों ने अनेक प्रयोग किये हैं।

यथार्थ और आदर्शवाद की दृष्टि से देखें तो आजकल श्रेष्ठ उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ का समन्वय रहता है। कुछ रचनाएँ घोर यथार्थवाद के रूप में भी लिखी गई हैं, लिखी जा रही हैं, पर उनमें साहित्यिक गौरव कम आ पाता है। बहुत-से लेखक सस्ते मनोरंजन और यौन-उत्तेजना के बल पर पैसा कमाने में लगे हुए हैं और जनता की रुचि भ्रष्ट कर रहे हैं। गुलशन नन्दा, दत्त भारती, कुशवाह कांत आदि के नावल ऐसे ही अति प्राकृत हैं जिनसे पाठकों के मानसिक स्खलन की सम्भावना है। १९वीं शती में कुछ उपदेश-प्रधान कोरे उपन्यास आदर्शवाद को अपनाकर चले थे ; पर प्रेमचन्द ने अपने 'गोदान' से

जिस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की राह दिखाई थी, उसी पर आज के हमारे श्रेष्ठ उपन्यासकार चल रहे हैं। यशपाल, गोविन्द वल्लभ पंत, भगवतीचरणव र्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि लेखकों की रचनाओं में जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएँ प्रदान करने वाला यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पाया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हिन्दी उपन्यास के शिल्प-विकास, उसकी भिन्न-भिन्न कोटियों तथा प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त हुआ होगा। वर्तमान काल में अनेक लेखक हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाने में लगे हैं। अनेक नई प्रतिभाओं का उदय हुआ है। गिरधर गोपाल ('चाँदनी के खण्डहर' तथा 'कंदील और कुहासा' १९७०), नरेश मेहता ('डूबते मस्तूल' (५४), 'वह पथ-बंधु था' ६२), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ('खोया हुआ जल' आदि), रामदरश मिश्र ('पानी के प्राचीर' तथा 'जल टूटता हुआ' ७०), शैलेश मटियानी ('होलदार'), निर्मल वर्मा ('वेदिन'), रमेश बक्षी ('हम तिनके'), राजेन्द्र यादव ('उखड़े हुए लोग', 'कुलटा', 'शह और मात' आदि), मोहन राकेश ('अंधेरे बंद कमरे', 'नीली बाँहों की रोशनी में', 'काँपता दरिया' आदि), कमलेश्वर ('एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी' आदि) यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ('पथहीन', 'दिया जला, दिया बुझा' आदि), कमल जोशी ('बहता तिनका'), अनूपलाल मंडल ('निर्वासित', 'समाज की वेदी पर', 'अभिशाप' आदि), गिरीश अस्थाना ('धूल भरे चेहरे'), हर्षनाथ ('उड़ती धूल' आदि), हेमराज निर्मम ('मुझे भूल जाना', 'बसंत फिर आएगा'), डॉ० सत्यप्रकाश संगर ('बरगद की छाया', 'कली मुस्कराई', 'मंजिल से दूर' आदि), रमाकांत त्रिपाठी ('कली और धुआँ' आदि), कंचनलता सब्बरवाल ('मूक तपस्वी', 'त्रिवेणी', 'भटकती आत्मा' आदि), गुरुदत्त (शताधिक रचनाएँ कर चुके हैं), यज्ञदत्त शर्मा ('इन्सान', 'बदलती राहें' 'अंतिम चरण' आदि दर्जनों रचनाएँ), मन्मथनाथ गुप्त ('बहता पानी', 'काजल की कोठरी', 'होटल डी ताज' आदि दर्जनों), अमृतलाल नागर ('महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', 'ये कोठे वालियां', 'सुहाग के नूपुर' और 'विष और अमृत' पुरस्कृत), आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ('बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख' दोनों ऐतिहासिक), भगवतीप्रसाद वाजपेयी (दर्जनों उपन्यास लिख चुके हैं), उषादेवी मित्रा ('वचन का मोल', 'नष्टनीड़' आदि) डॉ० लक्ष्मी-नारायणलाल ('धरती की आँखें', 'बया का घोंसला और सांप' आदि), कृष्णचन्द्र

भिक्खु ('आदमी का बच्चा', 'भँवर जाल' आदि), भगवतीचरण वर्मा ('चित्र-लेखा' से 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' १९७० तक दर्जनों), डॉ० देवराज ('पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' आदि), यादवचन्द्र जैन ('पत्थर पानी' आदि), डॉ० रामप्रसाद मिश्र ('मि० अटल' आदि), भैरवप्रसाद गुप्त ('मशाल', 'गंगा मैया', 'नया आदमी', 'सती मैया का चौरा' आदि), अमृतराय ('बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' आदि), महेन्द्रनाथ ('आदमी और सिक्के', 'रात अंधेरी है'), मूलतः उर्दू लेखक कृशन चन्दर (दर्जनों उपन्यास), शिवानी ('चौदह फेरे'), उषा प्रियंवदा ('पचपन खंभे : लाल दीवारें'), मार्कण्डेय ('सेमल का फूल') आदि अनेक वर्तमान उपन्यासकार अपनी विभिन्न प्रकार की औपन्यासिक कृतियों से हिन्दी साहित्य का भण्डार भर रहे हैं। यद्यपि श्रेष्ठ रचनाओं की उपलब्धि कम हो रही है, फिर भी भविष्य निश्चय ही आशाजनक है।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास के विकास-क्रम में भगवतीचरण वर्मा का पर्याप्त महत्त्व है। उन्होंने प्रेमचन्द की सामाजिक स्वस्थ यथार्थवादी उपन्यास-धारा को नई गति प्रदान की। प्रेमचन्द की राह अपनाकर भी उन्होंने जीवन की नई मान्यताएँ प्रदान कीं; समाज की समस्याओं के प्रति नया प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया। अपने एक दर्जन से भी अधिक उपन्यासों द्वारा उन्होंने हिन्दी उपन्यास-साहित्य को समृद्ध किया। उनका महत्त्व अक्षुण्ण है।

3

उपन्यासों का कोटि-भेद और भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास

साहित्य की इस विधा—उपन्यास—का इतना नाना-विध विकास हो चुका है और हो रहा है कि इसका समुचित वर्गीकरण एक कठिन समस्या ही है। भिन्न-भिन्न रूपों और शैलियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के उपन्यास प्रकट हो रहे हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम निम्न चार प्रकार से उपन्यासों के रंग-रूप, उनकी भिन्न-भिन्न शैलियों और प्रवृत्तियों का विवेचन कर सकते हैं :

(१) रचना-तत्वों की दृष्टि से उपन्यासों के भेद।
(२) वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भेद।
(३) वर्णन-शैली की दृष्टि से उपन्यासों के प्रकार।
(४) यथार्थवाद और आदर्शवाद की दृष्टि से भेद।

(१) रचना-तत्त्वों की दृष्टि से उपन्यासों के भेद :

यद्यपि कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, भाव-रस, उद्देश्य, देशकाल-वातावरण आदि सब तत्त्व सामान्यतः सभी प्रकार के उपन्यासों में रहते हैं, किन्तु तो भी कई उपन्यासों में कथानक या घटना-तत्त्व की प्रधानता दिखाई देती है, किन्हीं में चरित्र-चित्रण की, तो अन्यों में देशकाल-वातावरण की तथा किन्हीं में भाव-रस की प्रमुखता रहती है तो कोई उद्देश्य-प्रधान होते हैं। अतः तत्त्व-विशेष की प्रधानता के आधार पर उपन्यासों की कोटियाँ इस प्रकार होती हैं : (क) कथानक या घटना-प्रधान उपन्यास, (ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास, (ग) घटना-चरित्र-समन्वित उपन्यास, (घ) देशकाल-वातावरण-प्रधान उपन्यास, (ङ) उद्देश्य-प्रधान उपन्यास और (च) भाव-प्रधान उपन्यास।

(क) कथानक या घटना-प्रधान उपन्यास : जिन रचनाओं में कथानक और घटनाओं का आयोजन इस प्रकार होता है कि पाठक घटनाओं के वैचित्र्य और

आकस्मिकता तथा तज्जन्य उत्सुकता व कौतूहल में ही लीन रहता है, उन्हें कथानक या घटना-प्रधान उपन्यास कहते हैं। हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक युग में ऐसे उपन्यास अनेकों लिखे गये थे, आजकल लिखे जा रहे जासूसी, साहसिक उपन्यास भी घटना-प्रधान ही हैं। किन्तु हिन्दी के जासूसी साहसिक उपन्यास अंग्रेजी के जासूसी एवं साहसिक उपन्यासों के स्तर तक नहीं पहुँच पाये हैं। ऐसे घटना-प्रधान जासूसी उपन्यास हिन्दी में कम ही हैं जिनमें बौद्धिक सतर्कता, उद्देश्य की उच्चता, चित्रण की यथार्थता तथा विश्वसनीयता पाई जाये।

जिस प्रकार प्रेमचन्द के 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'कायाकल्प' आदि गोदान-पूर्व के कुछ आरम्भिक उपन्यासों में कुछ-कुछ कथानक की प्रधानता पाई जाती है, उसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा के 'पतन' आदि एक-दो आरम्भिक उपन्यासों में कथा-तत्त्व चरित्र-चित्रण की अपेक्षा प्रमुख है। भगवतीचरण वर्मा ने जासूसी या साहसिक कोटि का कोई घटना-प्रधान उपन्यास नहीं रचा। उनके अधिकांश उपन्यास घटना-चरित्र-सापेक्ष हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' में जो महत्त्व कथानक या घटनाओं का है, उतना ही चरित्र-चित्रण का भी है।

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी घटनाओं का वैचित्र्य खूब पाया जाता है, किन्तु साथ ही उनमें चरित्र-चित्रण का भी आकर्षण रहता है। वैसे ऐतिहासिक होने के कारण वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास ऐतिहासिक देशकाल-वातावरण प्रधान उपन्यास हैं। किन्तु साथ ही उनमें घटनाओं की विशेषता भी रहती है और कुछ चरित्र भी सजीव हो जाते हैं। अतः उनके उपन्यासों को चरित्र-सापेक्ष कथानक-वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।

(ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास : जिन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विशेषता प्रमुख रहती है और लेखक का उद्देश्य आदि से अंत तक चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक घात-प्रतिघात को प्रकट करके चरित्र की विचित्रताओं का प्रकाशन ही रहता है, उन्हें चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जाता है। घटना-प्रधान उपन्यासों में घटनाएँ महत्त्व पाती हैं, और वे ही पात्रों को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्रों की कुछ रेखाएँ प्रकट करती हैं, पात्रों की चारित्रिक विशिष्टता से घटनाओं की उत्पत्ति नहीं होती। इसके विपरीत चरित्र-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्त्व पाता है और पात्र ही परिस्थितियों और कथानक का निर्माण करते हैं। कथा-संकोच, अन्तर्द्वन्द्व,

मनोविज्ञान की प्रधानता, पात्रों की भीड़ का अभाव, व्यक्ति-वैचित्र्य आदि चरित्र-प्रधान उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि के उपन्यास चरित्र-प्रधान ही हैं। भगवतीचरण वर्मा ने विशुद्ध चरित्र-प्रधान उपन्यासों का भी कोई सृजन नहीं किया।

(ग) **चरित्र-घटना-सापेक्ष (समन्वित) :** तात्त्विक दृष्टि से तीसरे प्रकार के उपन्यास होते हैं घटना-चरित्र-समन्वित। इनमें कथा और चरित्र-चित्रण दोनों का समान महत्त्व रहता है। कथा चरित्रों पर प्रकाश डालती है और चरित्र कथा को विकसित करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं। प्रेमचन्द का 'गोदान' इस कोटि का सुन्दर उदाहरण है। उनके 'सेवासदन', निर्मला, 'गबन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' आदि भी प्रायः इसी कोटि में आते हैं। हिन्दी में ऐसे सामंजस्यपूर्ण उपन्यास प्रचुर मात्रा में लिखे गए हैं। भगवतीचरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र' आदि अधिकांश उपन्यास इसी कोटि के हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' में घटना-चरित्र का सामंजस्य प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' आदि जैसा ही है। उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, विष्णु प्रभाकर आदि के कुछ सुन्दर उपन्यास तथा इलाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पंछी' घटना-चरित्र-समन्वित रचनाएँ हैं।

(घ) **वातावरण-प्रधान उपन्यास :** वातावरण-प्रधान उपन्यासों में देशकाल-वातावरण का सजीव चित्रण प्रमुखता पाता है। युगीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक आदि विविध परिस्थितियाँ, लोगों के रीति-रिवाज, खान-पान, घर-स्थान आदि का सजीव चित्रण करना लेखक का उद्देश्य रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास प्रायः इसी तत्त्व की प्रमुखता से अधिक सफल होते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का वातावरण सजीव हो उठा है। सामाजिक उपन्यास भी वातावरण-प्रधान हो सकते हैं, होते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में वातावरण की अत्यन्त सजीवता है। वातावरण-प्रधान उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्य का पुट रहता ही है। उनमें चाहे पात्रों के नाम और घटनाएँ सत्य न हों, सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के रूप में उनका ऐतिहासिक महत्त्व रहता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भारतीय जीवन के कम-से-कम पिछले पचासों वर्षों का यथार्थ चित्रण पाया जाता है और इस दृष्टि से उनके उपन्यास सामाजिक वातावरण-प्रधान भी हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास भी दो प्रकार के होते हैं—(१) शुद्ध ऐतिहासिक अर्थात् जिनमें घटना तथा पात्रों की सत्यता रहती है। दूसरे वे, जिनमें केवल युगीन वातावरण की सत्यता और सजीवता रहती हैं, जैसे, वृन्दावनलाल वर्मा का 'विराटा की पद्मिनी'।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों की तो विशेष सृष्टि नहीं की, अपितु उनके सामाजिक उपन्यासों में देशकाल-वातावरण को पर्याप्त महत्त्व मिला है। अतः उनके 'भूले बिसरे चित्र' जैसे अधिकांश उपन्यासों को इस दृष्टि से सामाजिक वातावरण-प्रधान, घटना-चरित्र-समावित उपन्यास कहा जा सकता है।

हिन्दी में पिछले बारह-चौदह वर्षों में आंचलिक उपन्यासों का भी प्रचलन हुआ है। ये उपन्यास शुद्ध वातावरण-प्रधान हैं। इनमें जनपदीय संस्कृति, भाषा-शैली, रीति-नीति, खान-पान, व्यवहार तथा अन्य सब परिस्थितियों का सजीव चित्रण रहता है। समाज या युग ही नायक बना प्रतीत होता है, जैसे, 'मैला-आँचल' में। भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' में आंचलिकता तो है, पर वह प्रधान उद्देश्य नहीं बन पाई। अतः उसे आंचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

(ङ) **भाव-प्रधान उपन्यास :** हिन्दी में भाव-प्रधान उपन्यासों की रचना बहुत ही कम हुई है। वास्तव में उपन्यास का कलेवर बड़ा होने से उसमें भावुकता का इतना विस्तार अस्वाभाविक ही हो जाता है। भाव-प्रधानता के साथ उपन्यास-कला का सहज विकास संभव नहीं होता। भारतेन्दु-काल में ब्रजनन्दन सहाय आदि के जो दो-चार उपन्यास लिखे गए, उनमें अस्वाभाविकता का दोष ही है। आगे भाव-प्रधान उपन्यास विशेष नहीं लिखे गए। वैसे उपन्यास में भावों और रसों की सृष्टि रहती ही है। प्रसाद जी का 'तितली' सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास है। भाव-प्रधान उपन्यासों का एक रूप पिछले वर्षों में हास्य-प्रधान उपन्यासों के रूप में विकसित हुआ है। निराला जी के 'बिल्ले-सुर बकरिहा' तथा 'कुल्ली भाट' सामाजिक व्यंग्य-प्रधान रचनाएँ हैं। इसी प्रकार द्वारका प्रसाद का 'गुनाह-बेलज्जत', अमृतलाल नागर का 'सेठ बांकेमल' आदि हास्यरस के उपन्यास हैं। परन्तु भाव-प्रधान उपन्यासों की जो एक विशिष्टता भावात्मक शैली के रूप में होती है, वह इनमें प्रायः नहीं है। अतः इन्हें भी सच्चे अर्थों में भावप्रधान उपन्यास नहीं कहा जा सकता। सच तो

यह है कि उपन्यास में भावुकता का दूर तक समावेश होना ही कठिन है। भगवतीचरण वर्मा ने कोई भाव-प्रधान उपन्यास नहीं लिखा।

(च) उद्देश्य-प्रधान : उद्देश्य को प्रमुखता देकर भी उपन्यास लिखे जाते हैं। पर उनमें कला का ह्रास अवश्यंभावी है। हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों में उपदेश और सुधार का उद्देश्य स्पष्ट होने के कारण उन्हें उद्देश्य-प्रधान या उपदेश-प्रधान कहा जाता है। पर उनमें उपन्यास-कला का अभाव ही रहा है। वैसे तो प्रत्येक रचना सोद्देश्य लिखी जाती है, पर जब उद्देश्य की प्रधानता हो जाती है—उद्देश्य कथारस या भाव-रस का सहारा छोड़ देता है—तो औपन्यासिक आनन्द को क्षति पहुँचती है। हिन्दी के अनेक प्रगतिवादी उपन्यासों में बीच-बीच में उद्देश्य अलग-सा उभर आ पड़ता है, जिसके कारण सरसता में कमी आ जाती है। 'बाबा बटेसरनाथ' (नागार्जुन) जैसी रचनाओं को उद्देश्य-प्रधान ही कहा जा सकता है। प्रेमचन्द और भगवतीचरण वर्मा आदि के उपन्यासों में उद्देश्य प्रायः कथारस या भाव-संवेदनाओं का रूप लेकर ही प्रकट हुआ है, कहीं ही किसी उपन्यास में एकाध स्थान पर इस बात का अपवाद होगा। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों को उद्देश्य-प्रधान नहीं कहा जा सकता।

(२) वर्ण्य-विषय की दृष्टि से :

उपन्यास की कोई विषय-सीमा नहीं। धार्मिक, पौराणिक विषयों पर भी उपन्यास लिखे जा सकते हैं, यद्यपि हिन्दी में पं० गौरीशंकर मिश्र के 'बलिदान का मंदिर' (१९४४ ई०) और 'जयदेव' (१९४२ ई०) आदि दो-चार अप्रौढ़ धार्मिक उपन्यास ही प्रकाश में आए हैं। सामाजिक विषयों पर ही अधिक उपन्यास लिखे गए हैं, लिखे जा रहे हैं, जिनमें समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं व बुराइयों पर प्रकाश डाला जाता है। प्रेमचन्द की तरह भगवती-चरण वर्मा के उपन्यास विषय की दृष्टि से सामाजिक उपन्यास हैं।

पारिवारिक विषय पर पारिवारिक उपन्यास, वैयक्तिक समस्याओं से सम्बंधित वैयक्तिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, राजनीतिक, जासूसी, साहसिक, प्रेम और यौन से सम्बंधित (Erotic) आदि अनेक विषयों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गए हैं। भगवतीचरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र' जैसे कतिपय उपन्यासों में राजनीतिक पुट भी पाया

जाता है, पर उनके 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के सिवा किसी उपन्यास को राजनीतिक शायद नहीं कहा जा सकता। समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं और प्रवृत्तियों के चित्रण से वे सामाजिक उपन्यास ही हैं।

(३) वर्णन-शैली की दृष्टि से :

हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकरण अनेक शैलियों की दृष्टि से निम्न प्रकार किया जाता है :

(क) **वर्णन-विवरणात्मक शैली** : शुद्ध वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हिन्दी के आरम्भिक तिलस्मी, जासूसी के घटना प्रधान-उपन्यासों में हुआ था। तब सारी कहानी लेखक के वर्णन और घटना-चित्रण के रूप में ही प्रगट की जाती थी। संवाद-शैली का प्रयोग भी कम होता था और विश्लेषण की तो आवश्यकता ही नहीं होती थी।

(ख) **वर्णन-विश्लेषणात्मक शैली** : आरम्भिक उपन्यासों के बाद हमारे उपन्यासों में कोरा वर्णन या विवरण ही नहीं रहा, जीवन की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाने लगी। प्रेमचन्द के 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' आदि आरम्भिक उपन्यासों में जैसे वर्णनात्मक-शैली का प्रयोग अधिक रहा था, वैसे ही भगवतीचरण वर्मा के 'पतन'-जैसे एक-दो आरम्भिक उपन्यासों में ('चित्रलेखा' में नहीं) वर्णनात्मक-शैली प्रधान रही, पर बाद की रचनाओं में वर्णन के साथ व्याख्या रहने के कारण वर्णन-विश्लेषण-शैली का ही प्रयोग हुआ है। वे घटनाओं और वस्तु के वर्णनोपरान्त साथ-साथ जीवन की व्याख्या भी प्रस्तुत करते जाते हैं। यशपाल, चतुरसेन शास्त्री, अश्क, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अधिकांश अन्य उपन्यासकारों की रचनाओं में भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है।

(ग) **विश्लेषणात्मक शैली** : प्रेमचन्दोत्तर काल के हमारे कुछ उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक गूढ़ता आई। अतः वर्णन-प्रधान शैली के स्थान पर विश्लेषण-प्रधान शैली की आवश्यकता प्रतीत हुई। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र आदि ने विशेष रूप से इस शैली को अपनाया। जोशी जी के प्रायः सभी उपन्यास विश्लेषण-प्रधान शैली में लिखे गए हैं। इनमें घटनाओं का वर्णन मामूली होता है, पर पात्रों की मनःस्थितियों, अन्तर्द्वन्द्व तथा परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अधिक रहता है।

(घ) **संवाद-प्रधान शैली :** आरम्भ में कुछ उपन्यास पारसी नाटक-मंडलियों के प्रभाव से नाटकीय (संवाद-प्रधान) शैली में भी लिखे गए थे, जैसे रामलाल का 'गुलेबदन उर्फ़ रज़िया बेगम' (सन् १९१३ ई०), नयनगोपाल का 'उर्वशी' (१९२५ ई०) आदि। बाद में यह शैली वर्णन शैली को साथ लेकर चली। वृन्दावनलाल वर्मा के कुछ उपन्यासों में संवाद-प्रधान शैली के ही दर्शन होते हैं। उनका 'कचनार' इसका सुन्दर उदाहरण है, उसकी समस्त कथा-सामग्री छोटे-छोटे सुन्दर संवादों के रूप में प्रकट हुई है। बीच-बीच में कुछ वर्णन-शैली भी है, पर संवाद-शैली की प्रधानता है। भगवती बाबू के उपन्यासों में संवाद-शैली का खूब प्रयोग हुआ है, पर उसकी प्रधानता शायद ही किसी उपन्यास में हो।

कथा कहने के ढंग भी बहुत होते हैं। एक है इतिहासकार की भाँति द्रष्टा रूप में कथा कहने का ढंग। इस प्रणाली में लेखक स्वयं सब प्रकार के वर्णन, विवरण और विश्लेषण देता है। यह शैली अपेक्षाकृत सरल होती है। प्रेमचन्द की तरह भगवती बाबू के भी प्रायः सब उपन्यास इसी शैली में लिखे गए हैं।

कथा-कथन का दूसरा रूप है—आत्मकथात्मक पद्धति। इसमें एक या एकाधिक पात्र अपनी कथा 'मैं' शैली में प्रस्तुत करते हैं। इस शैली का सफल निर्वाह लेखक से सतर्कता चाहता है। इससे कथा और भी विश्वसनीय बन जाती है। लेखक बीच में नहीं आता। जैनेन्द्र के 'सुखदा', 'व्यतीत' आदि, अज्ञेय के 'शेखर', जोशी जी के 'संन्यासी', 'जिप्सी', 'जहाज़ का पंछी' आदि में एक प्रमुख पात्र अपनी कथा कहता चलता है। अज्ञेय जी के 'नदी के द्वीप' और पं० इलाचन्द्र जोशी के 'पर्दे की रानी' में एकाधिक पात्र अपनी-अपनी परस्पर सम्बद्ध कहानी कहते हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यासों में इस आत्मकथात्मक शैली का विशेष प्रयोग हुआ है।

तीसरी शैली है **पत्र-शैली**। इसका अधिक प्रचलन हिन्दी में नहीं हुआ। वैसे भी इस शैली में कथा, चरित्र-चित्रण आदि उपन्यास-कला के अंग अधूरे ही रह जाते हैं। बेचन शर्मा उग्र का 'चंद हसीनों के खतूत', प्रफुल्लचन्द ओझा 'मुक्त' का उपन्यास 'पाप और पुण्य' (१९३० ई०) इसी शैली की रचनाएँ हैं। भगवतीचरण वर्मा ने इस शैली में कोई उपन्यास नहीं रचा।

चौथी प्रणाली है **दैनन्दिनी (डायरी) शैली**। यह भी आत्मकथा शैली का ही एक अन्य रूप है, क्योंकि डायरी-लेखक 'मैं' शैली ही अपनाता है। हिन्दी

में यह शैली भी विशेष प्रचलित नहीं हुई। कुछ उपन्यासों के बीच-बीच में—जैसे इलाचन्द्र जोशी के 'लज्जा' ('घृणामयी') और 'निर्वासित' में पात्रों की डायरी से काम लिया गया है। पर सम्भवतः डायरी शैली उनमें नहीं है। इस शैली में सम्भवतः एकमात्र उपन्यास 'शोणित तर्पण' लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त कथा और भी अनेक रूपों में प्रस्तुत की जाती है। कुछ उपन्यासों में असम्बद्ध घटनाओं के रूप में कथा प्रकट की जाती है; घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता, विभिन्न व्यक्तियों या सामाजिक वर्गों से सम्बन्धित जीवन अलग-अलग झाँकियों के रूप में प्रकट किया जाता है। या तो ये विभिन्न झाँकियाँ एक नायक से जुड़ी रहती हैं, या एक ही उद्देश्य से सम्बद्ध रहती हैं। इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' में यह ढंग बहुत सुन्दर रूप में अपनाया गया है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन को एक ही नायक से सम्बद्ध कर दिया गया है। एक और ढंग पात्रों के आधार पर कथा-शैली के प्रयोग का यह होता है कि लेखक दो-तीन पात्रों को लेता है, और उनकी बारी-बारी कथा प्रकट करता हुआ अन्त में किसी एक परिस्थिति में उनको मिला देता है। इस प्रकार की कथा उपसंहार में सम्बद्ध हो जाती है या एक परम्परा-सूत्र में पिरोई प्रतीत होती है। राजा राधिकारमण का 'राम-रहीम' इसका सुन्दर उदाहरण है। 'भूले-बिसरे चित्र' में भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है। शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवलकिशोर—इन चार नायकों से सम्बन्धित अलग-अलग खण्डों में प्रस्तुत कथा अन्त में एक युग-पीढ़ी की कथा प्रतीत होती है।

असम्बद्ध घटनाओं की उपर्युक्त शैली से मिलती-जुलती विभिन्न कहानियों के रूप में उपन्यास लिखने की पद्धति भी हिन्दी में पिछले कुछ वर्षों से प्रचलित हुई है। ये बड़े साहस के प्रयोग हैं। विश्व-साहित्य में भी ऐसा शैली-वैचित्र्य कम ही मिलेगा। श्री धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का 'बहती गंगा' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इनमें भी परस्पर स्वतन्त्र कहानियों में कौशल के साथ सम्बन्ध-सूत्र जोड़ दिया गया है। 'बहती गंगा' में काशी की दो सौ वर्षों की जीवनधारा को सत्रह तरंगों में प्रकट किया गया है। लेखक का कथन है—"ये तरंग है एक-दूसरे से अलग, परस्पर स्वतन्त्र, परन्तु धारा और तरंग-न्याय से आपस में बँधी हुई।"

समय-विपर्यय (Time-shift) तथा पूर्व झलकी (Flash-back) पद्धतियों

का भी हमारे उपन्यासों में प्रयोग होने लगा है। इनमें काल-क्रम के अनुसार क्रमिक रूप में कथा-प्रसंग और घटनाएँ प्रस्तुत नहीं की जातीं। कहीं कथा अन्त से आरम्भ की जाती है, कहीं बीच से, कहीं पूर्व घटित प्रसंगों को बाद में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जोशी जी के 'पर्दे की रानी' में पहले निरंजना के होस्टल-प्रवेश की कथा प्रस्तुत की गई है, फिर अगले प्रकरण में उसकी पूर्वकथा पर प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र का 'कल्याणी' उपन्यास समय-विपर्यय का सुन्दर उदाहरण प्रकट करता है। भगवतीचरण वर्मा ने यद्यपि कथा का सीधा-सादा ढंग अधिक अपनाया है तथापि कहीं-कहीं इस क्रम-विपर्यय का प्रयोग भी हुआ है।

कुछ उपन्यासों में चेतना-प्रवाह शैली भी प्रयुक्त हुई है। हिन्दी में यद्यपि जेम्स ज्वायस के 'यूलिसिस', वर्जीनिया वुल्फ के 'लाइट-हाउस' आदि अंग्रेजी उपन्यासों-जैसा चेतना-प्रवाह नहीं मिलता, तो भी प्रभाकर माचवे ('परन्तु'), अज्ञेय आदि ने इस पद्धति को कुछ अपनाया है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग कहीं दिखाई नहीं देता। यह शैली मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ही ज्यादा प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार वर्णन-शैली की दृष्टि से कथा-शिल्प में हमारे उपन्यासकारों ने अनेकानेक प्रयोग किये हैं। भगवतीचरण वर्मा ने भी इस दिशा में कुछ प्रयोग किये हैं। उनका 'भूले-बिसरे चित्र' कथा-शिल्प का एक नया प्रयोग है।

(४) यथार्थवाद और आदर्शवाद की दृष्टि से :

कुछ रचनाएँ अति यथार्थवाद के रूप में लिखी गई हैं, जैसे उग्रजी, ऋषभचरण जैन, गुलशन नन्दा, आदिल रशीद आदि के उपन्यास। आरम्भ में उपदेश-प्रधान आदर्शवादी रचनाएँ भी हुईं। किन्तु प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य में यथार्थ और आदर्शवाद का सामंजस्य प्रस्तुत करके एक आदर्श मार्ग दिखाया। उनका 'सेवासदन' इस दिशा में नया मोड़ था। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने स्वस्थ यथार्थ-वाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर और भी उत्तम नया मोड़ प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द के इसी स्वस्थ यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अथवा आदर्श और यथार्थ के समन्वय को ही अपनाना उचित समझा जाता है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में आदर्शवाद और यथार्थवाद का यही सामंजस्य है। यशपाल, गोविन्दवल्लभ पंत, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क,

विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि अनेक लेखकों की रचनाओं में जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएँ प्रदान करने वाला यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अथवा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद पाया जाता है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास सामाजिक यथार्थवाद के सच्चे निर्देशक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से हिन्दी उपन्यास की भिन्न-भिन्न कोटियाँ और शैलियाँ तथा भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों—विशेषतः 'भूले-बिसरे चित्र' का कोटि-भेद स्पष्ट हुआ होगा। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास—विशेषतः 'भूले-बिसरे चित्र' ऐतिहासिक वर्णन-विश्लेषणात्मक शैली में रचा गया घटना-चरित्र-वातावरण-समन्वित, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है।

४

भगवतीचरण वर्मा : साहित्यिक व्यक्तित्व और कृतित्व

भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। सन् तीसोत्तरी साहित्यकारों में उनका प्रमुख स्थान है। कविता के क्षेत्र में उन्होंने हिन्दी की छायावादी और प्रगतिशील काव्यधाराओं को समृद्ध किया। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कथा-साहित्य में उनकी विशेष गति रही। उनके 'चित्रलेखा' उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक युग-प्रवर्तनकारी कार्य किया। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास को नई जीवन-दृष्टि, नई शिल्प-विधि और नया भाव-बोध प्रदान करने में उनका प्रथम महत्त्वपूर्ण योग है। उनके उपन्यास और कहानियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। नाटककार की भी अपूर्व प्रतिभा उनमें विद्यमान है। उनके एकांकी नाटकों ने तो हिन्दी एकांकी साहित्य के अभाव की अपूर्व पूर्ति की है।

अपने साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण के सम्बन्ध में उनका कथन है, "मैं कहानीकार हूँ क्योंकि कहानी कहने की प्रवृत्ति मैंने पाई है। मैं कवि भी हूँ, क्योंकि सपनों की रंगीनियों में अपने को खो देने की प्रवृत्ति भी मुझे मिली है। मैं मूल रूप से भावना-प्रधान प्राणी हूँ। लेकिन बौद्धिकता के क्षेत्र में मैं अपने को किसी से भी हीन नहीं समझ पाता। वैसे शास्त्रों के अध्ययन से मुझे अरुचि रही है, किताबों से अर्जित ज्ञान को मैं अपने जीवन में कभी महत्त्व नहीं दे पाया क्योंकि वह किताबों द्वारा अर्जित ज्ञान मेरा सत्य नहीं बन सका। सत्य बनने के लिये इस ज्ञान को अपने अनुभवों द्वारा ही अर्जित किया जाना चाहिये, और अनुभव स्वयं में भावनात्मक संज्ञा है। शायद इसीलिए विशुद्ध शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक क्षेत्र को न अपनाकर मैंने भावना का क्षेत्र अपनाया है।"

जीवन के संघर्षों और कटु अनुभवों ने वर्मा जी को मूलतः भावपूर्ण भावुक

बनाया, शुष्क बौद्धिक या दार्शनिक नहीं। एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार में वर्मा जी का जन्म सन् १६०३ ई० में उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले के शफीपुर स्थान में हुआ था। बाबू भगवतीचरण वर्मा के पिता श्री देवीचरण वर्मा प्रसिद्ध वकील थे। पर भगवतीचरण वर्मा की अवस्था केवल पाँच वर्ष की ही थी कि उनके पिता का देहान्त हो गया था। बालक के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, उन्नति एवं विकास का भार उनकी माता पर आ पड़ा। माता के सिवा दूसरे किसी को गरज़ नहीं थी। अनेक बाधाओं के बावजूद वर्मा जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ पास कीं।

बालपन से ही वर्मा जी की प्रवृत्ति कला और काव्य की ओर हो गई थी। उन्होंने स्वयं माना है, "वैसे बाल्यकाल से ही मेरे ऊपर से शासन हट गया था और कला की प्रवृत्ति मुझमें तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में प्रस्फुटित हो गई थी, लेकिन मध्यवर्ग की अवस्थाओं एवं नैतिक मान्यताओं के कारण मैं उखड़ नहीं पाया। आन्दोलनों के उखाड़-पछाड़ से मैंने अपने को दूर रखा, गलत राह पर बहकने से मैं सावधान रहा। हो सकता है कि इसमें मध्यवर्ग की धर्मभीरुता वाली कायरता का हाथ रहा हो, वैसे स्पष्ट रूप से मैं कायर कभी नहीं रहा। जिन्दगी-भर उन्हीं नैतिक मान्यताओं एवं आस्थाओं से मैं चिपका रहा हूँ, यद्यपि बौद्धिक दृष्टि से इन आस्थाओं एवं मान्यताओं पर से मेरा विश्वास विश्वविद्यालय के जीवनकाल से ही जाता रहा।"

जब कानपुर में वर्मा जी सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे, उस समय से ही उन्होंने कविता-रचना आरम्भ कर दिया था। उनकी आरम्भिक कविताएँ 'प्रताप' में छपा करती थीं। सन् १६२१ ई० में वर्मा जी की प्रथम कहानी 'हिन्दी मनोरंजन' छपी थी। पर उन दिनों वर्मा जी की मुख्य प्रवृत्ति कविता-रचना ही थी। उन्हें छायावाद के प्रवर्त्तकों में स्वीकार किया जाने लगा था। अपने विद्यार्थी-जीवनकाल में ही वर्मा जी ने "दुनिया के श्रेष्ठ उपन्यास" पढ़ डाले थे। इसीसे कथा-उपन्यास की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति बढ़ी। सन् १६२६ ई० में वर्मा जी ने प्रयोग के रूप में 'पतन' नामक एक उपन्यास लिखा। यद्यपि यह प्रयास सफल नहीं रहा, तथापि इससे वर्मा जी को यह भरोसा हो गया कि वे औपन्यासिक कथा का गठन कर सकते हैं।

सन् १६३१ ई० में वर्मा जी की प्रवृत्ति कहानियों की रचना में विशेष

रूप से हुई और शीघ्र ही कहानीकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा हो गई। 'खिलते फूल', 'इन्स्टालमैंट', 'दो बाँके' आदि आपके कहानी-संग्रह खूब लोकप्रिय हुए।

वर्मा जी के जीवन में आर्थिक संघर्षों की भी कमी नहीं रही। पिता की परम्परा के अनुसार उन्होंने जीविकोपार्जन के लिए वकालत आरम्भ की थी, किन्तु वह विशेष चली नहीं। वर्मा जी का मन भी झूठ-फरेब, तिकड़मबाजी के उपायों से जमने वाले इस पेशे में नहीं लगा। अतः वकालत छोड़कर साहित्य-सृजन को ही वर्मा जी ने अपनी आजीविका का साधन बनाना चाहा। 'फ्री लांसर' भला अपना पेट क्या पाल सकता था ! कविता से तो कोई अर्थ-प्राप्ति संभव थी नहीं। अतः वर्मा जी ने उपन्यास-कहानी को अपना मुख्य सृजन-क्षेत्र चुना।

सन् १६३१ में वर्मा जी ने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' लिखना आरम्भ किया था और सन् १६३४ में, जब वे "वकालत छोड़कर आजीविका के लिए इलाहाबाद में साहित्य से सम्बद्ध अन्य क्षेत्रों की तलाश में आकर बस गये थे, 'चित्रलेखा' प्रकाशित हुई।" इसके बाद उन्होंने 'तीन वर्ष' नामक उपन्यास रचा जो सन् १६३६ ई० में प्रकाशित हुआ। अब कविता-रचना प्रायः छूट गया था। 'तीन वर्ष' के बाद सन् १६४६ ई० में वर्मा जी का बहुचर्चित 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' उपन्यास प्रकाशित हुआ और १६५० ई० में 'आखिरी दांव'।

केवल साहित्य से आजीविका की समस्या का हल कठिन जानकर वर्मा जी ने साहित्य से सम्बंधित कुछ छिट-पुट काम भी इधर-उधर किये। उन्होंने फिल्मों के लिए कहानी और संवाद लिखने का काम किया, पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं, आकाशवाणी में काम किया। वर्मा जी छः वर्ष फिल्मी-दुनिया बम्बई में रहे, छः वर्ष कलकत्ता में रहे। कलकत्ता में उनका सम्पर्क 'फिल्म कारपोरेशन' से हुआ। वहीं उन्होंने 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' उपन्यास लिखना आरम्भ किया था। इसी समय उन्होंने 'विचार' का प्रकाशन किया। पर १६४० ई० में कलकत्ता 'फिल्म-कारपोरेशन' और 'विचार' को छोड़कर वे बम्बई चले गए। वहाँ बम्बई टाकीज़ से सम्बंध स्थापित हुआ। वहीं उन्होंने 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' को पूरा किया। पर १६४६ ई० में 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के प्रकाशनोपरांत वह बम्बई भी छोड़ चले। फ़िल्मी-दुनिया का कृत्रिम और छल-कपटपूर्ण वातावरण उन्हें नहीं भाया। सन् १६४८ ई० में वे 'नव-जीवन' के प्रधान सम्पादक बनकर लखनऊ आए

पर शीघ्र ही 'नव-जीवन' से त्यागपत्र दे दिया। आर्थिक संघर्ष बहुत विकट था। वर्मा जी विवश हो पुनः फिल्मी-दुनिया में बम्बई जाने की सोच रहे थे कि तभी उन्हें आकाशवाणी में हिन्दी सलाहकार के पद की 'ऑफर' मिल गई। सात वर्ष तक वर्मा जी आकाशवाणी में रहे। आकाशवाणी में रहते हुए उन्होंने अनेक कविताएँ रचीं, नाटक लिखे, निबंध लिखे, पर उपन्यास नहीं लिख पाये। उन्होंने 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास की रचना आकाशवाणी में जाने से पूर्व ही आरंभ कर दी थी, पर आकाशवाणी में रहते हुए सात वर्ष में उसका केवल एक खण्ड ही लिख पाये थे। १९५७ ई० में वर्मा जी ने साहस करके आकाशवाणी से भी इस्तीफ़ा दे दिया। अब उन्हें गुज़ारे लायक रॉयल्टी अपनी रचनाओं से मिलने लगी थी, इसी कारण नौकरी छोड़ने का यह साहस हुआ। १९५७ ई० से अबतक वर्मा जी के लगातार कई उपन्यास—'अपने खिलौने' (१९५७ ई०), 'भूले बिसरे चित्र' (१९५९ ई०), 'सामर्थ्य और सीमा' (१९६२ ई०), 'रेखा' (१९६४ ई०), 'सीधी-सच्ची बातें' (१९६८ ई०), 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' (१९७० ई०)—ये छः महत्त्वपूर्ण उपन्यास और दो लघु उपन्यास—'वह फिर नहीं आई' (१९६० ई०) तथा 'थके पांव' (१९६३ ई०) प्रकाशित हो चुके हैं। 'भूले बिसरे चित्र' पर उन्हें साहित्य अकादमी तथा अन्य सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं से कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

वर्मा जी की रचनाओं से उनके नियतिवादी होने की ध्वनि प्राप्त करने वाले आलोचकों को वर्मा जी ने स्पष्ट शब्दों में स्वयं कहा है : "मैं नियतिवादी हूँ और मेरे नियतिवादी होने के सुस्पष्ट कारण भी हैं। मैं जो कुछ हूँ, परिस्थितियों ने मुझे वह बनाया है। और यह परिस्थितियाँ मेरे हाथ में नहीं थीं।.........मुझे याद है कि मैंने कभी अमीर और सम्पन्न बनने के सपने देखे थे, मैंने राजनीतिज्ञ बनने के सपने देखे थे, मैंने शक्तिशाली अफ़सर बनने के सपने देखे थे। लेकिन इनमें से मैं कुछ नहीं बन पाया, मैं बन गया एक साहित्यकार ! और अब यह सोच रहा हूँ कि अच्छा हुआ जो साहित्यकार बन गया। करोड़पती और अमीर बनने के लिए बेईमानी नहीं करनी पड़ी, चोर-बाज़ारी का सहारा नहीं लेना पड़ा। राजनीति में आकर मिनिस्टर बनकर दूसरों के आगे हाथ फैलाना नहीं पड़ा, ग़लत आदमियों से समझौते नहीं करने पड़े, छल-कपट के प्रपंच में नहीं पड़ना पड़ा।.........और इसलिए जो कुछ मैं बन गया उससे मुझे संतोष है।"

जीवन-संघर्षों ने वर्मा जी की चेतना और मन के विकास में योग दिया है। अतः उनका नियतिवाद अकर्मण्यता का द्योतक नहीं। मनुष्य को 'परिस्थितियों का दास' मानते हुए भी वह स्पष्ट कहते हैं कि "मनुष्य की विजय वहीं संभव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाये, वरन् अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे।" ('चित्रलेखा')।

उन्होंने इस सम्बंध में 'रंगों से मोह' की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा है, "मेरे ऊपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि मैं नियतिवादी हूँ। जो नियतिवादी है वह किस प्रकार जीवन के उद्देश्य एवं भावना के उदात्तीकरण की बात कर सकता है, यह कुछ लोग पूछेंगे। नियतिवाद में दुःखवाद के अवयव हैं, अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत है। मेरा नियतिवाद इस दुःखवाद से शासित नहीं है। यह समस्त रचना-विकास के नियमों पर आधारित है। मनुष्य में गुण सक्रिय हैं—वह दया, प्रेम, त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ही सामाजिक प्राणी बन सका है और निरंतर विकास करता जाता है। नियतिवाद का दृष्टिकोण एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। मेरा ऐसा विश्वास है, जो मेरे निजी अनुभवों से मुझे प्राप्त हुआ है।"

इस प्रकार वर्मा जी निराशावादी या दुःखवादी नियतिवादी नहीं हैं। प्रसाद के नियतिवाद की तरह उनका नियतिवाद भी कर्मयोग पर आधृत है।

वर्मा जी का यह विश्वास भी उनके जीवन तथा कृतित्व से स्पष्ट प्रकट होता है कि बदलती हुई परिस्थितियों में जीवन की मान्यताएँ बदलती और बनती-बिगड़ती रहती हैं। युग के बदलते हुए दृश्यों और चित्रों को उन्होंने स्वयं अनुभव किया था। उनका युगबोध बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उनकी रचनाओं में उनके निजी अनुभव ही प्रकट हुए हैं। इसी अनुभव के आधार पर वह अपने 'भूले बिसरे चित्र' जैसे उपन्यासों में भारतीय जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों, बदलती हुई पीढ़ियों, बदलते हुए जीवन-मानों, टूटते हुए सम्मिलित परिवारों, बनते हुए मध्यवर्ग, उठते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन आदि सबका सजीव चित्रण कर सके। बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, इलाहाबाद आदि अनेक स्थानों का भ्रमण और वास उनके जीवन-अनुभव को विस्तृत और गहन बनाने में सहायक सिद्ध हुआ।

वर्मा जी ने खूब लिखा है और अभी तक उनकी लेखनी अनवरत रूप से

साहित्य-सृजन में प्रवृत्त है। कहीं-कहीं, कभी-कभी उन्हें पैसे की मजबूरी से भी लिखना पड़ा है, पर उस स्थिति में भी उन्होंने अपने साहित्यकार को हीन नहीं होने दिया। जहाँ उसकी हानि की आशंका हुई, वह वहाँ से भाग खड़े हुए।

साहित्यिक मान्यताएँ :

वर्मा जी न केवल एक सफल कथाकार हैं, न केवल एक श्रेष्ठ कवि हैं ('मधुकण', 'प्रेमसंगीत' आदि उनके प्रसिद्ध कविता-संग्रह हैं), न केवल उच्च-कोटि के एकांकीकार हैं, अपितु जीवन और साहित्य के प्रौढ़ चिंतक भी हैं। सन् १९२२-२३ में 'प्रताप' कार्यालय से जब उनका सम्बंध स्थापित था, तो उन्होंने 'प्रताप' और 'प्रभा' मासिक में अनेक लेख भी प्रकाशित किये थे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों तथा 'साहित्य की मान्यताएँ' नामक पुस्तक में प्रकाशित उनकी साहित्यिक मान्यताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

वर्मा जी आस्थावादी साहित्यकार हैं। साहित्य और कला के सम्बंध में उनका दृष्टिकोण बड़ा ही सुलझा हुआ है। वह कला और साहित्य को स्वांतः सुखाय और परांतः सुखाय दोनों मानकर चले हैं। उनका कथन है : "पर कला की उत्कृष्टता, उसकी शक्ति और उसकी सफलता कला के स्वांतः सुखाय वाले पक्ष में निहित है, क्योंकि कला का स्रोत तो कलाकार की प्रवृत्ति और अन्तः-प्रेरणा, अर्थात् कलाकार की चेतन प्राण-शक्ति में है, और कलाकार का उद्देश्य अपने निजी आनंद का सृजन है।" (साहित्य की मान्यताएँ)। कला के 'बहुजन-हिताय' वाले सिद्धांत को भी वर्मा जी स्वीकार करते हैं, पर उसे साहित्य का स्रोत मानने को तैयार नहीं। साहित्य की सामाजिक स्वीकृति उन्होंने 'बहुजन-हिताय' वाले तत्त्व पर ही निर्भर मानी है। कला को वह "सामाजिक मनोरंजन" की वस्तु मानते हैं, इसीसे वह व्यक्तिगत भाव से मुक्त हो जाती है। वह सस्ते मनोरंजन के पक्षपाती नहीं हैं। मनोरंजन के साथ इसीलिए 'सात्त्विक' विशेषता लगाना उन्हें जरूरी प्रतीत हुआ है : "ऐसी हालत में वह प्रत्येक साहित्य जो मानव को सात्त्विक मनोरंजन प्रदान करे, वह समाज के लिए उपयोगी है—ऐसा मेरा मत है, क्योंकि इस साहित्य से मानव की सद् और कल्याणकारिणी प्रवृत्ति को सहायता मिलती है और समाज स्वयं मानव की सद् और कल्याणकारिणी प्रवृत्तियों पर क़ायम है।" (साहित्य की मान्यताएँ)

कला और साहित्य के मनोरंजनकारी प्रमुख तत्त्व को उन्होंने निरुद्देश्य

कभी नहीं माना। अंततः वह इस मनोरंजन को उदात्त भावनाओं से जोड़ते हुए कहते हैं : "दूसरे शब्दों में, मैं कला का एकमात्र उद्देश्य मानता हूँ—भावना का उदात्तीकरण। यह उदात्तभावना समस्त ज्ञान-विज्ञान को मानव-समाज के लिए हितकर बना सकती है।" ('रंगों से मोह' की प्रस्तावना)

कला और साहित्य में वह कुरूपता के लिए कोई स्थान नहीं मानते। साहित्य-कला का लोक सुन्दरता का ही लोक है। अतः न तो यथार्थवाद के नाम पर कुरूपता का चित्रण उन्हें स्वीकार्य है, न आदर्शवाद के नाम पर। उनका कथन है : "मैं यथार्थवाद को वह आदर्शवाद समझता हूँ जो काल और परिस्थिति से अनुशासित है। साहित्य और कला का भाग होने के कारण आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों में ही कुरूपता का कोई स्थान नहीं, असद् और अकल्याण से दोनों ही परे हैं। वस्तुतः प्रत्येक यथार्थवाद में मानव की उदात्तभावना का समावेश होना चाहिए, क्योंकि इसी उदात्तभावना में सद् और कल्याण है और प्रत्येक आदर्शवाद में सहनशीलता होनी चाहिए। शाश्वत सत्य और मान्यताओं पर ही उसकी स्थापना होनी चाहिये।" (साहित्य की मान्यताएँ)

आज का युग कविता की अपेक्षा कथा-साहित्य का युग है। यद्यपि बाबू भगवतीचरण वर्मा ने आरम्भ में कविता से अर्थ-लाभ की कोई आशा न देखकर कथा-साहित्य की ओर प्रवृत्ति अपनाई थी, पर वास्तव में न केवल यह एक युग-सत्य ही था कि कविता की अपेक्षा कथा-साहित्य लोकप्रियता पा रहा था, अपितु यह एक साहित्यिक सत्य भी है कि जीवन के यथार्थ और व्यापक चित्रण, आज के सम्पूर्ण युग-बोध को चित्रित करने और भावात्मक संवेदना की पूर्ण परिपुष्टि के लिए आज उपन्यास ही साहित्य का सर्वाधिक शक्तिशाली और उपयोगी साधन दिखाई देता है। वर्मा जी का भी स्पष्ट कथन है : "मेरा यह निश्चित मत है कि गद्य साहित्य में भावात्मक संवेदना की दृष्टि से उपन्यास सबसे अधिक शक्तिशाली माध्यम है।······उपन्यास में अनेक कथाओं से सम्बंधित अनेक चरित्र आते हैं, अपनी-अपनी विशेषता लिए हुए। ये कर्म करते हैं, दूसरों पर इनके कर्मों की प्रतिक्रियाएँ होती हैं और इस प्रकार भावनात्मक संवेदना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। इस भावनात्मक संवेदना की एक निश्चित धारा होती है—हर जगह से घूमती-फिरती, भटकती और राह पाती हुई यह संवेदना अन्त में एक जगह केन्द्रित हो जाती है और इतना अधिक

तपने तथा परिपक्व होने के बाद यह भावनात्मक संवेदना पाठक के मन में गहराई के साथ बैठ जाती है।" (साहित्य की मान्यताएँ)

अपने उपन्यासों में वर्मा जी मूलतः कथाकार हैं। कहानी को वे उपन्यास का प्रमुख तत्त्व मानते हैं। उपन्यास की संरचना में कथा-वस्तु ही वह प्रमुख साधन है जिसके सहारे उपन्यासकार चरित्र-चित्रण और भावनात्मक संवेदना को पूर्णता प्रदान करता है। वर्मा जी का कथन है : "उपन्यास में कथावस्तु का विस्तार ही एकमात्र विस्तार माना जा सकता है। अन्य प्रकार के विस्तार उपन्यास को शिथिलता प्रदान करते हैं।" अतः वर्मा जी उपन्यास में कोरे तर्क-वितर्क, सिद्धान्त-कथन, राजनीतिक परिस्थितियों के वर्णन, स्थानीय रंग आदि की साहित्यिक उपयोगिता नहीं मानते। इनकी सार्थकता वे कथावस्तु के अंग रूप में प्रकट होने से ही मानते हैं। यही कारण है कि उनके वृहत् उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' में अनेक प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के वर्णन-विस्तार प्रायः कथावस्तु के ही भाग बनकर आए हैं।

इस प्रकार वर्मा जी हिन्दी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। उनकी रचनाओं में उनके जीवन-अनुभवों की सच्ची तस्वीर है। भारतीय जीवन की विषमताओं का जो उन्होंने अवलोकन किया, उसकी 'सीधी-सच्ची बातें' कहने, भारतीय नव-जागरण के 'भूले बिसरे चित्र' स्मृति-पटल पर लाने तथा 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' को जीवन के ऋजु, सरल और मंगलमय पथ में परिणत करने का प्रयास ही उनके उपन्यासों में पाया जाता है। उनकी सर्वतोभुखी प्रतिभा ने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को गौरवशाली बनाया है।

युगीन पृष्ठभूमि : परिस्थितियाँ और प्रभाव

व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त अपने युग की परिस्थितियों से भी साहित्य-कार प्रेरित एवं प्रभावित होता है। उसका भाव-बोध युगीन परिस्थितियों से ही विकसित होता है। भगवतीचरण वर्मा के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में युगीन परिस्थितियों का अत्यधिक योग है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ : भारत में अंग्रेजी शासन अपनी समस्त कूटनीतियों से सशस्त्र होकर दृढ़ हो चुका था। भारत की जनता परतंत्रता की चक्की में पिस रही थी। सैंकड़ों वर्षों की राजनीतिक अराजकता, जो मुस्लिम शासन काल में व्याप्त रही थी, वह तो समाप्त हो गई थी और इस दृष्टि से भारतीय जन-जीवन ने कुछ राहत महसूस की थी—अमन-चैन का अनुभव किया था, पर अंग्रेज़ों का उद्देश्य भारत में सुशासन की स्थापना भी नहीं था, अपितु उसका शोषण ही उनका आंतरिक उद्देश्य था। नई राजनीतिक व्यवस्था और नई शिक्षा-दीक्षा ने एक ओर तो भारत के एक बहुत बड़े शिक्षित समुदाय को राजभक्त (अंग्रेज-भक्त) बना दिया था, दूसरी ओर इसके साथ ही एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण हुआ जो देश के शोषण, उसकी अधोगति और परतंत्रता की स्थिति को सहन नहीं कर सकता था।

भारतीय जीवन पर दोहरा आघात हो रहा था। एक ओर तो अपनी ही मूढ़ता, चारित्रिक दुर्बलता, अशिक्षा तथा गली-सड़ी सामाजिक परम्पराओं और बुराइयों में फंसी भारतीय जनता दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गई थी, दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य तथा अन्य शोषक शक्तियाँ मगरमच्छ की तरह निगल रही थीं। हमारे समाज-सुधारकों तथा राजनीतिक नेताओं को भी इसीलिए दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था : एक था सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध और दूसरा मोर्चा विदेशी शासन के विरुद्ध था। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऐनी बेसेंट आदि

ने 'ब्रह्मो समाज', 'आर्यसमाज', 'रामकृष्ण मिशन,' 'थियोसोफिकल सोसाइटी' आदि संस्थाओं की स्थापना करके धर्म-सुधार, समाज-सुधार तथा राजनैतिक चेतना जगाने के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिये थे। आल इंडिया कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ ई० में हो चुकी थी जिसका मूल उद्देश्य था देश में राजनैतिक सुधार उत्पन्न करना और भारतीयों को राजनैतिक अधिकार दिलाना।

किन्तु बाद में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाल (बाल गंगाधर तिलक), लाल (लाला लाजपतराय) तथा पाल (विपिनचन्द्र पाल), गोखले और गांधी के राजनीतिक मंच पर अवतरित हो जाने से ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध व्यवस्थित आन्दोलन आरम्भ हुए। देश के राजनीतिक संघर्ष की बागडोर गांधी जी के हाथों आने पर सत्याग्रह, असहयोग, खिलाफत, स्वदेशी आन्दोलन, नमक आंदोलन, क्विट इंडिया (Quit India) आंदोलन आदि कितने ही संघर्ष समय-समय पर चले। वर्मा जी के उपन्यासों में इन राजनीतिक संघर्षों और आन्दोलनों का विस्तृत चित्रण हुआ है।

देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता भी एक राजनीतिक समस्या बन गई थी। मुस्लिम लीग की स्थापना और मुसलमानों की पृथकतावादी नीति को शै देने में ब्रिटिश सरकार का भी पूरा हाथ था। भेद उत्पन्न करो और राज्य करो (Divide and Rule) की नीति अपनाकर अंग्रेजों ने भारत को दासता की बेड़ियों में जकड़े रखा। रंग-वर्ण-भेद नीति के कारण अंग्रेज भारतीयों से नफ़रत करते थे। रेल में फर्स्ट क्लास के डिब्बों में, विशेष होटलों और स्थानों पर तथा कलेक्टर आदि उच्च शासकीय पदों पर कालों (भारतीयों) का निषेध था। शिक्षित और सम्पन्न भारतीयों को ब्रिटिश सरकार 'रायसाहब', रायबहादुर', 'खान बहादुर, 'राजा साहब' आदि बड़े-बड़े खिताब बांटकर अपना भक्त बना रही थी।

पर देश की राजनैतिक चेतना अँग्रेजों के प्रचण्ड दमन से दबने की बजाय और भी उभरती गई। जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड, शहीदों की कुर्बानी, सत्याग्रहियों द्वारा सही गई यातनाएँ रंग लाईं। देश स्वतंत्र हुआ, पर खण्डित होकर। विभाजन से जो राजनीतिक उथल-पुथल हुई, जनजीवन को जो आघात हुआ, उसका चित्रण करने में भी हमारे ये साहित्यकार पीछे नहीं रहे।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राजनीति ने जो-जो करवटें ली हैं, उनका चित्रण भी वर्मा जी की रचनाओं में हुआ है।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ : देश की ९० प्रतिशत जनता गांवों में रहती थी और हमारा ग्राम-समाज अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया था। गांवों और शहरों में परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ—वर्ण-व्यवस्था, कठोर सामाजिक नियम, धार्मिक अंध-विश्वास और रूढ़ियाँ, छुआ-छूत, विदेशों में जाने पर जाति-बहिष्कार, पंचायती बंधन आदि—जीवन को कूप-मंडूक बनाये हुए थीं। व्यक्ति इन सामाजिक बंधनों में बंधा हुआ था। उसे इनके कड़े नियमों और शासन में घुटना पड़ता था। स्वतंत्रता से पूर्व विधवा-विवाह का निषेध था। पुरुष-प्रधान समाज में नारी की शोचनीय दशा थी। पुरुष एकाधिक विवाह कर सकता था। स्त्री को तलाक का अधिकार किसी भी हालत में नहीं था। पर स्वतंत्रता के बाद हिन्दू कोड बिल पास हो जाने से नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ।

अंग्रेज़ों ने देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय बना दी थी। जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहन प्राप्त था। अंग्रेजी शासन की भूमि-व्यवस्था के कारण भूमि पर व्यक्ति का स्वाधिकार हुआ। भूमि को बेचने, बेदखल करने आदि के नियम लागू हुए जिनसे पिसा किसान विवशता के कारण बेदखली, नीलाम, विक्रय आदि की ठोकरें खाता हुआ भूमिहीन बनने लगा था।

पूँजीवादी अंग्रेज़ों ने भारत के प्राचीन उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया था। गाँवों में कुटीर-उद्योगों के अभाव से जमीन पर अत्यधिक भार बढ़ता जा रहा था। भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटने लगी थी, क्योंकि परम्परागत सम्मिलित परिवार-प्रथा छिन्न-भिन्न हो रही थी। अलगोझों के कारण किसान की रही-सही भूमि खण्ड-खण्ड होकर महत्वहीन हो रही थी। ग्राम-जीवन का आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर बहुत गिर गया था। स्वतन्त्रता से पूर्व खेती पुराने परम्परागत तरीकों से ही होती थी। किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों का भी शिकार बना रहता था। उपज कुछ होती न थी पर लगान-वसूली के नियम कड़े थे।

पुरानी सामन्तवादी पद्धति टूट रही थी, पूँजीवाद का विकास हो रहा था। ब्रिटिश पुलिस-पद्धति और नौकरशाही का बोलबाला था। रिश्वतखोरी, नैतिक पतन और अन्याय शासन की रग-रग में घुसे हुए थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद

भी अब तक यह रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, नैतिक-पतन राष्ट्र के जीवन को घुन की तरह खा रहे हैं। शहरों में भी परम्परागत सम्मिलित-परिवार-प्रथा छिन्न-भिन्न हो रही थी। मध्यवित्त वर्ग का निर्माण हुआ। जमींदारों की हालत भी बिगड़ती जा रही थी। उनके बेतुके फिजूल खर्च उन्हें महाजन या पूँजीपति का मोहताज बना रहे थे।

गाँवों में महाजनी पूँजीवाद प्रचलित था। यह महाजनी शोषण भी समाज के लिए एक बड़ा अभिशाप बना हुआ था। पूँजीवादी सभ्यता के विकास से बड़े-बड़े मिल, कल-कारखाने, बैंक आदि कम्पनियाँ स्थापित होने लगी थीं। बड़े-बड़े उद्योगों और मण्डियों में किसानों की उपज सस्ते दामों ही बिकती थी और पूँजीपति अपने उद्योगों और व्यापार में बहुत नफ़ा बना रहे थे। साम्राज्यवाद की छत्रछाया में पूँजीवाद विकसित हुआ। पूँजीवाद के विकास और उद्योगपतियों के नगरों में एकत्रित होने तथा ब्रिटिश नौकरशाही ने मध्यवर्ग उत्पन्न किया। इसमें साधारण व्यवसायी, दुकानदार, वेतनभोगी कर्मचारी, अन्य छोटे-छोटे उत्पादक आदि सम्मिलित हैं, जिनकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं ने नये-नये रूप धारण किये। नगरों में इस वर्ग का जीवन भौतिक-बौद्धिक स्वार्थी बन गया। बेदखल हुआ या ऋणभार से ग्रस्त अथवा आजीविका-हीन किसान गाँव छोड़कर नगर में मज़दूरी करने लगा था। नगरों में मध्यवर्ग के अतिरिक्त मिल-मालिक या पूँजीपति और मज़दूर—ये दो विषम वर्ग और उत्पन्न हो गये। वर्ग-संघर्ष अपना खेल खेलने लगा।

'टका धर्म' संस्कृति का विकास हुआ। प्रेमचन्द ने इसे 'महाजनी सभ्यता' कहा था, भगवतीचरण वर्मा ने 'बनियों की दुनिया' (भूले बिसरे चित्र) कहा है। "यहाँ हर चीज़ बिकती है—दीन, ईमान, सत्य, चरित्र ! यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है !" (भूले बिसरे चित्र)। "धन के लोभ ने मानव-भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है।" कुलीनता और शराफ़त, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है। (प्रेमचन्द)

श्री भगवतीचरण वर्मा ने न केवल गांधी-युग का अध्ययन किया था, अपितु स्वतन्त्रता के पश्चात् नेहरू-युग का भी पूर्ण अनुभव पाया है। न केवल गांधीवादी विचारधारा का उनपर प्रभाव पड़ा, अपितु साम्यवादी समाजवादी विचार-पद्धति से भी वे प्रभावित हुए। उन्होंने अपने युग की परिस्थितियों का

सही अध्ययन, मनन और चिंतन करके अपनी एक प्रगतिशील विचारधारा बनाई। जीवन की सब दिशाओं—धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि—की उन्होंने झाँकी ली। समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था, वर्ण-भेद, छुआ-छूत, अंधविश्वास, वैधव्य की चीत्कार, वेश्या का बीभत्स विलास, बेमेल विवाह, सामाजिक और आर्थिक शोषण, धर्म का ढकोसला, वर्ग-भेद, दहेज-प्रथा की बुराइयाँ, धार्मिक साम्प्रदायिकता, कूप-मंडूकता, असहिष्णुता आदि अनेक बुराइयों और कुप्रथाओं का अपने उपन्यासों में पर्दाफाश किया। एक सच्चे युग-चेता साहित्यकार के नाते वर्मा जी ने अपने युग का आलोड़न-विलोड़न करके ही नवयुग-निर्माण की प्रेरणा जगाई। युगीन परिस्थितियों ने उनका साहित्यिक व्यक्तित्व निर्मित किया, उन्हें युग-बोध दिया और उन्होंने बदले में युग को नया भाव-बोध दिया। युग ने उन्हें बनाया और उन्होंने युग का नव-प्रवर्तन किया।

६

भगवतीचरण वर्मा : औपन्यासिक चेतना का क्रमिक विकास

मुंशी प्रेमचन्द की तरह श्री भगवतीचरण वर्मा की औपन्यासिक चेतना का क्रमिक विकास हुआ है। सन् १९२९ ई० में वर्मा जी ने उपन्यास लिखने में हाथ आजमाया था। यद्यपि वह प्रयोग (पहला उपन्यास 'पतन') सफल नहीं रहा तथापि इससे वर्मा जी को उपन्यास रचने का भरोसा हो गया, आत्मविश्वास हो गया।

१. पतन

'पतन' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रची गयी एक काल्पनिक रचना है। वर्मा जी ने नवाब वाजिदअली शाह के पतन के तत्कालीन जीवन के पतन की कहानी प्रस्तुत की है। कथा तीन सूत्रों में बँटी हुई है जो पृथक्-पृथक् तीन कहानियाँ प्रतीत होती हैं। शैली वर्णनात्मक है। कथा में संगठन की शिथिलता, कार्य-कारण असंगतियाँ, अस्वाभाविक स्थितियाँ, जादू, भूत और ज्योतिष के अस्वाभाविक चमत्कार, संयोग और आकस्मिकता की भरमार, चरित्र-चित्रण का अभाव, उद्देश्यहीनता आदि दोषों के कारण रचना असफल रही। इस रचना में वर्मा जी ने दर्शाया है कि वासना मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है। वासनाओं की तृप्ति असम्भव है। विलासिता और वासना अच्छे-अच्छों को पतन के गर्त में गिराकर छोड़ती है। पर इस उद्देश्य की सिद्धि में भी लेखक को विशेष सफलता नहीं मिली है। समाज की किसी ज्वलंत समस्या को इस रचना में वर्मा जी प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। पर एक बात इस रचना से स्पष्ट आभासित हुई—वह यह कि लेखक के पास कल्पना-शक्ति की कमी नहीं।

२. चित्रलेखा (१९३४ ई०)—

'चित्रलेखा' वर्मा जी का बहुचर्चित प्रसिद्ध उपन्यास है। यह फिल्माया भी

जा चुका है। इस रचना से ही उपन्यासकार के रूप में वर्मा जी की प्रतिष्ठा हुई। वर्मा जी ने इस उपन्यास की रचना में अनातोले फ्रांस की रचना 'थाया' से संकेत और दिशा ग्रहण की है। पाप और पुण्य के सम्बन्ध में वर्मा जी एक नया दृष्टिकोण लेकर आये। पाप और पुण्य की परम्परागत धारणाएँ आज अपना महत्व खो बैठी हैं। मनुष्य की परिस्थितियों के अध्ययन से ही उसके आचरण की अच्छाई और बुराई का सही पता चल सकता है। कथा इस प्रकार है—

चित्रलेखा पाटलीपुत्र की अद्वितीय सुन्दरी नर्तकी है। उसके मादक सौन्दर्य-दीप पर लाखों सरदार-सामन्त शलभ बनने को प्रस्तुत हैं, पर चित्रलेखा संयम का जीवन बिताती है। वह सबकी प्रणय-याचना ठुकरा देती है। युवक सामन्त बीजगुप्त ही केवल उसे प्रभावित करता है। वह उस सर्वसुन्दर सामन्त के रूप-गुण पर मुग्ध हो उससे प्रेम करने लगती है। बीजगुप्त नर्तकी चित्रलेखा से एकनिष्ठ प्रेम करता है। बीजगुप्त ऐश्वर्यवान् है, भोगी है, अनुरागी है। स्वर्ग या ईश्वर की वह नहीं सोचता, उसके सामने तो इसी दुनिया का वैभव है, सुख-विलास है। चित्रलेखा उसके केलि-भवन की एकमात्र साम्राज्ञी बन जाती है। सामाजिक बन्धनों के कारण विवाहिता न हो सकने पर भी बीजगुप्त उसे विवाहिता पत्नी के समान समझता है। चित्रलेखा बीजगुप्त की सर्वस्व है।

महात्मा रत्नाम्बर के शिष्य श्वेतांक के मन में प्रश्न उठता है: पाप क्या है, उसकी स्थिति कहाँ है? गुरु पाप और पुण्य की परिभाषा खोजने के लिए अपने दो शिष्यों श्वेतांक और विशालदेव को अथाह संसार में छोड़ देते हैं। श्वेतांक को सामन्त बीजगुप्त की सेवा में छोड़ा जाता है और विशालदेव महा-योगी कुमारगिरि का शिष्यत्व ग्रहण करता है। कुमारगिरि बीजगुप्त का विलोम है। बीजगुप्त भोगी है, कुमारगिरि योगी है। संयम कुमारगिरि का साधन है और स्वर्ग लक्ष्य। वह विशालदेव को पहले ही स्पष्ट कहता है: "मेरे साथ रहकर तुम्हें पाप का अनुभव न हो सकेगा। मेरा क्षेत्र है संयम और संयम और नियम पाप से दूर रहता है। मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखला दूँगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे।"

बीजगुप्त के आमोद-प्रमोद, विलास-सुख के वातावरण का श्वेतांक पर प्रभाव पड़ता है। वह अद्भुत सुन्दरी चित्रलेखा पर मुग्ध हो जाता है। क्या वह पाप की ओर जा रहा है? वह अनधिकार चेष्टा कर बैठता है। वह

चित्रलेखा को पाना चाहता है। अपने अपराध के लिए वह बीजगुप्त से क्षमा माँगता है। बीजगुप्त उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर देता है और उसे विचित्र दण्ड देता है कि वह यथापूर्व प्रतिदिन चित्रलेखा को उसके घर छोड़ने जाये। श्वेतांक बीजगुप्त की क्षमाशीलता और उदारता से बहुत प्रभावित होता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा में योगी कुमारगिरि अपनी आत्मशक्ति और योगबल से साम्राज्य के सब विद्वानों और सामन्तों को प्रभावित कर लेता है। वह सम्पूर्ण सभा में अपने ज्ञान, तप और अध्यात्म की धाक जमा देता है। इस विद्वत्सभा में चित्रलेखा भी उपस्थित होती है। वह योगी कुमारगिरि से पराभूत नहीं होती, उल्टा अपने बुद्धि-चातुर्य से योगी कुमारगिरि को पराजित कर देती है। ज्ञान-चर्चा में विजय का मुकुट चित्रलेखा को प्रदान किया जाता है। कुमारगिरि को अहं के कारण अनुचित व्यवहार करने का दण्ड देने का अधिकार चित्रलेखा को प्राप्त होता है।

योगी स्वयं को पराजित और अपमानित अनुभव करता है। सभी सभासद और सामन्त योगी को पराजित तथा चित्रलेखा को विजयी समझते हैं। पर चित्रलेखा को लगता है कि यह उसकी विजय नहीं, पराजय हुई है। दण्ड-स्वरूप वह अपना विजय-मुकुट योगी कुमारगिरि के सिर पर रख देती है और उसके तेजस्वी व्यक्तित्व, असीम सौन्दर्य से बहुत प्रभावित होती है। योगी को अपमानित करने का उसे दुख होता है। वह योगी से क्षमा-याचना करती है।

राज्य-सभा की घटना से परिस्थिति का चक्र बदल जाता है। चित्रलेखा कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होती जाती है। बीजगुप्त ने आर्य मृत्युंजय की अनिंद्य सुन्दरी पुत्री यशोधरा से विवाह का प्रस्ताव इसीलिए ठुकरा दिया था क्योंकि वह चित्रलेखा के सिवा किसी अन्य से प्रेम नहीं कर सकता था। चित्रलेखा अब सोचती है कि यदि मैं बीजगुप्त के मार्ग से हट जाऊँ तो सामंत बीजगुप्त अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का ठीक-ठीक पालन करेंगे—यशोधरा से विवाह कर अपनी गृहस्थी और वंश-परंपरा चला सकेंगे। अपने प्रिय के इस हित का ध्यान करके वह योगी कुमारगिरि से दीक्षा लेने को निकल पड़ती है जनरव से निकल कर एकांत में चली जाती है।

कुमारगिरि द्विविधा में पड़ जाता है। उसकी दृष्टि में स्त्री मोह-माया में फंसाने वाली है, अंधकार है, पाप है। योगी सोचता है—"चित्रलेखा को दीक्षा देने का अर्थ है गिरना, नीचे गिरना।" चित्रलेखा भी स्वीकार करती है कि

वह साधना का पथ अपनाने नहीं, वस्तुतः उससे प्रेम करने आई है। साधना की छलना में दोनों छले जाते हैं। योगी कुमारगिरि का संयम, नियम, ब्रह्मचर्य सब वासना की ज्वाला में राख हो जाता है। वह धोखे से चित्रलेखा को फंसा लेता है। चित्रलेखा भी क्षणिक आवेश के वशीभूत हुई अपना शरीर योगी को सौंप देती है। बाद में उसे ग्लानि होती है। उस कुटिया और योगी के प्रति उसका मन वितृष्णा से भर जाता है। वह सोचती है कि कुमारगिरि से उसका प्रेम एक धोखा था। वह भटक गई थी। वह अब लौटना चाहती है। पर उसे पता चलता है कि सामंत बीजगुप्त आर्य मृत्युंजय और यशोधरा के साथ काशी चले गए हैं।

चित्रलेखा के वियोग में बीजगुप्त अत्यन्त दुःखी हो जाता है। पाटलीपुत्र का जनरव, नृत्य, संगीत, उत्सव, आमोद-प्रमोद सब उसे काटने लगते हैं। वह वहाँ से पलायन कर काशी-यात्रा की सोच लेता है। वह यशोधरा से भी दूर चला जाना चाहता है। इसी बीच श्वेतांक यशोधरा से प्रेम करने लगता है। जब श्वेतांक से यशोधरा को पता चलता है कि बीजगुप्त काशी-यात्रा को प्रस्थान करने वाले हैं, तो वह भी अपने पिता आर्य मृत्युंजय से काशी चलने का आग्रह करती है। शिष्टाचारवश बीजगुप्त उनके साथ यात्रा को सहमति प्रदान करते हैं। काशी में निकटता के कारण बीजगुप्त थोड़ी देर के लिए यशोधरा की ओर आकृष्ट होता है और उसके साथ विवाह कर अपनी गृहस्थी बनाने की सोचता है, पर उसे तभी पता चलता है कि श्वेतांक यशोधरा को चाहता है।

श्वेतांक की निर्धनता को बाधक देखकर बीजगुप्त अपनी सारी सम्पत्ति श्वेतांक को दे डालता है और स्वयं आर्य मृत्युंजय से श्वेतांक के साथ यशोधरा के विवाह का प्रस्ताव करता है। बीजगुप्त को लगता है कि चित्रलेखा के प्रति उसका प्रेम अडिग है।

उधर चित्रलेखा जब श्वेतांक के मुख से बीजगुप्त के अपने प्रति अडिग प्रेम की बात सुनती है तो उसे आत्मग्लानि होती है। वह कुमारगिरि के प्रति घृणा से भरकर अपने घर लौट आती है। वह बीजगुप्त से किस मुँह से मिले ? वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलती है। आखिर वह बीजगुप्त से मिलती है और अपने पतन की सारी कहानी सुना देती है। वह स्वयं को बीजगुप्त के योग्य नहीं समझती, क्योंकि वह योगी की वासना का शिकार हो चुकी है। वह

बीजगुप्त से क्षमा माँगती है। पर बीजगुप्त के मन में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं होता। उसका एकनिष्ठ प्रेम संदेह से परे है; वह देह धर्म का नहीं, आत्मा का प्रेम है। चित्रलेखा पुनः बीजगुप्त का प्रेम पा धन्य हो जाती है।

चित्रलेखा भी अपनी सारी सम्पत्ति का दानकर भिक्षुणी वेश में बीजगुप्त के साथ निकल जाती है। दोनों का प्रेम अमर हो जाता है। संक्षेप में यही चित्रलेखा की कथा है।

इस रचना में लेखक का प्रतिपाद्य एक तो पाप-पुण्य सम्बंधी बंधी-बंधाई परंपरागत धारणाओं का खण्डन करना है। कवि जीवन की सार्थकता संसार से पलायन में नहीं, अपितु संसार में प्रवृत्ति को मानता है। संसार से विरक्त हुआ, व्यक्तिगत मोक्ष की साधना करने वाला, संयमी योगी पुण्यात्मा नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत संसार के भोगों में डूबा, विलासिता में रमा, किन्तु परोपकारी और उदार बीजगुप्त पुण्यात्मा है, पापी नहीं। पाप और पुण्य का निर्णय परंपरागत मान्यताओं के आधार पर दो टूक नहीं हो सकता। मनुष्य की परिस्थितियों के संदर्भ में ही पाप-पुण्य का सही पता चल सकता है।

परिस्थितियों के वश में पड़कर महायोगी कुमारगिरि स्खलित हो जाता है। चित्रलेखा-जैसी अद्भुत सुन्दरी का उसके पास एकांत में रहना—प्रणय-याचना करना ऐसी परिस्थिति थी जिसमें उसका साधना-च्युत हो जाना स्वाभाविक ही था। फिर उसे पापी या उसके वासना-पूर्ति के कार्य को पाप कैसे कहा जा सकता है? इसी प्रकार चित्रलेखा भी परिस्थिति-वश ही मार्ग-भ्रष्ट होती है। मनुष्य परिस्थितियों का दास है। परिस्थितियों के वश ही योगी भोगी बन जाता है और भोगी बीजगुप्त अंत में योगी बन निकलता है। विलासिता के मादक वातावरण में श्वेतांक-सा ब्रह्मचारी भोगी बन जाता है और इसके विपरीत संयम और साधना के पवित्र वातावरण में विशालदेव ब्रह्मचारी और योगी बना रहता है। विशालदेव की दृष्टि में कुमारगिरि देवता है और बीजगुप्त पापमय संसार का पापी है। श्वेतांक की दृष्टि में बीजगुप्त देवता है, त्याग की मूर्ति है, कुमारगिरि पापी है, पशु है। यह भिन्न दृष्टिकोण परिस्थितियों का ही खेल है।

लेखक के इस नियतिवादी प्रतिपाद्य को उपसंहार में कहे गए महाप्रभु रत्नाम्बर के शब्द स्पष्ट करते हैं: "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल

मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।'''मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है। वह कर्त्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पाप और पुण्य कैसा? संसार में पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकती है। हम न पाप करते हैं, न पुण्य करते हैं। हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।"

यह मनुष्य की विवशता है। उसकी सबलता बीजगुप्त के चरित्र में प्रकट हुई है। रत्नाम्बर कहते हैं: "मनुष्य स्वतंत्र विचार वाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। मनुष्य की विजय वहीं संभव है जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाए, वरन् अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पाये।"

इस प्रकार 'चित्रलेखा' हिन्दी की एक नई विचारोत्तेजक रचना है, जिसमें परंपरागत जीवन-मूल्यों को चुनौती दी गई है। प्रसाद जी की ऐतिहासिक रोमांटिक प्रवृत्ति रचना में आद्यांत प्रकट हुई है। भगवतीचरण वर्मा की छायावादी भावुक कवि-प्रवृत्ति भी इस उपन्यास में खूब सजग है। इसी काव्यात्मकता के कारण तार्किकता भी भावुकता बनी हुई है। उपन्यास में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाव-प्रवणता, ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता, रोचक संवाद-शैली, काव्यात्मक सुन्दर भाषा-शैली, उद्देश्य की महान् सिद्धि आदि सब तत्त्वों का सुन्दर सामंजस्य है। संक्षिप्त किन्तु उत्कृष्ट कथा भी है और मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण भी। ऐतिहासिक वातावरण के होते हुए भी रचना आधुनिक विचार-संदर्भ लिए हुए है। प्रेम के उदात्त रूप का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। रचना शृंगार रस-प्रधान है। चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि—इन तीनों प्रमुख पात्रों का बड़ा ही सजीव मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण हुआ है। वैयक्तिक सीमा में होते हुए भी उपन्यास की थीम सामाजिक है। कुल मिलाकर 'चित्रलेखा' वर्मा जी का एक श्रेष्ठ सफल उपन्यास है। कुमारगिरि और श्वेतांक के चरित्रों में लेखक ने दमित यौन कुण्ठा का मनोविज्ञान प्रकट किया है। यह और चित्रलेखा का विचित्र मनोविज्ञान इस रचना को मनोवैज्ञानिक चरित्रपूर्ण रचना सिद्ध करते हैं।

३. तीन वर्ष (१९३६ ई०):

'तीन वर्ष' वर्मा जी का तीसरा उपन्यास है। इसमें भी लेखक का मुख्य विषय प्रेम और विवाह-सम्बन्धी समस्या का प्रकाशन रहा है और इसी कारण

सामाजिक परिवेश इसमें भी विशेष नहीं प्रकट हो सका, किन्तु अब लेखक को विषय और कथा-सामग्री अपने आसपास के जीवन से प्राप्त होने लगी है, इसी से पहले दोनों उपन्यासों की तरह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उसे आवश्यकता नहीं रही है। इलाहाबाद के विद्यार्थी-जीवन से वर्मा जी काव्य क्तिगत सम्बंध रहा है। अतः उन्होंने 'तीन वर्ष' में यूनिवर्सिटी के वातावरण, विद्यार्थियों के होस्टल जीवन तथा छात्र-छात्राओं की प्रेम-चर्या का चित्रण किया है।

रमेश एक निर्धन किन्तु प्रतिभाशाली और सुन्दर छात्र है। वह भोला-भाला गवंई युवक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में बी० ए० पढ़ने आता है। यहाँ उसका सम्बंध एक राजकुमार अजितसिंह से होता है। अजितसिंह रमेश के जीवन में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। वह रमेश को दुनिया की रंगीनियों में ले जाता है। रमेश का घनिष्ठ परिचय उच्च सम्पन्न वर्ग की युवती प्रभा से हो जाता है। दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ जाता है। प्रेम के चक्कर में पड़ा रमेश अपना भविष्य खराब कर लेता है। वह प्रभा से विवाह का प्रस्ताव करता है। पर प्रभा उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। प्रभा प्रेम और विवाह को भिन्न-भिन्न मानती है। प्रेम यौवन की लालसा और वासना-पूर्ति का साधन है। वह रमेश से इसलिए विवाह नहीं कर सकती, क्योंकि रमेश अपनी निर्धनता के कारण उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ रहेगा। विवाह को वह नारी का ऐसा समर्पण मानती है, जो बदले में आर्थिक सुविधाएँ चाहता है।

प्रभा के इन्कार से रमेश को बहुत दुःख होता है। वह शरत् के देवदास की तरह मद्यपान और वेश्यागमन का रास्ता अपनाता है। जिस प्रकार देवदास से चन्द्रमुखी को प्रेम हो गया था, उसी प्रकार सरोज नामक एक वेश्या रमेश से सच्चा प्रेम करने लगती है। देवदास ने जैसे चन्द्रमुखी को ठुकरा दिया था, वैसे ही रमेश सरोज के प्रेम को नहीं समझ पाता और उसकी उपेक्षा करता है। सरोज तपेदिक से ग्रस्त होकर मर जाती है। वह अपनी लाखों की सम्पत्ति रमेश के नाम वसीयत कर जाती है और रमेश को निठल्ला जीवन बिताने के स्थान पर कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

सरोज़ की मृत्यु के पश्चात् रमेश को उसके सच्चे प्रेम का पता चलता है। वह पश्चाताप की अग्नि में जलता है। वह सच्चे प्रेम के त्याग का महत्त्व

अनुभव करता है। लखपति रमेश की प्रभा से फिर भेंट होती है। अब रमेश प्रभा के विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा देता है।

वर्माजी ने दिखाया है कि किस प्रकार उच्च-वर्ग की शिक्षित स्वच्छन्द युवतियाँ पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से प्रेम को खिलौना तथा वासना-पूर्ति का साधन समझने लगी हैं और विवाह को व्यापार मानती हैं। प्रभा सभ्य और शिक्षित परिवार की होते हुए भी वेश्या से गई-गुजरी है, जबकि सच्चे प्रेम और त्याग के बल पर वेश्या सरोज एक उच्च नारी प्रमाणित होती है। यहाँ भी परिस्थितियों, संयोग और आकस्मिकता से कथा का ताना-बाना बुना गया है। इससे कथा में रोचकता तो उत्पन्न हुई है, पर परिस्थितियाँ और संयोग वैसे स्वाभाविक और नाटकीय नहीं बन पाए जैसे 'चित्रलेखा' में प्रकट हुए थे। चरित्र-चित्रण भी इस रचना में साधारण कोटि का है। कई-कई पृष्ठों के लम्बे वाद-विवाद भी एक-दो स्थानों पर उपन्यास को नीरस बनाते हैं। दूसरे खण्ड की कथा शरत् के 'देवदास' से प्रभावित है, पर 'देवदास' जैसी संवेदना इस रचना में नहीं उभर सकी है। कुल मिलाकर 'तीन वर्ष' वर्मा जी की एक साधारण कोटि की ही रचना है।

४. टेढ़े-मेढ़े रास्ते (१९४६ ई०) :

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' वर्माजी का चौथा उपन्यास है। इस रचना में पहली बार वर्माजी भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में दूर-दूर तक प्रविष्ट हुए दिखाई देते हैं। स्वतन्त्रता-पूर्व भारत की राजनीतिक परिस्थिति का इसमें पर्याप्त व्यापक चित्रण हुआ है। इसीसे इसे राजनैतिक उपन्यास भी कहा जा सकता है।

वर्माजी ने एक परिवार की मुख्य कथा विशेष उद्देश्य के लिए अपनाई है। पं० रमानाथ तिवारी परम्परागत सामन्तीय विचारों के व्यक्ति हैं जो ब्रिटिश राजभक्त हैं। इस पुरानी पीढ़ी के विपरीत नवोदित पीढ़ी क्रांतिकारी विचारों की है। वर्मा जी ने पं० रमानाथ तिवारी के तीनों लड़कों को तीन अलग-अलग दलों और आन्दोलनों से सम्बंधित दिखाया है, जो लेखक-द्वारा आरोपित-सा कुछ अस्वाभाविक लगता है।

बड़ा लड़का दयानाथ कानपुर का प्रसिद्ध वकील है। वह कांग्रेस का बड़ा कार्यकर्त्ता बन जाता है और देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब-कुछ त्याग

कर देता है। सत्याग्रह आन्दोलन में जेल जाता है। पिता रमानाथ तिवारी को सरकार का यह विरोध पसन्द नहीं। रमानाथ उसे कुल का कलंक समझता है और सब अधिकारों से वंचित कर उसे त्याग देता है। पर दयानाथ अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है, कांग्रेस नहीं छोड़ता।

दयानाथ में भी अपने बाप की तरह अहं भाव बहुत है। इसी बुराई के कारण वह चुनाव हार जाता है। इस हार का उसे बहुत दुख होता है। उसके मन में दुर्बलता आ जाती है और वह कांग्रेस को छोड़ने का विचार कर लेता है। पर उसका पिता, जिसे कुल की आन-बान का बड़ा ख्याल है, उसे कांग्रेस छोड़ने से रोकता है। ऐसी दुर्बलता उनकी कुल-मर्यादा के विपरीत है। पिता उसकी हिम्मत बंधाता है, जिससे दयानाथ पुनः अपने पथ पर दृढ़ हो जाता है।

तिवारी जी का दूसरा बेटा उमानाथ जर्मनी से औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लौटा है। जर्मनी में अपने प्रशिक्षण के दौरान वह अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन से सम्बंधित हो गया था। वह भारत में साम्यवादी संगठन का प्रचार करता है। एक साथी के विश्वासघात से सरकार को उसके कम्युनिस्ट होने और उसकी साम्यवादी गतिविधियों का पता चल जाता है। उसकी गिरफ्तारी का वारंट जारी हो जाता है। उमानाथ पुलिस की पकड़ से बचने की दौड़-धूप करता है। उसे आर्थिक सहायता की भी जरूरत पड़ती है। वह अपने पिता से सहायता की माँग करता है। पर पिता तो उसके कम्युनिस्ट होने पर पहले ही जला-भुना बैठा है। वह कम्युनिस्टों को जमींदारों के कट्टर शत्रु समझता है, इसलिए उमानाथ की कोई सहायता नहीं करता।

उमानाथ की एक सुन्दर, सुशील, पति-परायणा भारतीय पत्नी महालक्ष्मी थी, पर जर्मनी में उसने हिल्डा नामक एक विदेशी युवती से भी शादी कर ली थी और अपनी भारतीय पत्नी की, उसे अशिक्षित जानकर, उपेक्षा करता था। इस संकट के समय में वह शांत, सेवापरायण महालक्ष्मी ही उसकी आर्थिक सहायता करती है। उमानाथ महालक्ष्मी के प्रेम और त्याग से बहुत प्रभावित होता है और उसकी उपेक्षा का भाव त्याग देता है। अपने संगठन के कार्य को गति प्रदान करने के लिए वह पुनः जर्मनी चला जाता है।

तिवारी जी का तीसरा लड़का प्रभानाथ उग्र क्रांतिकारी बन जाता है। वीणा नामक एक साहसिक और क्रांतिकारी युवती की प्रेरणा से वह

क्रांतिकारियों के दल में सक्रिय भाग लेने लगता है। वीणा का प्रभानाथ से प्रेम हो जाता है। दोनों अविवाहित रूप में ही पति-पत्नी जैसी घनिष्ठता बना लेते हैं। एक डकैती के अभियोग में पुलिस प्रभानाथ को पकड़ लेती है। अनेक प्रकार की यातनाओं से डराकर और प्रलोभन दिखाकर पुलिस उसे मुकद्दमे में मुखबिर बनाना चाहती है। पर प्रभानाथ अपने साथियों से द्रोह नहीं करता। कुछ देर के लिए उसके मन में दुर्बलता आती है, पर उसका पिता रमानाथ तिवारी, जो वैसे तो उसके क्रांतिकारी आचरण के विरुद्ध होता है, पर अपने पुत्र को मर्यादा से गिरता नहीं देख सकता, उसे दृढ़ रखता है। पुलिस की घोर यातनाओं के कारण तथा प्रभानाथ के विचलित हो जाने के भय से वीणा पुलिस कप्तान विश्वम्भरदयाल को धोखा देकर जेल में प्रभानाथ को मिलती है और अँगूठी में पोटाशियम साइनाइड दे आती है। प्रभानाथ आत्महत्या कर लेता है, अपने साथियों से विश्वासघात नहीं करता।

जेल से लौटकर वीणा विश्वम्भरदयाल की हत्या कर देती है। एक भारतीय पत्नी की तरह वह स्वयं भी अपने प्रेमी प्रभानाथ को मिलने स्वर्ग में चली जाती है—आत्महत्या कर लेती है। रमानाथ तिवारी-जैसा कठोर परंपरा-पंथी व्यक्ति भी उसके साहस और त्याग पर झुक जाता है और उसके पुत्र-वधू के अधिकार को मान लेता है।

इस प्रकार अपनी अहम्मन्यता के कारण रमानाथ तिवारी अपने तीनों पुत्रों को खो बैठते हैं। अन्त में बिल्कुल अकेले पड़ जाते हैं और अपने मिथ्या अहं पर पछताते हैं।

इस रचना में वर्मा जी ने कांग्रेस, कम्युनिस्ट, क्रांतिकारी दलों की मीटिंगों, जलूसों, कार्यकर्त्ताओं की गति-विधियों का बड़ा सजीव रोचक वर्णन किया है। व्यंग्य शैली की विशेषता पहली बार इस उपन्यास में उभर कर आई है। कथा में अनावश्यक विस्तार बहुत है। पर अवान्तर घटनाओं और प्रसंगों की रोचक कल्पना में वर्मा जी बहुत कुशल हैं—यह इस उपन्यास से भली प्रकार प्रमाणित हो जाता है। स्थानीय रंग भी पर्याप्त सजीव है। प्रभानाथ के कलकत्ता-भ्रमण-प्रसंग में लेखक ने कलकत्ता के स्थानीय वर्णन बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किये हैं। कथा-संगठन में संयोगों की भरमार है। अधिकांश संयोग और आकस्मिक घटनाएँ रोचक हैं। प्रभानाथ को क्रांतिकारी बनाने में भारत की निदारुण निर्धनता, बेकारी, बड़े लोगों की लूट-खसूट आदि के प्रसंग बड़े मार्मिक हैं।

पात्रों के चरित्रोद्घाटन में अन्तर्द्वन्द्व का खूब प्रयोग किया गया है जिसके कारण चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक हो गया है। रामनाथ तिवारी का चरित्र-चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। उसके चरित्र में प्रबल अन्तर्द्वन्द्व पाया जाता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़े पात्रों के परिवर्तित मनोभावों, आचरणों और चरित्रों का बड़ा सुन्दर उद्घाटन किया गया है। तार्किकता और बौद्धिकता इस उपन्यास में 'चित्रलेखा'-जैसी ही है। कुछ अनावश्यक प्रसंगों के सिवा संवाद सर्वत्र सार्थक और रोचक हैं। वर्मा जी ने युग की राजनैतिक और सामाजिक तस्वीर दिखाने का इस उपन्यास में सर्वप्रथम सफल प्रयास किया है। यद्यपि उद्देश्य की निर्दिष्टता नहीं है, क्योंकि लेखक किसी दल या विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं है, तथापि देश की राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं—परतंत्रता, ब्रिटिश शासन के अत्याचार, जमींदारों की लूट, राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की दुर्बलताएँ, पुलिस के अत्याचार, गरीबी, शोषण, रूढ़ियाँ, छुआछूत, छल-प्रवंचना, व्यक्तिगत स्वार्थ आदि अनेक समस्याओं पर स्वतः ही प्रकाश पड़ा है। कुल मिलाकर 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' वर्मा जी की एक सफल रचना है।

५. आखिरी दाँव (१९५० ई०) :

'आखिरी दाँव' में वर्मा जी ने फिल्मी दुनिया की अनैतिकता और भ्रष्टाचार का पर्दा-फाश किया है तथा पैसे की चकाचौंध और करामात दिखाई है। इस पूँजीवादी संसार में पैसा ही सब कुछ बना बैठा है। पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। पैसे का आकर्षण कितना मोहक होता है! पैसे से पाप छिपाया जा सकता है, नारी का शरीर, सम्मान और सुख खरीदा जा सकता है!

रामेश्वर इस उपन्यास का नायक है। वह जूए में अपना सब कुछ हारकर अपने गांव से बम्बई आ जाता है। बम्बई में आते ही अचानक पुलिस के हाथ में पड़ी हुई एक नारी चमेली को वह बड़े नाटकीय ढंग से बचाता है।

चमेली अपने पति और सास के अत्याचारों से तंग आकर गाँव के रतनू नामक एक चंचल युवक के साथ घर से एक हज़ार रुपये नक़द और अपने गहने लेकर बम्बई भाग जाती है। रतनू उसके पैसों से कुछ दिन शराब पीता और मौज उड़ाता है। पैसे समाप्त होने पर वह चमेली से वेश्यावृत्ति कराना चाहता

है। इस स्थिति से बचने के लिए चमेली घर से भाग निकलती है। वह पुलिस के हाथ पड़ जाती है। तभी रामेश्वर बड़ी सूझ-बूझ से उसे अपनी पत्नी सिद्ध कर पुलिस से बचाता है। जीवन में पहली बार रामेश्वर से सच्चा प्यार और सहानुभूति पाकर चमेली रामेश्वर से सच्चा प्रेम करने लगती है। दोनों पति-पत्नी की तरह सुख-पूर्वक रहने लगते हैं। रामेश्वर के भी विधुर और अशांत जीवन में शांति का आगमन होता है।

पर अर्थ-पिशाच उनके जीवन को विडम्बना बना देता है। चमेली एक पान की दूकान कर लेती है और रामेश्वर एक सेठ के यहाँ नौकरी करने लगता है। फिल्म प्रोड्यूसर सेठ शिवकुमार की गीध दृष्टि चमेली पर पड़ती है और उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो वह उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। वह चमेली को अपनी कम्पनी में एक हज़ार रुपये महीने पर फिल्म अभिनेत्री बनाने का प्रलोभन देता है। पर चमेली उसके प्रलोभन को ठुकरा देती है।

इसी बीच धन के लोभ और अपनी पत्नी चमेली को अधिक सुखी बनाने के लिए रामेश्वर अपने मालिक के चार हज़ार रुपये सट्टे में लगा देता है और लाभ के स्थान पर रुपये खो बैठता है। उसके पकड़े जाने की स्थिति पैदा हो जाती है। अब चमेली रामेश्वर को जेल जाने से बचाने के लिए, अपनी इच्छा के विपरीत, अभिनेत्री बन जाती है और सेठ शिवकुमार उसकी परिस्थिति से लाभ उठाकर उसे अपनी वासना का शिकार बना लेता है। चमेली को पैसे और वैभव के इस जीवन का चसका पड़ जाता है। वह फिल्म अभिनेत्री से कम्पनी की मैनेजिंग डाइरेक्टर बन जाती है, कार और बड़ी कोठी प्राप्त करती है।

रामेश्वर का पौरुष अपनी पत्नी की कमाई पर आश्रित नहीं रहना चाहता। वह चमेली के पतन का कारण स्वयं को मानता है। वह भैंसों के एक तबेले पर रहने लगता और दूध का व्यापार करने लगता है। वह अधिक धन जुटाने और अपनी पत्नी चमेली को अपने पास ही सुखी जीवन देने के लिए अवैध शराब बेचने और जुआ खेलाने लगता है। चमेली को भी रामेश्वर से बहुत प्यार है, पर अर्थ का पिशाच उन दोनों को दूर ढकेले रखता है। रामेश्वर खूब धन कमा कर धन-पिशाचों के चंगुल से अपनी पत्नी को छुड़ाना चाहता है। वह जुआरियों और बदमाशों का नेता बन जाता है। जूए की लत उसे ले

डूबती है। वह अपनी सारी पाप की कमाई जूए में हार जाता है। आखिरी दाँव में वह अपनी शेष पूँजी ही नहीं, अपनी पत्नी और स्वयं को भी हार जाता है।

चमेली चाँदी के सिक्कों की चकाचौंध और सेठ शीतलप्रसाद-जैसे वासना के पुतले पूँजीपतियों के चंगुल से निकलना चाहती है, पर निकल नहीं पाती। अपने अंतिम प्रयत्न में वह सेठ शीतलप्रसाद की हत्या करने के पश्चात् आत्महत्या कर लेती है। उसकी हत्या के बाद रामेश्वर बिल्कुल टूट जाता है और पुलिस के समक्ष समर्पण कर देता है।

'आखिरी दाँव' वर्मा जी का एक सुगठित, रोचक और संवेदनापूर्ण कथा का सफल उपन्यास है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' जैसे बिखराव वाली कथा के वृहत् उपन्यास के बाद सुगठित कथा के इस अपेक्षाकृत छोटे उपन्यास की रचना इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि विशुद्ध कथाकार के रूप में वर्मा जी किसी भी उपन्यासकार से कम प्रतिभावान् नहीं हैं। सन् १९४८ से पूर्व वर्मा जी छः साल बम्बई रहे थे और वहाँ फिल्मी-दुनिया के रंग-ढंग उन्होंने अच्छी तरह देखे थे। अपने उन्हीं अनुभवों का यथार्थ चित्रण उन्होंने इस रचना में किया है। 'आखिरी दाँव' में कहानी या घटना वाला अंश अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक है। इसमें पात्रों का चरित्रोद्घाटन घटनाओं और परिस्थितियों के द्वारा हुआ है। अधिकतर घटनाएँ संयोग-आश्रित हैं।

कथाकार के रूप में भगवतीचरण वर्मा की एक विशेषता कमोवेश सभी उपन्यासों में पाई जाती है। वह यह कि जहाँ-जब उनके उपन्यासों में कथानक की गति रुकने लगती है, वहीं वह कुछ ऐसे संयोग या परिस्थिनि की कल्पना कर लेते हैं कि जिससे कथा फिर गति पकड़ लेती है। 'आखिरी दाँव' में भी यह बात स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। संयोग और आकस्मिक घटनाओं की इसमें भरमार है।

पात्रों का चरित्र भी भाग्य और परिस्थिति के सहारे उद्घाटित हुआ है। वर्मा जी का नियतिवाद यहाँ भी प्रकट हुआ है। चमेली, रामेश्वर आदि सभी पात्र परिस्थितियों के दास बने हुए दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'आखिरी दाँव' वर्मा जी की एक सामान्य कोटि की रचना है।

६. अपने खिलौने (१९५७ ई०) :

अर्थ-प्राप्ति के उद्देश्य से लिखना वर्मा जी के जीवन की मजबूरी रही है। संभवतः 'अपने खिलौने' इसी मजबूरी का परिणाम है। इस लघु उपन्यास का विषय है दिल्ली-बम्बई जैसे शहरों के अभिजात वर्ग के मनचले युवक-युवतियों के स्वच्छन्द प्रेम-व्यापार और भोग-विलास का व्यंग्यपूर्ण चित्रण। युवक-युवतियों के वासनापूर्ण प्रेम को ही इसमें खिलौना बताया गया है। वास्तव में ही इन छिछले और भावुक प्रेमी-प्रेमिकाओं ने प्रेम को खिलौना बना रखा है।

यह उपन्यास साधारण कोटि की ही रचना है जो सस्ते मनोरंजन के सिवा जीवन की किसी गंभीर समस्या या गूढ़ तथ्यों का विवेचन प्रस्तुत नहीं करती। कथा का ताना-बाना साधारण कोटि का है। चरित्र-चित्रण का भी विशेष प्रयास नहीं। छोटे-से उपन्यास में पात्रों की भीड़-सी इकट्ठी कर ली गई है। घटनाएँ भी खूब हैं और कई तो अयथार्थ प्रतीत होती हैं। व्यंग्य का नश्तर भी इस उपन्यास में बेअसर ही है। न उद्देश्य की महानता है, न संवेदनाओं की गहनता। कुल मिलाकर उपन्यास एक हल्की रचना ही कहा जा सकता है।

७. 'भूले-बिसरे चित्र' (१९५९ ई०) :

वर्मा जी के इस श्रेष्ठ उपन्यास का विस्तृत अध्ययन और आलोचन ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है जो अगले अध्यायों में प्रकट किया गया है।

८. वह फिर नहीं आई (१९६२ ई०) :

'वह फिर नहीं आई' वर्मा जी का एक साधारण कोटि का लघु उपन्यास है। इसमें वर्मा जी ने एक विकृत आदर्श की स्थापना या सिद्धि के लिए बड़ी अस्वाभाविक और विकृत परिस्थितियों की कल्पना की है। अपने उसी पुराने आदर्श—प्रेम आत्मा की वस्तु है, शरीर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं—को निभाने के लिए इसमें नारी की दुर्गति की गई है। अर्थ-लाभ के लिए न जाने हमारे ये लेखक क्यों किशोरों और अन्य पाठकों की रुचि को भ्रष्ट कर रहे हैं! आत्मा की पवित्रता के नाम पर नारी को इस प्रकार वेश्या बनाना नारी का घोर अपमान है। प्राचीन काल में जैसे नारी को सती का सम्मानित अलंकार प्रदान कर पुरुष-प्रधान समाज ने उसका निर्मम शोषण किया था, उससे भी अधिक जघन्य अपराध हमारे ये लेखक नारी की आत्मा की पवित्रता का आदर्श दिखाकर कर रहे हैं।

भारत-विभाजन के समय जीवनराम की सब सम्पत्ति मुसलमानों द्वारा लूट ली जाती है। जीवनराम अपनी अद्वितीय सुन्दर पत्नी रानी श्यामला को अपने एक मुसलमान मित्र शहनबाज के पास बीस हज़ार रुपये में बंधक रखकर और अपनी जान बचाकर बम्बई चला आता है। नारी के घोर अपमान की यह परिस्थिति कितनी हास्यास्पद है !

बम्बई में जीवनराम एक फर्म में काम करता है। वह उस फर्म के बीस हजार रुपयों का गबन करके अपनी पत्नी रानी श्यामला को शहनबाज़ से छुड़ा लाता है। पर इस बीच श्यामला को शहनबाज़ के सम्मुख आत्मार्पण करना पड़ता है। शहनबाज उसे ज़बरदस्ती पाना चाहता है। श्यामला किसी तरह छः महीनों तक टालती रहती है। आखिर छः महीने तक अपने पति की प्रतीक्षा करने के बाद उसे शहनबाज़ को समर्पण करना पड़ता है। शहनबाज़ से छुड़ाने के बाद जीवनराम जब उसे भारत ले आता है तो श्यामला अपने पति को सारी बात बता देती है। आदर्श प्रेमी (?) अपनी आदर्श प्रेमिका पत्नी (?) को पतित नहीं मानता और आत्मा से उसे पवित्र समझता है। यहाँ तक तो फिर भी आदर्श का निर्वाह उचित ही लगता है। पर आगे जब श्यामला अनेक पर-पुरुषों की अंकशायिनी बनती है, अपना शरीर खुले-आम बेचती है, वेश्यावृत्ति करके पैसा जुटाती है और अपना तथा अपने पति जीवनराम का पेट पालती और आर्थिक संकट दूर करती है, तो उसके सम्बन्ध में यह धारणा प्रकट करना कि शरीर की पवित्रता नष्ट होने पर भी उसकी आत्मा पवित्र रही, हास्यास्पद ही है।

दिल्ली में श्यामला की भेंट एक व्यापारी ज्ञानचन्द से होती है और उस अपरिचित व्यक्ति से कुछ क्षणों के परिचय में ही जिस प्रकार वह अपना शरीर सौंप देती है, वह उसके पतन की पराकाष्ठा है—आदर्श की बात तो दूर रही। लेखक ने दिखाना यह चाहा है कि रानी श्यामला अपने जीवन-यापन के लिए अपना शरीर बेचती हैं और बाद में वह अपने पति को जेल जाने से बचाने के लिए ज्ञानचन्द की प्रेयसी बनी रहती है। वह ज्ञानचन्द से प्रेम नहीं करती, प्रेम तो वह केवल अपने पति जीवनराम से करती है ! कितना विकट है यह प्रेम ! कैसी विचित्र है यह आत्मा की पवित्रता !

जीवनराम अब एक तरह से बीस हजार रुपये में अपनी पत्नी को ज्ञानचन्द के पास बंधक छोड़कर रुपये की तलाश में चला जाता है। पर रुपया तो

क्या पाना था, स्वयं मृतप्राय अवस्था में लौटता है। पतिपरायणा श्यामला (?) उसकी वहुत सेवा-सुश्रूषा करती है, पर जीवनराम बचता नहीं। पति की मौत से श्यामला बहुत दुःखी होती है। कुछ दिनों के बाद वह फिर जीवन की रंगीन वासनाओं में डूब जाती है। वेश्यावृत्ति से खूब रुपया कमा लेती है। वह ज्ञानचन्द के बीस हज़ार रुपये जबरदस्ती चुका कर मानो अपने स्वर्गीय पति को ऋणमुक्त करती है और फिर नहीं लौटती है।

इस प्रकार पाठकों के सस्ते मनोरंजन के लिए वर्मा जी ने नारी के व्यभिचार को बड़े ही अस्वाभाविक रूप से प्रकट किया है। उपन्यास में न सदोद्देश्य की गरिमा है, न चरित्र-चित्रण का मनोवैज्ञानिक प्रयास है, न कथा और घटनाओं की स्वाभाविकता ही है। कुल मिलाकर रचना असफल है।

९. सामर्थ्य और सीमा (१९६२) :

'सामर्थ्य और सीमा' वर्मा जी का एक सोद्देश्य उपन्यास है जिसमें उपन्यास-कला का समुचित निर्वाह नहीं हो सका है। वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में जो कहानी की रोचकता का तत्त्व सर्वत्र विद्यमान रहा है, उसका भी इस उपन्यास में अभाव-सा है। कथा और घटनाएँ विशेष हैं ही नहीं ?

हिमालय की तराई में जंगलों को काटकर सरकार सुमना नामक एक रेलवे स्टेशन बनाती है। पास के सुमनपुर गाँव को औद्योगिक विकास का केन्द्र बनाने की संभावना प्रतीत हुई है। रोहिणी नदी पर बाँध बाँधकर विद्युत् प्राप्त करने की योजना है। इस समस्त योजना की संभावनाओं और उसके कार्यान्वयन का जायजा लेने के लिए केन्द्रीय सरकार भारत के पाँच विशेषज्ञों—प्रसिद्ध उद्योगपति रतनचन्द मकोला, विश्वविख्यात इंजीनियर वासुदेव चिंतामणि देवलंकर, पत्रकार ज्ञानेश्वर राव तैलंग, संसद-सदस्य तथा प्रसिद्ध साहित्यकार शिवानन्द शर्मा तथा प्रसिद्ध कलाकार और प्लानर एलबर्ट किसन मंसूर—को सुमनपुर भेजती है।

सुमनपुर का इलाका यशनगर के राजा शमशेर बहादुर सिंह की ताल्लुकेदारी में था। सर्वप्रथम उन्होंने ही रोहिणी नदी पर बाँध बाँधकर विद्युत्-शक्ति प्राप्त करने तथा उस क्षेत्र को औद्योगिक क्षेत्र बनाने की योजना बनाई थी। पर जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो जाने के कारण राजा साहब की सारी ज़मीन-जायदाद छिन जाती है। उनकी योजना धरी-की-धरी

रह जाती है। इसका उन्हें बहुत दुःख होता है और वह अपनी पत्नी रानी मानकुमारी को साथ लेकर स्विट्ज़रलैंड चले जाते हैं। वहाँ उनकी मृत्यु हो जाती है। पति की मृत्यु के बाद रानी मानकुमारी पुनः भारत लौट आती हैं।

रानी मानकुमारी अपने वंश के अवशेष मेजर नाहर सिंह और उनके पुत्र रघुराज को अपने पास बुला लेती है। वृद्ध नाहर सिंह एक तरह से रानी के संरक्षक का काम करते हैं। रानी को वह पिता का-सा पूरा स्नेह देते हैं। रानी मानकुमारी की अंत तक रक्षा करते हैं।

रानी मानकुमारी अपनी ज़मींदारी तथा जायदाद का मुआवज़ा प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। नाहर सिंह उसका साथ देते हैं। रानी उसे साथ लेकर प्रमुख सरकारी अफ़सरों और नेताओं से मिलती है, पर कुछ हासिल नहीं होता। वह निराश और कुंठित हो जाती है।

रानी का सम्पर्क उसके इलाके में भारत सरकार द्वारा भेजे गए उन पाँच समर्थ व्यक्तियों से होता है। रानी मानकुमारी सुन्दरी है। एक-एक कर वह पाँचों रानी के आकर्षण में बंधते हैं, उसके सौन्दर्य पर लुब्ध हुए उसकी सहायता करने तथा उसके कुंठाग्रस्त और निराश जीवन को खुशियों में बदल देने के लम्बे-चौड़े वायदे करते और आश्वासन दिलाते हैं। उद्योगपति मकोला अपनी कम्पनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर बनाने का प्रस्ताव करते हैं, पत्रकार अपनी लेखनी के बल पर रानी को राजनीति में प्रवेश कराकर मंत्री या गवर्नर आदि बनवा देने की सामर्थ्य जताते हैं। इसी प्रकार सब रानी का मन जीतना चाहते हैं और शायद तन भी। पर रानी संभली रहती है। केवल देवलंकर सच्चा प्रेम जताता और विवाह का प्रस्ताव करता है। सभी एक-दूसरे के प्रतियोगी बनकर अपने-अपने सामर्थ्य की बाज़ी लगा देते हैं।

पर सामर्थ्य की इतनी डींग मारने वाले इन तुच्छ प्राणियों को अपनी सीमा का ज्ञान नहीं। एक रात नियति अपना खेल खेलती है। असमय अति-वृष्टि होती है, नदी में बाढ़ आ जाती है। भारी जल-प्लावन होता है और उसमें सारा नगर, पाँचों विभूतियाँ, रघुराज, रानी मानकुमारी, नाहरसिंह सब जल-समाधि ले लेते हैं। जो लोग अपने को प्रकृति का नियंता समझने का दंभ रखते थे, क्षण भर में प्रकृति द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं।

नियतिवादी वर्मा जी का नियतिवाद इस रचना में बड़े ही अकलात्मक रूप में प्रत्यक्ष हो गया है। नाहरसिंह को अपना प्रवक्ता (Spokesman)

बनाकर उन्होंने कहा है : "नियति का चक्र चल रहा है और इस नियति के चक्र की गति बदलने में मैं असमर्थ हूँ, तुम असमर्थ हो, हर एक आदमी असमर्थ है। बनाने और मिटाने वाला कोई दूसरा ही है, हम तो स्वयं बनाए-मिटाए जाते हैं।" और "यहाँ किसी का ठिकाना नहीं, कठपुतलियों का नाच हो रहा हैं, डोर किसी दूसरे के हाथ में है, जिसे हम देख नहीं पाते।"

उपन्यास इसी निराशा, पलायन, विवशता और विकलता की छटपटाहट में समाप्त होता है। लेखक इस अंतिम सर्वनाश को भी करुणापूर्ण नहीं बना सका है क्योंकि उसका उद्देश्य तो केवल सैद्धांतिक रूप से यह सिद्ध करना है कि मनुष्य की सामर्थ्य से कहीं अधिक प्रबल उसकी सीमा है। वह प्रकृति के हाथ का खिलौना है, उसका दास है, स्वामी नहीं। यह उद्देश्य भी जीवन की उदात्त प्रेरणाएँ प्रदान नहीं करता। आज के वैज्ञानिक विकास के युग में प्रकृति के समक्ष मनुष्य को इतना विवश दिखाना भी अनुचित है। साथ ही वर्मा जी ने जिस प्रकार कुछ ही क्षणों में अकस्मात् सब विनाश दिखाया है, वह भी अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। लगता है कि लेखक झटपट अपने नियतिवादी उद्देश्य को थोपकर उपन्यास को समाप्त करने के लिए व्यग्र है। मृत्यु, विनाश और संत्रास का ही संगीत प्रकट करने में लेखक ने आनन्द लिया है।

यदि इसका प्रतीकात्मक अर्थ लिया जाए तो कथा में कुछ सार्थकता प्रतीत होती है। पर अपनी कथा को एक प्रतीक बनाने में भी वर्मा जी पूर्ण सफल नहीं हो सके हैं। सामर्थ्यवान् दंभी पुरुषों के स्वार्थ और दुर्बलता का लेखक ने अच्छा व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। जल-प्लावन संभवतः उनके दंभ और स्वार्थ को चूर करने का ही प्रतीक है। उपन्यास में स्वतन्त्र भारत की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों और दूषित शासन-प्रणाली पर कुछ अच्छा प्रकाश पड़ा है।

उपन्यास में न कथारस है, न भाव-संवेदनाओं की मार्मिकता, न चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता। तर्क और विवादपूर्ण लम्बे-लम्बे स्थल रचना को नीरस बनाते हैं। आरंभ का चालीसों पृष्ठों का पात्र-परिचय निरर्थक और अकलात्मक है। पात्र-सृष्टि भी सोद्देश्य है। पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली-से बने प्रतीत होते हैं। रानी भानकुमारी और नाहरसिंह के सिवा किसी अन्य पात्र के चरित्र-चित्रण में कोई विशेषता नहीं। संवाद लम्बे और नीरस वाद-विवादों से पूर्ण हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'सामर्थ्य और सीमा'

में वर्मा जी के पात्रों की ही तरह उनकी उपन्यासकला की भी सामर्थ्य अत्यल्प किन्तु सीमा अत्यधिक प्रकट हुई है ।

१०. थके पाँव (सितम्बर, १९६३) :

'थके पांव' वर्मा जी का एक लघु उपन्यास है जिसमें उन्होंने स्वतंत्र भारत के निम्न मध्यवर्ग की जीवन-विषमता का चित्रण किया है । बेकारी की समस्या और दहेज की कुप्रथा के कारण हमारा पारिवारिक जीवन कितना नारकीय हो गया है, यह वर्मा जी ने सजीव ढंग से प्रकट किया है । यह एक सफल सामाजिक उपन्यास है जिसमें उपन्यासकला का पूर्ण समन्वित निर्वाह हुआ है ।

केशवचन्द्र के पिता निम्नमध्यवर्ग के क्लर्क थे । उनके सम्मुख बच्चों की पढ़ाई और लड़की की शादी की विकट समस्या थी । केशवचन्द्र ने बी० ए० पास किया, पर नौकरी के लिए दर-दर की खाक छाननी पड़ती है । फीस न दे सकने के कारण उसके भाई का स्कूल से नाम कटने वाला है । एक भाई का कॉलेज में दाखिला भरने की समस्या है । बहन की शादी में चढ़े कर्ज को चुकाने की चिंता अलग है । केशवचन्द्र नौकरी पाने के लिए सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ भी जुटाता है, पर कोई कहीं नहीं पूछता । भाई-भतीजावाद और तगड़ी सिफारिशें उसे कहीं स्थान बनाने नहीं देतीं । उसकी योग्यता धरी रह जाती है । आखिर केवल साठ रुपये महीने पर वह एक जगह क्लर्क नियुक्त होता है और इस प्रकार गृहस्थी चलाने में वह अपने पिता का सहयोगी बनता है । परिवार के पालने में ही उसकी जिन्दगी, उसका व्यक्तित्व मिट जाता है ।

पिता की मृत्यु के बाद तो सारा भार उस पर पड़ जाता है । केशवचन्द्र को अपने लड़के मोहन पर बड़ी आशाएँ हैं । वह योग्य है, पर पी० सी० एस० में नहीं आ पाता । आखिर अपने पिता की तरह क्लर्की करता है । पर स्थान अस्थायी होने से तीन साल बाद हटा दिया जाता है । फिर वही बेकारी की समस्या ! दर-दर भटकने पर भी उसे नौकरी नहीं मिलती ।

परिवार विकट आर्थिक संकट में पड़ा रहता है । मोहन ट्यूशन करता है, अपनी बहन को पढ़ाने की समस्या, फिर उसकी शादी की समस्या—समस्या ही समस्या ! मोहन टूट जाता है, जवानी ढल जाती है । सौ रुपये की क्लर्की फिर करता है । यहाँ उसे बहुत काम करना पड़ता है, पर विवश है, नौकरी छोड़ नहीं सकता । उसे तपेदिक हो जाता है । परिवार पर मुसीबत का पहाड़

टूट पड़ता है। केशवचन्द्र पुत्र की बीमारी से बिल्कुल टूट जाते हैं। बेटी की शादी की समस्या अलग है। दहेज कहाँ से जुटाएँ ? हताश हो वह पुत्री की शादी एक विधुर डाक्टर से तय करते हैं। पर बी० ए० पास पढ़ी-लिखी लड़की विरोध करती है और चुपचाप अपने भाई किशन के पास बम्बई में चली जाती है। किशन फिल्म कम्पनी में काम करता है। दोनों भाई-बहन वहाँ कमाकर अपनी आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

मोहन के इलाज के लिए केशवचन्द्र सब तरफ हाथ पसार कर थक जाता है। इस आर्थिक विपन्नता में वह एक दिन एक सेठ से एक हजार रुपया घूस लेता है। वह जीवन-भर ईमानदार और सच्चरित्र रहा है। अपने इस कृत्य पर उसे बहुत ग्लानि होती है। प्रायश्चित्त रूप में वह नौकरी से इस्तीफ़ा दे देता है और रुपये अनाथालय में जमा करा देता है। इसी बीच बम्बई से उसके पुत्र-पुत्री उसके पास डेढ़ हजार रुपया भेजते हैं और इस पैसे से उसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने की धुंधली आशा होती है। पर अभी भी उसके पाँव बुरी तरह थके हैं।

११. रेखा (१९६४ ई०) :

'रेखा' में वर्मा जी ने फिर काम-वासना के खेल दिखाकर नारी का अस्वाभाविक शारीरिक पतन और विचित्र आत्मिक आदर्श प्रकट करना चाहा है। सभी पात्र काम-विकार-ग्रस्त, इन्द्रिय-आनन्द के भूखे, निर्लज्ज और उच्छृंखल हैं। सेक्स की प्रचण्डता उन्हें विवेकहीन बना देती है। रेखा अपने अधेड़ पति से संतुष्ट न होकर कई पुरुषों से शारीरिक सम्बंध स्थापित करती है। मज़े की बात यही है कि वह शारीरिक दृष्टि से इतनी पतित होकर भी आत्मिक दृष्टि से आदर्श (?) दिखाई गई है। वर्मा जी का वही विकृत जीवन-दर्शन यहाँ भी नारी के व्यभिचार में आनन्द लेता है। विवाहिता देवकी प्रो० प्रभाशंकर से अवैध सम्बंध रखती है। सारी कथा काम और यौन-चित्रण से भरी हुई है।

रेखा एक सुन्दर और प्रतिभा वाली छात्रा है। शोध-कार्य के सिलसिले में वह विभागाध्यक्ष प्रो० प्रभाशंकर के निकट सम्पर्क में आती है। वह प्रोफेसर के प्रति श्रद्धा रखती है। प्रोफेसर भी उसकी मेधा की प्रशंसा करते हैं। धीरे-धीरे दोनों के बीच गुरु-शिष्य का सम्बंध प्रेमी-प्रेमिका के रूप में बदलने लगता है। प्रभाशंकर का प्यार पा रेखा अपने को धन्य समझने लगती है। छुट्टियों में

रेखा प्रोफेसर साहब को अपने घर आमंत्रित करती है। प्रोफेसर जबलपुर के पास उनके गाँव जाते हैं। नर्मदा नदी और वहां के पर्वतीय प्राकृतिक दृश्यों में दोनों की भावनाएँ और उबल जाती हैं—रेखा प्रोफेसर के और निकट आ जाती है।

इसके बाद प्रो० प्रभाशंकर की माता की बीमारी में जब रेखा नैनीताल में निःस्पृह सेवा करती है तो यह अति निकट का साहचर्य प्रेम की प्रगाढ़ता उत्पन्न करता है। रेखा को एम० ए० में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान ही नहीं मिला, बल्कि वह विश्वविद्यालय में एक नया रिकार्ड कायम करती है। यह असीम प्रसन्नता दोनों को बिल्कुल मिला देती है। रेखा अभिभूत है और भावुकता में आकर अधेड़ और विधुर प्रोफेसर से विवाह-सूत्र में बंध जाती है। एक साल तक तो उनका दाम्पत्य सुखपूर्वक चलता है। पर एक साल बाद उसकी शरीर की भूख अस्वाभाविक रूप से जाग जाती है।

रेखा अपने पति के सहयोगी प्राध्यापक डा० योगेन्द्रनाथ मिश्र से यौन-सम्बंध बना लेती है। प्रो० प्रभाशंकर स्वास्थ्य लाभ के लिए यूरोप चले जाते हैं। पीछे रेखा डा० मिश्रा के साथ अपनी शारीरिक भूख मिटाती है। वह रानीखेत के एक होटल में डा० मिश्रा के साथ तीन दिन रहती है।

प्रभाशंकर को रेखा के यौन-सम्बंध का पता चलता है तो वह बहुत दुःखी होते हैं। अपनी सेवा से रेखा अपने पति को आश्वस्त करना चाहती है, पर प्रोफेसर अंदर-ही-अंदर घुलते रहते हैं। मानसिक उद्विग्नता से उन्हें लकवा मार जाता है। रेखा प्रोफेसर की सेवा में तन्मय हो जाती है। डा० मिश्रा को ओसलो विश्वविद्यालय जाने पर विवश होना पड़ता है। वह रेखा को साथ चलने को कहता है। रेखा दुविधा में पड़ जाती है। पति को ऐसी हालत में छोड़कर वह कैसे जा सकती है? पर पति प्रभाशंकर उसके प्रति कटुता और अविश्वास का व्यवहार करते हैं। वह खिन्न होकर डा० मिश्रा के साथ जाने के लिए हवाई अड्डे पर चली जाती है। पर उसके पहुँचने से पहले ही विमान रवाना हो जाता है। वह पुनः अपने घर लौटती है। उसके जाने के बाद प्रोफेसर उसे पुकारता-पुकारता प्राण दे देता है। रेखा को बहुत दुःख होता है।

संक्षेप में यही 'रेखा' की मुख्य कथा है। एक अवान्तर कथा रत्ना चावला, निरंजन कपूर और शीरी की है। रत्ना चावला कामवासना की ऐसी पुतली है कि वह अपने भावी जामाता निरंजन कपूरको अपनी वासना-पूर्ति का

साधन बना लेती है। उसकी भावुक पुत्री शीरी को आत्महत्या करने से रेखा बचाती है।

दूसरी अवान्तर कथा ज्ञानवती के शिवेन्द्र धीर के प्रेम में पागल हो जाने की है।

इस प्रकार उपन्यास के सभी पात्र प्रेम (शारीरिक प्रेम) के भूखे हैं। लेखक ने काम-विकृतियों का निरुद्देश्य खुला चित्रण कर पाठक को सस्ता मनोरंजन ही प्रदान किया है। न समस्या का यथार्थ रूप है, न उसके समाधान का कोई प्रयत्न। रेखा को लेखक ने यौन-चित्रण की सनक में व्यभिचारिणी ही बना डाला है। वह एक नहीं अनेक पुरुषों—सोमेश्वर, निरंजन, शिवेन्द्र, मेजर यशवंतसिंह, डॉ० मिश्रा आदि—से शारीरिक सम्बन्ध बनाती है। हर बार उसे आत्मग्लानि करते दिखाया गया है। उसकी आत्मिक एकनिष्ठता (?) प्रो० प्रभाशंकर के प्रति बनी रहती है!

उपन्यास का प्रत्येक पात्र चरित्रहीन है। यथार्थ की यह नग्नता अयथार्थ ही हो गई है। भोगवाद का यह प्रचार जीवन का स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं माना जा सकता। वर्मा जी ने नारी के साथ खिलवाड़ करने का भारी अपराध अपनी कई रचनाओं में किया है।

वर्मा जी ने कहानी को रोचक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। रेखा आदि कुछ प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोविश्लेषण-प्रणाली भी अपनाई है जो वैसी मनोवैज्ञानिक और यथार्थ नहीं बन पाई, जैसी इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी' जैसे मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यासों में है। कुल मिलाकर 'रेखा' वर्मा जी का एक सामान्य कोटि का उपन्यास है, जिसमें जीवन की उदात्त भावनाएँ और उच्च प्रेरणाएँ जगाने की विशेष शक्ति नहीं है।

१२. सीधी-सच्ची बातें (१९६८ ई०) :

'सीधी-सच्ची बातें' वर्मा जी का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'भूले-बिसरे चित्र' की परम्परा का बृहदाकार राजनैतिक-सामाजिक उपन्यास है जिसमें स्वतन्त्रता से पूर्व के दस वर्षों की (१९३९ से १९४८ ई०) भारतीय राजनैतिक, सामाजिक एवं नैतिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। 'भूले-बिसरे चित्र' में वर्मा जी ने १८८५ ई० से १९३० ई० के भारतीय जीवन का चित्रण किया था, 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में १९३० ई० के बाद की राजनैतिक परिस्थितियों का अंकन हुआ था, 'सीधी-सच्ची बातें' इसी परम्परा की अगली कड़ी है।

'सीधी-सच्ची बातें' में वर्मा जी का उद्देश्य तद्युगीन भारत की राजनीतिक हलचल, राजनीतिक विचारधाराओं, जनता की मनोवृत्तियों, नैतिक दुर्बलताओं, विभिन्न वर्गों और संस्थाओं की विकृतियों, आपसी मतभेदों तथा अन्य सामाजिक बुराइयों की खरी-खरी बातें बताना है। जिस प्रकार 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में लेखक तटस्थ रहा था, उसी प्रकार यहाँ भी पर्याप्त तटस्थ दिखाई देता है। गांधी के अहिंसा आदि सिद्धान्तों की सबलता और दुर्बलता, समाजवाद के आकर्षण, 'प्रोग्रेसिव' कहलाने वाले व्यक्तियों का ढोंग, साम्यवाद का ढिंढोरा पीटने वालों का खोखलापन आदि सब बातें सीधे-सच्चे ढंग से कही गई हैं। जगतप्रकाश उपन्यास का नायक है। लेखक ने उसे कथा का केन्द्र बनाकर सारी परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। जगतप्रकाश तरह-तरह के जीवनानुभवों को प्राप्त करता है, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़ता है और संघर्षों में पड़कर गिरता-उठता है।

वर्मा जी का नियतिवाद यहाँ भी अखरता है। जगतप्रकाश को वर्मा जी ने टूट कर मरते दिखाया है, जैसे लेखक की सब आस्थाएँ टूट गई हों, जीवन के सभी विश्वास छिन्न-भिन्न हो गये हों। इस टूटन, निराशा और आकुलता से लेखक न जाने क्यों चिपटा हुआ है!

'सीधी-सच्ची बातें' में वर्मा जी और भी यथार्थवादी हो गये हैं। उन्होंने किसी आदर्श जीवन-दृष्टि को प्रस्तुत नहीं किया। पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण किया है। युग-बोध की दृष्टि से रचना का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। पर युगीन परिस्थितियों के अंकन में कई जगह लेखक इतिहासकार की तूलिका थाम लेता है, जिससे विवरण अनावश्यक और अकलात्मक हो गये हैं। कहीं-कहीं पात्रों को अस्वाभाविक रूप से राजनैतिक स्थितियों में डाला गया है। इस रचना में कथा की वैसी रोचकता, भावात्मक संवेदना की वैसी मार्मिकता, उद्देश्य की वह महानता और चरित्र-चित्रण की वह सजीवता नहीं आ पाई, जो उनके 'भूले-बिसरे चित्र' में है। फिर भी उपन्यास एक व्यापक चित्र-फलक पर पर्याप्त युग-बोध कराता है, अतः महत्त्वपूर्ण है।

१३. सबहिं नचावत राम गोसाईं (१९७० ई०):

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' वर्मा जी का सद्य प्रकाशित नया उपन्यास है जो स्वतन्त्र भारत के सामाजिक जीवन की विकृतियों का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता

है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण युग-बोध कराने वाली 'सीधी-सच्ची बातें' के बाद की कड़ी है। देश-भर में व्याप्त भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, लूट-खसोट, नैतिक पतन, रिश्वतखोरी, आर्थिक विषमताएँ, राजनीतिक बहुरूपियों के ढोंग, राजनीतिक उखाड़-पछाड़, कांग्रेस सरकार की दुर्बलता आदि का वर्मा जी ने पर्याप्त सजीव चित्रण किया है। वर्मा जी की यथार्थवादी प्रवृत्ति यहाँ भी सजग है। सभी घटनाएँ, पात्र और परिस्थितियाँ यथार्थ हैं। कथा में संगठन, रोचकता और कसाव भी काफी है। सबसे बढ़कर बात यह है कि 'सीधी-सच्ची बातें' और 'सबहि नचावत राम गोसाईं' की रचना से यह प्रमाणित हो गया है कि अब वर्मा जी ने केवल सस्ते और विकृत यौनाचार को अपने उपन्यासों का विषय बनाना छोड़ दिया है और वह फिर से 'भूले-विसरे चित्र' जैसी व्यापक युग-बोध और विस्तृत दृश्य-फलक वाली कृतियाँ रचने में मनोयोग देने लगे हैं।

इस प्रकार वर्मा जी की औपन्यासिक चेतना के विकास का उपर्युक्त अध्ययन करते हुए हमने देखा कि वर्मा जी में कथा-निर्माण की अद्भुत क्षमता है। आकस्मिक घटनाओं और संयोगों की कल्पना करने में वह बहुत कुशल हैं। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते'-जैसे विषय वाले उपन्यास को भी उन्होंने अपनी रोचक संदर्भ-उद्भावना के बल पर ही रोचक बना डाला। उत्सुकता और जिज्ञासा का अनुतत्त्व उनके उपन्यासों की कथा में प्रायः आद्यन्त रहती है। 'चित्रलेखा', 'भूले-बिसरे चित्र' जैसी प्रौढ़ कृतियों से उनकी चरित्र-चित्रण कला की उत्कृष्टता भी प्रमाणित होती है। उनकी उपन्यास-कला यथार्थवादी है जिसमें उनका नियतिवादी दृष्टिकोण उभरा हुआ है। पर यह यथार्थवाद और नियतिवाद निष्क्रिय भाग्यवाद नहीं है, नग्न यथार्थवाद नहीं है, जीवन की स्वस्थ कामना का प्रतिरूप है। शारीरिक भोगवाद का उनका दृष्टिकोण कुछ कृतियों में विकृत प्रतीत होता है, और यह सम्भवतः अर्थ-लाभ की व्यावसायिक प्रवृत्ति के कारण दो-तीन उपन्यासों में प्रकट हुआ है, पर समग्रतः वर्मा जी कामोत्तेजक अश्लील साहित्य-सृष्टा नहीं हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' वर्मा जी की अद्यतन कृतियों में ही सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं है, अपितु वह हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों की प्रथम पंक्ति में आने वाला उपन्यास है। आगे हम इसी रचना का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

★

'भूले-बिसरे चित्र' का कथानक : कथा-सार

(१)

मुंशी शिवलाल फतहपुर में अर्जीनवीस थे। पुराने ढंग के जी-हजूर ! कलक्टर साहब की कृपा से उनके लड़के ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदारी मिल गई। ज्वालाप्रसाद घाटमपुर के इलाके में नायब नियुक्त हुए। घाटमपुर के इलाके में शिवपुरा गाँव का नम्बरदार प्रभुदयाल था, जो बड़ा महाजन और जमींदार था। वहाँ राजा गजराजसिंह बड़ा जमींदार था। उसने अपनी लड़की का विवाह बड़े ठाठ से किया। पर अपने छः गाँव २० हजार रुपये में प्रभुदयाल के पास रहन रखकर खर्च उठाना पड़ा। गजराजसिंह का साला बरजोरसिंह भी प्रभुदयाल का कर्जदार था। उसके सिर दो हजार थे। गजराजसिंह की लड़की के विवाह में बातचीत के दौरान बरजोरसिंह ने प्रभुदयाल का यह कहकर अपमान कर दिया कि राजकुल के आदमी ही इतना खर्च कर सकते हैं, बनिये-बक्काल किस मुँह से करेंगे ? प्रभुदयाल को बात लग गई। उसने बरजोर के विरुद्ध अपने रुपयों की वसूली का मुकद्दमा कर दिया। डिगरी करा ली और बरजोरसिंह की दो सौ बीघा खुदकाश्त जमीन प्रभुदयाल के नाम हो गई। प्रभुदयाल अब जमीन का कब्जा भी शीघ्र लेना चाहता था। बरजोरसिंह प्रभुदयाल की इस कार्यवाही से बहुत चिढ़ गया। उसने एक रात प्रभुदयाल की हत्या कर डाली। प्रभुदयाल की पत्नी जँदेई बेवा हो गई।

इधर प्रभुदयाल ने ज्वालाप्रसाद से मेल-जोल बढ़ा रखा था। जँदेई ने भी ज्वाला के साथ देवर का नाता जोड़ लिया था और ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना से हेलमेल कर लिया था। ज्वालाप्रसाद ने बहुत चाहा था कि किसी तरह प्रभुदयाल और बरजोरसिंह में शत्रुता न बढ़े, पर बरजोरसिंह प्रभुदयाल का अपमान करने से नहीं माना और प्रभुदयाल उसके विरुद्ध नालिश करने से नहीं रुका। बरजोरसिंह की धमकी से आशंकित होकर ज्वालाप्रसाद ने प्रभुदयाल को सचेत किया भी, पर वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा था। आखिर जब बरजोरसिंह ने प्रभुदयाल की हत्या कर दी तो ज्वालाप्रसाद को यह अन्याय

प्रतीत हुआ। उसने पुलिस में बयान देकर बरजोरसिंह के खिलाफ़ गिरफ्तारी के वारंट निकलवा दिये। अपनी गिरफ्तारी और अपमान से आतंकित होकर बरजोरसिंह ने आत्महत्या कर ली। यह और भी बुरा हुआ क्योंकि बरजोर न केवल अपनी पत्नी को विधवा और बेसहारा छोड़ गया अपितु अपने दो बेटों और बेटी को भी निराश्रित छोड़ गया। उनकी आजीविका का भी कोई साधन नहीं था। खुदकाश्त ज़मीन प्रभुदयाल के नाम हो चुकी थी। ज्वालाप्रसाद को जब गजराजसिंह से बरजोरसिंह के परिवार की असहाय दशा का पता चला तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। उसे लगा कि बरजोरसिंह की आत्महत्या का उत्तरदायित्व उसी के सिर पड़ता है। गजराजसिंह ने ज्वालाप्रसाद से कहा कि वह अपने प्रभाव से जैदेई को अभी ज़मीन का कब्ज़ा लेने से रोक दे ताकि ज़मीन पर खड़ी फसल, जिसे बरजोरसिंह ने ही अपनी मेहनत से पैदा किया था, बरजोरसिंह के बच्चों को मिल जाय। फसल काटने के बाद जैदेई को ज़मीन का कब्ज़ा दे दिया जायगा। ज्वालाप्रसाद के दिल में बरजोरसिंह की विधवा और बच्चों के प्रति दया उमड़ आई। उसने अपने दिल में कहा कि न्याय भी यही है। एक दिन मौका पाकर ज्वालाप्रसाद शिवपुरा गया और जैदेई से मिला। जैदेई ज्वालाप्रसाद से पहले ही प्रभावित थी और अब तो प्रभुदयाल की मृत्यु के पश्चात् ज्वाला को अपना रक्षक और सहायक समझने लगी थी। जैदेई ने ज्वालाप्रसाद की बात मान ली और बरजोरसिंह की खुदकाश्त ज़मीन का कब्ज़ा स्थगित कर दिया।

ज्वालाप्रसाद के इस कार्य से ठाकुर गजराजसिंह भी ज्वाला से प्रभावित हुआ। अपने साले की आत्महत्या का कारण मानकर गजराजसिंह ज्वाला से कुछ खिंचा-खिंचा रहने लगा था, पर अब उसके इस व्यवहार से उसने पुनः ज्वाला से मैत्री बढ़ानी चाही।

घाटमपुर के तहसीलदार मीर सखावत हुसैन बड़े सज्जन पुरुष थे। उन्होंने ज्वालाप्रसाद की ईमानदारी और कार्यकुशलता से प्रभावित होकर इलाके का सारा काम उसी पर छोड़ रखा था। वह एक तरह ज्वाला को अपने बेटे-जैसा मानने लगे थे। ज्वाला की कोई शिकायत कहीं से उन्हें सुनाई नहीं पड़ी थी, उल्टा लोग उसकी प्रशंसा करते थे।

होली के अवसर पर ठाकुर गजराजसिंह ने ज्वाला और उसके परिवार को अपने यहाँ आमंत्रित किया। खूब जमाव रहा, नाच-तमाशे और शराब के दौर-

दौरे चले। ज्वालाप्रसाद ने भी पी। इस अवसर पर बरजोरसिंह के दोनों लड़कों को ज्वाला ने देखा। उसे उनके प्रति पुनः दया उमड़ आई। ठाकुर गजराजसिंह ने अवसर का लाभ उठाते हुए कहा, "इन लड़कों के घर होली नहीं मनाई गई ज्वाला बाबू, तो मैंने इनको अपने यहाँ बुला लिया। यह बिचारे क्या जानें कि इनका क्या खोया है! इनकी माँ अकेली चुनौठा में पड़ी सिसक रही होगी! साक्षात् लक्ष्मी है! भगवान् ने उसके कौन से पाप का इतना बड़ा दण्ड दिया है उसे! आपने इन लोगों का कितना उपकार किया है ज्वाला बाबू, कि ये लोग अपने घर तो लौट सके!" ज्वालाप्रसाद के मन में करुणा का सागर उमड़ पड़ा। गजराजसिंह ने और कहा, "नायब साहब, लम्बरदारिन तो आपको बहुत मानती हैं। क्या बरजोरसिंह के इस सौ बीघे जमीन का पट्टा आप उनसे बरजोरसिंह के लड़कों के नाम करा सकेंगे?"

यह बात ज्वालाप्रसाद के मन में लग गई। वह नशे की ही हालत में अपना तांगा जुतवा कर दोपहर बाद शिवपुरा जा पहुँचे। शिवपुरा में इस बार ला० प्रभुदयाल के यहाँ होली नहीं मनाई गई थी, इसीसे हवेली में सूना था। जैदेई अपने कमरे में उदास-सी पड़ी थी। ज्वाला के आने की खबर पाकर उसकी उदासी जाती रही। उसने उत्साह के साथ ज्वाला का स्वागत किया। ज्वाला को भी आज जैदेई विशेष सुन्दर प्रतीत हो रही थी। जैदेई ने खेद प्रकट किया कि इस बार होली नहीं मनाई जा रही, अन्यथा वह स्वयं अपने देवर जी को पिलाती और खूब छकाती। पर ज्वाला गंभीर मुद्रा में बोला कि वह तो एक विशेष काम से आया है। जैदेई ने काम पूछा। ज्वाला बोला, "भौजी, मैं बरजोरसिंह की ज़मीन की बाबत सोच रहा था। क्या वह ज़मीन उसके बच्चों को नहीं मिल सकती? वे लोग बिल्कुल अनाथ हो गए हैं।" पहले तो जैदेई ने कानून और रुपये अदा करने की बात की, पर जब ज्वाला ने कहा कि उन अनाथों के पास इतना रुपया कहाँ कि वह यह कर्ज़ा अदा कर सकें! मेरे पास भी नहीं है, नहीं तो मैं ही यह रुपया उन्हें दे देता तो जैदेई ज्वाला की भावुकता से बहुत प्रभावित हुई और उसकी आँखें ज्वाला की आँखों से उलझ गईं। वह तुरन्त अपने शयनकक्ष में गई, बनाव-शृंगार किया और वहीं अपने देवर जी को बुलाकर कहा, "देवर जी, ऐन होली के दिन होला दहकाने आए हो तो तुम्हें अपनी भौजी के साथ होली भी खेलनी पड़ेगी और अपनी भौजी से होली खिलाई भी लेनी पड़ेगी!" यह कहकर जैदेई ने अशर्फियों

की एक थैली ज्वालाप्रसाद के सामने रख दी, "देवर जी, यह सौ अशर्फियाँ लेकर मैं एक दफ़ा गई थी तुम्हारे पास। उस वक्त तुम अफ़सर थे और तुमने इन्हें लेने से इंकार कर दिया था, रिश्वत समझकर। आज मैं तुम्हें सौ अशर्फियाँ दे रही हूँ, अफ़सर को नहीं, अपने देवर को, देवर को ही नहीं, अपने सब-कुछ को। आज तुम इंकार न करने पाओगे। अब आगे से यह न कहना कि तुम्हारे पास रुपया नहीं है, जो कुछ मेरे पास है, वह तुम्हारा है; मैं ही तुम्हारी हूँ।" और यह कहकर जैदेई ने एक मुट्ठी गुलाल ही ज्वाला के मुँह पर नहीं मल दिया, अपितु पूर्ण आत्मार्पण कर दिया।

अशर्फियों की थैली लेकर ज्वालाप्रसाद संध्या समय घर लौट पड़े। उन्होंने वह अशर्फियाँ बरजोरसिंह की बेवा के लिए दे दीं, और इस तरह बरजोरसिंह की ज़मीन का पट्टा उसके लड़कों के नाम हो गया।

इसी बीच ज्वालाप्रसाद के पिता मुंशी शिवलाल अपने गाँव फतहपुर से घाटमपुर आकर रहने लगे थे। फतहपुर में उनके छोटे भाई राधेलाल ने चाहा था कि भाई साहब हमें छोड़कर न जायें, क्योंकि राधेलाल को मुंशी शिवलाल का बड़ा सहारा था। उनके कारण ही ज्वालाप्रसाद हर महीने पच्चीस रुपये घर भेज देता था : राधेलाल को अब आशंका हुई कि भाई के वहाँ चले जाने पर रुपये आने बंद हो जायेंगे। पर मुंशी शिवलाल ने आश्वासन देकर राधे का दिल रखा। मुंशी शिवलाल के साथ उनकी रखैल कहारिन छिनकी भी घाटमपुर चली आई। छिनकी शिवलाल के कहार घसीटे की दूसरी पत्नी थी। मुंशी शिवलाल छिनकी से हिल-मिल गए थे और एक तरह से उसे अपनी रखैल-सी बना लिया था। घसीटे के मरने के बाद तो छिनकी मुंशी शिवलाल के यहाँ ही रहने लगी थी। ज्वालाप्रसाद की बहू यमुना ने एक पुत्र को जन्म दिया था। बहू और पोते की देखभाल के लिए भी छिनकी की आवश्यकता थी। अतः छिनकी और मुंशी शिवलाल घाटमपुर रहने लगे। घसीटे का लड़का भीखू पहले से ही ज्वालाप्रसाद के पास घाटमपुर रहता था।

* * *

अपने समधी राजा चन्द्रभूषण सिंह के सम्मान में ठाकुर गजराजसिंह ने दावत दी और उसमें तहसीलदार मीर सखावत हुसैन, नायब ज्वालाप्रसाद, ज्वाला के पिता मुंशी शिवलाल आदि सबको आमंत्रित किया। इस अवसर पर ठाकुर गजराजसिंह ने मीर साहब आदि के समक्ष नायब ज्वालाप्रसाद की

प्रशंसा शुरू कर दी और बताया कि नायब साहेब ने किस प्रकार सौ अशर्फियाँ देकर बरजोरसिंह की विधवा के लड़कों को उनकी ज़मीन वापस दिला दी। मुंशी शिवलाल अपने बेटे की प्रशंसा से खुश हुए और गर्व से फूले नहीं समाये। दावत के बाद मीर साहब ज्वाला को अपने साथ ले गए और पूछने लगे, "बरखुरदार, सौ अशर्फियों की रक़म बहुत बड़ी रक़म होती है और ये सौ अशर्फियाँ तुम्हारे पास थीं, मुझे इस पर अचरज हो रहा है।......मैं यह जानता हूँ कि तुम रिश्वत नहीं लेते और जो आदमी रिश्वत नहीं लेता, वह आदमी किसी गैर को दया-दान की शक्ल में इतनी बड़ी रक़म नहीं दे सकता।" आखिर ज्वालाप्रसाद को सब रहस्य खोलना पड़ा कि किस प्रकार नम्बरदारिन जैदेई ने ही सौ अशर्फियाँ उसे दे दी थीं। ज्वालाप्रसाद को जैदेई से अपने सम्बंध होने के बारे में लज्जित होना पड़ा। मीर साहब बड़े अनुभवी आदमी थे। उन्होंने ज्वाला को इस मोह-पाश से हटाना और बदनामी से बचाना जरूरी समझकर कलक्टर साहब से कहकर उसकी तहसीलदार के पद पर तरक्की कराकर सोरांव की तबदीली करा दी।

मुंशी शिवलाल ने लोगों के सामने तो अपने बेटे की दया-धर्म-प्रवृत्ति की प्रशंसा की थी, पर यह उन्हें भी अखरा कि ज्वालाप्रसाद ने उन्हें तो दो सौ रुपयों से भी जवाब दे दिया था—उन्हें राधे के पास ज़मीन खरीदने के लिए दो सौ रुपये भेजने थे—पर बरजोरसिंह की विधवा के लिए सौ अशर्फ़ियाँ कहाँ से दे दीं! जब ज्वाला ने बताया कि वे तो नम्बरदारिन जैदेई ने ही दी थीं, तो मुंशी शिवलाल बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "ज्वाला बेटा, तुम्हारी क़िस्मत खुल गई। बहुत तगड़ा शिकार फंस गया है। अब आगे के लिए क़सम खा लो कि तुम इस तरह दूसरों को रुपया न दिलवाओगे...नम्बरदारिन जैदेई के पास नकद और जेवर मिलाकर लाखों की जमा-जथा है।" ज्वालाप्रसाद के मन में इस बात से और भी ग्लानि उत्पन्न हो गई।

इधर ज्वाला की पत्नी यमुना को भी अपने पति के जैदेई से सम्बंध होने की बात का निश्चय हो गया। पर उसने ईर्ष्या या द्वेष कुछ व्यक्त नहीं किया। ज्वाला को अपनी पत्नी के आगे भी लज्जित होना पड़ा।

(२)

ज्वालाप्रसाद इलाहाबाद के निकट सोरांव के तहसीलदार बनकर आ गए। माघ के महीने में त्रिवेणी-स्नान के लिए मुंशी शिवलाल छिनकी के साथ प्रयाग

मेले में आ गए और एक मड़ैया में रहने लगे। अब वे छिनकी के हाथ का कच्चा-पक्का सब खाने लगे थे; धर्म बिगड़ने का कोई भय नहीं रहा था। एक दिन फतहपुर से राधेलाल और उसकी पत्नी भी वहाँ आ गए। राधे ने आते ही दुहाई मचा दी कि उसका बेटा किशनू पाँच महीनों से लापता है, घर से भाग गया है। ज्वाला इतना बड़ा अफ़सर होकर उसकी खोज-खबर नहीं कराता। राधेलाल ने बताया कि पता चला था कि किशनू साधु बना फिरता है। डिप्टी कलक्टर ठाकुर थम्मनसिंह ने लड़के का हुलिया पूछा। पता चला कि इस हुलिये का एक लड़का साधु बना हुआ मेले में औरतों को छेड़ने के कारण पकड़ा गया है। वह किशनू ही निकला! मुंशी शिवलाल ने अपने प्रभाव से उसे छुड़ा लिया। करीमन रण्डी के यहाँ से उसका बिस्तर आदि सामान उठवा कर मुंशी राधेलाल अपने साथ ले आए।

माघ मेले के इस अवसर पर शिवपुरा से लम्बरदारिन जैदेई अपने बेटे लक्ष्मीचन्द की बहू के साथ वहाँ आ गई। ज्वाला स्वयं उन्हें इलाहाबाद स्टेशन से शिवलाल की मड़ैया में लाया। मुंशी शिवलाल ने पहली बार लम्बरदारिन को देखा। गंगा-स्नान कर सब सोरांव चले गए। जैदेई अपने गाँव चली गई। मुंशी शिवलाल चाहते थे कि ज्वाला जैदेई को कहकर किशनू का ठिकाना उसकी जमींदारी में करा दे। ज्वालाप्रसाद ने बड़ी हिचकिचाहट के साथ अपने पिता के ज़ोर देने पर, किशनू को चिट्ठी देकर शिवपुरा भेज दिया। जैदेई ने उसे घर के लौंडे की तरह रखा। पर किशनू तो परले दर्जे का बदमाश था। उसने जैदेई की पुत्रवधू (लक्ष्मीचन्द की बहू) राधा पर डोरे डालने आरंभ कर दिए और जब एक दिन वह बुरी नीयत से राधा के कमरे में घुस गया और राधा ने शोर मचा दिया तो जैदेई के आदमियों ने उसकी पकड़कर खूब मरम्मत की। उसने भाग कर ही अपनी जान बचाई। पिट-कुटकर वह सोरांव पहुँचा। उसके माँ-बाप अब ज्वाला के पास ही रहने लगे थे। सारा परिवार ज्वाला की नौकरी पर मौज उड़ाने लगा था। छिनकी को यह अखर रहा था, पर बेचारी बोल नहीं सकती थी, उसका इस घर में क्या अधिकार था! किशनू ने आकर बहाना बनाया कि लक्ष्मीचन्द ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया है और मार-पीटकर निकाल दिया है।

मुंशी राधेलाल और शिवलाल चाहते थे कि किसी तरह जमींदारी हाथ लग जाए। मुंशी शिवलाल को यह बहुत अखर रहा था कि उनका बेटा अपने

प्रभाव का लाभ उठाकर जमींदारी बनाने का कोई प्रयत्न नहीं करता। राधेलाल और उनके लड़के श्यामलाल ने एक मुसलमान औरत की जमीन हड़पने की साजिश बनाई और मुंशी शिवलाल को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह ज्वाला से सदरआला गिरजाशंकर के पास सिफारिश कराकर मुकद्दमा अपने हक़ में करा लें। ज्वालाप्रसाद ने झूठ और धोखाधड़ी का विरोध किया॥ मुंशी शिवलाल भांग के नशे में अपने बेटे पर क्रुद्ध हो बैठे और बोले, "बड़ा धरमराज का बाप बन रहा है! अच्छी-खासी जमींदारी छोड़े दे रहा है। मैं क्या जानता था कि मेरा लड़का उल्लू का पट्ठा निकलेगा।" इसी क्रोध के पागलपन में मुंशी शिवलाल ने भरी सुराही अपने सिर में दे मारी। सिर फट गया। वह बेहोश हो गए। इलाज कराया गया, पर दो-चार रोज़ बाद ही चल बसे।

मुंशी शिवलाल की मृत्यु के बाद राधेलाल और श्यामलाल ने राजा सरोहन के साथ मिलकर बिज्जू गाँव को जो राजा सरोहन ने इलाहाबाद के सेठ घनश्यामदास के पास रहन रखा हुआ था, हड़पना चाहा और ज्वाला के प्रभाव की ओट में मुकद्दमा जीतना चाहा। पर जब ज्वालाप्रसाद को पता चला तो उसे बड़ा दुःख हुआ। राधेलाल और उसके लड़कों की करतूतों से ज्वाला की बहुत बदनामी हो रही थी। एक लड़का बिशन जो अपने भाइयों जैसा न था, अखाड़िया बन गया। एक लड़का गुण्डों की टोली में रहने लगा और आम के बागों से आम चुराकर बेचने लगा। उसकी शिकायत भी ज्वाला के पास पहुँची। सबसे बड़ा लड़का रामलाल भी अपनी बहू को लेकर मुंशी शिवलाल की बरसी पर गाँव से वहीं आ गया। उसने चुपचाप एक सर्राफ से गहने बनवाने शुरू कर दिये। सर्राफ से ज्वालाप्रसाद को पता चला कि उसके नाम दो-तीन सौ रुपये का हिसाब है। इधर घर में राधेलाल की बहू मालकिन बनी हुई थी। सब मनभाता खाते और लुटाते थे। छिनकी और भीखू को यह सब बहुत अखर रहा था। आखिर जब यह सब असह्य हो गया, तो ज्वाला-प्रसाद ने कड़े स्वर में अपने चाचा राधेलाल को परिवार-सहित गाँव फतहपुर चले जाने को कहा। राधेलाल और उसका परिवार ज्वाला को कोसते हुए वहाँ से चले गए। सम्मिलित परिवार-प्रथा कितने दिन जिंदा रह सकती थी? उनके चले जाने के बाद ही ज्वाला को चैन की साँस मिली।

उन दिनों जैदेई भी सोराँव आई हुई थी। ज्वाला का लड़का गंगाप्रसाद

अब प्राइमरी पढ़ चुका था। उसकी आगे की पढ़ाई का अच्छा प्रबन्ध कहाँ किया जाय ?—यह समस्या थी। जैदेई ने अपने देवर जी (ज्वाला) से गंगा को माँग लिया और कहा कि "इसे मैं अपने पास रखूँगी और इलाहाबाद में अच्छी शिक्षा दिलाऊँगी। इसे तुमसे भी बड़ा आदमी बनना है।" ज्वाला और यमुना ने कोई आपत्ति नहीं की।

(३)

अपनी चाची जैदेई के पास गंगाप्रसाद सुखपूर्वक रहा और बी० ए० पास करके डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हो गया। जैदेई ने उसकी शादी पर दिल खोलकर खर्च किया। गंगाप्रसाद बड़े ठाठ से रहता था। अंग्रेज़ अफसरों से उसका अच्छा मेलजोल था। वह क्रिकेट और टेनिस का अच्छा खिलाड़ी था। अंग्रेज़ों के क्लबों में उसका आना-जाना था। जार्ज पंचम के दिल्ली दरबार की योजना हुई। कई महीने पहले ही प्रबन्ध आरंभ हो गया। दिल्ली दरबार के प्रबन्ध में नियुक्त अफसरों में गंगाप्रसाद का नाम भी शामिल था। यह बड़े गर्व की बात थी। बरेली के डिप्टी सुपरिंटेंडेन्ट पुलिस मीर जाफर अली को किसी ने नहीं पूछा। गंगाप्रसाद ने सुपरिंटेंडेन्ट मि० क्लीमेंटस् से मिलकर मीर साहब की सिफारिश की, तब कहीं मीर साहब का नाम दिल्ली दरबार के प्रबन्ध-कर्ता अफसरों में शामिल हुआ।

गंगाप्रसाद ने अपनी पत्नी रुक्मिनी और दो वर्ष के बच्चे नवल को इलाहाबाद अपनी चाची जैदेई के पास छोड़ा और भीखू काका को साथ लेकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। जैदेई ने उसके दिल्ली में ठाठ-बाठ से रहने के लिए एक हज़ार रुपये दे दिए और उंगली में बहुमूल्य हीरे की अँगूठी पहना दी, जो किसी नवाब की थी और जैदेई के पास रहन रह गई थी। सैकेंड क्लास के जिस डिब्बे में गंगाप्रसाद दिल्ली के लिए सफर कर रहा था, उसमें उसकी मुलाकात लाल रिपुदमन सिंह से हुई जो इसी सिलसिले में दिल्ली जा रहे थे। लाल रिपुदमन सिंह बनारस के डिप्टी कलक्टर थे और बुन्देलखण्ड की रियासत विजयपुर के राजा के छोटे भाई थे। इसी सफर में गंगाप्रसाद का परिचय राधाकिशन नामक एक जौहरी से हुआ जो सपत्नीक दिल्ली जा रहा था। राधाकिशन की पत्नी सतवंती (संतो) अद्भुत सुन्दरी थी। गंगाप्रसाद और राधाकिशन की पत्नी का प्रथम परिचय और प्रथम दर्शन में ही परस्पर

आकर्षण बढ़ गया। राधाकिशन और उसकी पत्नी ने गंगाप्रसाद से आग्रह किया कि उनके पास उनकी दरीबे की हवेली में ठहरें। गंगाप्रसाद भीखू के साथ वहाँ चला गया। राधाकिशन की पत्नी और गंगाप्रसाद का परस्पर आकर्षण और मोह विकार में परिणत होने ही वाला था कि संतो संभल गई। उसे अपने आलिंगन-पाश में कसने वाले उत्तेजित गंगा के गाल पर उसने तमाचा जड़ दिया। इसी बीच अफसरों के ठहरने के लिए तम्बू तैयार हो गए थे। गंगाप्रसाद अपना सामान और भीखू को लेकर अपने तम्बू में आ गया। एक दिन शाम के समय गंगाप्रसाद संतो को वह तम्बू-नगर दिखाने के लिए अपने तम्बू में ले आया और संतो के प्रतिरोध करते रहने पर भी उसने अपनी पशु-वृत्ति को तृप्त करने के लिए संतो को अपने बाहु-पाश में जकड़ लिया।

विजयपुर के राजा धरनीधर सिंह और रानी साहिबा भी दरबार के लिए आने वाले थे। लाल रिपुदमन सिंह ने अपनी भाभी रानी साहिबा को भेंट देने के लिए एक बहुमूल्य खूबसूरत पन्ने का हार राधाकिशन की मार्फत बनवाया। रानी साहिबा के आने पर जब लाल रिपुदमन ने वह हार भेंट किया, तो रानी प्रसन्न हुई और वैसे ही पन्ने के कंगन और कर्णफूल की फर्माइश कर बैठीं। लाल रिपुदमन ने राधाकिशन को कलकत्ता भेजकर वैसे ही पन्ने के कंगन और कर्णफूल बनवाये। एक शाम गंगाप्रसाद ने राजा धरनीधर और रानी साहिबा की दावत की। लाल रिपुदमन के अतिरिक्त उसने राधाकिशन और उसकी पत्नी सतवंती को भी आमंत्रित किया। दावत में शराब के दौर चले। सतवंती को राधाकिशन के सामने थोड़ी-सी शेरी ही दी गई। पर सतवंती ने चुपचाप इशारे से गंगाप्रसाद से उसकी झूठी ह्विस्की अपने गिलास में डलवा ली। लाल रिपुदमन ने इस बात को ताड़ लिया। दावत के बाद लाल रिपुदमन गंगाप्रसाद को अपने खेमे में ले गया और उसे हठात् अपनी पूर्व कहानी सुनाने लगा। रिपुदमन ने बताया कि वह विधुर है। उसकी पत्नी रूपवती और नेक औरत थी, जिसे आरंभ में रिपुदमन की उच्छृंखलता पसंद नहीं थी। पर जब रिपुदमन न माना तो उसकी पत्नी उससे खिची-खिची रहने लगी। रानी साहिबा की चचेरी बहन के लड़के शिवप्रतापसिंह ने उसे अपने जाल में फँसा लिया। शिवप्रताप राजा धरनीधरसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त था। रिपुदमन की पत्नी ज्यादातर विजयपुर रहने लगी। जब रिपुदमन झाँसी में डिप्टी कलेक्टर लगा और उसने अपनी पत्नी को झाँसी बुला लिया, तो डाक

देने के बहाने से शिवप्रताप झाँसी आने लग गया। रिपुदमन को संदेह हुआ और उसने शिवप्रताप को आने से मना कर दिया। अब शिवप्रताप दिन के समय जबकि रिपुदमन कचहरी में होता था, चोरी-छिपे आने लगा। एक दिन रिपुदमन ने दोपहर के समय शिवप्रताव को विजयपुर से घोड़े पर झाँसी जाते हुए देख लिया। शिवप्रताप के पीछे-पीछे रिपुदमन भी दोपहर बाद घर पहुँच गया। शिवप्रताप ज़हर की शीशी दे गया था, ताकि रिपुदमन की पत्नी शराब में मिलाकर रिपुदमन को पिला दे। जब रिपुदमन की पत्नी ने उसे शराब पीने को दी, तो रिपुदमन को संदेह हो गया। उसने अपनी पत्नी को ही वह गिलास पीने पर ज़ोर दिया। उसकी पत्नी ने चालाकी से गिलास गिरा दिया। रिपुदमन ने पिस्तौल निकाल ली और पूछा, "बता, शिवप्रताप कहाँ है ? उसे मैंने यहाँ आते देखा है। शराब में ज़हर मिलाकर मेरी हत्या करना चाहते हो ?" उसकी पत्नी गिड़गिड़ाती रही, पर रिपुदमन ने उसकी हत्या कर ही दी। रिपुदमन को विश्वास था कि ज़हर की शीशी देकर शिवप्रताप इधर-उधर कहीं छिप गया है और रात के समय अवश्य आयेगा। वह चुपचाप अपने बंगले के फाटक पर छिप गया। जब शिवप्रताप दबे पाँव बंगले में घुसा तो रिपुदमन ने छुरे के एक हाथ से ही उसका भी काम तमाम कर दिया। दोनों की लाशें बग्घी में रखकर रिपुदमन विजयपुर ले गया और रानी साहिबा से सारी बात जा सुनाई। अपनी यह कहानी सुनाकर रिपुदमन उत्तेजित हो उठा और बोला, "जानते हो गंगाबाबू, मैंने जबरदस्ती तुम्हें यह कहानी सुनने को क्यों रोके रखा ? मैं समाज से ऐसे सब शिवप्रतापों को खत्म करना चाहता हूँ।" यह कहकर उसने अपनी पिस्तौल गंगा बाबू के पास कर ली। गंगा बाबू बुरी तरह सहम गया। रिपुदमन ने कहा, "आज जब मैंने उस स्त्री सतवंती को तुम्हारे गिलास की झूठी ह्विस्की अपने पति के सामने ही पीते देखा तो मुझे लगा कि तुम्हारे कहने से वह अपने पति की हत्या कर सकती है। तो एकाएक मेरे सामने तुम्हारी जगह शिवप्रताप की शक्ल आ गई।" गंगाप्रसाद सहम गया। रिपुदमन ने फिर कहा कि "राधाकिशन सब कुछ देखकर भी देखता रहेगा, क्योंकि वह बनियों की दुनिया का आदमी है जहाँ हर चीज़ बिकती है। इसलिए मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। तुम राधाकिशन के शिवप्रताप भले ही न हो, तुम समाज के शिवप्रताप अवश्य हो ! निकलो यहाँ से—निकलो !" इस प्रकार अपमानित हुआ, डरा-सहमा गंगा तेज़ी से निकल गया।

लक्ष्मीचन्द ने दिल्ली दरबार के लिए पचास हज़ार रुपये सरकार को दिये थे, उसे सर की उपाधि मिली थी। कानपुर में उसका जुलूस इस खुशी में निकाला गया। जैदेई भी लक्ष्मीचन्द के साथ कानपुर पहुँच गई थी। लक्ष्मीचन्द ने लोगों को दावत दी, मेहमानों की खूब चहल-पहल रही। इस जमाव में जैदेई ने अपनी उपेक्षा-सी अनुभव की। उसका मन उदास हो गया। वह कानपुर में रहने वाले अपने दो भतीजों के घर गई। लक्ष्मीचन्द अपने मामा के घर पला और बढ़ा था। यही नहीं, लक्ष्मीचन्द ने अपने मामा सुक्खूलाल की मृत्यु के बाद एक साल के भीतर ही सुक्खूलाल बुद्धूलाल फर्म को दिवालिया बना डाला और लाखों रुपये उड़ाकर अपनी कपड़े की मिल लगा ली थी। लक्ष्मीचन्द जैदेई के भतीजों के धन को हड़प कर लखपति हो गया था और ऐश्वर्य का जीवन बिता रहा था, पर बुद्धूलाल और मन्नूलाल का घर दरिद्रता की करुण कहानी बना हुआ था। जैदेई का मन और भी उदास हो उठा। वह शीघ्र ही इलाहाबाद लौट आई।

इसी बीच दिल्ली-दरबार के बाद गंगाप्रसाद दिल्ली से राधाकिशन और संतो को साथ लेकर इलाहाबाद आ गया था। वह उन दोनों के साथ कलकत्ता जाना चाहता था। जैदेई को संतो के सम्बंध में कुछ संदेह हुआ। उसने गंगाप्रसाद को कड़ाई से आगाह किया और कलकत्ता जाने से रोक दिया। गंगाप्रसाद अपनी पत्नी और बच्चे को लेकर बरेली के लिए रवाना हो गया।

उन दिनों बरेली में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा था। आर्यसमाज के प्रचारक और महात्मा शास्त्रार्थ कर आर्य-धर्म का डंका बजाने का प्रयत्न कर रहे थे, दूसरे धर्मानुयायी विशेषतः मुसलमान भी उत्तेजित हो रहे थे। बरेली के डिप्टी कलेक्टर पं० सोमेश्वरदत्त आर्यसमाजी विचारों के थे। उन्होंने बरेली में आर्यसमाज के प्रथम समारोह का आयोजन कराया। इस अवसर पर प्रसिद्ध आर्यसमाजी उपदेशक स्वामी जटिलानंद ने शास्त्रार्थ की चुनौती दे डाली। बरेली के डी० एस० पी० मीर जाफर अली की शह पर बरेली के छटे हुए मुसलमान गुण्डे अल्लामा वहशी ने वह चुनौती स्वीकार कर ली। शास्त्रार्थ के लिए दिन निश्चित हो गया। पं० सोमेश्वरदत्त तथा गंगाप्रसाद को साम्प्रदायिक झगड़े का भय हुआ।

उधर गंगाप्रसाद को थानेदार सुमेरसिंह से मालूम हुआ कि मीर जाफ़र अली रामगढ़ से नायक जाति की एक पहाड़िन लड़की को खरीद लाए हैं और

उसे जबरदस्ती मुसलमान बनाकर निकाह पढ़वाना चाहते हैं। लड़की अपने धर्म को छोड़ना नहीं चाहती। मीर साहब ने उसे काबू करने का काम अल्लामा वहशी को सौंपा हुआ है। शास्त्रार्थ के दिन जब अल्लामा वहशी और उसके शागिर्द शास्त्रार्थ के आयोजन में आ गये थे, तब गंगाप्रसाद ने सुमेरसिंह की सहायता से उस लड़की को अल्लामा और मीर के चंगुल से चुपचाप छुड़ाना चाहा। पर लड़की बाहर न आई। अपने पिता द्वारा मीर को बेच दिये जाने के कारण वह मीर को अपना मालिक मानती थी, इसलिए वहाँ से भागना अधर्म समझती थी। साथ ही वह अपना हिन्दू-धर्म छोड़ने को तैयार न थी। गंगाप्रसाद और सुमेरसिंह निराश होकर वापस शास्त्रार्थ में आ गए। शास्त्रार्थ में ऊट-पटाँग और गाली-गलौच-भरे प्रश्नों और उत्तरों के कारण दंगा-फिसाद होने की नौबत आने ही वाली थी कि कलेक्टर मि० ग्रेटर ने शास्त्रार्थ समाप्त होने का एलान कर दिया।

जनवरी १९१२ के 'पायोनियर' में नव वर्ष की उपाधियाँ पाने वालों में लक्ष्मीचन्द के अतिरिक्त लाला राधाकिशन के बड़े भाई श्रीकिशन को राय-बहादुर की उपाधि मिली थी। वह बनना चाहते थे राजा साहब! अगले वर्ष राधाकिशन राजा साहब बन गए। उन्हें राजा साहब बनाने में संतो का हाथ था। संतो अब रानी साहिबा सतवंत कुंवर हो गई थी! इस खुशी में भारी उत्सव मनाया जा रहा था। गंगाप्रसाद को कलकत्ता से निमंत्रण मिला। उसके मन में संतो से मिलने की अभिलाषा जाग उठी। संतो अब अंग्रेजी पढ़ना-लिखना जान गई थी। बाल डांस में सम्मिलित होती थी। रानी साहिबा विजयपुर की मार्फत उसका परिचय राजा साहब घाटबागान और रानी साहिबा हेमवती से हो गया था। उन्होंने वायसराय के ए० डी० सी० मि० वाट्स से भी उसका परिचय करा दिया था। मि० वाट्स से संतो हिल-मिल गई थी। वायसराय की पार्टियों तक में उसका आना-जाना हो गया था। मि० वाट्स ने ही लाला राधाकिशन को राजा साहब की उपाधि दिलाई थी। गंगाप्रसाद कलकत्ता में राधाकिशन और संतो के यहाँ पहुँचा। संतो के रूखे व्यवहार से उसकी छाती जल गई। उसने देखा कि मि० वाट्स संतो को लिए फिरता है और उसकी आँखों के सामने ही संतो को राजा घाटबागान डिनर पार्टी के बाद अपने बेडरूम में ले जाता है। संतो पद, पैसा, ऐश्वर्य-विलास पाने के लिए अपने को बेच रही है! गंगाप्रसाद के मन में बड़ी ग्लानि हुई। उसने सोचा

कि शायद उसके इस चरित्र को बढ़ावा देने में उसी का हाथ है। उसने ही तो एक गृहस्थ औरत को इस ओर उकसाया था! संतो के कारण मि० वाट्स की बदनामी फैल गई। अंग्रेज़ सरकार ने उसे वापस इंग्लैंड बुला लिया। जाते हुए मि० वाट्स ने संतो के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया और उसे कोड़े लगाए। गंगाप्रसाद संतो के ये लच्छन देखकर दस-पन्द्रह दिन बाद कलकत्ता से इलाहाबाद के लिए लौट पड़ा।

इलाहाबाद में जैदेई अपने अंतिम दिन गिन रही थी। वह मानो गंगा की ही इन्तज़ार कर रही थी। उसकी मृत्यु-शैय्या के पास ज्वाला, लक्ष्मीचन्द आदि सब जमा थे। गंगा को देखकर जैदेई प्रसन्न हुई। उसने गंगा और लक्ष्मीचन्द को अपने पास बुला लिया। उसने लक्ष्मीचन्द से कहा कि "बेटा, मेरी अंतिम इच्छा यह है कि लगभग बीस हज़ार की नकद जमा-जथा और यह मकान—जो निजी सम्पत्ति के रूप में मैंने अपने पास रखी है, उसे गंगाप्रसाद को सौंप दूँ, तुम्हारे पास तो किसी बात की कमी नहीं, लाखों में खेलते हो।" लक्ष्मीचन्द यह सुनते ही बौखला उठा। बोला, "इस रकम पर किसी का कोई अधिकार नहीं। यह रकम मेरी है। और तुम गंगा को कुछ भी नहीं दे सकतीं, इतना समझ लो!"

जैदेई ने अधिकारपूर्वक गंगा को तिजौरी की चाभी देना चाही, पर लक्ष्मीचन्द ने छीन ली और अपनी माँ को गाली सुनाई, बुरा-भला कहा। यही नहीं, लक्ष्मीचन्द ने ज्वाला और गंगा को भी बुरा-भला कहते हुए वहाँ से चले जाने की बात कही। रात को जैदेई ने प्राण त्याग दिये।

(४)

ज्ञानप्रकाश ज्वालाप्रसाद के मामा मुंशी रामसहाय का छोटा लड़का था। वह विलायत में कई वर्ष रहा और वहाँ से वकालत पास करके इलाहाबाद लौट आया। उसकी राजनैतिक चेतना खूब बढ़ी-चढ़ी थी। भारत में आते ही वह कांग्रेस में सम्मिलित हो गया। उन दिनों खिलाफ़त आन्दोलन चल रहा था। देश के मुसलमानों को अंग्रेज़ों के विरोध में खड़ा करने तथा हिन्दुओं द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन में मुसलमानों का साथ दिये जाने से हिन्दू-मुस्लिम एकता की संभावना के कारण गांधी जी ने खिलाफ़त को कांग्रेस या देश के आन्दोलन के रूप में चला रखा था। जौनपुर में गंगाप्रसाद डिप्टी कलेक्टर नियुक्त था। वहाँ के फरहतुल्ला आदि तीन मुसलमान कांग्रेसियों ने खिलाफ़त

के सिलसिले में विद्रोही भाषण दिए। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। कलेक्टर के फरमान से गंगाप्रसाद ने उनकी जमानतें लेने से इन्कार कर दिया। कांग्रेस के इशारे पर इलाहाबाद से जौनपुर आकर ज्ञानप्रकाश ने डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत से जमानतें मंजूर करा लीं।

ज्वालाप्रसाद ने अपने भतीजे रामलाल के बेटे बंसीधर को गंगाप्रसाद के पास भेजा कि उसे कोई नौकरी दिला दे। गंगाप्रसाद ने कलेक्टर से कहकर बंसीधर को नौकरी पर लगवा दिया। इस स्थान पर पहले समीउल्ला नाम का एक लड़का काम करता था, जिसे अयोग्य और बदमिजाज होने के कारण नौकरी से हटा दिया गया था। समीउल्ला डिप्टी अब्दुलहक का रिश्तेदार था और उन्हीं की सिफ़ारिश पर लगा था। डिप्टी अब्दुलहक ने गंगाप्रसाद द्वारा बंसीधर की नियुक्ति को साम्प्रदायिक रंग देकर मुसलमानों को भड़का दिया। मुसलमान को हटाकर हिन्दू को नियुक्त करा दिया! गंगाप्रसाद काफ़िर है!

डिप्टी अब्दुलहक और वकील फरहतुल्ला ने बंसीधर को रिश्वत और जालसाज़ी के अपराध में पकड़वा दिया। गंगाप्रसाद को पता चला तो वह तिलमिला उठा। उसने बंसीधर की तुरन्त जमानत करा दी और कलेक्टर साहब से मिलकर मामले को रफ़ादफ़ा करा दिया। गंगाप्रसाद फरहतुल्ला और डिप्टी अब्दुलहक से बदला लेने की सोच रहा था, पर ज्ञानप्रकाश ने उसे मना कर दिया और कहा कि इससे हिन्दू-मुस्लिम तनाव बढ़ जाएगा।

इधर गंगाप्रसाद की विलासिता बढ़ गई। वह शराब खूब पीने लगा और मलका नाम की एक वेश्या को उसने रख लिया। उसकी पत्नी रुक्मिणी और बच्चे ज्यादातर इलाहाबाद में ज्वालाप्रसाद के पास रहते थे। गंगाप्रसाद की इस चारित्रिक दुर्बलता के कारण उसकी बदनामी प्रांत-भर में फैलने लगी। भीखू को उसके ये लच्छन अखरते थे। फिजूलखर्ची के कारण गंगा के सिर दो-तीन हजार का कर्ज़ा हो गया।

छिनकी इलाहाबाद में परलोक सिधार गई। जब भीखू अपनी मां की अन्त्येष्ठी पर इलाहाबाद आया तो उसने ज्वालाप्रसाद को गंगा की बाबत बताया और ज़ोर दिया कि सारा परिवार जौनपुर में गंगा के पास रहे ताकि गंगाप्रसाद की आदतें सुधर जायँ। ज्वाला यह सुनकर चिंतित हो उठा। सारा परिवार जौनपुर चला गया। गंगाप्रसाद की आदतों में कुछ सुधार होने लगा।

परिवार के आ जाने से गंगा ने मलका को बनारस भेज दिया। वह स्वयं

आठवें-दसवें दिन बनारस जाने लगा। मलका गंगाप्रसाद से सच्चा प्रेम करती थी और वह बाज़ारू जीवन छोड़ चुकी थी, इज्जत-आबरू का जीवन बिताना चाहती थी। गंगाप्रसाद से उसने कई बार शादी कर लेने को कहा, पर गंगाप्रसाद अपनी इज्जत और समाज के भय से मलका को नहीं अपना सका। अलीरज़ा नामक एक फरेबी व्यक्ति गंगा का घनिष्ठ मित्र बना हुआ था। उसने गंगाप्रसाद को एक बड़ी बेतुकी सलाह दी। उसने कहा कि यदि तुम खुले तौर पर मलका से शादी नहीं कर सकते तो उसे बाइज्जत बनाने के लिए मेरे साथ उसका निकाह पढ़वा दो। मैं तुम्हारी खातिर ऐसा करने को तैयार हूँ। वह दिखावे के लिए बेगम अलीरज़ा रहेगी, पर मेरा उसमे कोई ताल्लुक न होगा। वह रहेगी तुम्हारी ही।" पहले तो गंगाप्रसाद को उसकी इस बेतुकी बात पर क्रोध आया, पर थोड़ी देर बाद वह सहमत हो गया। वह अलीरज़ा के साथ बनारस गया और मलका को दिखावे के लिए अलीरज़ा से निकाह पढ़ लेने को राज़ी करना चाहा। मलका जानती थी कि अलीरज़ा बदमाश और फ़ितना है। उसे अलीरज़ा का वहाँ लाया जाना भी बुरा लगा, क्योंकि अब वह शरीफ़ों के मुहल्ले में इज्जत की जिन्दगी बिताने लगी थी। उसने इस बात को बेहूदा बताया। पर गंगा के ज़ोर देने पर उसने 'हाँ' कर दी। अलीरज़ा और गंगाप्रसाद जब दोबारा उसे निकाह के लिए लेने आए तो वह बनारस से गायब हो चुकी थी।

जौनपुर में खिलाफ़त आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ लिया था। महात्मा गांधी ने असहयोग तथा स्वदेशी आन्दोलन भी छेड़ दिये थे। फरहतुल्ला ने कांग्रेस के प्रभाव से अपनी वकालत छोड़ दी और आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा। जौनपुर में गंगा ने जिस सख्ती और नीति-निपुणता से आन्दोलन को दबाया, उससे खुश होकर अंग्रेज़ सरकार ने अस्थायी तौर पर उसे ज्वाइंट मजिस्ट्रेट बनाकर कानपुर भेज दिया। कानपुर में कांग्रेस का आन्दोलन बहुत गति पकड़ रहा था। उसे दबाने के लिए सरकार ने गंगा-जैसे योग्य हाकिम की नियुक्ति ही उचित समझी।

एक दिन स्वदेशी आन्दोलन के सिलसिले में विलायती कपड़े की दुकानों पर धरना देने के अभियोग में पकड़े गए पाँच सत्याग्रही उसकी अदालत में पेश किये गये। उनमें दो महिलाएँ थीं। गंगाप्रसाद मलका को माया शर्मा नाम से खादी की साड़ी में देखकर दंग रह गया। उसने तीनों पुरुषों को कड़ी सज़ा

सुनाई और महिलाओं को चेतावनी देकर छोड़ दिया। कचहरी के बाद मलका ने गंगाप्रसाद को बताया कि किस प्रकार गंगाप्रसाद से निराश होकर वह और जगह चली गई थी। सत्यव्रत शर्मा नामक एक हिन्दू नौजवान से उसका परिचय हुआ। सत्यव्रत कांग्रेसी और उदार विचारों का व्यक्ति था। उसने मलका को अपना लिया और आर्य समाज में ले जाकर उससे शादी कर ली। उसका पति कानपुर आ गया। यहाँ उसने किताबों की एक दुकान कर ली। आजकल वह भी आन्दोलन के सिलसिले में जेल भोग रहा है। मलका भी आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रही है। उसका जीवन-क्रम सर्वथा बदल गया है। मलका का यह परिवर्तन गंगाप्रसाद को अच्छा ही लगा। मलका ने गंगाप्रसाद से सहारा देने की माँग की। गंगाप्रसाद को भी मलका के हिन्दू बन जाने पर भावी संकट की आशंका हुई। उसने सहायता का पूरा वचन दिया।

कांग्रेस के आन्दोलन में बड़े-बड़े नेता सब जेल में थे। कई जगहों से हिंसा की भयानक खबरें आने लगी थीं। चौरी-चौरा के काण्ड से घबराकर महात्मा गांधी ने सामूहिक सत्याग्रह को वापस ले लिया। देश में निराशा और कुण्ठा की लहर फैल गई थी। ब्रिटिश-सरकार की भेद-नीति के कारण हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबरें भी फैलने लगी थीं।

एक अंग्रेज़ मिल-मालिक मि० हैरिसन के यहाँ डिनर पार्टी में गंगाप्रसाद भी सम्मिलित हुआ। बातचीत के दौरान में मि० हैरिसन ने महात्मा गांधी की शान में बुरा-भला कह दिया। गंगाप्रसाद सहन नहीं कर सका और उसने भी बदले में मि० हैरिसन को बुरा-भला कह दिया। हैरिसन अंग्रेज़ था। भला अंग्रेज़ को कोई हिन्दुस्तानी गाली दे सकता है! हैरिसन ने शिकायत कमिश्नर साहब को भेजी। गंगाप्रसाद ने कमिश्नर से मिलकर अपनी सफाई दी और बात रफ़ादफ़ा कराई। पर अंग्रेज़ कमिश्नर ने गंगाप्रसाद को यही कहा कि "अंग्रेज़ अंग्रेज़ हैं हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी। अंग्रेज़ शासक हैं और हिन्दुस्तानी शासित! यह तुम्हें अच्छी तरह समझ रखना चाहिये। आगे ऐसे अवसर पर चुप रहना ही अच्छा होगा।" गंगाप्रसाद 'बहुत अच्छा' कहकर चला आया, पर उसका मन ग्लानि से भर गया था। अब उसे अपनी गुलाम की-सी स्थिति का कटु अनुभव हुआ।

सत्यव्रत शर्मा एक दिन गंगाप्रसाद के पास आया और रोते हुए यह सूचना दी कि माया लापता है, संभवतः उसे गुण्डों ने उठा लिया है। वह कांग्रेस

आन्दोलन के सिलसिले में इलाहाबाद गई थी और वहीं कांग्रेस-दफ़्तर से घर जाते हुए उसे उठा लिया गया था। गंगाप्रसाद समझ गया कि यह शरारत अलीरज़ा और अब्दुलहक की है। वह ज्ञानप्रकाश और सत्यव्रत को साथ लेकर जौनपुर पहुँचा। उसने रात के समय चुपचाप बंसीधर की मार्फ़त अलीरज़ा का पता किया। पता चला कि अलीरज़ा रात के समय पास के एक दूसरे मकान में रहता है। गंगाप्रसाद समझ गया कि वहीं उसने मलका (माया) को कैद कर रखा है। वे वहीं पहुँचे और मलका को छुड़ा लाए। अलीरज़ा ने दुहाई मचाई कि काफ़िर मेरी बेगम को ले जा रहे हैं और उसकी आवाज़ पर कुछ मुसलमान उत्तेजित होकर गंगाप्रसाद को मारने और रोकने को आए भी, पर ज्ञानप्रकाश ने इसी बीच फरहतुल्ला को बुलाकर स्थिति पर काबू पा लिया था। गंगाप्रसाद मलका को छुड़ाकर विजयी लौटा।

कानपुर लौटने पर गंगाप्रसाद को सूचना मिली कि अकारण ही उसका तबादला एटा के डिप्टी कलेक्टर के रूप में कर दिया गया है। यह हैरिसन की दूसरी चोट थी। गंगाप्रसाद की योग्यता और सेवाओं का उसे यह पुरस्कार मिला! चीफ़-सेक्रेटरी ने भी अपनी विवशता प्रकट की और गंगाप्रसाद को लम्बी छुट्टी लेने को कहा। गंगाप्रसाद छह महीने की छुट्टी लेकर इलाहाबाद चला गया। उसका मन इस गुलामी की नौकरी के प्रति विद्रोह करना चाहता था। अब तक उसके मन में कांग्रेस के प्रति भी सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो गया था। उसने आवेश में आकर अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा लिख डाला। इतने में ही यह सूचना मिली कि मुल्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है। फरहतुल्ला से वह मज़हबी कट्टरता की बातें सुनकर पहले ही आश्चर्यचकित हो चुका था। उसके मन ने कहा कि "इस देश को अभी सैंकड़ों वर्ष आज़ादी नहीं मिल सकती। जब गुलाम ही रहना है तो हंस-खेलकर क्यों न रहा जाय।" और उसने अपना इस्तीफ़ा फाड़ डाला।

(५)

गंगाप्रसाद के बेटे नवलकिशोर ने बी० ए० की परीक्षा समाप्त की। वह शाम को रायबहादुर कामतानाथ के यहाँ गया। गंगाप्रसाद आजकल मिर्ज़ापुर के कलेक्टर थे। कामतानाथ से उनकी मित्रता थी। कामतानाथ की बेटी उषा ने इंटर की परीक्षा दी थी। नवल और उषा का बालपन का प्रेम था।

कामतानाथ इन गर्मियों में स्विट्ज़रलैंड की सैर करना चाहते थे। उषा का मन भी स्विट्ज़रलैंड देखने को मचल रहा था। पर उषा की माँ उसे विलायत भेजने पर राज़ी न थी। कामतानाथ ने नवल को भी स्विट्ज़रलैंड चलने को कहा। नवल इंग्लैंड में आई० सी० एस० के लिए जाने वाला था। कामतानाथ ने कहा कि अक्तूबर में हम तो हिन्दुस्तान आ जायेंगे, तुम स्विट्ज़रलैंड से लंदन चले जाना। नवल ने कहा कि मुझे बाबूजी की आज्ञा लेनी होगी।

रात को नवल अपने होस्टल में पहुँचा, तो उसे पता चला कि उसके बाबा ज्वालाप्रसाद आए हुए हैं। वह तुरन्त बंगले पर पहुँचा। बाबा से उसे पता चला कि उसके पिता गंगाप्रसाद सख्त बीमार हैं। इलाहाबाद से डॉ० शेरउड को लेने आए हैं। डॉक्टर को लेकर नवल और ज्वालाप्रसाद मिर्ज़ापुर पहुँचे। डॉक्टर ने देखकर कहा कि गंगा बाबू को इलाहाबाद ले चलो, वहीं इलाज हो सकेगा। सारा परिवार चिंतित था।

इलाहाबाद आने पर भी जब एक महीने तक गंगाप्रसाद की हालत में कोई सुधार नज़र न आया, उल्टा हालत और गिरती प्रतीत हुई तो डॉ० शेरउड ने उसे भुवाली सैनीटोरियम जाने को कहा। गंगाप्रसाद गैलपिंग तपेदिक से ग्रस्त था! डॉ० शेरउड ने उसके लिए वहाँ एक कॉटेज का प्रबन्ध करा दिया था। नवल अपने पिता के साथ जाने को तैयार हो गया। रायबहादुर कामतानाथ ने नवल को भुवाली जाने से रोकना चाहा और, इस छूत की बीमारी में उसे संकट में पड़ने की बजाय अपने साथ स्विट्ज़रलैंड ले जाना चाहा, उषा भी यही चाहती थी, पर नवल ने दृढ़तापूर्वक जवाब दे दिया। भला वह अपने पिता को छोड़कर विलायत कैसे जा सकता था! भुवाली जाने का सब प्रबन्ध हो गया। पर भुवाली जाने से पहले दिन ही गंगाप्रसाद को खून की उलटियाँ आईं और रात को उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। मरते हुए उन्होंने नवल की ओर आशाभरी दृष्टि से देखा। सारे घर में कोहराम मच गया।

नवलकिशोर आई० सी० एस० के लिए इंग्लैंड नहीं जा सका। उसने वहीं एल-एल० बी० ज्वाइन कर ली। उसके पिता अपनी बड़ी लड़की विद्या का रिश्ता फैज़ाबाद के डिस्ट्रिक्ट एण्ड सैशन जज बाबू बिन्देश्वरीप्रसाद के लड़के सिद्धेश्वरीप्रसाद से निश्चित कर गए थे। पंद्रह हज़ार का दहेज़ तै हुआ था। नवल अपने पिता की बात रखना चाहता था। फैज़ाबाद से उनके पास पत्र

आया कि यदि रिश्ता कायम रखना है तो नवरात में तिलक आ जाना चाहिये। ज्वालाप्रसाद, ज्ञानप्रकाश और भीखू ने किसी तरह आठ हज़ार रुपये तिलक के लिए और आठ हज़ार रुपये शादी-दहेज़ के लिए जुटाए। दो हज़ार रुपये ज्ञानप्रकाश ने दिये। ज्वाला अपनी पत्नी और बहू के गहने गिरवी रखकर दो हज़ार की कमी पूरी करना चाहते थे कि भीखू ने अपनी जमा-जथा लाकर उनके आगे रख दी और कन्यादान के रूप में लगभग दो हज़ार रुपये दे दिए। ज्वालाप्रसाद को लक्ष्मीचन्द्र ने कर्ज़ देने से तो जवाब दे दिया, पर एक हज़ार रुपया कन्यादान के बतौर दिया। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से प्रबन्ध करके विद्या की शादी की गई। विद्या नहीं चाहती थी कि उसकी शादी के लिए घर तबाह कर दिया जाए, उसे अपने ससुर की अर्थ-पिशाची प्रवृत्ति से भी घृणा थी, पर नवल अपने पिता का वचन पूरा करने को दृढ़-संकल्प था। विद्या ने अपने भाई से एक वायदा अवश्य लिया। वह बी० ए० फाइनल में पढ़ रही थी। उसने नवल से वचन लिया कि उसे बी० ए० अवश्य कराई जाएगी। बिन्देश्वरी बाबू ने बी० ए० पूरा करने की अनुमति देते हुए कह दिया कि हम एक हफ्ते में ही बहू को विदा कर देंगे। पर उन्होंने साफ कहा कि होस्टल आदि का खर्चा हम नहीं उठायेंगे।

प्रेमशंकर म्योर होस्टल में नवल का साथी था। वह एल-एल० बी० कर चुका था। उसने एम० ए० भी फर्स्ट डिवीज़न में पास किया था। सिद्धेश्वरी उसका एम० ए० का सहपाठी था। सिद्धेश्वरी ने प्रेमशंकर से मित्रता बढ़ा ली थी और उसे एप्रेंटिसशिप करने के बाद फैज़ाबाद में वकालत करने का परामर्श दिया। बिन्देश्वरी बाबू के असर-रसूख से वहां अच्छी वकालत चल जाने की आशा थी। यही नहीं, सिद्धेश्वरी अपनी बहन का रिश्ता भी प्रेमशंकर से करना चाहता था। सिद्धेश्वरी की बहन देखने में तो सुन्दर और सुशील थी, पर उसके पाँव में कुछ लंग था। प्रेमशंकर ने भावना में आकर 'हाँ' भी कर दी थी। एप्रेंटिसशिप करने के बाद प्रेमशंकर फैज़ाबाद चला गया। वहाँ बिन्देश्वरीप्रसाद ने एक अनुभवी मुँशी और एक क्लर्क को प्रेमशंकर के साथ लगा दिया। उस मुँशी और बिन्देश्वरीप्रसाद के तुफैल से केस खूब आने लगे। ज्यादातर केस ज़मानत कराने के होते थे और वह भी बिन्देश्वरी बाबू की ही अदालत के। शनैः-शनैः और केस भी आने लगे। प्रेमशंकर मेहनती भी था और वक्ता भी अच्छा था। अच्छी वकालत चल निकली। पर जो भी मेहनताना

आता था, वह एक रजिस्टर में दर्ज करके मुँशी अपने पास रखता था। प्रेमशंकर को हिसाब का कुछ पता न चलता था। चार महीने में प्रेमशंकर को लगभग चार हज़ार रुपये मेहनताने के मिले। एक दिन उसने किसी तरह रजिस्टर देख लिया। उसे पता चला कि इन चार महीनों में मुवक्किलों से लगभग बारह हजार रुपया आया है, जिसमें चार हज़ार उसे मिला, तीन हजार मुँशी को और चार-पाँच हजार बिन्देश्वरी बाबू को गया। अब प्रेमशंकर की समझ में आया कि किस प्रकार वह रिश्वत और बेईमानी में योग दे रहा है। स्पष्ट था कि बिन्देश्वरी बाबू ने मुँशी को रिश्वत लेने का दलाल बना रखा था और रिश्वत लेने का यह एक नया ढंग अपनाया गया था। प्रेमशंकर को ग्लानि हुई और वह एक दिन अपना बोरिया-बिस्तरा बाँधकर वहाँ से इलाहाबाद लौट आया। उसने नवलकिशोर को सारी बात बताई और इलाहाबाद में अपनी स्वतंत्र वकालत करने लगा।

विद्या ने बी० ए० की परीक्षा दे ली तो जून में सिद्धेश्वरी गौना लेने आया। उस समय वह प्रेमशंकर से मिला और उसके साथ गाली-गलौच से पेश आया। प्रेमशंकर ने भलमनसाहत के साथ स्थिति पर काबू पाया और कहा कि मैं तुम्हारे पिता की रिश्वतखोरी में भाग नहीं ले सकता।

गौने के कुछ महीनों बाद ही विद्या के पत्र इस आशय के आने लगे कि उसे ससुराल वाले सता रहे हैं: "इन अर्थ-पिशाचों के यहाँ मुझे क्यों धकेल दिया?" बात बढ़ती गई और एक दिन विद्या को सबने खूब मारा-पीटा। विद्या ने भी अत्याचार के विरोध में जबान खोल दी। सिद्धेश्वरी ने नवल के पास तार भेजा—'अपनी बहन को तुरन्त ले जाओ'। ज्वालाप्रसाद और घर के सब लोग चिन्तित हो उठे! नवल और ज्ञानप्रकाश जाकर विद्या को ले आए। विद्या की कमर मार से फटी हुई थी। बिन्देश्वरी बाबू उसके गहने रखवा लेना चाहते थे, पर ज्ञानप्रकाश ने कड़ाई बरत कर और पिस्तौल दिखाकर उनकी बदनीयती को नहीं चलने दिया। कुछ महीनों के बाद सिद्धेश्वरी ने दूसरी शादी कर ली। बिन्देश्वरी इलाहाबाद आये और विद्या से यह लिखा ले गए कि "मैं कभी भी सिद्धेश्वरी के घर नहीं जाऊँगी और खर्च-गुजारे की मांग नहीं करूँगी।"

ज्ञानप्रकाश के प्रयत्न से विद्या नारी-शिक्षा-सदन में अध्यापिका नियुक्त हो गई। अपने पांव पर स्वयं खड़ी होने की उसकी अभिलाषा पूरी हुई। उधर

नवल दिनों-दिन कांग्रेस में सक्रिय कार्य करने लगा। वह खादी के कपड़े पहनने लगा और कांग्रेस-आन्दोलन में भाग लेने लगा। इससे रायबहादुर कामतानाथ और उषा से वह दूर होता गया। उषा का बड़ा भाई गौरी उषा का मन नवल से फेरकर एक आई० सी० एस० राजेन्द्रकिशोर की ओर आकर्षित कर रहा था। राजेन्द्रकिशोर शादी-शुदा था, पर अपनी अपढ़ और गंवार पत्नी को छोड़े हुए था। उषा के मन में द्वन्द्व चल रहा था। आखिर वह नवल से दूर हो गई।

पाँच अप्रैल को गांधी जी द्वारा दांडी में नमक-कानून तोड़े जाने के साथ ही देश में नमक-कानून तोड़ते हुए सत्याग्रह करने का आन्दोलन छिड़ गया। नवल अपनी एल-एल० बी० की परीक्षा छोड़कर पहले जत्थे में शामिल होकर पाँच अप्रैल को ही जेल चला गया। ज्ञानप्रकाश ने भी सत्याग्रह किया। ज्वालाप्रसाद अपनी आँखों से सब-कुछ देखते रह गये। सत्तर वर्ष के इस वृद्ध ने कितने चित्र देखे, कितनी बदलती हुई परिस्थितियाँ देखी थीं! सब-कुछ बदल गया था! एक और दूसरा बूढ़ा भीखू उनके पास बैठा यही सोच रहा था!

८

'भूले-बिसरे चित्र' की कथानक-समीक्षा

कथाकार के रूप में श्री भगवतीचरण वर्मा ने अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय अपने कई उपन्यासों में दिया है। 'भूले-बिसरे चित्र' इस दृष्टि से उनकी अत्यन्त सफल रचना है। औपन्यासिक कथा-शिल्प में पहली बात द्रष्टव्य यह है कि कथाकार की कथा-कल्पना-शक्ति कितनी उर्वरा है। जीवन के मार्मिक प्रसंगों और घटनाओं की कल्पना करने में वह कितना पटु है। कथा-निर्माण में सबसे पहली बात कथा-चयन ही है। जो लेखक जीवन के जितने अधिक रोचक और मार्मिक प्रसंगों का चयन कर सकता है, उसका कथा-शिल्प उतना ही सफल होगा। 'भूले-बिसरे चित्र' में वर्मा जी ने कथाकार की इस क्षमता का पूरा परिचय दिया है।

अपने आरम्भिक उपन्यास 'पतन' में तो वर्मा जी एक साधारण किस्सागो-मात्र थे, क्योंकि उस रचना में वह अनेक अयथार्थ, अस्वाभाविक, अविश्वसनीय तथा आकस्मिक घटनाओं और प्रसंगों की बिना सोचे-समझे अवतारणा करते चले गए थे, पर दूसरी कृति 'चित्रलेखा' में वर्मा जी ने संतुलित और स्वाभाविक कथा के निर्माण का राज़ पा लिया था। किन्तु 'चित्रलेखा' में भी वर्मा जी की प्रवृत्ति अतिशय रोमानी रही। जीवन की यथार्थ कहानी वह 'चित्रलेखा' में भी प्रस्तुत नहीं कर पाये थे। 'तीन वर्ष' की कथा भी रोमानी अधिक प्रतीत होती है, वास्तविक कम। सच तो यह है कि वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों में कथा, घटनाएँ और परिस्थितियाँ अतिनाटकीय, अस्वाभाविक संयोगों से पूर्ण आरोपित-सी प्रतीत होती हैं। 'सामर्थ्य और सीमा', 'वह फिर नहीं आई', 'रेखा' आदि 'भूले-बिसरे चित्र' के बाद के उपन्यासों में भी यह दोष है और 'पतन', 'तीन वर्ष' आदि 'भूले-बिसरे चित्र' के पूर्ववर्ती उपन्यासों में भी। कुछ उपन्यासों में वर्मा जी ने सस्ते भावुकतापूर्ण प्रेम-व्यापारों का चित्रण किया है, जैसे 'अपने खिलौने' में।

जाहिर है कि इन उपन्यासों की कथाएँ जीवन के गरिमामय चित्रण से कम सम्बन्ध रखती हैं। छिछली रुचि के पाठक ही इन उपन्यासों में आनन्द ले सकते हैं, प्रबुद्ध पाठक केवल कथा नहीं चाहता, वह जीवन की यथार्थता से पूर्ण गरिमामय कथा चाहता है।

'भूले-बिसरे चित्र' की कथा अवश्य कुछ ठिकाने की है। वह जीवन के रोचक और मार्मिक प्रसंगों से ओतप्रोत भी है और साथ ही वह मात्र-कथा नहीं है। वर्मा जी ने जीवन की यथार्थता और गरिमा का भी उसमें बराबर ध्यान रखा है।

'भूले-बिसरे चित्र' की कथा का चित्र-फलक पर्याप्त व्यापक है। लगभग पचास वर्षों की दीर्घ परिधि में कथा का प्रसार दिखाया गया है। मुँशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवलकिशोर की चार पीढ़ियों का चित्रण विस्तृत युग-संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इतने बड़े केन्वास (Canvas) को अपनाना अपने में एक साहस का काम था। वर्मा जी इसमें सफल रहे हैं। मध्यवर्ग की बदलती हुई चार पीढ़ियों के विश्वास, प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के रोचक प्रसंगों की यथार्थ कल्पना के साथ-साथ वर्मा जी ने युगीन सामाज़िक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन की अनेक रंगीन और आकर्षक रीलें एक के बाद दूसरी प्रकट की हैं। इससे स्वभावतः ही जीवन की अनेक मार्मिक समस्याओं पर प्रकाश पड़ा है। उसकी कथा-विशालता उसे एपिक-नावल सिद्ध करती है।

अतः कहा जा सकता है कि 'भूले-बिसरे चित्र' में वर्मा जी का कथा-चयन-कौशल पर्याप्त सफल रहा है। प्रसंग और घटनाएँ रोचक एवं मार्मिक भी हैं और गरिमामय भी।

कथा-सामग्री-चयन के बाद उपन्यासकार का कार्य होता है—कथा की सफल नियोजना। कथा की सफल नियोजना में आरम्भ से अन्त तक कथा का क्रमबद्ध विकास, कथा-संगठन, कथा का उत्सुकता और कौतूहल-वर्द्धक विन्यास आदि बातें आती हैं।

वर्मा जी के सम्बन्ध में एक बात बड़े विश्वास के साथ कही जा सकती है। वह यह कि अपने अधिकांश उपन्यासों में चाहे वर्मा जी कथा-निर्माण अर्थात् कथा-चयन में असफल रहे हैं: कथा बुनने में इतने निपुण नहीं रहे हैं, पर कथा कहने में वह सर्वत्र कुशल दिखाई देते हैं। 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और

सीमा।' जैसी रचनाओं में जहाँ वर्मा जी कथा-वस्तु का विशेष निर्माण नहीं कर सके हैं, वहाँ भी उनका कथा कहने का ढंग ऐसा रोचक है कि पाठक उपन्यास पढ़ने में तन्मय रहता है। वर्मा जी के 'चित्रलेखा', 'सामर्थ्य और सीमा,' 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि कई उपन्यासों की रचना सोद्देश्य हुई है। इसीलिए उनका कथा-संगठन, वस्तु-विन्यास पूर्वनिश्चित-सा प्रतीत होता है। फिर भी लेखक की कथा कहने की शैली में जान है। इसीलिए इन रचनाओं की कथा भी रोचक बन गई है।

अपने उपन्यासों की कथावस्तु को रोचक और उत्सुकतापूर्ण बनाने के लिए वर्मा जी ने संयोगों और आकस्मिक घटनाओं का बहुत सहारा लिया है। कहीं-कहीं इन आकस्मिक संयोगों में अस्वाभाविकता भी आ गई है, पर अधिकांशतः ये संयोग और आकस्मिक घटनाएँ ही वर्मा जी की रोचक कथाओं का मुख्य रहस्य है। आकस्मिक घटनाओं और संयोगों के ताने-बाने से ही वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कथा को गति प्रदान की है। जहाँ-कहीं कथानक का प्रवाह रुकता प्रतीत हुआ, वहीं वह आकस्मिक घटना की योजना कर कथा में गति उत्पन्न कर देते हैं। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' की सम्पूर्ण कथा का विस्तार इसी प्रकार हुआ है। प्रभानाथ के मन को झकझोर डालने वाली एक के बाद एक आकस्मिक घटनाएँ घटती जाती हैं, जिनसे भारत की गरीबी, बेकारी, शोषण और लूट-खसोट का परिचय कराया गया है। 'पतन' आदि कुछ आरम्भिक रचनाओं में संयोग और आकस्मिक घटनाएँ कुछ कृत्रिम, अविश्वसनीय और अस्वाभाविक हो गई थीं, पर वर्मा जी ज्यों-ज्यों लिखते गये, उनके संयोग और आकस्मिक घटना-निर्माण में प्रौढ़ता आती गई है। 'आखिरी दाँव' में वर्मा जी के कथाकार की करामात संयोग और आकस्मिक घटनाओं की योजना में ही दिखाई देती है।

'भूले-बिसरे चित्र' में भी वर्मा जी ने संयोगों और आकस्मिक घटनाओं का पर्याप्त सहारा लिया है। प्रथम खण्ड में लाला प्रभुदयाल का नायब तहसीलदार ज्वालाप्रसाद के यहाँ सौगात लेकर आना, गजराजसिंह की लड़की की शादी के अवसर पर बरजोरसिंह द्वारा प्रभुदयाल का अपमान, बरजोरसिंह द्वारा प्रभुदयाल की हत्या, बरजोरसिंह द्वारा आत्महत्या, होली के दिन ज्वालाप्रसाद का जैदेई के पास शिवपुरा जाना : कहाँ तो जैदेई शोक-मग्न-सी बैठी थी, प्रभुदयाल की मौत के कारण होली नहीं मनाई गई थी, कहाँ सहसा ही जैदेई

बन-संवरकर ज्वालाप्रसाद को अपने शयनकक्ष में बुला लेती है और मन-भायी करती-कराती है, सौ अशर्फियाँ भी भेंट में देती है!—यह सब आकस्मिक होता है।

दूसरे खण्ड के आरम्भ में त्रिवेणी संगम पर मुँशी शिवलाल की मड़ैया में छिनकी, राधेलाल, राधे की पत्नी, जैदेई आदि सबका मिलन एक संयोग ही है। किसनू का किस्सा और जैदेई के यहाँ किसनू को भेजने का उपक्रम इसी संयोग से बनता है। घुमरु मिसिर और बिसनू का मिलन, जग्गू पहलवान का सहसा सोराँव आना, मुँशी शिवलाल का सहसा सुराही सिर में मारकर आत्म-हत्या कर लेना संयोग और आकस्मिकता के ही प्रसंग हैं।

तीसरे खण्ड में गाड़ी में गंगाप्रसाद का लाल रिपुदमन, राधाकिशन, संतो से मिलन संयोग ही तो है, जो आगे की समस्त घटनाओं और परिस्थितियों का चालक बनता है। चौथे खण्ड में गाड़ी में ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद की मि० ग्रिफिथ्स से मुलाकात संयोग ही है। मलका का प्रसंग, सत्यव्रत का मलका के जीवन में आना, मलका का अपहरण आदि सब प्रसंग आकस्मिकता से ओत-प्रोत हैं।

चौथे खण्ड में जिस नाटकीयता और आकस्मिकता के साथ गंगाप्रसाद और ज्ञानप्रकाश मलका को अलीरज़ा के चंगुल से छुड़ाकर लाते हैं, उसी प्रकार नाटकीयता के साथ पाँचवें खण्ड में ज्ञानप्रकाश विद्या को उसके ससुराल से निकालकर लाते हैं। तीसरे खण्ड में नायक जाति की रुक्मा नामक लड़की का प्रसंग भी ऐसा ही उत्सुकतापूर्ण है। गंगाप्रसाद का सुमेरसिंह थानेदार के साथ जाकर कैद रखी हुई रुक्मा से मिलना जासूसी उपन्यासों का-सा उत्सुकता-कौतूहलपूर्ण प्रसंग है।

इस प्रकार कौतूहलपूर्ण उत्सुकतावर्द्धक आकस्मिक घटनाओं और रोचक प्रसंगों की कल्पना में वर्मा जी ने अपनी अपूर्व क्षमता दिखलाई है। एक के बाद दूसरी रोचक घटनाओं और प्रसंगों का सिलसिला सारे उपन्यास में चलता रहता है।

वर्मा जी रोचक प्रासंगिक कथाओं और घटनाओं की कल्पना में बहुत पटु हैं। ठाकुर बरजोरसिंह और प्रभुदयाल का प्रसंग, घुमरु-मिसिर और बिसनलाल की अखाड़ेबाजी और हनुमान के मन्दिर का प्रसंग, घुंडी स्वामी का किस्सा,

किसनलाल की जैदेई के यहाँ करतूत, श्यामलाल और राधेलाल की जमीन-जायदाद हथियाने की जाल-साजियाँ आदि पहले दो खण्डों की प्रासंगिक कथाएँ बहुत ही रोचक हैं। इसी प्रकार गंगाप्रसाद से सम्बन्धित तीसरे और चौथे खण्डों की लाल रिपुदमन की कहानी, मलका-सत्यव्रत का प्रसंग, संतो-कैलासो-राधाकिशन-मेजर वाट्स आदि के प्रासंगिक वृत्त, अंतिम खण्ड में सिद्धेश्वरी-बिन्देश्वरी बाबू और प्रेमशंकर का वृतान्त आदि ऐसे ही रोचक प्रसंग हैं। इन सब रोचक प्रसंगों में वर्मा जी अपने पाठकों को उलझाए रखते हैं। उपन्यास की घटनाओं और स्थितियों में पाठक तन्मय रहता है।

'भूले-बिसरे चित्र' के ये सब प्रसंग और घटनाएँ यों ही इकट्ठे किए हुए नहीं हैं। उनमें संगठन है, एकसूत्रता है। 'भूले-बिसरे चित्र' की कथा एक निश्चित बन्ध में बन्धी और संगठित है। समस्त उपन्यास पाँच खण्डों में विभाजित है। लेखक का उद्देश्य मुंशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवलकिशोर की चार पीढ़ियों का जीवन चित्रित करना है। प्रथम खण्ड में मुंशी शिवलाल और ज्वालाप्रसाद का चित्रण है, दूसरे खण्ड की कथा का केन्द्रबिन्दु केवल ज्वालाप्रसाद है, तीसरे और चौथे खण्ड का मुख्य वृत्त गंगाप्रसाद से सम्बन्धित है और पाँचवें खण्ड में नवलकिशोर की प्रधानता है। अतः उपन्यास के अलग-अलग खण्डों में इन चारों मुख्य पात्रों या नायकों से सम्बंधित कथा-प्रसंग और घटनाएँ उपन्यास की आधिकारिक या मुख्य कथा है। अन्य समस्त वृत्त और घटनाएँ प्रासंगिक कथाएँ कही जा सकती हैं।

युगीन महाकाव्य का-सा विशाल चित्रपट होने के कारण यद्यपि 'भूले-बिसरे चित्र' में युग-बोध कराने के लिए अनेक अवान्तर प्रसंगों की अवतारणा हुई है, पर उनका ऐसा अनावश्यक विस्तार कहीं नहीं हुआ जो मुख्य कथा से सर्वथा अलग पड़ गया हो या ऊबा देने वाला नीरस हो। कुछ प्रसंग खटकते अवश्य हैं, जैसे राजपुर गाँव में मुंशी रामसहाय के सम्मुख कुएँ के बारे में ब्राह्मणों और चमारों के झगड़े का प्रसंग, बिसनू-द्वारा अखाड़ेबाजी और दंगल का आयोजन, खिलाफ़त और असहयोग आन्दोलनों से सम्बन्धित वाद-विवाद, बरेली में आर्यसमाजी स्वामी जटिलानन्द, अल्लामा वहशी आदि में शास्त्रार्थ का प्रसंग तथा स्वदेशी आन्दोलन का वर्णन आदि। इन प्रसंगों में कुछ अनावश्यक विस्तार अवश्य प्रतीत होता है, पर ये प्रसंग भी न तो ऊबा देने वाले सर्वथा

अरोचक ही हैं और न इतने अलग-अलग हैं कि मुख्य कथानक और मुख्य पात्रों से कोई सम्बन्ध ही न रखते हों।

आरम्भ में ठाकुर भूपसिंह और मैकूलाल के झगड़े और इस्तगासे का प्रसंग मुंशी शिवलाल के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए और उस युग की ठाकुर और बनिए की प्रतिद्वन्द्विता दर्शाने के लिए प्रकट किया गया है। कुएं के झगड़े से भी मुख्य उद्देश्य युग-बोध कराना है, पर उस प्रसंग पर ज्वालाप्रसाद के क्रोध से उसके चरित्र का भी उद्घाटन हुआ है। इसी प्रकार सभी अवान्तर प्रसंग मुख्य पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालते हैं या उनसे सम्बन्धित प्रसंगों और कथा को विकसित करने में योग देते हैं। कोई भी प्रसंग सर्वथा अनावश्यक नहीं है।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' की कथा संगठित और सुयोजित है। वह एक नायक की कहानी के रूप में संग्रथित भले ही नहीं है, पर बहुनायक-कथा के रूप में सुयोजित अवश्य है। उसका विशाल चित्रपट सन् १८८५ ई० से सन् १९३० ई० तक के लगभग पचास वर्षों के युग की कहानी कहता है पर यह युगीन कहानी ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद आदि मुख्य पात्रों या नायकों से ही सम्बन्धित होकर प्रकट हुई है।

पाँचों खण्डों की विविध कथा-सृष्टि में भी एकसूत्रता बनाये रखने का सफल प्रयत्न किया गया है। पहले दो खण्डों में मुख्य कथा मुंशी शिवलाल और ज्वालाप्रसाद के परिवार की है, तीसरे और चौथे में गंगाप्रसाद कथा का केन्द्र है, पर तीसरे और चौथे खण्डों में भी ज्वालाप्रसाद, जैदेई, यमुना, छिनकी, भीखू, लक्ष्मीचन्द्र आदि पूर्व-खण्डों के पात्रों का आवागमन रहता है। नये-पुराने पात्रों का सम्पर्क बना रहता है और अन्त तक इस सम्पर्क-सूत्र को लेखक ने ज्वालाप्रसाद और भीखू दो बूढ़ों के हाथ में सौंपे रखा है। इस प्रकार कथा में एकसूत्रता का भी आभास मिलता है। ज्वालाप्रसाद विशेष रूप से ऐसा मुख्य पात्र और नायक है जिसकी आरम्भ से अन्त तक विद्यमानता कथा में एक-सूत्रता का बोध कराती है।

कथा-सूत्र अनेक पात्रों से सम्बन्धित होने के कारण कथा में अनेक मोड़, अनेक परिवर्तन, अनेक प्रसंगों के जोड़-तोड़ प्रकट हुए हैं। प्रत्येक खण्ड में कथा एक नये संदर्भ और नये इतिवृत्त से प्रकट हुई है। पहले खण्ड की कथा मुख्यतः धाटमपुर में घटी है, दूसरे खण्ड में ज्वालाप्रसाद सोरांव के तहसीलदार होकर

आते हैं और वहीं प्रायः समस्त घटनाएँ घटती हैं। तीसरा खण्ड सहसा गंगाप्रसाद से आरम्भ होता है। दूसरे खण्ड के अन्त में जिस गंगाप्रसाद को हम होनहार बालक के रूप में जैदेई को सौंपा गया सुन चुके हैं, वही तीसरे खण्ड के आरम्भ में डिप्टी कलेक्टर बना हमारे सम्मुख आता है। बीच की काल-अवधि को लेखक पाठक की कल्पना पर छोड़ गया है। पर इससे भी किसी प्रकार की अस्वाभाविकता या असंगति उत्पन्न नहीं हुई है ; सम्पर्क-सूत्र टूटा नहीं है। ऊपर से टूटा और बिखरा हुआ दिखाई देने वाला सम्पर्क-सूत्र युग और परिस्थितियों के बदलते हुए प्रवाह में परम्परा से जुड़ा हुआ है। पुराने युग और पुराने वातावरण ने नये युग और नये वातावरण को जगह दी है, पुरानी पीढ़ी के पात्रों के बाद नई पीढ़ी के पात्रों का आगमन हुआ है।

मुंशी शिवलाल की खुशामदी पीढ़ी ने ज्वालाप्रसाद-जैसा ईमानदार सरकारी अफसर उत्पन्न किया। ज्वालाप्रसाद के मध्यवर्गीय वातावरण ने बुद्धिजीवी और ऐश्वर्य-विलासी गंगाप्रसाद को जन्म दिया और गंगाप्रसाद के टूटने पर नई पीढ़ी का विद्रोही युवक नवल बना। इसी प्रकार सामंतीय परम्परा के जमींदार बनिए प्रभुदयाल का स्थान लिया पूंजीपति लक्ष्मीचन्द्र ने। जैदेई के स्थान पर लक्ष्मीचन्द की पत्नी राधा जमी। रुक्मिणी की कोख ने नवल के साथ नये युग की विद्या को जन्म दिया। पुराने ताल्लुकेदारों के स्थान पर लाल रिपुदमन सिंह का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियों, बदलते हुए पात्रों की बदलती हुई रीलों में परस्पर एक सम्बन्ध-सूत्र बना हुआ है।

यद्यपि 'भूले-बिसरे चित्र' की कथा में आकस्मिक और उत्सुकतावर्द्धक घटनाओं से रोचकता उत्पन्न की गई है, पर उसमें मात्र-कथारस नहीं है। प्रसंग और परिस्थितियाँ भावनात्मक संवेदनाएँ जगाने में भी सक्षम रही हैं। उपन्यास की सरसता का कारण घटना-वैचित्र्य ही नहीं है, अपितु रस-संचारण भी है। कथा के विविध प्रसार में शृंगार (जैदेई-ज्वालाप्रसाद, मुंशी शिवलाल-छिन्की, गंगाप्रसाद-संतो, गंगाप्रसाद-मलका आदि प्रसंगों में), करुण रस (बरजोरसिंह की बेवा, रुक्मा, विद्या आदि से सम्बन्धित प्रसंग), बीभत्स रस (मुंशी शिवलाल, राधेलाल, श्यामलाल आदि का फरेब और जालसाज़ी का आचरण, अलीरज़ा वहशी, मीरजाफ़र अली आदि के घृणित आचरण, संतो, कैलासो, राजा सत्यजित प्रसन्नसिंह, रानी हेमवती आदि की कामुकता आदि), वीररस (मलका या माया को छुड़ा लाने के प्रसंग में गंगाप्रसाद की तथा विद्या

को उसके ससुराल से लाने के प्रसंग में ज्ञानप्रकाश की वीरता तथा असहयोग, स्वदेशी आदि आन्दोलनों के सिलसिले में सत्याग्रहियों की वीरता और साहस), हास्यरस (शास्त्रार्थ और घुंडी स्वामी के प्रसंगों में) आदि अनेक रसों और भावों की सरस और गहन अनुभूति उपन्यास में स्थान-स्थान पर होती है। अतः रस-संचार या भावात्मक संवेदन भी 'भूले-बिसरे चित्र' के कथानक की एक विशेषता है।

'भूले-बिसरे चित्र' में वर्मा जी ने किसी अस्वाभाविक, असंगत और अविश्वसनीय घटना या प्रसंग को स्थान नहीं दिया है। सभी प्रसंग, घटनाएँ और परिस्थितियाँ स्वाभाविक हैं, जीवन की यथार्थता से ओतप्रोत हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' की कथा-शैली वर्णनात्मक है। वर्मा जी के प्रायः सभी उपन्यास इसी वर्णनात्मक शैली में रचे गये हैं। कथाकार वर्मा जी घटनाओं, परिस्थितियों, पात्रों का तटस्थ रूप में वर्णन करते जाते हैं—यथार्थ और रोचक। प्रेमचन्द की तरह सीधी-सादी वर्णनात्मक शैली में वर्मा जी आरंभ से अन्त तक क्रमबद्ध रूप में कथा प्रस्तुत करते हैं। वर्मा जी ने किसी प्रकार की समय-विपर्यय आदि कथा-शिल्प की नई पद्धतियों के प्रयोग नहीं किये हैं। यद्यपि 'भूले-बिसरे चित्र' में पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी लेखक का बराबर ध्यान रहा है और इस दृष्टि से 'भूले-बिसरे चित्र' कथा-प्रधान उपन्यास नहीं कहा जा सकता, कथा-चरित्र-समन्वित रचना ही है, तो भी उपन्यास में कथा-तत्त्व का विशेष महत्त्व है। कथा इस उपन्यास का प्रमुख आकर्षण है। विश्लेषण और व्याख्या शैली की इस उपन्यास के कथा-प्रबन्ध में विशेष आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि सीधी-सरल घटनाएँ घटी हैं, उनमें कोई जटिलता नहीं, सीधे-सरल पात्र हैं, उनमें कोई मानसिक कुंठा नहीं, विशेष जटिलता नहीं। अतः कथा-शैली सीधी-सादी वर्णनात्मक है।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' वर्मा जी की प्रौढ़ कथा-शिल्प का नमूना है। उसकी कथा-सामग्री का इतना व्यापक प्रसार, युगीन राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों को दर्शाने वाली अनेक घटनाओं और स्थितियों का चित्रण, युग-धर्म की सजीवता, जीवन की अनन्त समस्याओं का प्रकाशन 'भूले-विसरे चित्र' को एक महाकाव्य-रूप उपन्यास (एपिक-नावल) बनाता है। इतने विशाल चित्रपट वाली इतने अधिक पात्रों वाली कथा में शिथिलता उत्पन्न होने की बहुत संभावना रहती है, पर जैसाकि हमने ऊपर स्पष्ट किया है, इस उपन्यास

में कथानक की शिथिलता कहीं नहीं दिखाई देती। बीच-बीच में पात्रों के वाद-विवादपूर्ण वार्तालाप और युगीन परिस्थितियों के वर्णन कथा के धाराप्रवाह में कुछ विराम अवश्य लाते हैं, पर उनसे कथा-प्रवाह कहीं भी बाधित नहीं हुआ है। वर्मा जी तुरन्त रोचक घटना या प्रसंग की कल्पना करके कथा की गति को पुनः तीव्र कर देते हैं। घटना और कथा-वैचित्र्य से स्वतः ही रोचकता, उत्सुकता और कौतूहल की स्थिति उत्पन्न रही है।

वर्मा जी के उपन्यासकार पर जो यह आरोप लगाया जाता है कि वर्मा जी मात्र-कथाकार हैं, जीवन-दर्शन की गहराई उनमें नहीं है, वह आरोप उनका उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' खण्डित कर देता है। इसमें कथा की सफलता भी है और मात्र-कथा नहीं है। कथा-तत्त्व महत्त्वपूर्ण होते हुए भी कथा अपने साथ एक विराट् युग-चित्र अनुस्यूत किये हुए है। उसमें जीवन का यथार्थ दर्शन, मानवीय मूल्यों की बदलती हुई दिशाएँ तथा जीवन के निर्माणकारी उदात्त तत्त्व पाये जाते हैं। कथा में रोचकता है, संगठन है, प्रवाह है, गरिमा है, जीवन की यथार्थता है, भावनात्मक संवेदना है, गोकि घटना-वैचित्र्य और कथारस भी है।

९

पात्र-चरित्र-परिचय

(१) मुन्शी शिवलाल :

'भूले-बिसरे चित्र' का चित्र-फलक अत्यन्त व्यापक है। अतः इसमें अनेक पात्रों की सृष्टि हुई है। इस रचना में वर्मा जी ने एक मध्यवर्गीय परिवार की चार पीढ़ियों का इतिवृत्त लगभग पचास वर्षों की कालगति में गूँथा है। पहली पीढ़ी मुंशी शिवलाल और उनके छोटे भाई राधेलाल की है। मुंशी शिवलाल अर्जीनवीस हैं। उनके चरित्र का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। वह "मझोले कद के दुबले-पतले आदमी थे। उम्र करीब पचपन साल, मूँछें छोटी-छोटी और चुनी हुईं जो चितकबरी दीखती थीं। चेहरे की बनावट सुन्दर कही जा सकती थी अगर वह चेचकरू न होता, रंग गेहुँआ, लेकिन मुँह पर चेचक के धब्बों के कारण साँवला दीखता था।"

इस हुलिये (बाह्य आकृति) के प्रत्यक्ष चित्रण के साथ लेखक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (नाटकीय) दोनों शैलियों से मुंशी शिवलाल के आन्तरिक व्यक्तित्व (चरित्र) का उद्‌घाटन करता जाता है। मुंशी शिवलाल अपने परिवार के मुखिया हैं। उनकी पत्नी कोई आठ साल हुए स्वर्ग सिधार गई थी। उस समय उनके एकमात्र पुत्र ज्वालाप्रसाद की आयु चौदह वर्ष की थी। सम्बन्धियों ने दूसरी शादी के लिए बहुत ज़ोर दिया, पर मुंशी शिवलाल विधुर ही रहे, दूसरी शादी नहीं की।

मुंशी शिवलाल चलते-पुर्जे अर्जीनवीस हैं। अर्ज़ी, इस्तगासा आदि लिखने में बहुत माहिर हैं। झूठ-सच सब कुछ लिखकर दावे का मजमून अच्छा बाँध देते हैं। खुशामदी होने के कारण हाकिमों तक रसाई भी है। रिश्वत लेते-देते और दिलाते हैं।

मुंशी शिवलाल को दारू पीने की बुरी लत है। "बाबा राधवदास की

रामायण की कथा से प्रभावित होकर उन्होंने कण्ठी तो ले ली थी, लेकिन शराब छोड़ना इतना कठिन होगा, इस पर उन्होंने भावावेश में ध्यान नहीं दिया था। मुंशी शिवलाल का रोज का यह क्रम था कि शाम के समय कचहरी से लौटकर वह गरमी में स्नान करके, और जाड़े में अपने ऊपर गंगाजल छिड़ककर, प्रायः एक घण्टा पूजा करते थे, और पूजा करके एक पौवा शराब कभी अकेले, लेकिन अक्सर घसीटे के साथ बैठकर पीते थे। पिछले दिन शराब न मिलने के कारण उन्हें रात-भर नींद न आई थी।" कंठी लेने के बाद शराब पीने की उन्हें एक तरकीब सूझी! घसीटे द्वारा शराब लाने में आपत्ति करने पर वह कहते हैं, "देख, घर मां गंगाजल की बोतल है, तो चार बूँद गंगाजल दारू मां छोड़ लीन्हेव। गंगाजल से सब-कुछ सुद्ध हुई जात है।"

ऊपरी दिखावे, झूठी मर्यादा, अपने खानदान का गर्व, अन्तर-बाह्य का भेद आदि मध्यवर्ग की सामान्य चारित्रिक दुर्बलताएँ मुंशी शिवलाल में पाई जाती हैं। दूसरों के सामने अपनी हेठी होना उन्हें सह्य नहीं है। जब चपरासी साहेब चंदनसिंह मुंशी शिवलाल को बुलाने आता है और कहता है कि कलेक्टर ने अभी बुलाया है, तो मुंशीशिवलाल का चेहरा पीला पड़ जाता है। चपरासी उन्हें आश्वस्त करता हुआ कहता है कि डरने की बात नहीं है, साहेब तुम पर नाराज़ नहीं हैं। तब चपरासी के आगे प्रकट होती हुई अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए मुंशी शिवलाल तुरंत ऐंठ कर कहते हैं कि नाराज़ होकर साहब "हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं। ईमानदारी के साथ मेहनत की रोटी खाते हैं और राम-नाम का भजन करते हैं।"

मुंशी शिवलाल खुशामदी आदमी हैं। हाकिम-हुक्काम को खुश रखना उन्हें खूब आता है। कलेक्टर को खुश कर वह अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदार नामजद करा लेते हैं। उन्हें इस बात का बड़ा गर्व है कि उनका बेटा अफ़सर लग गया है। वह जी खोलकर महफ़िलें कराते हैं, ज्वालाप्रसाद को हरेक बड़े अफसर के यहाँ खुद ले जाकर सलाम करवाते हैं।

मुन्शी शिवलाल का अवैध सम्बन्ध घसीटे कहार की दूसरी पत्नी छिनकी से है। घसीटे की मौत के बाद तो छिनकी को वह अपनी रखैल ही बना लेते हैं। पहले तो वह छिनकी के हाथ की पकी कच्ची रोटी नहीं खाते थे, पर शनैः-शनैः इस परंपरागत छूत को उन्होंने तोड़ डाला।

वैसे मुन्शी शिवलाल परंपरा-पंथी हैं। वह परंपरागत सम्मिलित परिवार-

प्रथा में विश्वास रखते हैं। घर में राधे की पत्नी का शासन उन्हें उचित प्रतीत होता है। इसी सम्मिलित परिवार की भावना के कारण छिनकी की अलगाव की बातें उन्हें अटपटी लगती हैं। इसी संस्कार के कारण वह आरम्भ में ज्वाला के साथ राधे की पत्नी का जाना ही उचित समझते हैं। वह खुद भी ज्वाला-प्रसाद के पास जाकर रहने और छोटे भाई के परिवार को गाँव में अकेला छोड़ने की बात मुश्किल से मानते हैं। ज्वाला की व्यक्तिगत कमाई के कुछ रुपये हर माह राधेलाल के पास भिजवाते रहते हैं। राधेलाल के सुझाव पर सम्मिलित जमींदारी बनाने की उनमें उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। खानदान की इज़्ज़त का उन्हें बहुत ख्याल है। वह श्यामू को ज़मीन खरीदने के लिए रुपये भिजवाते हैं, किसनू को जैदेई के यहाँ रखवा देते हैं।

घर-गृहस्थी की बातों में मुन्शी शिवलाल कुछ कच्चे हैं। यही कारण है कि ज्वाला के साथ उसकी पत्नी यमुना को भेजने की आवश्यकता को वह छिनकी के सुझाने पर भी देर में समझ पाते हैं। छिनकी मुन्शी शिवलाल से बहुत प्रेम करती है—उसने अपनी सब सेवाएँ मुन्शी शिवलाल को अर्पित कर रखी हैं—तन-मन सब। पर फिर भी मुन्शी शिवलाल छिनकी को अपने परिवार की घर-गृहस्थी में दखल देने का अधिकार नहीं देते। इसका कारण उनका अभिजात संस्कार ही है, जिससे वह छिनकी को निम्न जाति एवं निम्न श्रेणी की मानकर सम्मान और समानता का दर्जा नहीं दे पाते। वह छिनकी के बिना बात तमाचा भी जड़ देते हैं।

मुन्शी शिवलाल पुराने ज़माने के धार्मिक संस्कार भी रखते हैं। पूजा-पाठ, कथा-वार्ता के अतिरिक्त माघ के महीने त्रिवेणी-स्नान का पुण्य मानते हैं। तीर्थ-व्रत आदि में उनकी श्रद्धा है।

मुन्शी शिवलाल का चरित्र टिपिकल है। वह वाकई गांव के पुराने महाजनों, अर्जीनवीसों, पटवारियों, कानूनगो-वर्ग के ऐसे सच्चे प्रतिनिधि पात्र हैं, जो धोखे-फ़रेब, जाल-साज़ी, झूठी दस्तावेज़ लिखा, झूठ बोल, झूठी मुकदमे-बाज़ी से दूसरों की जमीन-जायदाद हड़पने और अपना उल्लू सीधा करने की फ़िकर में रहते हैं। इस दृष्टि से मुन्शी शिवलाल के अनुज राधेलाल भी ऐसे ही हैं। राधेलाल के ही सुझाव और आयोजन पर शिवलाल छल-कपट से बेवा औरत सलीमा की जायदाद हड़पने के षड्यन्त्र में शामिल हो जाते हैं। वह अपने पुत्र ज्वालाप्रसाद को भी झूठ बोलने तथा जज गिरिजाशंकर के पास

सिफारिश करने को कहते हैं। पर ज्वालाप्रसाद नहीं मानता तो वह झुँझला उठते हैं।

मुन्शी शिवलाल के इस झूठ-फरेब के चरित्र के कारण ही जज गिरिजा-शंकर उनकी बात नहीं सुनते। मुन्शी शिवलाल जिस निर्लज्जता से गिरिजा-शंकर की फटकार सहते हैं, वह उनके चरित्र का अत्यन्त दुर्बल पक्ष है। गिरिजाशंकर साफ कह देते हैं कि "मैं आपकी बात पर यकीन करने को तैयार नहीं।" इसी खिसियानी हालत में वह ज्वालाप्रसाद के पास आकर उसे झूठ बोलने को राज़ी करना चाहते हैं। पर जब ज्वालाप्रसाद साफ कह देता है कि "सरकार का ऊचा हाकिम होने के नाते मैं झूठ नहीं बोल सकूँगा", तो मुन्शी शिवलाल बौखला उठते हैं। उन्हें लगता है कि "उनका लड़का इस सत्य और ईमानदारी पर अड़कर अपने पैरों में ही कुल्हाड़ी नहीं मार रहा है, बल्कि उनका मखौल भी उड़ा रहा है, वह अपने परिवार वालों का मखौल उड़ा रहा है!" मुन्शी शिवलाल का क्रोध एकाएक भड़क उठा, "बड़ा धर्मराज का बाप बन रहा है। अच्छी-खासी जमींदारी छोड़े दे रहा है। मैं क्या जानता था कि मेरा लड़का उल्लू का पट्ठा निकलेगा।" मुन्शी शिवलाल ज्वालाप्रसाद को गालियाँ देने लगते हैं और जब ज्वाला फिर यही कह देता है कि "अपनी सच्चाई और ईमानदारी को आप तो क्या भगवान् खुद आकर भी छोड़ने को कहे तो मैं इन्कार कर दूंगा।"—तो अपनी बौखलाहट में मुन्शी शिवलाल ने भरी हुई सुराही उठाकर अपना सिर पटक लिया और बोले, "ले, तेरी ईमान-दारी और सचाई पर मैं बलि होता हूँ।"

अपनी जमीन-जायदाद बनाने और स्वार्थ पूरा करने का ऐसा नशा था मुन्शी शिवलाल में! वह इस स्वार्थ-सिद्धि के लिए सब-कुछ उचित समझते थे। अपने बेटे के रिश्वत न लेने और ऊपर की कमाई न करने का भी उन्हें दुःख था। पर साथ ही इस बात का भी उन्हें गर्व था कि उनका बेटा ज्वाला अपनी ईमानदारी से खानदान का नाम रोशन कर रहा है।

पर जब एक दिन उन्हें यह मालूम होता है कि ज्वाला ने सौ अशर्फियाँ देकर बरजोरसिंह की बेवा की जमीन बचाई है, तो मुन्शी शिवलाल को एक ओर तो अपने बेटे के इस तरह धन लुटाने पर दुःख होता है और दूसरे वह इस बात से दुःखी होते हैं कि हो-न-हो उनका बेटा ऊपर की कमाई करता है,

पर उनसे सब छिपाकर रखता है। उन्होंने दो सौ रुपये जमीन खरीदने के लिए फतहपुर भेजने को माँगे थे, पर ज्वाला ने उनसे कह दिया था कि उसके पास रुपये नहीं हैं।

लेकिन जब ज्वाला ने असलियत बताते हुए कहा कि नम्बरदारिन जैदेई ने ये रुपये दिए थे तो मुन्शी शिवलाल की मुद्रा एकदम बदल जाती है। उनकी अनुभवी दृष्टि व्यक्तियों को पहचान लेती है, दुनियादारी की बातें समझने में वह गलती नहीं करते। वह ताड़ लेते हैं कि जैदेई पर ज्वाला का प्रभाव है। वह मुस्कराते हुए बोले, "ज्वाला बेटा, तुम्हारी किस्मत खुल गई। बहुत तगड़ा शिकार फँस गया है। अब आगे के लिए कसम खा लो कि तुम इस तरह दूसरों को रुपया न दिलवाओगे। अपने लिए जमीन-जायदाद इकट्ठा कर लो। लम्बरदारिन जैदेई के पास नकद और जेवर मिलाकर लाखों की जमा-जथा है।"

इस प्रकार धन-जायदाद के लोभी मुन्शी शिवलाल को अपने बेटे के चरित्र-भ्रष्ट हो जाने में कोई बुराई प्रतीत होना तो दूर रहा, उल्टा खुशी होती है। चरित्र की ऐसी दुर्बलता उनमें भी तो थी!

पर मुन्शी शिवलाल की आत्मा बिल्कुल मर गई हो, ऐसी बात नहीं। उनके मन में दया-धर्म कुछ अवश्य बचा है। बरजोरसिंह की बेवा की हालत सुनकर उनकी करुणा जाग जाती है। वह अपने बेटे को भी इस बेवा की यथासंभव सहायता करने को कह देते हैं। अन्त में जब सुराही से सिर पीट लेने से लगी चोट उनकी जानलेवा बन जाती है, तो मुन्शी शिवलाल की आँखों में आँसू भर आते हैं। वह ज्वाला से कहते हैं, "जा रहा हूँ बेटा, मुझे माफ़ करना। गलती तुम्हारी नहीं थी...।"

मुन्शी शिवलाल ने इशारे से छिनकी को बुलाया और थके और बुझते स्वर में बोले, "यह छिनकी, यह तेरी दूसरी माँ है। मैंने इसे बड़ा कष्ट दिया है; इसकी कोई बात नहीं सुनी मैंने! तो इसे अब तेरी दया पर छोड़ रहा हूँ। तेरी सबसे अधिक सगी यही है।"

यह कहकर मुन्शी शिवलाल ने न केवल सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं, अपितु अपने चरित्र की कालिमा धो डाली, ज्वाला और छिनकी के प्रति किये गए अपने सारे अपराध का सदा के लिए शमन कर लिया।

(२) ज्वालाप्रसाद :

पुराने ढंग के अर्द्धशिक्षित, खुशामदी, स्वार्थी निम्न मध्यवर्गीय मुन्शी शिवलाल की पीढ़ी गई तो उसका स्थान अर्द्ध अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त, ईमानदार और सच्चे सरकारी अफसर मध्यवर्गीय नायब तहसीलदार ज्वालाप्रसाद ने लिया। ज्वालाप्रसाद ब्रिटिश नौकरशाही की पहली पीढ़ी का प्रतीक है जो प्रायः सरकार-भक्त होने के साथ-साथ अपने कर्त्तव्य के प्रति सतर्क, सजग और पूरी ईमानदार थी।

ज्वालाप्रसाद मुन्शी शिवलाल का इकलौता पुत्र है। जब वह केवल चौदह वर्ष का था तो मां के प्यार से वंचित हो गया था। वह अपने मामा मुन्शी रामसहाय के पास अधिक रहा। इसीसे पिता के संस्कारों की बजाय उसपर अपने मामा मुन्शी रामसहाय की उदारता, ईमानदारी, सत्यप्रियता और न्यायप्रियता के अच्छे संस्कार पड़े। एंट्रेंस पास करने के बाद वह सरकारी नौकरी के लिए उम्मीदवार बन जाता है। उसके पिता मुन्शी शिवलाल कलक्टर से मिलकर उसे नायब तहसीलदार नामजद करा लेते हैं। ज्वालाप्रसाद को पढ़ा-लिखा कर मुन्शी शिवलाल ने यही चाहा था कि मेरा बेटा सरकारी अफसर बन जाए।

ज्वालाप्रसाद अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा, कार्य-कुशलता, ईमानदारी, न्यायप्रियता, सत्यप्रियता से शीघ्र ही सारे इलाके में प्रसिद्ध हो जाता है और अपने खानदान का नाम रोशन कर देता है। घाटमपुर तहसील में नियुक्ति होने के थोड़े ही दिन बाद वह लोकप्रिय हो जाता है। वह तहसीलदार मीर सखावत हुसैन का विश्वास-पात्र बन जाता है। उसकी कार्य-दक्षता और ईमानदारी से प्रभावित होकर मीर साहब तहसील का सारा काम उसी पर छोड़ देते हैं। ज्वालाप्रसाद बड़ी निष्ठा से अपना कर्त्तव्य निभाता है। ठाकुर गजराजसिंह, जमींदार महाजन प्रभुदयाल, थानेदार अमजद अली आदि सब सरकारी और गैर सरकारी प्रमुख लोग ज्वालाप्रसाद से प्रभावित हैं और उसकी मित्रता की कामना करते हैं।

ज्वालाप्रसाद सीधा-सादा, निष्कपट और चरित्रवान् युवक है। चारित्रिक दृष्टि से वह बहुत हद तक अपने पिता मुन्शी शिवलाल का विलोम है। छिनकी उसके बारे में ठीक ही कहती है, "ज्वाला केर ऐस तो सुलच्छन लड़का मिली न, सीध, बड़ा भोला।"

नायब तहसीलदार बन जाने पर वह सोसाइटी के अनुरोध और पिता की परंपरा के कारण कभी-कभी शराब पीने लगता है। वह किसी से रिश्वत नहीं लेता, पर मित्रता और प्रेम जताकर यदि कोई सौगात, उपहार या भेंट रख जाता है, तो वह वापस नहीं लौटाता। प्रभुदयाल जब उसके पीछे, नम्बरदारिन की ओर से तहसीलदारिन के लिए भेजी कहकर, होली की सौगात के रूप में कपड़ा और सौ रुपये भीखू को थमा जाता है, तो ज्वाला चुपचाप उसे रख लेता है, वापस नहीं करता। वस्तुतः यह बात ज्वाला के चरित्र की हल्की-सी शिथिलता की ही परिचायक है।

ज्वालाप्रसाद की सत्य और न्यायप्रियता को बरजोरसिंह द्वारा प्रभुदयाल का अपमान किया जाना भी बुरा लगता है और उधर प्रभुदयाल द्वारा बरजोर सिंह की खुदकाश्त ज़मीन हथियाने के प्रयत्न भी नागवार लगते हैं। वह प्रभुदयाल को भी इस दिशा में आगे कार्रवाई करने से रोकना चाहता है और बरजोरसिंह को भी उग्र होने से रोकना चाहता है। जब बरजोरसिंह प्रभुदयाल की हत्या कर देता है तो ज्वालाप्रसाद को बहुत दुःख होता है। वह जानता है कि प्रभुदयाल की हत्या बरजोरसिंह ने की है। उसके मामा मुन्शी रामसहाय और ठाकुर गजराजसिंह उसे इस मामले से दूर रहने—मौन रहने की सलाह देते हैं। पर उसकी न्यायप्रियता और सत्यता उसे मौन नहीं रहने देतीं। उसके बयान पर जब बरजोरसिंह के वारंट जारी हो जाते हैं और बरजोरसिंह आत्म-हत्या कर लेता है, तो ज्वालाप्रसाद को बहुत दुःख होता है। वह स्वयं को बरजोरसिंह की हत्या का कारण मानता हुआ पश्चात्ताप करने लगता है।

ज्वालाप्रसाद का हृदय सहानुभूति और करुणा से भरा है। जितना दुःख उसे प्रभुदयाल की हत्या से जैदेई के विधवा होने का हुआ था उससे अधिक दुःख अब बरजोरसिंह की विधवा और दो बच्चों के अनाथ हो जाने पर होता है। उसका हृदय उनके प्रति दया और आत्मग्लानि से भर जाता है। जैदेई से कहकर वह जिस प्रकार बरजोरसिंह की खुदकाश्त ज़मीन बहाल करा देता है, उससे उसके चरित्र की करुणा, न्यायप्रियता आदि विशेषताएँ स्पष्ट हुई हैं।

ज्वालाप्रसाद के चरित्र की शिथिलता, जैदेई से बढ़ावा पाकर, उसके साथ अवैध सम्बंध में विकसित होती है। जैदेई उसे देवर के रूप में प्यार करने लगती है और उसे देवता के समान श्रद्धापात्र समझती है। ज्वाला भी उसे

भौजी-रूप में प्यार करने लगता है। पर ज्वाला के इस सम्बंध-स्थापन के मूल में कोई स्वार्थ नहीं था। जब इस सम्बंध का राज़ मीर सखावत हुसैन आदि इलाके के लोग जान जाते हैं तो ज्वाला अपनी बदनामी से भयभीत होता है। वह मीर सखावत हुसैन और अपनी पत्नी यमुना के आगे अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। उसे इस बात पर आश्चर्य होता है कि उसकी पत्नी ने जैंदेई के साथ उसके अवैध सम्बंध को जानते हुए भी कुछ विरोध प्रकट नहीं किया। ज्वाला के पिता मुंशी शिवलाल समझते हैं और चाहते हैं कि जैंदेई के सम्बंध से ज्वाला अपना आर्थिक लाभ उठाये, पर ज्वाला को पिता के इस भाव से बड़ी वितृष्णा होती है।

जैंदेई से सम्बंध होने पर भी ज्वालाप्रसाद अपनी पत्नी यमुना के प्रति पूर्ण कर्त्तव्य-निष्ठ है। अपनी पत्नी का उसे प्रेम और विश्वास प्राप्त है। यमुना स्पष्ट शब्दों में बड़े आत्मविश्वास के साथ कहती है कि नम्बरदारिन की क्या मजाल है जो वह मेरे पति को मुझसे छीन ले।

ज्वालाप्रसाद की ईमानदारी में किसी को संदेह नहीं हो सकता। वह रिश्वत नहीं लेता। प्रभुदयाल की मृत्यु के बाद जब जैंदेई उसे सौ अशर्फियों से भरी थैली देना चाहती है तो वह अस्वीकार कर देता है। जब उसके चाचा राधेलाल के कहने पर उसके पिता मुंशी शिवलाल जायदाद के लोभ से उसे थोड़ा-सा झूठ बोलने को कहते हैं तो वह साफ इंकार कर देता है। पिता को कहे गए उसके ये शब्द उसके चरित्र की दृढ़ता प्रकट करते हैं : "अपनी सचाई और ईमानदारी को आप तो क्या भगवान् खुद आकर भी छोड़ने को कहे तो मैं इंकार कर दूँगा।" उसकी ईमानदारी पर बेचू मिसिर मुग्ध है। जग्गू पहलवान को उसकी सच्चाई पर विश्वास है, वह कहता है : "हुजूर कितने मुन्सिफ, दरियादिल, नेक व ईमानदार हैं, दुनिया में ढिंढोरा पिट रहा है।" राजा सरोहन, उनका वकील बटेश्वरीप्रसाद, ठाकुर वीरभान आदि कितने ही बाहर के लोग तथा उसके पिता, चाचा आदि घर के लोग उसे सत्य के पथ से डिगाना चाहते हैं, पर वह अचल और दृढ़ रहता है।

ज्वालाप्रसाद पैसे का रवादार नहीं। उसे अपनी इज्ज़त सबसे प्यारी है। जब राधेलाल कहता है कि गफूर मियाँ की बेवा से हथियायी गई ज़मीन श्यामू ज्वाला के नाम कर देगा, तो वह तुरंत कहता है कि मुझे ज़मीन-जायदाद की ज़रूरत नहीं। जैंदेई से भी वह धन पाने की कोई आकांक्षा नहीं करता। जब

मरते समय जैदेई अपनी शेष जमा-जथा गंगाप्रसाद को देना चाहती है और लक्ष्मीचन्द आपत्ति ही नहीं करता, अपनी माँ को गालियाँ देता है और ज्वाला व गंगाप्रसाद को बुरा-भला कहता है, तब भी ज्वालाप्रसाद शांत रहता है। उसे कोई लोभ नहीं। वह गंगाप्रसाद को भी समझाता हुआ कहता है, "देखो लक्ष्मीचन्द की बात पर ध्यान न देना। हर एक आदमी अपनी आधारभूत प्रवृत्तियों के अनुसार ही कर्म करता है।"

ज्वालाप्रसाद का हृदय उदार है। जब उसके चाचा राधेलाल का सारा परिवार उसके यहाँ आकर रहने लगता है और यमुना दबी ज़बान से आपत्ति भी करती है, तो ज्वालाप्रसाद अप्रभावित रहता है। अपने चाचा के परिवार के प्रति उसके हृदय में अंत तक सहानुभूति रहती है। वह किसनू को नम्बर-दारिन जैदेई के यहाँ लगवा देता है। बिशनलाल के प्रति सहानुभूति जताता है। श्यामू और रामलाल का भी भला चाहता है। जब यमुना कहती है कि श्यामू की बहू के पास एक छल्ला भी ज़ेवर नहीं है तो वह उसके लिए सर्राफ़ से खुद ज़ेवर बनवाता है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसके चचेरे भाई अच्छे धंधे लग जायँ। पर जब वह देखता है कि उसके भाई और चाचा तो उसकी जड़ें काटने पर तुले हैं, अपने भ्रष्ट आचरणों से उसकी बदनामी कर रहे हैं, तो वह अपने चाचा की जाल-साज़ी, भाइयों की उच्छृंखलता, निकम्मापन, स्वार्थता, दुश्चरित्रता, चोरी, बेईमानी, अपनी चाची तथा भाइयों की पत्नियों की कलहप्रियता आदि से बहुत दुःखी हो जाता है। अपने सर्वनाश को बचाने के लिए वह बड़ी चतुराई और धैर्य के साथ अपने चाचा के परिवार से पिंड छुड़ा लेता है। इस कटुतापूर्ण परिस्थिति में भी वह अपने चरित्र और व्यक्तित्व की गरिमा बनाये रखता है। वह बाद में भी अपने चचेरे भाई रामलाल के लड़के बंसीधर को गंगाप्रसाद से कहकर काम दिलाता है। इस प्रकार मूलतः सम्मिलित परिवार के संस्कारों वाला होते हुए भी ज्वालाप्रसाद उसकी खराबियों को देखता हुआ निर्भीकता के साथ उसके विरुद्ध विद्रोह भी करता है।

ज्वालाप्रसाद राजभक्त है। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, सरकार का विरोध उसकी समझ से बाहर की बातें हैं। वह पुरानी पीढ़ी का व्यक्ति है। नई रोशनी की बातें उसे कुछ अटपटी-सी लगती हैं। जब परिस्थिति-वश उसकी पोती विद्या 'नारी-शिक्षा सदन में नौकरी करने लगती है, तो ज्वालाप्रसाद

एक ठण्डी सांस लेकर कहते हैं, "यह दिन भी देखना बदा था। घर की लड़की घर से निकलकर नौकरी करे, दूसरों की गुलाम बने !"

जब नवलकिशोर सत्याग्रह करने की ठान लेता है, एल-एल०बी० की फाइनल परीक्षा छोड़ देता है तो ज्वालाप्रसाद बहुत दुःखी होता है। वह ठण्डी साँस भरकर कहता है, "चक्की और बान, मुझे इनकी फिक्र नहीं है, लेकिन··· लेकिन···यह जेल जाना···कुछ अजीब-सा लग रहा है। इस सबकी जिम्मेदारी ज्ञानू पर है !"····"खुद तो गलत राह पर बहक कर उसने अपनी जिन्दगी बरबाद कर ही ली, अब इस लड़के की बुद्धि भी भ्रष्ट कर रहा है !" ज्वाला प्रसाद नवल को नहीं रोक पाता। वह विवश हो सब कुछ देखता रहता है। इस अंतिम खण्ड में लेखक ने ज्वालाप्रसाद की करुण परिस्थिति, विवशता, असहाय दशा और बुढ़ापे के सूनेपन का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। इस बूढ़े ने कितना झेला, क्या कुछ नहीं देखा ! उसके सामने, उससे क्रुद्ध होकर, उसके पिता ने अपना सिर पीटकर दम तोड़ डाला था, उसका बेटा गंगाप्रसाद उसकी आँखों के आगे तपेदिक से चल बसा, उसकी प्रिय भौजी जैदेई चली गई, कितनी कठिनाई से पैसा-पैसा बटोर कर इस बूढ़े ने अपनी पोती विद्या की शादी की ! विद्या के ससुराल वालों के अत्याचार सुने, विद्या को उसके ससुराल से निकाल कर अपने यहाँ रखना पड़ा ! अपनी पत्नी यमुना का टूट कर प्राण छोड़ना देखा और नवल और ज्ञानू का जेल जाना, सत्याग्रह करना भी देखा !

गंगाप्रसाद की पत्नी रुक्मिणी ठीक ही कहती है, "बड़ी कठोर छाती है उनकी ! मुसीबतों का पहाड़ आ पड़ा है उनके ऊपर, लेकिन चुपचाप बिना उफ़ किये अपना कर्त्तव्य करते जाते हैं।"

निस्संदेह ज्वालाप्रसाद कर्त्तव्य और स्नेह की मूर्ति है। अपने परिवार के प्रति उसका रोम-रोम स्नेह-सिक्त है। अपने पुत्र गंगाप्रसाद के बारे में जब उसने भीखू से सुना था कि गंगा चरित्र-भ्रष्ट होता जा रहा है तो उसे बड़ा दुख हुआ था। ज्वालाप्रसाद ने गंगा के पास रहकर उसकी आदतों में सुधार लाने का प्रयत्न किया था। जैदेई की उसने मरते समय तक सेवा की। अपनी पत्नी के प्रति कर्त्तव्य निभाया। अन्त तक कर्त्तव्य-निष्ठता, सत्यप्रियता, ईमानदारी, हृदय की उदारता, दृढ़ता, स्निग्धता, न्यायप्रियता, संकटों में धीरता उसके चरित्र की सबलताएँ बनी रहती हैं। बदलते हुए युग को देखकर वह विचलित नहीं होता। बुढ़ापे की अवस्था में इस दुनिया में सर्वथा अकेला पड़

जाने पर भी वह यही कहता है, "……जाओ नवल, जाओ ज्ञानू, मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है, बिल्कुल कुछ भी नहीं है; फिर चिन्ता किस बात की की जाय ? जो होना है, वह हो चुका है, उसे नहीं रोका जा सकता।"

इस प्रकार ज्वालाप्रसाद उपन्यास का ऐसा सर्वप्रमुख पात्र है, जो आरम्भ से अन्त तक बना रहता है और एक तरह से उपन्यास के पाँचों खण्डों में एक-सूत्रता उत्पन्न करता है। उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है।

(३) गंगाप्रसाद :

गंगाप्रसाद 'भूले-बिसरे चित्र' का दूसरा प्रमुख पात्र और नायक है। उपन्यास के तीसरे और चौथे खण्डों में उसके चरित्र का पूर्ण प्रकाशन हुआ है। मध्यवर्गीय ज्वालाप्रसाद की दूसरी पुरानी पीढ़ी के बाद इस तीसरी पीढ़ी के उच्च मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी ऐश्वर्य-विलास-प्रिय गंगाप्रसाद का आविर्भाव होता है।

दूसरे खण्ड के अन्त में हम होनहार बालक गंगाप्रसाद का परिचय पाते हैं। वह अध्ययनशील और मेहनती विद्यार्थी है। उसको दिनभर गर्मी में पढ़ते देखकर भीखू मना करता है और चलकर सो जाने को कहता है, पर उत्तर में गंगाप्रसाद कहता है, "नाहीं भीखू काका, अब की दफ़ा हमें दरजा में अव्वल आना है। चार नम्बर से हम दूसरे हो गए। इस दफ़ा हमें कोई नहीं पछाड़ सकता।"

जैदेई गंगा की यह बात सुनकर ठीक ही कहती है, "देवर जी, यह गंगा तुमसे भी बढ़कर निकलेगा। लेकिन भला सोरांव में पढ़ाई-लिखाई का क्या प्रबन्ध है ?"

गंगा पांचवाँ दर्जा पास करके छठे में हुआ है। जैदेई उसे अपने पास इलाहाबाद में पढ़ाने-लिखाने को ले जाना चाहती है। ज्वाला और यमुना सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। यमुना कहती है, "जीजी, गंगा जैसा मेरा वैसा तुम्हारा ! उसे बहुत-बहुत बढ़ना है। उसे अपने बप्पा से भी बड़ा बनना है। तो गंगा अब तुम्हारा !"

और तीसरे खण्ड में हम वाकई गंगा को बढ़ा हुआ, पढ़ा हुआ, अपने पिता से भी बड़ा डिप्टी कलेक्टर बना हुआ पाते हैं। "गंगाप्रसाद इकहरे बदन का लम्बा-सा युवक था। इलाहाबाद में बी० ए० पास करने के बाद डिप्टी कलेक्टरी में नामज़द कर दिया गया था। उसके डिप्टी कलेक्टर बनने में

ज्वालाप्रसाद की खुशामद और लक्ष्मीचन्द के प्रभाव के साथ गंगाप्रसाद की योग्यता का भी एक बड़ा हाथ था। बी० ए० में उसे सेकण्ड डिवीज़न मिला था, लेकिन खेल-कूद में और विद्यार्थी जीवन की सामाजिक चहल-पहल में वह काफी आगे था। जैदेई के साथ सिविल लाइन्स के बंगले में रहने के कारण उसे सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन सुविधाओं के कारण गंगाप्रसाद इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कॉलेज का सबसे अधिक प्रख्यात खिलाड़ी हो गया था। क्रिकेट और टेनिस, इन दो खेलों में उसकी अखिल भारतीय ख्याति थी।"

गंगाप्रसाद जिस शान से यह खबर सुनाता है कि उसे दिल्ली-दरबार का इन्तज़ाम करने वाली कमेटी में नामज़द किया गया है और जिस ठाठ से वह क्लब में ब्रिज खेलने आता है, उसे देखकर डिप्टी सुपरिंटेंडेन्ट पुलिस मीर जाफ़र अली जलते हुए-से कहते हैं, "देखा पंडत सोमेश्वरदत्त साहेब, आपने इन बरखुरदार को! क्या शान! क्या अकड़! पूरे ताल्लुकेदारी ठाठ हैं इनके!"

बरेली के डिप्टी कलेक्टर पं० सोमेश्वरदत्त गंगाप्रसाद के बारे में कहते हैं, "बाप-बेटे में फर्क तो काफ़ी है, लेकिन लड़का खानदानी है। यह गंगाप्रसाद दिल और हौसले वाला है मीर साहब! यह तो आपको मानना ही पड़ेगा। नये युग का आदमी है, इस नई दुनिया में यह काफ़ी आगे बढ़ेगा।"

मीर जाफर अली ने कहा, "जी, आगे बढ़ेंगे खाक! इनकी ऐय्याशी की शिकायतें अभी से आनी शुरू हो गई हैं। खुदा जाने इसके ये अनाप-शनाप खर्चे कहाँ से और किस तरह पूरे होते हैं, क्योंकि इसकी रिश्वत लेने की शिकायत कतई कहीं से नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ पण्डत जी, किसी दिन चक्कर में पड़ जायेंगे यह बरखुरदार!"

पं० सोमेश्वरदत्त गंगाप्रसाद के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं, "मीर साहब में और गंगाप्रसाद में फर्क इतना है कि गंगाप्रसाद साहसी भी है। अंग्रेज़ों में जो इसकी इतनी घुस-पैंठ है, वह इसलिए कि वह उन अंग्रेजों से बराबरी के साथ मिलता है, बराबरी का बरताव करता है। लेकिन डाक्टर, यही उसमें अवगुण भी है। वह आदमी खुशामद नहीं कर सकता, क्योंकि वह वीर है और वीरता अपराध की जननी है, यह भी सत्य है।······गंगाप्रसाद की अकड़ उसकी सबसे बड़ी दुश्मन है। गंगाप्रसाद के साथ मुसीबत यह है कि वह भीतर-बाहर एक है, जबकि मीर साहब के भीतर-बाहर में जमीन आसमान

का अन्तर है। डाक्टर साहब, यह दुनिया निहायत दुरंगी है, आदमी दुरंगा होकर ही पनप सकता है।"

गंगाप्रसाद के चरित्र की बहुत-सी विशेषताएँ उपर्युक्त प्रत्यक्ष कथन तथा पात्रों के वार्तालाप से प्रकट हो गई हैं। वह अपनी योग्यता और व्यक्तित्व के प्रभाव से न केवल दिल्ली-दरबार के लिए अपने को नामज़द करा लेता है, बल्कि पुलिस-कप्तान मि० क्लीमेंट्स से कहकर मीर जाफर अली का नाम भी सम्मिलित करा लेता है।

गंगाप्रसाद की पत्नी रुक्मिणी पुराने ढंग की औरत है। गंगाप्रसाद चाहता है कि वह नई चाल-ढाल अपना ले, अंग्रेजी पढ़ ले और मेमों की तरह रहने लगे। जब रुक्मिणी कहती है कि "तुम्हारे साथ दिल्ली घूमने पर लोग क्या कहेंगे ?"—तो गंगाप्रसाद कहता है, "अरे घूंघट काढ़ने की क्या ज़रूरत है ? यह सब पुराना दकियानूसीपन छोड़ो भी।" भीखू रुक्मिणी से कहता है कि "साया पहिन के तुमहूँ मेम साहिब बन जाओ न ! उहैं अँगरेजिउ सीख लीन्हेव ! हमारा बचवा की हविस पूरी हुई जाय। नई दुनिया आय न, तौन नए-नए गुण सीखैं का पड़ि हैं !"

नये युग का यह अफसर बड़ी योग्यता और कार्यदक्षता का परिचय देता है। जैदेई ने भविष्यवाणी और कामना की थी कि गंगा कलेक्टर बनेगा। वाकई गंगाप्रसाद खूब उन्नति करता है। दिल्ली-दरबार में वह अपनी योग्यता की धूम मचा देता है। मीर जाफर अली अल्लामा वहशी से कहते हैं, "देखने में ही बच्चे हैं, दिल्ली-दरबार में इनकी धूम थी।" वह जौनपुर में जिस सूझ-बूझ, योग्यता और कार्यकुशलता से खिलाफत, असहयोग-आन्दोलन का दमन कर देता है, उसके पुरस्कार-रूप में कानपुर-आन्दोलन को कुचलने के लिए उसे कानपुर का स्थानापन्न ज्वाइंट मजिस्ट्रेट नियुक्त कर दिया जाता है। यह एक बहुत बड़ा सम्मान था, क्योंकि "किसी हिन्दुस्तानी को कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट बना दिया जाना बहुत बड़ी बात थी। वह पहला हिन्दुस्तानी था, जो इस 'कुरसी' पर बैठा था।" अपनी योग्यता के बल पर वह शीघ्र ही कलेक्टर का पद पा लेता है।

गंगाप्रसाद अपनी चाची जैदेई को भी खूब मानता है। उससे पूरी ममता का व्यवहार करता है। जब जैदेई इलाहाबाद में अपने अकेलेपन की करुणा प्रकट करती है, तो गंगा कहता है, "चाची, इसमें दुखी होने की क्या बात है ?

अगर कहो तो मैं अपनी बदली इलाहाबाद करा लूं।" यह सुनकर जैदेई की समस्त करुणा लोप हो गई।

जैदेई के सिर पर ही गंगा राजा-महाराजाओं की तरह ठाठ से रहता है। दिल्ली जाते समय जैदेई बड़े प्रेम से गंगा के सिर पर हाथ फेरती है और कहती है, "तू किस राजा-महाराजा से कम है! ......मैं कहती हूँ तेरे सामने वह बड़े-बड़े राजा-महाराजा गुलाम दीखें।......दिल्ली जाकर ठाठ से रहना, अपना मन छोटा न करना!" और जैदेई ने सौ-सौ के दस नोट गंगाप्रसाद को दे दिए। यही नहीं, हीरे की एक बहुमूल्य अंगूठी भी उसे पहना दी! गंगाप्रसाद भावावेश में जैदेई से लिपट गया, "चाची, चाची! तुम मेरी माँ से बढ़कर हो! कितनी ममता तुमने मुझे दी है!"

गंगाप्रसाद हौसले और साहस का आदमी है। खतरों से जूझने में उसे आनन्द आता है। बरेली में वह मीर जाफ़र अली और अल्लामा वहशी के अत्याचार और षड्यंत्र का बड़े साहस से सामना करता है। वह बड़े उत्साह और वीरता से बरेली में रुक्मा को अल्लामा वहशी और मीर जाफर अली के चंगुल से छुड़ाने का प्रयत्न करता है और जौनपुर में माया शर्मा (मलका) को अलीरजा तथा अब्दुलहक के फंदे से निकाल लाता है। उसे कोई नीचा नहीं दिखा सकता। जब अब्दुलहक गंगाप्रसाद से विरोध ठान लेते हैं, तो वह उन्हें हर कदम पर नीचा दिखाकर छोड़ता है। अब्दुलहक की एक नहीं चलने देता। वह अपने प्रभाव और सूझबूझ से बंसी को बचा लेता है, जब गंगाप्रसाद से बदला लेने के लिए अब्दुलहक उसे फँसाना चाहते हैं। उससे वैर-विरोध ठानकर कोई पार नहीं पा सकता। तपेदिक से ग्रस्त दुर्बल गंगाप्रसाद को देखकर सत्यव्रत मन में कहता है: "क्या यह वही आदमी था, जिसके रौब के आगे लोग काँपते थे, जो बड़े-बड़े अंग्रेजों से लड़ सकता था, जिसने हजारों आदमियों के बीच से माया को छुड़ाया था! वह उमंग, उत्साह, शक्ति और कर्म का समूह, जिसके आगे वह श्रीहत और निष्प्रभ हो जाता था, वह कहाँ गया?"

गंगाप्रसाद अत्यन्त स्वाभिमानी है। वह हिन्दुस्तानी है, पर अपने को अंग्रेजों का गुलाम नहीं समझता। वह उनसे बराबरी का व्यवहार करता है।

गंगाप्रसाद भारतीय राजनीति से पूर्ण अभिज्ञ है। गंगाप्रसाद का ख्याल है कि अभी भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति में बहुत देर है। उसे कांग्रेस द्वारा

खिलाफ़त आन्दोलन में योग देना पसंद नहीं है। वह समझता है कि तुर्की के खलीफ़ा से भारतीय मुसलमानों और भारतीयों को कुछ लेना-देना नहीं है। वह भारतीय मुसलमानों की पृथकता की नीति को सहन नहीं कर सकता। उसका विचार है कि मुसलमान इस देश को अपना देश नहीं समझते, उनमें मज़हबी तास्सुब अत्यधिक है, वे हिन्दुओं से मिलकर रहना नहीं चाहते। उसके अनुसार हिन्दू-मुस्लिम एकता आकाश-कुसुम है। वह समझता है कि जबतक हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव दूर नहीं होता, तब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता। गंगाप्रसाद अपनी अनुभवशीलता से जान जाता है कि गांधी जी का असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन शनैः-शनैः केवल हिन्दुओं का आन्दोलन रहता जा रहा है। मुसलमान इससे दूर होते जा रहे हैं। उसने अनुभव किया कि आन्दोलन धीरे-धीरे स्वतः ही समाप्त हो रहा है। इसीलिए वह अपनी नीति बदल देता है। पहले वह कड़ी सज़ाएँ देता था, अब सत्याग्रहियों को हल्की सजाएँ देकर छोड़ने लगा है। उसे मालूम है कि "यह आन्दोलन शहर वालों का है, गाँवों में इसकी जड़ें हैं ही नहीं।" वह अपने अनुभव के बल पर जान जाता है कि स्वदेशी आन्दोलन को भारतीय पूँजीपति आर्थिक सहायता दे रहे हैं।

गंगाप्रसाद बड़ा ही विचारवान् व्यक्ति है। उसका हर कार्य तर्क और बुद्धि से चालित है। वह अंग्रेज सरकार का अधिकारी है, पर उसकी भारतीयता मरी नहीं है। कानपुर में जलूस पर लाठी चार्ज कराने के बाद उसे बड़ी आत्मग्लानि होती है। यद्यपि उसने बड़ी कुशलता और बुद्धिमानी से असिस्टेण्ट सुपरिण्टेंडेन्ट पुलिस को गोली चलाने से रोककर गोलीकांड होने से बचाया था, पर निर्दोष व्यक्तियों को लाठी चार्ज में भी चोटें आने से उसे बड़ी मानसिक खिन्नता होती है। सामूहिक सत्याग्रह के अवसर पर हत्याकांडों की कल्पना से उसका हृदय काँप उठता है। वह सोचता है, "अपने देशवासियों की हत्या उससे ही कराई जायगी—उससे, उसके हुक्म से, उसके सामने ! आज उसने लाठी चलवाई, कल उसे गोली चलवानी पड़ेगी। लोग मरेंगे, स्त्रियाँ विधवा होंगी, बच्चे अनाथ होंगे !" ज्ञानप्रकाश, सत्यव्रत, माया (मलका) के प्रभाव से गंगाप्रसाद भी शनैः-शनैः ब्रिटिश-गुलामी को लानत मानने लगा है और देश की स्वतंत्रता की कामना करता है।

उसका स्वाभिमान किसी अंग्रेज़ के आगे झुक नहीं सकता। उसे यूरोपियन

लोगों की रंगभेद-नीति से चिढ़ थी। कानपुर के उद्योगपति अंग्रेज़ मि० हैरिसन के यहाँ दावत थी। कुछ अधिक पीकर मि० हैरिसन बहक गए और गांधी की शान में अनाप-शनाप बोलते हुए यहाँ तक कह देते हैं कि "मैंने यह पार्टी उस वहशी गद्दार के जेल जाने की खुशी में दी है।" गंगाप्रसाद से नहीं रहा गया और बोले, "मि० हैरिसन, अगर आपने पहले से अपने इस डिनर की नीच और नापाक भावना का ज़िक्र कर दिया होता तो कम-से-कम मैं तो इस डिनर में सम्मिलित न होता,...।" हैरिसन के बिगड़ने और गांधी जी को गालियाँ देने पर गंगाप्रसाद भी मि० हैरिसन को गालियों से पेश आता है। वह हैरिसन की धौंस ज़रा नहीं सहता।

इस कांड के बाद जब हैरिसन गंगाप्रसाद के पीछे पड़ जाता है और कमिश्नर से उसके कांग्रेसी होने की शिकायत करता है तो गंगाप्रसाद कमिश्नर से मिलकर मामला ठीक-ठाक करा लेता है। पर कमिश्नर ने भी जब यह कहा कि "जो हो गया वह हो गया, लेकिन एक बात भविष्य के लिए याद रखना—अंग्रेज अंग्रेज है, हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी है! एक शासक है, दूसरा शासित है!...आगे से ऐसे मामलों में तुम्हारे लिए खामोशी ज्यादा फायदेमंद रहेगी।"—तो गंगाप्रसाद के मन को बहुत ठेस पहुँची। जब हैरिसन के प्रभाव से "बिना किसी कारण उसका तबादिला एटा के डिप्टी कलेक्टर की हैसियत से कर दिया गया"—तो गंगाप्रसाद को बहुत दुःख होता है। वह सोचता है कि उसे यह पुरस्कार मिला है! हैरिसन ने जब व्यंग्य से कहा, "मिस्टर गंगाप्रसाद, अब आगे से किसी अंग्रेज़ से उलझने की धृष्टता न करना"—तो गंगाप्रसाद जल उठता है। "रह-रहकर उसे यह अनुभव हो रहा था कि वह एक असभ्य और उद्दण्ड अंग्रेज़ से बुरी तरह पराजित हुआ, केवल इसलिए कि वह हिन्दुस्तानी है। उसकी इस पराजय का मूल कारण था ब्रिटिश सरकार की रंग-भेद की भावना। बिना जाने हुए वह भावनात्मक रूप से ज्ञानप्रकाश के निकट आता जा रहा था। सत्य, न्याय, मानवता गुलाम के लिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है।...वह अपने अन्दर वाले विद्रोह को जितना अधिक दबाने का प्रयत्न करता था, उतना ही अधिक वह विद्रोह बढ़ता जाता था।" गंगाप्रसाद के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व मच जाता है। वह ज्ञानप्रकाश को कहता है, "...अब मैं सोचता हूँ कि मैंने तुमसे कांग्रेस में आने से मना करने में ग़लती

की थी। अब मैं सोच रहा हूँ···नहीं, यह कहना ठीक होगा कि मैं सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दूँ और कांग्रेस ज्वाइन कर लूँ।"

इसी मनःस्थिति में गंगाप्रसाद अपना इस्तीफ़ा लिख डालता है। पर जब वह यह खबर सुनता है कि "मुल्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है" तो उसका विचार बदल जाता है। वह कहता है, "···हमें इस गुलामी से अभी निजात मिलती नहीं दिखलाई देती। मुझे ऐसा लगता है कि ये दंगे अभी बढ़ेंगे, बेतहाशा बढ़ेंगे। यह तो शुरूआत भर है।" वह फरहतुल्ला से कहता है, "आपने उस दिन यह तसलीम किया था कि यह हिन्दू-मुसलमानों का भेद-भाव बुनियादी है, और मैं अब इस बात को मान गया। इस बुनियादी भेद-भाव को मिटाने में सैंकड़ों साल लग जायेंगे। इन सैंकड़ों सालों का इन्तज़ार कौन कर सकता है?" वह ज्ञानप्रकाश से कहता है, "तो चचाजान, मैं आज बाल-बाल बच गया। जब गुलामी ही भोगनी है, तो आराम के साथ, हँस-खेलकर क्यों न भोगी जाय!" और यह कहते-कहते गंगाप्रसाद ने अपने हाथ वाला इस्तीफ़ा फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।"

(भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५८७-८८)

गंगाप्रसाद की ऐश्वर्य-विलासप्रियता ही संभवतः नौकरी न छोड़ सकने का बड़ा कारण थी, दासता-जनित अपमान की कटुता तो क्षणिक भावुकता थी। अपने अहम्, सुख-भोग की तुष्टि विलास-प्रिय गंगाप्रसाद कैसे छोड़ सकता था? सुरा-सुन्दरी की उसे बुरी लत पड़ जाती है। आरंभ में ही उसकी ऐय्याशी की शिकायतें आने लगती हैं। गंगाप्रसाद संतो को अपने जाल में फँसाकर उसे अपनी वासना का ही शिकार नहीं बनाता, अपितु उसके पतन के गर्त में गिरने का कारण भी बनता है। उसकी पशु-प्रवृत्ति एकदम उत्तेजित हो जाती है। जौनपुर में वह मलका नामक वेश्या को रख लेता है। इस ऐय्याशी में वह अत्यधिक उल्टे-सीधे खर्च करता है। सौ रुपये महीने की शराब उड़ा जाता है। जब मलका माया शर्मा बनकर नेक जीवन बिताने लगती है और सत्याग्रह के सिलसिले में कानपुर में गंगाप्रसाद से मिलती है, तब उसे एकांत में पाकर गंगाप्रसाद की पशु-प्रवृत्ति एकदम जाग उठती है। वह माया को आलिंगन में बाँध लेता है। माया बड़ी कठिनाई से उसके पाँव पकड़कर अपने को उसकी वासना से बचाती है। गंगाप्रसाद की यही विलासिता उसे तोड़ डालती है।

अनाप-शनाप खर्चों के कारण वह कुछ बचा नहीं पाता। उसके चरित्र की इस दुर्बलता की शिकायत भीखू ज्वालाप्रसाद से करता है।

"गंगाप्रसाद में भावना और मुरव्वत नाम की चीज़ों की कमी को ज्वालाप्रसाद ने हमेशा अनुभव किया था।" वह विद्रोही और स्वच्छन्द प्रकृति का है। पारिवारिक बंधन उसे नहीं सुहाते। बीवी-बच्चों, घर-गृहस्थी, कुल-समाज के पचड़ों से उसे सरोकार नहीं है। वह स्वच्छन्द है, पर अविवेकी नहीं। अपने पिता का वह लिहाज़ ही नहीं करता, उनसे डरता भी है। ज्वालाप्रसाद के जौनपुर रहने पर वह मलका को बनारस भेज देता है और अपनी आदतों में कुछ सुधार करता है। उसकी बुर्जुआ मनोवृत्ति पुराने सम्मिलित परिवार के संस्कारों से सर्वथा दूर पड़ गई है। वह अपने पिता के लिहाज से ही अपने चचेरे भाई बंसीधर को नौकरी दिलाता है, परिवार के लिहाज़ से नहीं। वह बंशीधर से विशेष स्नेह नहीं करता, रूखा ही बर्ताव करता है।

उसके अभिजात संस्कार प्रबल हैं। इसी कारण तो वह मलका को चाहने पर भी उसे अपने घर नहीं लाता, उसे अपनी ब्याहता नहीं बनाता। अपने परिवार और समाज की मर्यादा का सवाल उठा देता है। उसके अभिजात संस्कारों की एक और बड़ी दुर्बलता वहाँ प्रकट हुई है, जब वह नई रौशनी का पढ़ा-लिखा होते हुए भी गेंदालाल को बड़े अपमान के साथ अपने ड्राइंग रूम से इसलिए निकाल देता है कि वह चमार है।

गंगाप्रसाद के चरित्र की एक बहुत बड़ी दुर्बलता और संभवतः उसके चरित्र-चित्रण की बड़ी असंगति मलका के प्रसंग में वहाँ प्रकट हुई है जब वह अलीरज़ा की यह मूर्खतापूर्ण बात मान लेता है कि मलका को दिखावे के लिए बेग़म अलीरज़ा बनने पर राज़ी कर लिया जाय, पर व्यवहार में वह गंगाप्रसाद की ही बनी रहे। आश्चर्य होता है कि गंगाप्रसाद-जैसा विवेकशील, बुद्धिमान्, पढ़ा-लिखा, इतना बड़ा सरकारी अफ़्सर इस स्थिति को कैसे स्वीकार कर बैठा! संभवतः यहाँ लेखक-द्वारा उसके चरित्र-चित्रण में त्रुटि हुई है।

पाँचवें खण्ड में गंगाप्रसाद तपेदिक के रोग से ग्रस्त श्रीहीन, दुर्बल, क्षीण हो रोग-शय्या पर पड़ जाता है। वह कहता है, "मेरी बीमारी! नवल, मैं अपनी बीमारी जानता हूँ, यह राजरोग है, जिससे कोई अच्छा नहीं होता; ...मैं टूट रहा हूँ, अपने टूटने से पहले मैं चाहता था कि तुम बन जाओ।"

"गंगाप्रसाद की बातचीत में एक विवशता से भरी घुटन थी। वह स्वामित्व

की भावना, वह अधिकार का अहं, वे सब एकबारगी ही गंगाप्रसाद को छोड़ गए थे।" और एक दिन गंगाप्रसाद मरने से पहले नवल को बताता है, "नवल, जानते हो मैं क्यों टूटा और कैसे टूटा? तुम ताज्जुब करोगे यह जानकर कि अपने को तोड़ने वाला स्वयं मैं हूँ। मेरे अन्दर वाली कायरता और उस कायरता की घुटन ने मुझे तोड़ दिया।...मैं उसी समय टूट गया था जब मैंने अपना इस्तीफ़ा फाड़ डाला था। पिछले आठ-दस साल में केवल घिसटता रहा हूँ। अब उसका भी अन्त आने वाला है...।"

(४) नवलकिशोर :

नवलकिशोर वर्मा जी की पीढ़ी का विद्रोही नवयुवक है। यह मुन्शी शिवलाल के कायस्थ परिवार की चौथी पीढ़ी का नवयुग का नवयुवक है। पाँचवें खण्ड में इसी की प्रधानता है। बुद्धिजीवी गंगाप्रसाद की पीढ़ी ने क्रांतिकारी नवल को जन्म दिया।

बालक नवल का प्रथम परिचय ही उसके भावी जीवन और चरित्र का आभास दे देता है। चौथे खण्ड के पाँचवें अध्याय के आरम्भ में ही हम बालक नवल को बग़ावत का गीत गाते पाते हैं। ज्ञानप्रकाश कहता है, "बाप ज्वाइंट मजिस्ट्रेट हो गए हैं और बेटा बग़ावत के गीत गा रहा है!" एक कोने में खड़ा चुपचाप ज्ञानप्रकाश की बातें सुनकर नवल बोला, "बाबा, बड़े होकर हम भी जेल जायेंगे, आप उदास न हों। भारत माता की जय!"

यही बालक नवल बड़ा होकर कर्मवीर, स्वतन्त्रता-प्रिय, आत्माभिमानी, विद्रोही, पितृभक्त, कर्त्तव्यपरायण, ब्रिटिश राज्य-विरोधी, त्यागी, सत्याग्रही और नवयुग का नये विचारों का नवयुवक दिखाई देता है।

वह छरहरे बदन का लम्बा युवक है—स्वस्थ और दृढ़। उसका व्यक्तित्व आकर्षक है, वह सुन्दर युवक है। वह मेहनत कर सकता है, पर प्रयत्न कम करता है, क्योंकि सुविधाओं में पलने के कारण, जैसा कि प्रेमशंकर उससे कहता है, "सब-कुछ मिलता गया है तुम्हें बिना प्रयत्न के, सब-कुछ मिलता जा रहा है तुम्हें बिना प्रयत्न के!"

पर उसके जीवन में यह स्वतः सब-कुछ मिलते जाने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। उसके पिता गंगाप्रसाद के असाध्य रोग और मृत्यु ने उसके जीवन की धारा ही बदल दी। कहाँ तो वह आई० सी० एस० के लिए विलायत

जाने वाला था, कहाँ परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर ब्रिटिश नौकरशाही का जबरदस्त विरोधी, राष्ट्रीय विचारधारा का सत्याग्रही बन बैठा।

पितृ-सेवा की भावना उसमें अपूर्व है। अपने पिता की बीमारी से वह बहुत दुःखी होता है। परीक्षा के बाद, पिता की बीमारी की सूचना के पूर्व, उस दिन वह कितना प्रसन्न था अपनी प्रिया उषा से मिलकर, अपने भावी ससुर रायबहादुर कामतानाथ से मिलकर, अपने स्विट्ज़रलैंड जाने के सपने सजाकर !

पर अगले ही दिन खुशी दुःख में बदल गई। वह अपने पिता की बीमारी की चिन्ता में डूब जाता है। रायबहादुर कामतानाथ और उषा के प्रलोभनों को ठुकरा कर, वह विलायत जाने से इन्कार कर देता है, क्योंकि उसे अपने बीमार पिता की सेवा करनी है। वह विलायत न जाकर टी० बी० के कीटाणुओं से भरे भुवाली सैनिटोरियम में अपने पिता के साथ जाने को तैयार हो जाता है। वह अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करता।

कामतानाथ उसको विलायत का सारा खर्चा उठाने को तैयार हैं और भरसक प्रयत्न करते हैं कि नवल कीटाणुओं से परिपूर्ण उस स्थान पर न जाकर आई० सी० एस० के लिए विलायत चला जाय, पर नवल बड़ी दृढ़ता से उन्हें जवाब देता है, "बाबू जी को इस हालत में छोड़कर मैं कहीं जाने की कल्पना नहीं कर सकता। आप बेकार मुझे कर्त्तव्य से डिगाने की कोशिश कर रहे हैं।"

उसके पिता गंगाप्रसाद मरते समय जब नवल के चरित्र की यह दृढ़ता देखते हैं तो आश्वस्त होकर कहते हैं कि अब मुझे मरने की कोई चिन्ता नहीं रही, कोई भय नहीं रहा, "तुम स्वाभिमानी हो और समर्थ हो, तुम सुविधाओं को ठुकरा सकते हो, तुम मुसीबतों का पहाड़ सिर पर उठा सकते हो ! ...तुम सब-कुछ सँभाल लोगे...मुझसे कहीं ज्यादा अच्छी तरह सँभाल सकोगे।"

नवल के पिता गंगाप्रसाद 'कैरियर' के पीछे भागते रहे, भावना और ममता से दूर रहे थे, पर नवल कामतानाथ को स्पष्ट कहता है, "पापा, कैरियर आदमी के जीवन में ममता और भावना से बढ़कर नहीं होता है।"

नवल के पिता गंगाप्रसाद मरने से पहले नवल को कहते हैं, "तुम भगवान् को छोड़कर किसी से दबना मत, तुम अपनी आत्मा की पुकार के विरुद्ध कोई काम मत करना, और तुम अपने को भूलने के लिए कभी शराब मत पीना।"

नवल पिता की इन बातों को गांठ बाँध लेता है और वैसा ही करने का वचन देता है।

पिता की मृत्यु के बाद नवल अपने उत्तरदायित्व को समझता और निभाता है। वह नये युग का आदमी है। जब ज्वालाप्रसाद विद्या को आगे पढ़ाने के पक्ष में नहीं होते, और विद्या बी० ए० फाइनल करना चाहती है, तो नवल विद्या का समर्थन करता है और उसे बोर्डिंग हाउस में बनारस छोड़ आता है। वह शादी के बाद भी वचनानुसार विद्या को बी० ए० फाइनल कराता है।

पिता की मृत्यु और ज्ञानप्रकाश के संसर्ग से नवल बदल गया था, "इधर पिछले तीन महीनों में उसकी दुनिया बदल गई थी, उसकी मान्यताएँ बदल गई थीं, उसका दृष्टिकोण बदल गया था। यही नहीं, वह अनुभव कर रहा था कि वह खुद बदल गया है।"

नवल विलायत जाने का विचार छोड़कर एल-एल० बी० ज्वाइन कर लेता है। घर की हालत, विद्या की शादी के खर्च को देखते हुए वह अपना विचार बदल देता है। जब ज्ञानप्रकाश नवल को विलायत जाने पर ज़ोर देता है और कहता है कि खर्चे की चिन्ता मत करो तो नवल उत्तर देता है, "नहीं ज्ञान बाबा, मुझे तो यहाँ रहकर अपने परिवार को देखना है। बाबू जी विद्या की शादी तै कर गए हैं, उसकी शादी इसी नवम्बर में करनी है। और मुझे आई० सी० एस० बनने का अब शौक भी नहीं रह गया।"

विद्या की शादी के सम्बन्ध में नवल के पिता "जो भी तै कर गये हैं, वह नवल के लिए पत्थर की लीक है।" जब ज्ञानप्रकाश अपनी सामर्थ्य के बाहर तै किया हुआ दहेज़ देने और बिन्देश्वरीप्रसाद-जैसे अर्थ-पिशाच के यहाँ विद्या की शादी करने पर आपत्ति उठाता है तो नवल कहता है, "तिलक तो अब भेजना ही है बाबा! हम लोग अब अपनी ज़बान दे चुके हैं। जिस तरह भी हो विद्या की शादी वहीं करनी होगी।"

नवल को अपनी बहन विद्या से अत्यन्त स्नेह है। जब विद्या को अपने विवाह के लिए तै दहेज़ का पता चलता है और वह नवल के आगे फूट पड़ती है—वहाँ शादी न करने का अनुरोध करती है, तो "त्याग, उत्कर्ष और कर्त्तव्य-निष्ठा के नशे में खोया हुआ नवल विद्या की आन्तरिक भावना को नहीं समझ सका।" नवल विद्या के विवाहित जीवन के भावी संकट की कल्पना नहीं कर सका।

नवल उषा से प्रेम करता है किन्तु जब वह देखता है कि उषा वैभव और

सम्पन्नता चाहती है, जो शायद नवल उसे नहीं दे सकता, देना भी नहीं चाहता, क्योंकि नवल को वैभव और सम्पन्नता से घृणा हो गई है, तो वह अपने को उषा के मोह से हटा लेता है। वह समझ जाता है, "यह असमान विचारों और मान्यताओं वालों में विवाह, यह असमान परिवारों में विवाह, यह बड़ा भयानक है।"

उषा को न पा सकने की खिन्नता नवल महसूस करता है, वह जानता है कि "मैं बराबर खोता जा रहा हूँ, टूटता जा रहा हूँ।" पर विद्या उसके बारे में ठीक ही कहती है, "दादा, तुम टूटकर फिर से बन रहे हो, खोकर अपने को पा रहे हो।"

उषा को खोकर नवल ने जीवन का सत्य पा लिया। वह कांग्रेस ज्वाइन कर लेता है। राष्ट्रभक्ति की पूतभावना से आपूरित हो जाता है। वह खद्दरधारी ही नहीं बन जाता, भारत माता की लौह-शृंखलाओं को तोड़ने के लिए कांग्रेस के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगता है। वह नमक-कानून तोड़ने को चल पड़ता है, जेल जाने को निकल जाता है। उसके परदादा राष्ट्र-प्रेम से अनभिज्ञ थे, दादा ज्वालाप्रसाद समझते हुए भी राष्ट्रप्रेम से दूर रहे, उसके पिता गंगाप्रसाद न चाहते हुए भी गुलामी का ज़हर पीते रहे और टूट गए, पर नवल सच्चा देशभक्त निकलता है।

नवल जब प्रेमशंकर से बाबू बिन्देश्वरी की रिश्वतखोरी की अजीब कथा सुनता है तो उसे जबरदस्त धक्का लगता है। वह कहता है, "दुनिया में यह सब हो सकता है, यह सब भी होता है, मैंने यह सोचा तक न था।" और इससे भी बड़ा धक्का उसे लगता है तब जब उसे अपनी बहन विद्या को उन अर्थ-पिशाचों के यहाँ से सदा के लिए वापस ले आना पड़ता है। नवल सबकुछ झेलने को दृढ़ है। वह विद्या को भी धीरज बँधाता है। उसे अपने पाँव पर खड़ी होने के लिए 'नारी शिक्षा सदन' में उसकी नियुक्ति करा लेता है। उषा जब नारी के नौकरी करने पर आपत्ति करती है तो नवल कहता है, "जो लोग विद्या पर उँगलियाँ उठाएँगे, वे पुरानी दुनिया के लोग होंगे—उस पुरानी दुनिया के जो मिट रही है। जहाँ तक नई दुनिया वालों का सवाल है, वे लोग उसे ठीक समझेंगे, वे लोग विद्या का आदर करेंगे। स्त्री का भी अपना एक अस्तित्व है।" वह प्रगतिशील विचारों का बन जाता है। ज्ञानप्रकाश ठीक ही कहते

हैं, "जिस देश में तुम्हारे और प्रेमशंकर जैसे निष्ठावान्, चरित्रवान् और साहसी नवयुवक पैदा होने लगें, उस देश को कोई भी शक्ति गुलामी में बाँध कर नहीं रख सकती।"

(५) ज्ञानप्रकाश :

ज्ञानप्रकाश 'भूले-बिसरे चित्र' का पाँचवाँ प्रमुख पुरुष-पात्र है। उसके आदर्श और प्रेरणापूर्ण चरित्र का प्रकाशन भी वर्मा जी ने बड़े मनोयोग से किया है। उसका आगमन चौथे खण्ड में होता है और चौथे तथा पाँचवें खण्डों की कथा, घटनाओं और प्रसंगों में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

ज्ञानप्रकाश ज्वालाप्रसाद के मामा "मुंशी रामसहाय का सबसे छोटा लड़का था और वह सन् १९१२ में इंगलैंड गया था बैरिस्टर बनने के लिए। उसके इंगलैंड के प्रवास-काल में ही मुंशी रामसहाय की मृत्यु हो गई थी। उसकी माता की मृत्यु उसके इंगलैंड जाने के पहले ही हो चुकी थी। राजापुर में उसके बड़े भाई सत्यप्रकाश जमींदारी संभाल रहे थे। दोनों भाइयों के स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर था, और इसीलिए ज्ञानप्रकाश को अपने घर से कोई लगाव न रह गया था। बम्बई से वह सीधा इलाहाबाद आया था, जहाँ वह वकालत के सिलसिले में बसना चाहता था।" घर जाने में उसे बावेला खड़ा हो जाने का संदेह है : "विलायत से लौटा हूँ, लोग कहेंगे प्रायश्चित्त करो, यह करो, वह करो। तो इन झंझटों में कौन पड़े जाकर !"

लंदन में रहते हुए हिन्दुस्तान की राजनीतिक हलचलों में ज्ञानप्रकाश ने खूब भाग लिया था। इसलिए वहाँ से जल्दी आने का उसका जी नहीं हुआ था। इंगलैंड में ज्ञानप्रकाश की शादी की बात "काफ़ी दूर बढ़कर टूट गई थी। जिस लड़की से शादी की बात चल रही थी, उसका प्रेमी जर्मनी की लड़ाई में मरा हुआ करार दे दिया गया था। लेकिन वह मरा नहीं था···, वह इंगलैंड लौट आया," और ज्ञानप्रकाश की "शादी का किस्सा खत्म !"

ज्ञानप्रकाश आते ही कांग्रेस ज्वाइन कर लेता है। वह आते ही अमृतसर कांग्रेस देखने चल देता है। देश में जो नई चेतना आ रही है, वह उसके दर्शन करना चाहता है। गंगाप्रसाद से वह केवल तीन साल बड़ा है। दोनों म्योर कॉलेज इलाहाबाद में पढ़े हैं, साथ घूमे हैं। दोनों में घनिष्ठता है। जब गंगाप्रसाद ज्ञानप्रकाश को कांग्रेस-वांग्रेस से दूर रहने को कहता है, तो ज्ञानप्रकाश जवाब देता है, "बिल्कुल यही बात तुमसे सुनने की आशा थी बरखुरदार !

डिप्टी कलेक्टर हो न ! मौज करते हो, चैन की जिन्दगी है। लेकिन मुझसे पूछो, मैं जो यूरोप से लौट रहा हूँ ! हम लोग गुलाम हैं, हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं। तुमने यह सब अनुभव नहीं किया,...।"

उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। देश की राजनीति से वह सर्वथा अभिज्ञ है। वह अपने प्रभाव से गंगाप्रसाद के हृदय में विद्रोह की चिंगारी सुलगा देता है। वह अपने अकाट्य तर्कों से सबको चुप कर देता है। वह अपने प्रभाव से गंगाप्रसाद को भी अमृतसर कांग्रेस देखने अपने साथ ले जाता है। देश की गुलामी, गरीबी और दुर्दशा का उसे दर्द है। वह जानता है कि अंग्रेजों की लड़ाई हिन्दुस्तानियों ने लड़ी है। पर फिर भी हिन्दुस्तान को डोमीनियन स्टेटस नहीं दिया जा रहा ! वह भारतीय जनता की राज-भक्ति से परिचित है जिसमें राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता है। वह समझता है कि हिन्दू-मुसलमानों की साम्प्रदायिक समस्या काल्पनिक है जिसे अंग्रेज़ों ने मुस्लिम-लीग की स्थापना कराकर खड़ा किया है। गांधी जी के रूप में देश को एक वास्तविक नेता मिल गया है जो इन समस्याओं को समाप्त कर रहा है।

ज्ञानप्रकाश समझता है कि भारत के मुसलमानों को कांग्रेस की ओर खींचने के लिए ही महात्मा गांधी ने खिलाफ़त आन्दोलन में योग देने और शोक-दिवस मनाने का उपक्रम किया है। वह हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को मिटाना आवश्यक समझता है। उसके अनुसार "यह भेद-भाव केवल सद्भावना से ही मिट सकता है।" वह गंगाप्रसाद को यही सद्भावना दिखाने की सलाह देता है। जब डिप्टी अब्दुलहक़ अपनी साम्प्रदायिक भावना प्रकट करते हुए कहते हैं कि "डोमीनियन स्टेटस, स्वराज—इनके माने हैं अंग्रेज़ों की सरपरस्ती में हिन्दूराज का क़ायम होना"—तो ज्ञानप्रकाश समझाते हुए कहता है, "मैं समझा नहीं, यह हिन्दू-मुसलमान का सवाल किस तरह उठ खड़ा होता है ! हम लोग इस देश के निवासी हैं, चाहे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान ! और इस देश के निवासी होने के नाते हम हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं।" ज्ञानप्रकाश बड़ी सूझ-बूझ से साम्प्रदायिक दंगे होने से बचाता है।

किसी नेक काम के लिए मामूली झूठ बोलने को वह कोई बुराई नहीं समझता। वह गंगाप्रसाद को अमृतसर कांग्रेस में चलने को कहता है और सुझाता है कि ज्वालाप्रसाद को कह देना मेरठ में कृष्णचन्द्र के यहाँ जा रहा हूँ। किन्तु वह बड़ी बुद्धिमानी से गंगाप्रसाद को अनाप-शनाप खर्च कम करने और सुरा-

सुन्दरी से बचने की, अलीरजा से दूर रहने की सलाह देता है। निःसन्देह वह बड़ा बुद्धिमान् है, बड़ा कार्यकुशल है। वह बड़ी बुद्धिमानी से थर्डक्लास में ही अमृतसर कांग्रेस में जाना उचित समझता है और यूरोपियन या एंग्लोइंडियनों वाले थर्डक्लास के कम्पार्टमेंट में सफर करता है। वह यूरोपियन पादरी से फ्रेंच में बात करके उसे प्रभावित करता है।

ज्ञानप्रकाश आयु में गंगा से भी बड़ा है, पर वह विचारों से गंगा से भी आगे की पीढ़ी का है। वस्तुतः वह नवल की नई पीढ़ी को बनाने वाला है। वह नई रोशनी का प्रकाश-स्तम्भ है। वह बच्चा जनाने की पुरानी दाई वाली परम्परा के खिलाफ़ है, इसीलिए वह गंगाप्रसाद की पत्नी के प्रसव के लिए लेडी डाक्टर को बुलाना चाहता है। वह दहेज़ के विरुद्ध है। वह ज्वालीप्रसाद को कर्ज़ लेकर दहेज़ देने से रोकता है। वह विद्या को अपने पाँव पर खड़ा होने के लिए नौकरी दिलाता है।

ज्ञानप्रकाश बहुत ही साहसी, वीर और निर्भीक है। अन्याय के सामने झुकना उसने सीखा ही नहीं। जब कानपुर का यूरोपियन स्टेशन मास्टर उन्हें यूरोपियनों वाले कम्पार्टमेंट में से उतारना चाहता है तो इस भेद-भाव की नीति का विरोध करता हुआ ज्ञानप्रकाश उतरने से इन्कार कर देता है। वह स्पष्ट कहता है, "हाँ-हाँ, बुलाइए पुलिस वालों को, वही हम लोगों को उतारेगी।" वह जिस साहस और निर्भीकता के साथ माया शर्मा को अलीरज़ा की कैद से छुड़ाने में गंगाप्रसाद की सहायता करता है, जिस साहस और वीरता से विद्या को उसके ससुराल वालों के अत्याचारों से बचाकर लाता है और विद्या के गहने रखने का प्रयत्न करने पर बिन्देश्वरी और सिद्धेश्वरी को पिस्तौल से डराकर दूर हटाता है, वह उसे वीर नायक सिद्ध करती हैं।

यद्यपि वह महात्मा गांधी के प्रभाव से राजनीति में अहिंसा का हामी है, पर लोक-व्यवहार में अन्याय का प्रतिकार करने में वह उग्र भी हो सकता है।

ज्ञानप्रकाश शीघ्र ही कांग्रेस का बड़ा कार्यकर्ता और नेता बन जाता है। वह इलाहाबाद में प्रसिद्ध वकील बन जाता है। कार खरीद लेता है। वह कांग्रेस के मुकदमों की पैरवी करता है। जब जौनपुर में गंगाप्रसाद खिलाफ़त के तीन नेताओं को गिरफ्तार कराकर उनकी ज़मानत नामंजूर कर देता है तो ज्ञानप्रकाश इलाहाबाद कांग्रेस कमेटी की ओर से डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत में ज़मानतें मंजूर कराने आता है और मंजूर करा लेता है। वह कांग्रेस के

असहयोग, स्वदेशी, नमक कानून तोड़ना आदि आन्दोलनों का संचालन करता है, वालन्टियरों को जुटाता है, मीटिंगों में भाग लेता है, कांग्रेस के कार्यक्रमों के लिए लोगों से चन्दा इकट्ठा करता है, स्वयं सत्याग्रह करता और जेल जाता है। वह अपने प्रभाव से गंगाप्रसाद को भी कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिशील बना देता है। नवल, विद्या तो उसकी प्रेरणा से पूर्ण देशभक्त बन जाते हैं। वह नवल को भी नमक-कानून तोड़ने के लिए प्रेरित करता है और अपने साथ पक्का कांग्रेसी बना लेता है। उसके देशभक्तिपूर्ण विचारों का सब पर प्रभाव पड़ता है।

ज्ञानप्रकाश छुआछूत और जात-पांत के भेद नहीं मानता। वह अछूतों को कांग्रेस के आन्दोलन में सम्मिलित करना चाहता है। वह इसी उद्देश्य से गेंदालाल चर्मकार से बातचीत करता है। जब गेंदालाल का घोर अपमान करके गंगाप्रसाद उसे अपने ड्राइंगरूम से निकाल देता है, तो ज्ञानप्रकाश को बहुत दुःख होता है। वह कहता है, "मैंने समझा था बरखुरदार कि तुम नये युग के आदमी हो—पढ़े-लिखे, उदार वृत्ति के और तुम तो यह सब न करोगे, लेकिन देख रहा हूँ कि मैंने ग़लती की। लेकिन इन छः करोड़ अछूतों को हम नहीं खो सकते!"

ज्ञानप्रकाश स्वतंत्रता-आन्दोलन को देहातों में ले जाने का कार्य करता है। वह देहातों में कर-बंदी के सामूहिक सत्याग्रह का आयोजन करता है।

इस प्रकार ज्ञानप्रकाश नई चेतना का अग्रदूत है, देश के स्वतंत्रता-संघर्ष का सेनानी है, नये युग का उदार, न्यायप्रिय, प्रगतिशील विचारों का पोषक, नई क्रान्ति का वाहक और उपन्यास के नई पीढ़ी के कई पात्रों का प्रेरक है। उसके अस्तित्व और चरित्र ने इस उपन्यास में उदात्तता और गरिमा भर दी है। व्यक्तिगत स्वार्थ से वह बहुत ऊपर है। वह सबकी सहायता को हरदम प्रस्तुत रहता है। त्याग और कर्त्तव्य-पालन ही उसके जीवन का क्रम बना हुआ है।

(६) मुन्शी राधेलाल :

राधेलाल अपने बड़े भाई मुंशी शिवलाल की ही पीढ़ी के निम्न-मध्यवित्तीय कायस्थ परिवार के ऐसे व्यक्ति हैं, जो परंपरागत सम्मिलित परिवार-प्रथा में विश्वास रखने वाले, पक्के स्वार्थी, कुल-अभिमानी, झूठी मर्यादा की दुहाई मचाने वाले, धोखा-धड़ी से दूसरों की ज़मीन-जायदाद हड़पने वाले, परमुखा-

पेक्षी और निकम्मे हैं। राधे के चरित्र की दुर्बलताओं का ही उपन्यास में प्रकाशन हुआ है। वह सर्वथा दुर्बल चरित्र का पात्र है।

आरंभ में ही ज्वालाप्रसाद की नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्ति की सूचना से राधेलाल गर्व से फूलकर लोगों को कहते हैं, "समझ का राखे है हम लोगन केर खानदान का। गदर के पहले देखतेव हम लोगन केर ठाठ-बाट! तवारीख मां लिखा है कि हम लोगन केर आला खानदान के बल पर नवाबी चलत रही। तौन कलक्टर साहेब सब कुछ जानत आँय!"

"मुंशी राधेलाल की लनतरानियों पर टीका-टिप्पणी करना, मुंशी राधेलाल के झूठ को काटना, यह किसी भी पड़ोसी की हिम्मत की बात नहीं थी। वे सबके सब मुंशी राधेलाल से बेतरह डरते थे। न जाने किस समय मुंशी राधेलाल किसी के साथ कोई बवाल खड़ा कर दे!"

राधेलाल ज्वालाप्रसाद को उसके मामा मुंशी रामसहाय के यहाँ से बुलाने राजापुर जाता है और वहाँ जो नाटक रचता है, उससे उसके चरित्र की विचित्रता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वह बहुत देर तक बताता ही नहीं कि किसलिए ज्वाला को तुरंत लेने आया है: "हम हैं मुंशी राधेलाल, हमसे बात निकलवा लेना आसान नहीं है।" रामसहाय उसके लिए गोश्त और शराब का प्रबंध करते हैं। वह जिस ढंग से अपने खानदान की बड़ाई मारता है वह विचित्र है। वह बार-बार यही प्रश्न करता है: मुन्शी रामसहाय साहेब, आप हमारे खानदान की बाबत क्या समझते हैं?" जब रामसहाय की पत्नी कहती है कि "कुछ ज्यादा दारू पी गए हो?"—तो वह अकड़ते हुए कहता है, "अरी भौजी, इतनी दारू क्या, वह तो पेशाब करके बहा भी दी है। यहाँ तो घड़ों पी जाते हैं और मजाल है कि चेहरे पर शिकन आ जाय!"

"ज्वालाप्रसाद अपने चाचा की इस हरकत से चकित ही नहीं, लज्जित भी था!" राधे जिस गर्व और शान से ज्वाला के नायब तहसीलदारी पर नामज़द होने की खबर सुनाता है और अपनी टेंट से निकाल कर पच्चीस रुपये मुंशी रामसहाय के सामने जश्न मनाने के लिए, फेंक देता है, उससे उसके ओछेपन का ही परिचय मिलता है। यह चूहे को हल्दी की गांठ मिलने वाली ही तो बात थी!

राधेलाल अपने स्वार्थ के लिए सम्मिलित परिवार-प्रथा को क़ायम रखना चाहते हैं। जब मुंशी शिवलाल ज्वालाप्रसाद के पास धाटमपुर जाने का विचार

करते हैं, तो राधेलाल को नागवार लगता है। अपनी बड़ी गृहस्थी के लिए खर्चे की उन्हें चिंता थी। इसीसे वह मुंह लटका कर मुंशी शिवलाल को कहते हैं, "दादा, घर की हालत तो आप देख ही रहे हैं। आपके जाने के बाद ज्वाला जो बीस रुपया महीना घर भेजता था, उसका भेजना बंद तो न कर देगा?" और जब शिवलाल उसे आश्वस्त करते हैं, तभी उसकी जान में जान आती है।

राधेलाल को "अपने लड़कों की कुबुद्धि और अकर्मण्यता पर क्रोध आ रहा था, पर उससे भी अधिक जलन हो रही थी उन्हें ज्वालाप्रसाद और उसकी पत्नी के भाग्य से।" सम्मिलित परिवार के टूट जाने का उन्हें भय हो गया था।

जब राधेलाल का लड़का किसनू आवारा बनकर लापता हो जाता है, और कई दिनों तक उसकी खोज-खबर नहीं मिलती तो राधेलाल को माघ मेले पर शिवलाल के पास आकर उलाहना देने का अवसर मिल जाता है, "ज्वाला से बहुत कहा कि वही कुछ उसका पता-वता लगायें, लेकिन भला ज्वाला को फुरसत कहाँ?"

मुंशी राधेलाल पुराने अभिजात-संस्कारों के हैं। छुआ-छूत, चौका-बरतन की शुद्धि, जात-पाँत को वह मानते हैं। जब शिवलाल के आग्रह पर छिनकी उनके लिए खिचड़ी बनाती है तो राधेलाल भी अपनी पत्नी के साथ छिनकी को डाँटते हुए कहते हैं, "क्यों री छिनकी, दादा तो सठिया गए हैं, इनकी तो अक्किल मारी गई, न जात देखें न कुजात, लेकिन तूने कैसे इन्हें अपने हाथ की बनाई कच्ची रसोई खिला दी?"

राधेलाल पुरानी दुनिया के होने के कारण कल-कारखानों और नये कामों का विरोध करते हैं। लक्ष्मीचन्द द्वारा लकड़ी का कारखाना खोले जाने की बात का वह विरोध करते हैं। उनका ख्याल है कि इन कामों में अंग्रेजों का मुकाबिला करना कठिन है।

राधेलाल पर-मुखापेक्षी है। वह अपने लड़कों को अच्छे धंधों में लगाने में असमर्थ है। इसी से सब आवारा निकल रहे हैं। जब ज्वाला से कहकर शिवलाल किसनू को जैदेई के यहाँ लगवा देते हैं तो राधेलाल बहुत प्रसन्न होते हैं। राधेलाल और उनका सारा परिवार ज्वाला के यहाँ धरना डाल देते हैं—सब ज्वाला के यहाँ निर्लज्जतापूर्वक रहने लगते हैं। पर ज्वाला जब उनकी

हरकतों से तंग आ जाता है और अपने चाचा को अपना परिवार लेकर गाँव जाने को कहता है तो राधेलाल दुहाई मचा डालते हैं, सिर पीट लेते हैं और ज्वाला को तरह-तरह की गालियाँ देते हैं, अनशन कर लेते हैं। पर राधेलाल को अपना परिवार लेकर जाना ही पड़ता है।

मुंशी राधेलाल शिवलाल की बरसी पर ज्वाला का खूब खर्च कराना चाहते हैं। ब्रह्मभोज, दान-पुण्य और दावत खूब ज़ोरदार कराना चाहते हैं। उनके पुराने संस्कारों के अनुसार इससे शिवलाल की स्वर्गीय आत्मा प्रसन्न होगी और दूसरे बिरादरी में उनके खानदान की बड़ाई होगी।

राधेलाल परले दर्जे का जालसाज़ है। वह धोखा-धड़ी से ग़फ़ूर मियाँ की बेवा सलीमा की ज़मीन मौज़ा रहीमपुरा को हड़पने का षड्यंत्र रचते हैं। वह ज़मीन को ज्वाला के नाम कराने का प्रलोभन देकर ज्वाला के असर-रसूख का लाभ उठाना चाहते हैं, पर ज्वाला के झूठ न बोलने और इस धोखे-धड़ी में शामिल न होने से उन्हें मुंह की खानी पड़ती है। इसी प्रकार राजा सरोहन से मिलकर राधेलाल और उनका बेटा श्यामू सेठ घनश्यामदास के विरुद्ध षड्यंत्र रचते हैं और मुकदमेबाजी में ज्वाला के असर-रसूख का लाभ उठाकर ज़मीन-जायदाद बनाना चाहते हैं। पर यहाँ भी ज्वाला उनका साथ नहीं देता। मुंशी राधेलाल का ख्याल है कि तहसीलदार के खानदान में ज़मीन-जायदाद होनी ही चाहिए।

इस प्रकार मुंशी राधेलाल का चरित्र सब तरफ से स्याह ही है। अकर्मण्यता, बेईमानी, परंपरागत अंध-विश्वास तथा रूढ़ियों, जाल-साज़ी, स्वार्थ, पर-मुखापेक्षा आदि बुराइयों से वह जकड़ा हुआ है। उसमें चारित्रिक दृढ़ता का कहीं कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। उसकी गृहस्थी असफल है, उसका जीवन असफल है।

(७) भीखू :

भीखू निम्नवर्ग का ऐसा टिपीकल पात्र है जो राजा-महाराजा या बड़े लोगों के घर के विश्वासपात्र स्वामीभक्त खिदमतगार रहकर अपना जीवन बिताते रहे हैं। उसका चरित्र भी बर्मा जी ने बड़ी कुशलता से अंकित किया है।

भीखू घसीटे की पहली पत्नी से उत्पन्न इकलौता लाडला लड़का है। "भीखू से घसीटे को बड़ी आशाएँ थीं। किसी भी कहार को उन दिनों जो अपने पुत्र से सबसे बड़ी आशा हो सकती थी वह यह कि या तो वह स्वतंत्र

रूप से बहँगी लगाए या पालकी ढोए या फिर किसी राजा-महाराजा का खिदमतगार हो जाय। जहाँ तक बहँगी लगाने का काम था, भीखू का ऐसा ख्याल था कि इसमें उसको सफलता नहीं मिलेगी, क्योंकि हिसाब-किताब में कच्चा होने के कारण उसे फायदे की जगह घाटा ही होगा और पालकी ढोने का काम उसे पसंद न था। भीखू का ऐसा मत था कि बोझा ढोने के लिए भगवान् ने बैल बनाए हैं, गधे बनाए हैं, ऊँट बनाए हैं और भी न जाने कितने जानवर बनाए हैं, फिर भला मनुष्य यह सब काम क्यों करे !"

"तहसीलदार की नौकरी किसी राजा-महाराजा की नौकरी से कम नहीं होती, घसीटे यह जानता था। फिर मुंशी शिवलाल के घर में भीखू की गणना घर के लड़कों में होती थी।" अत; छिनकी के प्रस्ताव का घसीटे ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वागत किया और भीखू तो ज्वाला के साथ घाटमपुर जाने की बात सुनकर खुशी से उछल पड़ा! "नई जगह जाने की खुशी, स्वयं काम करके आजीविका उपार्जित करने की खुशी—इस खुशी में वह अपने माता-पिता के वियोग को अनुभव ही नहीं कर सका।"

"भीखू के हृदय में ज्वालाप्रसाद के प्रति एक प्रकार की ममता थी। बाल्यकाल से वह मुंशी शिवलाल के घर में पला था, खेला था। राधेलाल के लड़के रामलाल   उसे सताते थे, लेकिन ज्वालाप्रसाद हमेशा उसका पक्ष लेता था। एक तरह से वह ज्वालाप्रसाद को अपना बड़ा भाई, अपना पथ-प्रदर्शक और परम्परा के अनुसार अपना मालिक मानता था।"

वह घाटमपुर जाते ही "ज्वालाप्रसाद के घर का प्रबन्धकर्ता बन जाता है। घर के खर्च का हिसाब-किताब भीखू के हाथ में था, भण्डार भीखू के हाथ में था।" भीखू जिस अपनेपन की भावना से घर का काम करता है, बच्चों को खिलाता-पिलाता, देखभाल करता है, घर की इज्ज़त-आबरू का ध्यान रखता है, वह सब उसे एक निष्ठावान्, आज्ञाकारी, कर्मशील सेवक ही नहीं, अपितु घर का-सा सगा आदमी सिद्ध करता है।

गंगा, नवल, विद्या आदि ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद के बच्चों को उसने गोद खिलाया और लाड-प्यार से रखा है। विद्या की शादी के अवसर पर जब दहेज़ के रुपयों में दो हजार की कमी पड़ जाने के कारण ज्वालाप्रसाद अपनी पत्नी और बहू के गहने बेचने की सोचते हैं और इस स्थिति से घर में विवाह की खुशी के स्थान पर उदासी छा जाती है, तो भीखू चिंतित हो उठता

है। कारण जानने पर वह जिस तत्परता, उत्साह, गर्व और त्याग की भावना से अपनी सारी उम्र की जमा-जथा लाकर ज्वालाप्रसाद के सामने रख देता है, उससे उसके चरित्र की महानता, उदारता, स्नेहशीलता आदि उदात्त वृत्तियों पर भव्य प्रकाश पड़ता है।

भीखू अपनी जमा-जथा का टीन ज्वालाप्रसाद के सामने रख देता है, "भइया, विद्या बिटिया के लिए हमार यू कन्या-दान आय! ···तौन भौजी का और बहुरिया का गहना गिरौ राखौ की कौनो जरूरत नाहीं। आखिर विद्या बिटिया पर हमारौ तो कौनो हक आय! हम पाला है ऊ का, अपनी गोदी मां खिलावा है!"

जब ज्वालाप्रसाद कहते हैं कि तुम्हारी यह जन्मभर की कमाई है, हम इसे नहीं ले सकते—तो भीखू फूट पड़ता है, "हमें अपने से अलग काहे समझत हौ भइया? हमारे कौन खानदान-कुनबा आय? जो कुछ हैं तौन ई लड़का-बच्चा आँय जिन्हे हम अपनी छाती पर चढ़ाय के पाला, बड़ा कीन! ······भइया, गंगा हमें तुमसे बढ़ के मानत रहै। हमैं ऊपर कितना गरव है! तौन निरदई भगवान् ऊ का छीन लीन्हिस हमसे" और भीखू के हिचकियाँ बँध गईं।

ज्वालाप्रसाद ने देखा, 'असीम करुणा और ममता थी उस बूढ़े और कुरूप मुख पर!"

राजनीति, धर्म, आन्दोलन, बदलती हुई दुनिया के नये-नये रंग-ढंग उसकी समझ से बाहर की बातें हैं। पर जो कुछ वह समझ सकता है, उसके बारे में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट किये बिना वह नहीं रहता। गंगाप्रसाद का अतिशय सुरापान और विलासिता देखकर वह उसे मना करना चाहता है। पर गंगाप्रसाद के पद और रौब से वह उसके आगे मुश्किल से ही जबान खोल पाता है। उसकी घुड़की से वह सहम जाता है। नौकर जो ठहरा! पर अपने 'बचवा' की भलाई वह दिल से चाहता है। इसीसे इलाहाबाद में ज्वालाप्रसाद को गंगा के तौर-तरीके साफ बता देता है और जोर देकर उन्हें गंगा के पास जौनपुर में रहने पर राजी कर लेता है ताकि गंगा का जीवन कुछ व्यवस्थित हो जाय!

वह गंगा, ज्वाला, नवल सबका सच्चा हितैषी है। वह ज्ञानप्रकाश को भी कहता है कि गंगा को समझाए। उसने अपनी सारी उम्र इस खानदान की सेवा में लगा दी है।

अपने वर्ग की दुर्बलता आरम्भ में उसमें भी थी। जब लाला प्रभुदयाल लम्बरदारिन के नाम से होली की सौगात लेकर आता है और भीखू ज्वालाप्रसाद और यमुना की अनुपस्थिति में रखने से हिचकिचाता है, तब प्रभुदयाल उसे एक रुपया बख्शीस का देते हैं। वह लोभ में आकर सौगात रख लेता है।

ज्वालाप्रसाद की तरह इस बूढ़े ने भी अपनी आँखों के सामने दुनिया को बदलते देखा है। सबकुछ उसकी समझ के बाहर है, "कुछ समझ माँ नाहीं आवत भइया! ई नवल बिटवा अपनी खुशी से जेल जाय रहा है; ई विद्या बिटिया नौकरी करैं लागी है! समझ माँ नाहीं आवत है भइया, ई सब का हुई रहा है!" वह इसे "भगवान् की ही लीला" मानता है। "इस पर हमार बस नाहीं।"

(८) लक्ष्मीचन्द :

ह्रासोन्मुख सामंतीय परम्परा के स्थान पर पनपने वाले पूंजीवाद का प्रथम रूप लाला परभूदयाल था। वह पूँजीवाद और सामंतवाद दोनों का मिश्रित रूप था, अतः उसका सामन्तवादी-जमींदारी रूप समाप्त होने पर नई पीढ़ी के पूंजीपति लक्ष्मीचन्द का उदय हुआ। पूंजी बढ़ाने की लोभी और व्यावसायिक वृत्ति, बेईमानी, निर्दयता और निर्ममता उसे पितृ-संस्कारों से मिली थी। मरती हुई जैदेई अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है, "भगवान् ने मुझे सहने को जो पैदा किया था! पति दिया—बेईमान और निर्मम! कोख से पैदा किया बेटा—बेईमान और निर्मम! दुनिया को इन दोनों ने कितना सताया है! और मैं सबकुछ देखती रही अपनी छाती पर रखकर!"

लक्ष्मीचन्द जिस निर्ममता और निर्लज्जता से अपनी माता को गालियाँ देता और बुरा-भला कहता है, उससे उसकी धन-लोलुप, निर्मम, निष्करुण और स्वार्थी मनोवृत्ति बेनकाब हो गई है। मरणासन्न माँ जैदेई के बार-बार गंगाप्रसाद की याद करने से वह आशंकित और ईर्ष्यालु हो जाता है और गंगाप्रसाद की उंगली में जैदेई की दी हुई हीरे की अंगूठी देखकर वह जल उठता है। उसे लगता है कि उसकी माता जैदेई गंगा को न जाने कितना-कुछ धन देती रही होगी।

माता की बीमारी की खबर सुनकर आने की लाचारी को वह गंगाप्रसाद से इस प्रकार कहता है, "मैं तो यहाँ आकर अजीब मुसीबत में पड़ गया हूँ।

तीन दिन हो गए मुझे आये हुए। यह सोचकर चला था कि एक-दो दिन लगेंगे। कानपुर के काम-काज का हर्ज हो रहा है। अभी-अभी सिविल सर्जन से मिलकर आया हूँ। वह कहता है······किसी भी समय इनकी मृत्यु हो सकती है। वैसे दो-चार दिन और भी खींच सकती हैं। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।"······"किसी की मौत का इन्तजार करना—कितनी अजीब-सी बात लगती है।"

इस कथन से उसकी अपनी माता के प्रति निर्ममता, व्यावसायिक स्वार्थी वृत्ति और भावनाहीनता का पूर्ण परिचय मिलता है।

जब जैदेई कहती है कि मैंने गंगा को तेरी ही तरह पाला-पोसा है। तेरे पास राज-पाट है, सब कुछ है, गंगा नौकरी कर रहा है, मेरी अन्तिम इच्छा है, "मेरे पास जो नकदी है और जो गहने हैं उस तिजोरी में वे सब मैं गंगा को दे रही हूँ"—तो लक्ष्मीचन्द बिगड़ उठता है और कहता है कि "इस रकम पर किसी का कोई अधिकार नहीं। यह रकम मेरी है और तुम गंगा को कुछ भी नहीं दे सकतीं, इतना समझ लो।" जैदेई कहती है, "इतना छोटा न बन! तेरे पास करोड़ों हैं।" तो लक्ष्मीचन्द अपनी वणिक्-वृत्ति को स्पष्ट करता हुआ कहता है, "यह जो करोड़ों की बात करती हो, यह इन्हीं सैंकड़ों और हजारों से ही तो बने हैं अम्मा!" वह अपनी माँ के हाथ से तिजौरी की चाबी छीन लेता है और माँ को 'हरामजादी', 'चुड़ैल' कहकर गालियाँ ही नहीं देता, उसके चरित्र पर आक्षेप करता हुआ 'छिनाल' तक कह देता है!

ज्वालाप्रसाद इस कांड के बाद ठीक कहता है, "हरेक आदमी अपनी आधारभूत प्रवृत्तियों के अनुसार ही कर्म करता है। इस लक्ष्मीचन्द में और उसके पिता प्रभुदयाल में कोई अन्तर नहीं है,···।"

यह नई रोशनी का पूंजीपति अपने पुश्तैनी ब्याज-बट्टे, गिरवी, जमीन-जायदाद के धंधे में नहीं लगता। वह व्यापारी और उद्योगपति बनता है। "लक्ष्मीचन्द उत्तर भारत में विदेशी वस्त्रों का सबसे बड़ा व्यापारी हो गया था, लेकिन वह केवल इतने से संतुष्ट न था। बी० ए० तक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के कारण उसकी सरकार में अच्छी पहुँच थी और उसने एक कपड़े की मिल, एक चीनी की मिल, और दो तेल की मिलें कानपुर में खोली थीं तथा इलाहाबाद में एक लकड़ी का बहुत बड़ा कारखाना खोल दिया था। पैसे का खेल खेल रहा था वह; और जहाँ करोड़ों का प्रश्न सामने हो, वहाँ पचास

हज़ार रुपया देकर अधिकारियों की नजर में अपनी स्थिति ऊँची रखना लक्ष्मीचन्द के वास्ते श्रेयस्कर था।"

अधिकारियों के ज़ोर देने पर लक्ष्मीचन्द ने दिल्ली दरबार के लिए पचास हज़ार रुपये का चंदा दिया था और उसे 'सर' की उपाधि प्राप्त हो गई थी। हज़ारों लोगों ने उसे बधाई दी, उसका जलूस निकाला, स्वागत किया, फूल-मालाएँ पहनाईं। लक्ष्मीचन्द ने दावत दी, गाना-बजाना किया।

लक्ष्मीचन्द्र अपने मामा सुक्खूलाल के मरने के बाद उसकी लाखों की सम्पत्ति हड़प करके ही बढ़ा था! "सुक्खूलाल के मरने के एक साल के अन्दर ही लक्ष्मीचन्द ने एक चीनी की मिल और एक तेल की मिल कानपुर में लगवा ली थी। नाते-रिश्तेदारों में काफ़ी कानाफूसी हुई और सुक्खूलाल के साले गिरधारीलाल ने (सुक्खूलाल के) दोनों लड़कों की ओर से लक्ष्मीचन्द पर मुक़दमा भी दायर कर दिया। दो साल तक मुकदमा चला; ···गिरधारीलाल ने यह देखकर कि मुक़दमा हारा हुआ है, अन्त में सुलह करवा दी।" लक्ष्मी-चन्द ने पचास हज़ार रुपये देकर गिरधारीलाल को भी गाँठ लिया था! इसी बेईमानी के कारण जैदेई कानपुर में लक्ष्मीचन्द के पास रहना पसन्द नहीं करती थी।

यह पूँजीपति सर लक्ष्मीचन्द "जबरदस्त मुनाफ़ा उठाता है। उस मुनाफे का एक छोटा-सा हिस्सा सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी का आन्दोलन ज़ोर पकड़े और उसका माल ज़ोरों के साथ बिके। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट को (कार के रूप में), ताकि लक्ष्मीचन्द जो लूट-खसोट व बेईमानी करता है, उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखें बंद कर लें।"

इस प्रकार यह पूंजीपति लक्ष्मीचन्द ज़बरदस्त अवसरवादी है! अपनी माता जैदेई द्वारा मरने के समय बीस-पच्चीस हज़ार की सम्पत्ति गंगा को दिये जाने का उसने कितना उग्र विरोध किया था! पर जब उसे पता चलता है कि गंगा उसके ही नगर कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट लग कर आया है तो वह बड़ी हार्दिकता से उसका स्वागत करता है: "स्वागत! स्वागत! मेरा छोटा भाई गंगा कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट हो गया है! अभी तक कोई हिन्दुस्तानी उस कुर्सी पर नहीं बैठा था! कितना गर्व है मुझे!"

लक्ष्मीचन्द के इस आत्मीयता-भरे व्यवहार से गंगा चकित रह गया। लक्ष्मीचन्द गंगा को सपरिवार डिनर ही नहीं देता, एक नई ओवरलैण्ड कार भी भेंट करता है। गंगाप्रसाद के मरने के बाद जब ज्वालाप्रसाद विद्या के दहेज़ के लिए उससे पाँच हज़ार रुपये की सहायता माँगते हैं, तो वह अपनी विवशता जताकर केवल एक हज़ार रुपया कन्यादान के रूप में देकर टाल देता है।

लक्ष्मीचन्द स्वराज्य और खिलाफ़त को ढकोसला समझता है। उसे स्वतन्त्रता से क्या मतलब ! किन्तु स्वदेशी को वह अपने हक़ में अच्छा आंदोलन मानता है। वह कहता भी है कि "यदि स्वदेशी की भावना जाग जाय, तो हम उद्योगपति देश को धीरे-धीरे आत्मनिर्भर बना सकते हैं।"

इस प्रकार वर्माजी ने पुराने सामंतवाद और महाजनी पूँजीवाद के स्थान पर पनपने वाले व्यापारी और उद्योगपति-पूँजीपति लक्ष्मीचन्द की मनोवृत्तियों, प्रवृत्तियों और परिस्थितियों पर पर्याप्त सजीव प्रकाश डाला है।

(६) लाल रिपुदमनसिंह :

लाल रिपुदमनसिंह के रूप में वर्माजी ने मिटते हुए सामंतवाद पर बनते हुए नई पीढ़ी के शिक्षित और चरित्रवान् ब्रिटिश सरकारी अफ़सर युवक राजकुमार का चित्रण किया है।

सेकण्ड क्लास के कम्पार्टमेंट में गंगाप्रसाद की एक युवक यात्री से भेंट होती है, जो अवस्था में उससे "छः-सात साल बड़ा था। गठे बदन का और मझोले क़द का आदमी, रंग कुछ सांवला, मूंछें महीन छँटी हुई, कानों में हीरे की तुरकियाँ पड़ी हुई, महीन रेशम के किनारे की धोती और रेशम का कुर्ता पहने हुए ! ···मोटा-सा अंग्रेज़ी का उपन्यास···पढ़ने में तल्लीन !" वंश-परंपरा से शराब पीने का आदी था वह ! गंगाप्रसाद को भी वह शराब ऑफर करता है। गंगाप्रसाद का परिचय पाकर वह उछल पड़ता है : "तुम्हीं गंगाप्रसाद हो ?···जिसने यू० पी० और बम्बई के क्रिकेट मैच में डबल सेंचरी बनाई थी ?"

क्रिकेट के नाते गंगाप्रसाद को जानने से इस वर्ग की रुचि का यथार्थ परिचय मिलता है। वह कहता है, "भाई खूब मिले ! उस दिन से तुमसे मिलने की लगन पैदा हो गई थी !"

अपने राजसी संस्कार के कारण ही वह अपने कम्पार्टमेंट में पाँच की बर्थ होने पर भी अपने और गंगाप्रसाद के सिवा तीसरे किसी को घुसने नहीं देना

चाहता। उसकी आवाज़ में राजसी रौब है, "मैं इस डिब्बे में किसी को नहीं घुसने दूंगा, किसी हालत में नहीं घुसने दूंगा, समझ क्या रक्खा है!" वह गार्ड की प्रार्थना भी ठुकरा देता है! पर गंगाप्रसाद के कहने पर मान जाता है और राधाकिशन और उसकी पत्नी को आने देता है।

लाल रिपुदमनसिंह अपनी अनुभवी आँखों से सब भाँप लेते हैं, सब ताड़ जाते हैं! उन्होंने गंगाप्रसाद और संतो का आकर्षण उस सफर में ही भांप लिया और गंगाप्रसाद से कहा, "बाबू गंगाप्रसाद, आप अच्छे खिलाड़ी ही नहीं, कुशल शिकारी भी मालूम होते हैं।" लाल साहब संतो को गंगाप्रसाद की झूठी शराब लेकर पीते देख लेते हैं और उनके अवैध सम्बंध को ताड़ जाते हैं।

दिल्ली-दरबार के आयोजन को देखकर लाल रिपुदमनसिंह अंग्रेजी शासन की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "मुसलमान-शासन के अत्याचारों और अराजकता को दूर करके अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में अमन और शांति क़ायम की है।" पर साथ ही लाल साहब को भारत की गुलामी का कटु एहसास भी है! वह कहता है, "बाबू गंगाप्रसाद, हिन्दुस्तान पर राज्य जार्ज पंचम का नहीं है; यहाँ राज्य अंग्रेज़ों का है। आपने देखा, उस पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर से लेकर उस (हिन्दुस्तानी) सिपाही को गाली देता हुआ टामी, ये सब अपने को यहाँ का राजा समझते हैं और उन मजदूरों से लेकर निज़ाम हैदराबाद तक जितने हिन्दुस्तानी हैं, वे सब गुलाम हैं। समझे आप!"

लाल रिपुदमनसिंह विजयपुर के राजा धरनीधरसिंह के छोटे भाई हैं। वह विधुर हैं। सात साल पहले उन्होंने अपनी पत्नी और उसके प्रेमी दोनों को स्वर्ग पहुँचा दिया था और तबसे दूसरा विवाह नहीं किया। लाल साहब जिस नाटकीय ढंग से उत्तेजित होकर अपने जीवन की कहानी गंगाप्रसाद को सुनाते हैं, उससे गंगाप्रसाद कांप जाता है।

लाल साहब चरित्रहीनता को किसी तरह सहन नहीं कर सकते। वह संतो और गंगाप्रसाद के अवैध सम्बंध को ताड़ कर कहते हैं, "आप बहुत अधिक सभ्य हैं, जरूरत से ज्यादा सभ्य हैं, मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि आप खतरनाक रूप से सभ्य हैं।"····"आज मैंने अपनी आँखों से देखा कि वह स्त्री सतवंती···तुमने उसे भयानक रूप से नीचे गिरा दिया है। तुम्हारे गिलास की जूठी ह्विस्की अपने पति के सामने ही पीते मैंने देखा है उसे और मुझे उस

समय ऐसा लगा कि तुम्हारे कहने से वह अपने पति की हत्या कर सकती है, तो एकाएक मेरे सामने तुम्हारी जगह शिवप्रताप (उसकी पत्नी का यार) की शक्ल आ गई। यह दुनिया शिवप्रतापों से भरी है, जिनके इशारों पर स्त्रियां गिरती हैं, जिनके प्रभाव से परिवार टूटते हैं, जिनके कहने से हत्याएं होती हैं। मैं चाहता हूँ इन शिवप्रतापों को चुन-चुनकर दुनिया से हटा दिया जाय। सुना गंगाप्रसाद, ये शिवप्रताप मानवता के अभिशाप हैं, ये मनुष्य की योनि में साक्षात् पिशाच हैं।"

गंगाप्रसाद उसके चरित्र के इस तेजस्वी और उग्र रूप से चकित और सहम जाता है। पर रिपुदमन आज की बनियों की दुनिया की निंदा करता हुआ, उसे अपमानपूर्वक अपने खेमे से निकाल देता है, "डर गए बाबू गंगाप्रसाद? मैं तुम्हें मारूँगा नहीं, क्योंकि आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं, आज की मान्यताएं बदल गई हैं। जिस जगह तुम हो, वहां हर चीज़ बिकती है—दीन, ईमान, सत्य, चरित्र! यह पूंजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है! यहाँ न हत्या होती है, न बदला लिया जाता है। तुम और सतवंती ऐसा करोगे और यह राधाकिशन, सब कुछ देखकर भी आँख बंद कर लेगा। यही नहीं, बहुत संभव है यह राधाकिशन तुम्हारे ज़रिये कुछ फ़ायदा उठाने की भी कोशिश करे!···लेकिन गंगाप्रसाद, तुम इस राधाकिशन के शिवप्रताप भले ही न हो, तुम समाज के शिवप्रताप अवश्य हो! निकलो यहाँ से—निकलो!" और गंगाप्रसाद डरा-सहमा तेज़ी से निकल जाता है।

इस प्रसंग से रिपुदमनसिंह की सच्चरित्रता, दुश्चरित्रता को सहन न करने की उग्रता, वीरता, साहसिकता, पौरुष, पूंजीवादी स्वार्थी मनोवृत्ति से घृणा आदि जीवन की आदर्श प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है।

लाल रिपुदमनसिंह अपनी योग्यता के बल पर डिप्टी कलेक्टर से करवी के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट नियुक्त हो जाते हैं। वह "उन्नति और अवनति से बहुत दूर हट" जाना चाहता है, पर रानी साहिबा विजयपुर उसे इस ओर घसीटने का प्रयत्न करती हैं। राजा घाटबागान की लड़की लावण्यप्रभा से उसके विवाह का आयोजन किया जाता है। पहले रानी विजयपुर ने अपने इस देवर को अपनी पत्नी और शिवप्रताप की हत्या करने के कारण कुछ वर्षों के लिए रियासत न आने का आदेश दिया था। पर अब वह रिपुदमन से बहुत स्नेह करती हैं। रिपुदमन भी अपने भइया और भाभी का सम्मान करता है।

दिल्ली-दरबार के समय उसने रानी साहिबा के लिए राधाकिशन से कहकर पन्ने का खास हार, कंगन और रिंग बनवा कर भेंट में दिये थे।

(१०) लाला राधाकिशन :

लाला राधाकिशन उस युग का महत्वाकांक्षी और ऐश्वर्य-विलासी ऐसा जौहरी-व्यापारी है, जो उच्चवर्ग के राजाओं-महाराजाओं और अफ़सरों की सोसाइटी में अपनी गिनती तथा ऊँचा-से-ऊँचा खिताब चाहता है और निर्लज्जतापूर्वक अपनी पत्नी संतो की स्वच्छन्दता सहन करता है।

"राधाकिशन की अवस्था प्रायः सत्ताईस-अट्ठाईस साल की थी और वह मझोले कद का एक गोरा-सा और दुबला-सा आदमी था। उसके मुख पर कोमलता-युक्त एक स्त्रैण भाव था।"

राधाकिशन की पत्नी सन्तो उन्हें जनखा-सा आदमी समझती है। उसमें पौरुष की कमी है। इसीसे संतो गंगाप्रसाद की ओर आकर्षित होती है। राधाकिशन का भी कुछ लगाव अपनी भाभी कैलासो से है।

लाला राधाकिशन कलकत्ता और दिल्ली के मशहूर जौहरी हैं। बड़े-बड़े नवाबों और राजाओं के पन्ने, हीरे के हार और गहने उनके यहाँ खरीद-फ़िरोख्त के लिए आते हैं। वह गंगाप्रसाद की उँगली में हीरे की अँगूठी देखते ही ताड़ जाते हैं कि किसी रजवाड़े की हैं। वह रिपुदमनसिंह के लिए पन्ने का खास हार, कंगन और रिंग तैयार कराता है।

अपनी पत्नी संतो की स्वच्छन्दता का वह खूब लाभ उठाता है। रानी विजयपुर, रानी हेमवती, राजा घाटबागान, वायसराय के ए० डी० सी० मेजर वाट्स जैसे उच्च वर्ग के लोगों से संतो के माध्यम से उसका परिचय हो जाता है। वह गवर्नर और वायसराय की पार्टियों में सम्मिलित होता है। उसकी पत्नी का मेजर वाट्स से विशेष हेलमेल हो जाता है, जिससे मेजर वाट्स राधाकिशन को 'राजा बहादुर' का खिताब दिला देते हैं। वह इस खुशी में बहुत बड़ी पार्टी करता है। गंगाप्रसाद को भी आमंत्रित किया जाता है।

संतो गंगाप्रसाद को बताती है, "मैं संतो से जो रानी सतवन्त कुँवर बन गई हूँ वह कुछ ऐसे ही? इन्हें कौन नहीं जानता? रुपये-पैसों के हिसाब-किताब में डूबा हुआ जनाना आदमी······भला इस जनखे को कोई राजा बहादुर का खिताब देता? इसे बात करने की तो तमीज़ नहीं और इसे इस साल ढाई-तीन लाख रुपये का मुनाफ़ा हुआ। राजा-महाराजाओं का जौहरी बन

गया। यह सब ऐसे ही हो गया क्या ? मैंने ही तो यह सब किया है, मेजर वाट्स के जरिये से।"

राधाकिशन सम्मिलित परिवार के टूटने का प्रतीक है। जब उसके भाई श्रीकिशन कलकत्ता की दुकान का हिसाब-किताब समझना चाहते हैं तो राधाकिशन साफ़-साफ़ कह देता है कि 'हम लोगों का बटवारा तो उसी दिन हो गया था जिस दिन लाला जी इस फर्म से अलग होकर कानपुर रहने चले गए थे। जब पिता ही संयुक्त परिवार तोड़ चुका हो, तो फिर कैसा संयुक्त परिवार ? उन्होंने मुझे कलकत्ता की दुकान में भेज दिया, दिल्ली की दुकान उनकी हो गई। भला उन्होंने मुझे दिल्ली की दुकान और दिल्ली की जायदाद का हिसाब-किताब कब दिया है ?"

राधाकिशन ने इधर कलकत्ता की दुकान पर दस लाख रुपये कमा लिये थे, इसीसे उसके भाई-भौजी सम्मिलित परिवार की दुहाई मचा रहे थे और संतो तथा राधाकिशन उसके टूटने की।

(११) सत्यव्रत शर्मा :

सत्यव्रत शर्मा एक प्रगतिशील विचारों का काँग्रेसी युवक है, पढ़ा-लिखा है। देश को स्वतन्त्र कराने की तड़प उसकी नस-नस में है। वह उदार और विद्रोही प्रकृति का है। सत्यव्रत मलका का सच्चा उद्धारक बनता है। वह उसे वेश्यावृत्ति के नरक से निकालकर अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। मलका को माया शर्मा बना लेता है।

माया शर्मा अपने पति के बारे में गंगाप्रसाद को बताती है, "यह कितने अच्छे हैं, कितने सीधे हैं, कितने नेक व भले हैं—अच्छे खानदान के बरहमन। हिन्दू यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे एम० ए० में, लेकिन असहयोग में इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। विलायती कपड़े बटोरते घूम रहे थे मकान-मकान। एक दिन बनारस वाले मेरे मकान पर भी आये। मैं उस दिन बेहद उदास थी······।" माया बताती है कि किस प्रकार सत्यव्रत को जब उसने बताया कि वह रण्डी है और अपने जीवन से दुखी है, तो सत्यव्रत ने उसके प्रति असीम सहानुभूति प्रकट की। उसे मुसलमान जानकर भी सत्यव्रत ने उसके घर का खाना खाने में परहेज़ नहीं किया और कहा, "हाँ, आप मुसलमान घर में पैदा हुई हैं, यह मैं जानता हूँ। लेकिन आप मुसलमान होने के पहले इन्सान हैं। हम पैदा इंसान

होते हैं, लेकिन अपनी इंसानियत भूलकर हम हिन्दू और मुसलमान बन जाते हैं। है न अजीब-सी बात !"

जब मलका सत्यव्रत को कहती है कि मैं इज्जत-आबरू की नेक जिन्दगी बसर करना चाहती हूँ, तब सत्यव्रत उससे शादी करने को तैयार हो जाता है : "अगर तुम चाहो तो मैं तुमसे शादी कर सकता हूँ, तुम्हें इस जिन्दगी से ऊपर उठा सकता हूँ" और सत्यव्रत उसे आर्य समाज में ले जाकर, उसे शुद्ध करके, वहीं उससे शादी कर लेता है।

सत्यव्रत बनारस छोड़कर अपनी पत्नी को लेकर कानपुर आ जाता है क्योंकि कानपुर में उसे अपने दोस्तों का भरोसा है। वह चौक में किताबों की एक दुकान कर लेता है।

सत्यव्रत पुराना कांग्रेसी है। कानपुर में आते ही उसे कांग्रेस में ऊँचा स्थान प्राप्त हो जाता है। वह एक अच्छा है। "राजद्रोहात्मक भाषण देने पर उसे तीन महीने की सज़ा हुई थी।"

सत्यव्रत असहयोग, स्वदेशी आदि सब में सक्रिय भाग लेता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर वह देश के लिए त्याग करता है। वह मलका को माया शर्मा ही नहीं बनाता, अपितु अपनी प्रेरणा से उसे भी आंदोलनों में सक्रिय बनाता है।

सत्यव्रत को अपनी पत्नी माया शर्मा से बहुत प्रेम है। जब अलीरज़ा के षड्यंत्र से माया शर्मा को उठा लिया जाता है, तो सत्यव्रत बहुत व्याकुल हो जाता है। वह गंगाप्रसाद के पास रोता हुआ सहायता के लिए आता है। गंगाप्रसाद की सहायता से अपनी पत्नी को पुनः पाकर ही वह प्रसन्न होता है।

सत्यव्रत बड़ा स्वाभिमानी है। गंगाप्रसाद को माया शर्मा पर आने वाली भावी आपत्ति की आशंका थी। इसीसे उसने उन दोनों को सहारा और सहायता देने का आश्वासन दिया था। सत्यव्रत इसीसे गंगाप्रसाद के पास सहायता के लिए आता है। किन्तु जब गंगाप्रसाद अपनी ही परेशानी में झुँझला कर कह देता है कि मैं कुछ नहीं कर सकता, जाओ !—तो सत्यव्रत के स्वाभिमान को ठेस लगती है और वह कहता है, "क्षमा कीजिएगा, हम लोग उस समय आपकी बात का गलत अर्थ लगा गए थे। आपसे हम लोगों को किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिये थी। मैं ही माया को ढूंढूंगा।"

इस प्रकार सत्यव्रत उदार, प्रगतिशील, स्वाभिमानी, शिक्षित, त्यागी, देशभक्त युवक है।

(१२) लाला प्रभुदयाल ;

लाला प्रभुदयाल ह्रासोन्मुख सामन्तवाद के स्थान पर विकासमान पूंजीवाद का प्रतीक है। वह शिवपुरा का नम्बरदार है। एक तरह पूरा ताल्लुकेदार है। पर उसकी ताल्लुकेदारी पुश्तैनी नहीं है। ज़मीन-जायदाद उसने खुद बनाई है—अपनी महाजनी के बल पर। वह जमीदारों की ज़मीन रहन रखता है और मजाल कि एक बार उसके फंदे में फँस जाने के बाद कोई अपनी ज़मीन छुड़ा ले! बहुत-सी ज़मीन इसी तरह उसके नाम में हो गई है। "वह लगातार जमीदारियाँ खरीदते जाते थे। प्रभुदयाल जाति के बनिया थे और उनके पिता की परचून की दुकान थी। प्रभुदयाल ने लेन-देन का कामकाज शुरू किया। यह कहा जाता है कि जिसने प्रभुदयाल से कर्ज लिया वह जीवन-भर के लिए ही नहीं, बल्कि पुश्त-दर-पुश्त के लिए प्रभुदयाल का कर्जदार बन गया। फिर भी लाला प्रभुदयाल के प्रति न किसी को घृणा थी, न किसी को रोष था। उनकी हवेली के फाटक पर ही राधा-कृष्ण का एक बड़ा-सा मन्दिर था, जो उन्होंने सात-आठ साल पहले बनवाया था। वहाँ रोज सुबह-शाम आरती होती थी और प्रसाद चढ़ता था। रामायण और भागवत की कथा भी उनके यहाँ प्रायः हो जाया करती थी, जिसे सुनने दूर-दूर से लोग आते थे। बड़े-बड़े अफ्सरों की दावतें भी प्रायः उनके यहाँ हुआ करती थीं।

"लोगों का कहना था कि लाला प्रभुदयाल धर्मनिष्ठ प्राणी हैं और झूठ नहीं बोलते। प्रभुदयाल से मुक़दमा हार कर अपनी ज़मीन-जायदाद गंवा देने वाले अक्सर उनके खिलाफ़ जालसाज़ी और झूठे बहीखाते रखने का आरोप करते थे, लेकिन प्रभुदयाल को निकट से जानने वाले लोगों का कहना है यह सब काम लाला प्रभुदयाल न स्वयं करते हैं, और न अपने सामने करवाते हैं। इस पाप के भागी उनके मुनीम या कारिन्दे हो सकते थे।"

इस प्रकार प्रभुदयाल के चरित्र का लेखक ने प्रत्यक्ष शैली में विवरण देकर नाटकीय ढंग से उसके चरित्र का उद्घाटन किया है।

प्रभुदयाल अफ्सरों को सौगातें-डालियाँ देना खूब जानता है। जब ज्वालाप्रसाद ने उसकी दी हुई सीधी भेंट अस्वीकार कर दी, तो वह होली के अवसर पर लम्बरदारिन की ओर से तहसीलदारिन के लिए होली की सौगात

लेकर आता है। वह इस काम में माहिर है। जब भीखू सौगात का झाबा रखने में झिझकता है, तो लाला प्रभुदयाल उसे भी एक रुपया बखशीस देकर खुश कर देता है।

लाला प्रभुदयाल अपना अपमान सह नहीं सकते। ठाकुर गजराजसिंह अपनी लड़की की शादी के लिए प्रभुदयाल के पास पाँच गाँव रहन रखकर ही खर्च उठाते हैं। गजराजसिंह प्रभुदयाल की मितव्ययिता के कारण "प्रभुदयाल को नीची नजर से देखते थे।" प्रभुदयाल ठाकुर साहब के अनाप-शनाप खर्चों और थोथी डींग पर मन-ही-मन व्यंग्य की हँसी हँसते हैं। गजराजसिंह का साला बरजोरसिंह जान-बूझ कर प्रभुदयाल का अपमान करता है। वह उदारतापूर्वक खर्च करने की अपनी बड़ाई करता हुआ कहता है; "अरे राज-खानदान के हैं, कोई बनिया-बक्काल थोड़े ही हैं!" लाला प्रभुदयाल जहर का घूंट पी जाते हैं, पर मुख पर वही स्वाभाविक मुस्कान प्रकट करते हुए कहते हैं, "ठीक कहते हो ठाकुर बरजोरसिंह, हम बनिये तो आप राजकुल वालों की प्रजा हैं। भला हम लोग आप लोगों की बराबरी कैसे कर सकते हैं!" अन्दर से लाला प्रभुदयाल में "बरजोरसिंह के प्रति एक भयानक प्रतिहिंसा जाग उठी।"

बरजोरसिंह भी लाला प्रभुदयाल का कर्जदार था। लाला मुकदमा कर बरजोरसिंह की सौ बीघा खुदकाश्त अपने नाम करा कर अपने अपमान का बदला चुकाते हैं।

बरजोरसिंह उद्धत और हठी था। एक हजार मूल के सूद-दर-सूद से दो हजार बना लेने का उसे दुख था सो था, सबसे बड़ा दुख खुदकाश्त ज़मीन निकल जाने का था, जो उसकी आजीविका का एकमात्र सहारा थी। लाला प्रभुदयाल को बरजोरसिंह ने कर्ज के बदले अपना हाथी देना चाहा था, पर लाला ज़मीन को छोड़कर हाथी का खर्च क्यों बढ़ाते! बरजोरसिंह फिर प्रभु-दयाल का घोर अपमान करता और धमकी देता है: "उसके दरवाज़े पर थूक कर कह दिया कि बनिये साले क्या हाथी पालेंगे, हाथी तो पलता है हम राजकुल वालों के यहाँ!"

पर बरजोरसिंह की धमकी से यह जमींदार बनिया डरने वाला नहीं है। वह अंग्रेज़ी-सरकार की हुकूमत में रहता है, जहाँ पुलिस है, फौज है! वह अपने पैसे के बल पर थानेदार अमजदअली को अपनी मुट्ठी में किये हुए है। ज्वाला-

प्रसाद को अपने तकिये के नीचे से रिवाल्वर निकालकर दिखाता हुआ प्रभुदयाल कहता है, "जमींदारी हँसी-खेल नहीं है नायब साहब, यह मैं जानता हूँ। जिन्दा वही है, जो मौत के साथ खेलने में भी कोई संकोच नहीं करता। मैं पुराने जमाने का कायर और डरपोक बनिया नहीं हूँ। अगर बरजोरसिंह जैसे आदमियों की धमकी में आ जाऊँ, तो हो चुका।"

पर इस ऊपर से शरीफ़ बने, पर छिपे दानव, वीर साहसी होने का ढोंग रचने वाले, अपने पैसे के बल पर लोगों को अपने इशारे पर नचाने वाले धन-पिशाच की बरजोरसिंह हत्या कर ही डालता है।

(१३) मीर सखावत हुसैन :

"मीर सखावत हुसैन······आदमी फकीराना तबीयत के थे। वे लम्बे, कद्दावर और खूबसूरत-से आदमी थे, छोटी-सी चुनी हुई दाढ़ी और उस दाढ़ी के अनुपात से ही छोटी-सी मूँछ, चेहरे पर गम्भीरता। मीर साहब का व्यक्तित्व कुछ ऐसा था कि लोग स्वभावतः उनकी इज्जत करने लगते थे।"

"मीर सखावत हुसैन घाटमपुर के तहसीलदार अवश्य थे, लेकिन उन्होंने अपना सारा काम-काज ज्वालाप्रसाद पर छोड़ रखा था। मीर साहब की उम्र पचास साल के ऊपर थी और उनका रुझान धर्म और इबादत की तरफ था। अधिकांश समय वह खुदा की याद में बिताते थे, बाकी समय में वे मन बहलाने को शतरंज खेला करते थे। पन्द्रह साल पहले जब उनका इकलौता लड़का मरा था, उनकी तबीयत दुनिया से हट गई थी, और इधर जब पाँच साल पहले उनकी पत्नी मरी तो उन्होंने एक तरह से फ़कीरी ले ली। वे अपने घर से बहुत कम निकलते थे; लोगों से मिलना-जुलना भी उन्होंने एक तरह से छोड़ दिया था। ज्वालाप्रसाद उनके घर जाकर सलाह-मशवरा ले आया करते थे और आवश्यक सरकारी कागज़ात पर उनके दस्तखत करा लेते थे।" मीर साहब गर्मियों में हर साल दो महीने के लिए अपने घर लखनऊ जाते थे।

मीर साहब ऊँचे चरित्र के व्यक्ति हैं। वह ऐसी शादी को बुरा समझते हैं जिससे कर्ज सिर चढ़ जाए। ठाकुर गजराजसिंह की लड़की की शादी पर इसीलिए वह टीका-टिप्पणी करते हैं : "बीस हज़ार का कर्ज़ महज़ एक शादी के लिए!" वह जानते हैं कि प्रभुदयाल से कर्ज़ लेने का मतलब है कि "ये पाँच गाँव भी इस परभूदयाल के हो गये।" मीर साहब ज्वाला को भी प्रभुदयाल से

दूर रहने की सलाह देते हैं। जब उन्हें मालूम होता है कि प्रभुदयाल ज्वाला-प्रसाद के निकट आता जा रहा है तो वह ज्वालाप्रसाद को समझाते हुए कहते हैं, "यह जो धन का देवता होता है, इसके पुजारियों का भी एक मजहब होता है। मजहब का कुदरती गुण है फैलना; दूसरों को अपने में शामिल करना। इस रुपये-पैसे के मजहब का आदमी काफी खतरनाक साबित हो सकता है, क्योंकि वह तुम्हारे मजहब को बदलने की कोशिश करेगा।"

मीर सखावत हुसैन एक बड़े अनुभवी, ऊँच-नीच को समझने वाले, दूरदर्शी, न्यायप्रिय, गुणों का आदर करने वाले, निःस्वार्थ प्रकृति और भावना तथा मुरव्वत के आदमी हैं। रिश्वत लेने और चरित्र के गिरने को वह बहुत बुरा समझते हैं। ज्वालाप्रसाद की ईमानदारी और कार्यदक्षता से वह खुश हैं और उसे अपने बेटे-जैसा समझते हैं।

जब मीर साहब को पता चलता है कि ज्वाला ने सौ अशर्फियाँ देकर बरजोरसिंह की बेवा की सहायता की है और उसकी खुदकाश्त जमीन जैदेई से वापस करा दी है, तो उनका माथा ठनक जाता है। वह समझ जाते हैं कि जरूर ज्वालाप्रसाद ने कोई नादानी की है। इसीलिए वह सबके सामने कहते हैं, "मुझे खुशी है कि ज्वाला बाबू इन्साफ कर सकते हैं, मुझे खुशी है कि ज्वाला बाबू के दिल में दया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि ज्वाला बाबू अभी बच्चे हैं, दुनिया के तजुर्बों की उनमें कमी है।"

मीर साहब को सहसा इस बात पर विश्वास नहीं हो सकता था कि ज्वाला ने अपने पास से सौ अशर्फियाँ देकर बरजोरसिंह की बेवा की सहायता की है। इसीसे वह ज्वाला से सारी बात उगलवा कर ही चैन लेते हैं। उनके "शब्दों में सत्य बोलने का आमंत्रण है।"

मीर सखावत हुसैन का तजुर्बा यह भी नहीं मान सकता कि बिना किसी खास लगाव के जैदेई ज्वालाप्रसाद के कहने पर सौ अशर्फियाँ दे सकती और जमीन छोड़ सकती है। वह स्पष्ट कहते हैं, "इसमें कहीं-न-कहीं कुछ भेद है!" ज्वालाप्रसाद के फूट पड़ने पर वह कहते हैं, "गुनाह को गुनाह तब तक समझा जा सकता है, जब तक इन्सान उस गुनाह को छिपाना चाहे।"...."बरखुरदार, जाने क्यों तुम्हारे लिए मेरे दिल में एक ममता-सी आ गई है। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं, इसीलिए हो सकता है अजाने ही मैंने तुम्हें अपनी औलाद की तौर से मान लिया हो।...तुममें नेकी है, तुममें भोलापन है, तुमसे जुदा होने में मुझे

दर्द होगा, लेकिन वह सब बर्दाश्त करूँगा। तुम्हें बचाने का सिर्फ एक तरीका नज़र आता है मुझे, वह यह कि मैं तुम्हारा तबादला यहां से करा दूं।"

और मीर सखावत हुसैन ज्वालाप्रसाद के प्रति "वालदैन का फर्ज़" निभाने के साथ-साथ निर्ममतापूर्वक न्याय की भी रक्षा करते हैं। ज्वालाप्रसाद पाँव पड़कर कहता है कि आगे शिकायत का मौका नहीं मिलेगा, पर मीर साहब नहीं मानते, "...मैं तुम्हारे वायदों पर, तुम्हारी कसमों पर भरोसा नहीं कर सकता। फिर तुम जानते ही हो कि जहाँ ममता और न्याय में चुनाव करना पड़े, वहाँ न्याय को ही चुनना पड़ेगा। लेकिन वह न्याय भी ममता से भरा होना चाहिये। तुम यहाँ से तरक्की पर ही जाओगे।"

और मीर सखावत हुसैन ज्वाला का तहसीलदार के पद पर सोरांव का तबादला करा देते हैं।

(१४) बरजोरसिंह :

बरजोरसिंह सामन्तशाही और जमींदारी प्रथा का अन्तिम चिन्ह और खण्डहर-अवशेष है। वह राजवर्ग का है, इस बात का उसे बेहद गर्व है। वह उद्धत और हठी है। "ठाकुर बरजोरसिंह के पिता किसी समय एक अच्छे-खासे जमींदार थे, लेकिन समय ने पलटा खाया और धीरे-धीरे बरजोरसिंह के पास एक छोटा-सा गाँव रह गया, जिसकी अधिकांश ज़मीन बंजर थी। उस गाँव से उन्हें करीब ढाई सौ रुपया साल का मुनाफा मिलता था। लेकिन बरजोरसिंह जमींदार तो थे ही! घाटमपुर से प्रायः पाँच मील की दूरी पर उनके गाँव चुनौठा में उनकी बहुत बड़ी हवेली थी, जिसके आगे उनके पिता का हाथी अभी तक झूमता था। वह हवेली मरम्मत न होने के कारण जहाँ-तहाँ से टूटती जाती थी। बरजोरसिंह के पास करीब सौ बीघे की खुदकाश्त थी और उसी खुदकाश्त का उन्हें अवलम्ब था,...पर अपने लड़के के मुंडन-संस्कार में उन्हें एकाएक अपनी सीमा के बाहर खर्च करके जो स्वयं मुँडने की सूझी तो उन्होंने पाँच साल पहले अपनी खुदकाश्त लाला प्रभुदयाल के पास रेहन रख दी थी।"

लेखक ने इन शब्दों में टूटते हुए सामन्तवाद के इस प्रतीक का अच्छा खाक़ा पेश किया है। अपने राज-वंश के अभिमान से ही वह जान-बूझकर लाला प्रभुदयाल का अपमान करता है : "राज-खानदान के लोग ही इतने खर्चे कर सकते हैं, कोई बनिया-बक्काल क्या करेंगे!" जब प्रभुदयाल इस अपमान का बदला लेने के लिए मुकदमा दायर कर उसकी खुदकाश्त ज़मीन हड़पना चाहते

हैं तो वह अपना हाथी देकर जमीन बचाना चाहता है। प्रभुदयाल जब हाथी लेने से जवाब दे देता है तब फिर वह प्रभुदयाल का अपमान करता है, "बनिये साले क्या हाथी पालेंगे, हाथी तो पलता है हम राजकुल वालों के यहाँ।"

"बरजोरसिंह वैसे नेक, मिलनसार और दूसरों के दुख-दर्द में सहायता करने वाला आदमी था, लेकिन स्वभाव से वह हठी और उद्धत था।" वह ठाकुर गजराजसिंह का साला है। ज्वालाप्रसाद को उसके प्रति कुछ सहानुभूति थी। प्रभुदयाल उसके बारे में कहता है, "झूठी मान-मर्यादा के प्रमाद में मनुष्य इतना अंधा क्यों हो जाता है कि वह अपना हित-अहित भी नहीं देखता ?"

वह बड़ा हठी है। गजराजसिंह के मना करने पर भी वह प्रभुदयाल के घर सुबह-सुबह जाता है और गाली-गलौच कर आता है। जब ज्वालाप्रसाद और गजराजसिंह उसे प्रभुदयाल का अपमान करने के कारण उससे मुआफ़ी माँगने को कहते हैं तो वह कहता है, "माफ़ी माँगें हम ? उस बनिये से ?··· समय बदल गया है नायब साहब, नहीं तो इस परभूदयाल को हम रातों-रात लुटवा देते।" बरजोरसिंह के डर से उसकी ज़मीन की नीलामी बोलने कोई नहीं आता।

उसे विश्वास है कि वह परभूदयाल के साथ आप ही निपट लेगा। वह गजराजसिंह और ज्वालाप्रसाद को कहता है, "यह तो हम लोगों का आपसी मामला है, और आपस में मैं परभूदयाल से इस मामले को सुलझा भी लूँगा, दूसरे को इसमें पड़ने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी।" और यह कहते-कहते बरजोर का हाथ उसकी तलवार की मूठ पर अनायास ही पड़ गया।" बरजोर-सिंह की वीरता, निर्भीकता, साहस, आत्मविश्वास आदि गुण तब स्पष्ट हो जाते हैं जब वह लाला प्रभुदयाल की बहली रुकवा कर कहता है, "तो दाखिल-खारिज करा आए लाला परभूदयाल ! मालूम होता है मौत सर पर मंडरा रही है।" वह बड़ी निर्भीकता के साथ प्रभुदयाल के हाथ से रिवाल्वर छीन लेता है और कहता है, "डरो मत लाला, हम तुम्हें मारेंगे नहीं, लेकिन हमें तुमसे इतना ही कहना है कि हमारी ज़मीन पर कब्जा तुम जिन्दा रहते तो पा नहीं सकते और तुम्हारे मरने के बाद यह कब्जा तुम्हारे लिए बेकार होगा।"

और जिस दिन के लिए लाला प्रभुदयाल दल-बलसहित उसकी भरी फ़सल और ज़मीन पर कब्जा लेने की तैयारी करते हैं, उससे पहली रात वह प्रभुदयाल की गुप-चुप हत्या कर देता है। जब ज्वालाप्रसाद के बयान पर उसके वारंट

जारी हो जाते हैं तो गिरफ़्तारी और मुकदमे-कैद के अपमान से बचने के लिए वह आत्महत्या कर लेता है। इस तरह यह राजकुल-अभिमानी, स्वाभिमानी, हठी, उग्र, वीर, साहसी, सामंतशाही का अवशेष टूट जाता है, पर झुकता नहीं।

(१५) ठाकुर गजराजसिंह :

ठाकुर गजराजसिंह घाटमपुर का सबसे बड़ा ज़मींदार है—कई गाँवों का मालिक। पर लेखक ने दिखाया है कि सीमा के बाहर अनाप-शनाप खर्च करने के कारण इस जमींदार की हालत पतली होती जा रही है और इसके स्थान पर महाजनी पूँजीवाद पनपता जा रहा है। ठाकुर गजराजसिंह अपनी लड़की की शादी यज्ञपुर के ताल्लुकेदार राजा चन्द्रभूषण सिंह के लड़के से करता है और शादी में बेहद खर्च कर देता है। उसे अपने पाँच गाँव लाला प्रभुदयाल के पास बीस हज़ार रुपये में गिरवी रखने पड़ते हैं। हज़ार से अधिक आदमी बारात में आते हैं और ठाकुर गजराजसिंह उनकी बढ़िया खातिरदारी करते हैं। "गजराजसिंह के घर के वैभव को देखकर यमुना को कभी-कभी लालच आ जाता था।"

ठाकुर गजराजसिंह में भी राजसी दंभ और आन-बान का भाव बहुत बढ़ा-चढ़ा है। "उनके इलाके से उन्हें बीस हज़ार साल का मुनाफ़ा था, लेकिन उनके खर्च भी वैसे ही लम्बे थे। उनमें एक नहीं, अनगिनती व्यसन थे और इसलिए वे रुपया नहीं बचा सके। उनकी दृष्टि में मितव्ययिता एक दोष था, भगवान् ने व्यय के लिए ही आय बनाई है और संभवतः इसीलिए वे लाला प्रभुदयाल को नीची नज़र से देखते थे।" ठाकुर गजराजसिंह को भी दुःख है कि "बनिया राजा बनने चला है।" वह अंग्रेज़ी राज्य का प्रशंसक है, जिसमें "शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं।"

प्रभुदयाल द्वारा बरजोरसिंह के विरुद्ध मुकदमा दायर किये जाने से वह बहुत क्रुद्ध हो जाता है। वह चाहता है कि किसी तरह ज्वालाप्रसाद बीच में पड़कर समझौता करा दें। पर जब ज्वालाप्रसाद बरजोरसिंह की कोई सहायता नहीं कर पाता और उल्टा बरजोर सिंह के विरुद्ध बयान देकर वारंट निकलवा देता है तो गजराजसिंह ज्वालाप्रसाद से बोलचाल तक बंद कर देता है। पर बाद में जब ज्वालाप्रसाद दया कर बरजोरसिंह की बेवा की जमीन और काश्त वापस दिला कर सहायता करता है, तो गजराजसिंह पुनः ज्वालाप्रसाद का प्रशंसक बन जाता है।

(१६) बेचू मिसिर :

बेचू मिसिर के रूप में वर्मा जी ने पुरोहित-वर्ग के सरकारी नौकर का चित्रण किया है। "बेचू मिसिर सोरांव में नायब तहसीलदार थे, और सोरांव के ही रहने वाले थे। न उनका कभी तबादला वहाँ से हुआ और न उनके तबादले की कोई आशा थी।...अगर तबादला कराने पर राज़ी हो गए होते तो बेचू मिसिर अभी तक डिप्टी कलक्टर हो गए होते।"

"बेचू मिसिर की अवस्था पैंतालीस और पचास वर्ष के बीच में थी और वे सोरांव के सामाजिक जीवन के नेता समझे जाते थे। बेचू मिसिर नायब तहसीलदारी करते थे, पंचायती करते थे और पुरोहिताई करते थे। दो-चार दफ़ा डिप्टी साहब ने यह इशारा भी किया था कि एक जिम्मेदार और ऊँचे सरकारी मुलाज़िम को यह सब शोभा नहीं देता। पर बेचू मिसिर का कहना था कि आदत से मजबूर हैं,...वैसे बेचू मिसिर निर्भीक, दबंग और एक हद तक क्रोधी और झगड़ालू आदमी थे। लोग-बाग उन्हें बहुत मानते थे, क्योंकि ईमानदार होने के साथ वह सबसे बराबरी से मिलते थे और लोगों के दुःख-दर्द में शरीक होते थे।

"बेचू के प्रति ज्वालाप्रसाद काफी अधिक सदय थे, एक तरह से ज्वालाप्रसाद बेचू मिसिर की इज्जत करते थे। सरकारी मामलों में वह हमेशा बेचू मिसिर की सलाह पर चलते थे।" (भूले-बिसरे चित्र, पृ० १६६)।

इस प्रकार बेचू मिसिर का चरित्र अधिकतर प्रत्यक्षशैली से अंकित किया गया है।

"बेचू मिसिर संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।" अपनी निर्भीक प्रवृत्ति, अपने पद में निहित अहम्मन्यता से भरकर बेचू मिसिर ठाकुर वीरभानसिंह पर छींटा-कशी करते हुए कहते हैं, "भगवान् की आड़ में अपनी क्षमता और अपने वैभव का प्रदर्शन मनुष्य में अहम्मन्यता को जन्म देता है।"

पर ठाकुर वीरभानसिंह इस छिपे अपमान का बदला बेचू मिसिर से सत्यनारायण की कथा कराकर और दान-दक्षिणा के रूप में चाँदी का जूता देकर लेते हैं।

बेचू मिसिर को किसी-न-किसी चहल-पहल, हलचल में मज़ा आता है। वह सोरांव में दंगल कराने में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। समझ-बूझ भी उन्हें बहुत है। जब मुन्शी शिवलाल सदर आला पं० गिरिजाशंकर के आगे झूठ-

झूठ यह कहते हैं कि ग़फ़ूर मियाँ की बेवा सलीमा को ज्वाला ने रुपये दिये थे, तभी सलीमा ने जमीन श्यामू के नाम की, तो बेचू मिसिर उनके झूठ को ताड़ जाते हैं और कहते हैं कि अगर तहसीलदार साहब (ज्वालाप्रसाद) कह देंगे तो बात सच्ची मानी जायेगी।

बेचू मिसिर पुराने ढंग के अंधविश्वासी-से भी हैं। जब घुंडी स्वामी द्वारा ज्वालाप्रसाद को भभूत दिये जाने पर मुट्ठी खोलने से गोमेध निकलता है और घुंडी स्वामी ज्वालाप्रसाद को गड़ा धन मिलने की भविष्यवाणी करता है, तो बेचू मिसिर घुंडी स्वामी के पाखंड को नहीं समझ पाता और उसके मन में ज्वालाप्रसाद के प्रति एक प्रकार की ईर्ष्या जाग जाती है। वह घुंडी स्वामी पर विश्वास करके "इस फिराक में थे कि घुंडी स्वामी उन्हें भी कुछ भभूत वगैरह दें···।"

इस प्रकार बेचू मिसिर के चरित्र में पर्याप्त वैचित्र्य है।

(१७) विलियम ग्रिफ़िथ्स

विलियम ग्रिफ़िथ्स ब्रिटिश पार्लियामेंट का सदस्य है और "इंगलैंड से हिन्दुस्तान की हालत और खास तौर से अमृतसर-कांग्रेस को देखने के लिए आया है।" साथ ही वह यह भी पता लगाना चाहता है "कि सर माइकेल ओडायर द्वारा हिन्दुस्तान में जो ज्यादतियाँ की गई हैं, उनका असर हिन्दुस्तान की जनता पर कैसा पड़ा है!"

मि० ग्रिफ़िथ्स का विचार है कि पिछले महायुद्ध के प्रभाव से दुनिया की मान्यताएँ बदल गई हैं; अब शासक को जनता के निकट सम्पर्क में आना जरूरी है—इसीलिए वह थर्ड क्लास के कम्पार्टमेंट में सफर करता है। वह नई प्रगति का वाहक है। वह हिन्दुस्तान पर अंग्रेजों या अंग्रेजी सरकार के जुल्मों का विरोध करता है। उसके हृदय में जातीय गर्व और गौरव की भावना है। जब गंगाप्रसाद कहता है कि भारत तो नादिर, जनरल डायर सबके अत्याचारों और हत्याकाण्डों का अभ्यस्त हो चुका है तो ग्रिफ़िथ्स की जातीय भावना को ठेस लगती है, और वह कहता है, "नादिरशाह व्यक्ति था, जनरल डायर ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि था। तुम नादिरशाह को क्रूरता और अमानुषिकता के प्रतीक के रूप में युग-युग तक याद रख सकते हो, लेकिन तुम उसे ब्रिटिश-जाति की निर्दयता, क्रूरता और अमानुषिकता का प्रतीक न मानने पाओगे!"

वह भारत में रेलवे कम्पनी की रंग-भेद नीति का विरोध करता है। जब

कानपुर का गोरा स्टेशन-मास्टर ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद को यूरोपियनों के डिब्बे में सफ़र करने से मना करता हुआ उन्हें उतरने को कहता है, तो ग्रिफ़िथ्स उसका विरोध करता है, "मैं पूछना चाहता हूँ कि रेलवे कम्पनी को क्या अधिकार है कि वह इस तरह रंग-भेद बरते"......"इस तरह के ग़ैरकानूनी और अनैतिक काम को मैं अपनी आँखों के सामने होते हुए देखूं, यह नहीं हो सकता। वैसे पार्लियामेंट में तो मैं इस प्रश्न को उठाऊँगा ही, लेकिन यहाँ भी मुझे कुछ कार्यवाही करनी पड़ेगी।"

मि० ग्रिफ़िथ्स भारत को स्वराज्य दिये जाने के पक्ष में नहीं है, क्योंकि उसके अनुसार भारत ब्रिटिश साम्राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। इसे खोकर ब्रिटेन अपनी महत्ता का विनाश नहीं कर सकता। "फिर हिन्दुस्तान इस योग्य भी तो नहीं है कि वह खुद शासन कर सके। हाँ, हिन्दुस्तान को सुधार मिलेंगे, धीरे-धीरे!" मि० ग्रिफ़िथ्स को आश्चर्य है कि जनरल डायर के हत्याकाण्ड के बाद भी पंजाबियों की मार्शल रेस में क़ोई उत्तेजना नहीं, कोई विद्रोह की भावना नहीं। वह कहता है कि भारत में "भावना और चेतना दोनों का ही अभाव है।"

इस प्रकार ग्रिफिथ्स के रूप में वर्मा जी ने एक ऐसे ब्रिटिश संसद-सदस्य की अवतारणा की है जो इंगलैंड में भारत के प्रति उदार थे और नई चेतना के प्रतीक थे—संभवतः लेबर पार्टी के सदस्य!

(१८) किशनलाल :

मुंशी राधेलाल के चारों लड़कों में किशनलाल सबसे ज्यादा आवारा, दुश्चरित्र और निकम्मा है। वह अपनी आवारगी में घर से भाग जाता है, कभी साधुओं के टोल में शामिल हो जाता है और कभी माघ-मेले के अवसर पर प्रयाग में फतहपुर की करीमन रण्डी के यहाँ रहता है। वह मेले में औरतों से छेड़-छाड़ करता हुआ पकड़ा जाता है। करीमन रण्डी के यहाँ रहते हुए वह कलमा पढ़कर मुसलमान बनना चाहता था। मुंशी शिवलाल उसे पुलिस से छुड़ाते हैं। वह परले दर्जे का लुच्चा है। जब मुंशी शिवलाल के जोर देने पर ज्वाला उसे जैदेई के यहाँ कारिन्दे के रूप में रखवा देता है और जैदेई उसे घर के लड़के की तरह रखती है तो वहाँ वह लक्ष्मी की बहू राधा पर डोरे डालने लगता है, उसे फुसलाना चाहता है और एक रोज तो वह राधा को भंग पिला-

कर कमरे में पकड़ने का प्रयत्न करता है। राधा के शोर मचाने पर वह पकड़ा जाता है और उसकी खूब मरम्मत करके वहाँ से भगा दिया जाता है।

किसनू झूठा, मक्कार और चोर है। वह सोरांव में ज्वालाप्रसाद और अपने पिता के पास आकर झूठ बोलता है और लक्ष्मीचन्द की बुराई करता हुआ कहता है कि उन्होंने बिना बात ही मार-पीट कर निकाल दिया। ज्वालाप्रसाद उसकी बात का कैसे यकीन करते ? उसका छोटा भाई बिशनलाल भी हंसता हुआ कहता है, 'अरे, किशनू दादा से और सच से तो पुराना बैर है। पिटे यह और कहीं, और अपनी हरकतों से पिटे, लेकिन नाम बदनाम कर रहे हैं लक्ष्मीचन्द का।"

किशनू घुंडी स्वामी का मुख्य चेला बन जाता है। वह अपने भाई तहसीलदार का नाम लेकर मुल्लू ठेकेदार से घुंडी स्वामी के लिए रोज चरस लाने लगता है। वह चरस के खूब दम लगाता है। घुंडी स्वामी से वह बसी-करन मंत्र लेना चाहता है ताकि लक्ष्मीचन्द की पत्नी राधा को बस में कर ले।

इस प्रकार किशनू का चरित्र निम्न मध्यवर्ग के एक आवारा लड़के का चरित्र है।

(१९) श्यामलाल :

मुंशी राधेलाल के साहबज़ादे श्यामलाल पूरे चालबाज़ और चोर हैं। गाँव फतेहपुर की ज़मीन पर खेती का काम उसे सौंपा जाता है, पर खेती तो उसने क्या करानी थी, खुराफातों में लग जाता है। वह ग़फ़ूर मियाँ की बेवा सलीमा को अफीम खिला कर कोरे कागज पर उसका अंगूठा लगवा लेता है और मौजा रहीमपुरा की उसकी आधी ज़मीन अपने नाम करा लेता है। वह बाकी आधी भी हड़पना चाहता है। वह अपने पिता मुंशी राधेलाल के साथ मिलकर षड्यंत्र रचता है। वह रहीमपुरा की ज़मीन ज्वालाप्रसाद के नाम करने को तैयार है ताकि ज्वालाप्रसाद के नाम होने से मुकदमा जीता जा सके। वह चाहता है कि ज्वालाप्रसाद अपने असर-रसूख से मुकदमा जितवा दे। इस षड्यंत्र में असफल होने पर वह राजा सरोहन को गांठता है और लाला घनश्यामदास के विरुद्ध मुकदमेबाजी में ज्वालाप्रसाद को उलझाना चाहता है। वह समझता है कि ज्वाला के प्रभाव से मुकदमा जीते जाने पर दो गाँव उनके हाथ लग जायंगे। पर ज्वालाप्रसाद उसके इस षड्यंत्र को भी चलने नहीं देते। आखिर वह

सोरांव की अमराइयों से आमों की चोरी करने का धंधा अपनाता है। वह बिशनलाल की अमराई वाली अखाड़े की जगह की आड़ में आस-पास की अमराइयों के आम रातों-रात चुरा लेता है और आमों के कई गड्डे भरकर बाजार में बेच आता है। जुम्मन मियाँ एक दिन उसे पकड़कर ज्वालाप्रसाद के सामने उसकी लानत-मलामत करते हैं। ऐसा है वह निर्लज्ज, चोर, बेईमान, जालसाज़।

इस निकम्मे की पत्नी का भी घर में कोई आदर नहीं।

(२०) बिशनलाल :

मुंशी राधेलाल का सबसे छोटा लड़का बिशनलाल स्वच्छन्द प्रकृति का, दिल का सच्चा, सीधा, निर्भीक और चरित्रवान् है। "बिशनलाल में कोई अवगुण नहीं थे और पढ़ने-लिखने में वह ऐसा बुरा भी नहीं था। एक साल पहले उसने मिडिल पास किया था। लेकिन वह ज़रा जिद्दी स्वभाव का था, दबना और झुकना उसे न आता था और इसलिए वह अपने को नौकरी के अयोग्य समझता था। कसरती और गठे बदन का लम्बा-सा युवक, मुख भावनाहीन और आँखें कुछ भूली-भूली-सी।"

बिशन को अखाड़े और कुश्ती का शौक है। वह नौकरी नहीं कर सकता, खेती कर सकता है। पर श्यामू की धौंस न सहकर खेती छोड़ देता है। अपने खेत के पास अखाड़ा खुदवाकर ज़ोर करने लगता है। जग्गू पहलवान को अपना उस्ताद बना लेता है। वह बड़ी उदारता के साथ दो भैंसों का घी-दूध जग्गू पहलवान और उसके शागिर्दों में बाँट देता है।

वह सत्यप्रिय है, धोखा-धड़ी उसे अच्छी नहीं लगती। जब राधेलाल ज्वाला को बताता है कि गफ़ूर मियाँ की बेवा सलीमा से श्यामू ने मौज़ा रहीमपुरा का आधा भाग खरीद लिया है, तो बिशन इस झूठ का पर्दाफाश करता हुआ कहता है : "ज्वाला दादा, यह सब धोखा-धड़ी है। सलीमा चाची को अफ़ीम खिला-खिलाकर श्यामू दादा ने उसके अंगूठे का निशान एक कोरे दस्तावेज पर करा लिया......।" राधेलाल, ज्वालाप्रसाद सब उसे बीच में न बोलने को कहते और डाँटते हैं, पर सच कहने से वह रह नहीं सकता। वह फिर व्यंग्य से कहता है, "हाँ ज्वाला दादा, अगर श्यामू दादा की इस जालसाज़ी में आप भी शामिल हो जायँ तब काम बड़े मजे में बन जायगा...।" जब किशन अपनी हरकतों के कारण लक्ष्मीचन्द के आदमियों से पिटकर आता

है और लक्ष्मीचन्द पर झूठा दोष लगाता है, तो बिशन उसकी झूठ जान लेता है और कहता है, "अरे, किशनू दादा से और सच से तो पुराना बैर है।"

सोरांव में आकर भी बिशन ने अखाड़ा खोदकर अखाड़ा जमा दिया। वह बिशन गुरु बन गया और कई शिष्य बना लिये। वह घुमरू मिसिर को अपना साथी बनाकर महावीर जी के मंदिर का उद्धार करता है। "बिशनलाल का कार्यक्रम यह था कि रोज़ शाम को सौ डण्ड और पाँच-सौ बैठकें लगाकर बजरंगबली का आशीर्वाद माँगते थे, फिर अखाड़े में पहुँचकर अपने शिष्यों को ज़ोर करवाते थे।" सोरांव के प्रसिद्ध पहलवान बुद्धूसिंह भी उसकी कसरत देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। अखाड़े का खर्चा बिशन महावीर जी के भोग-चढ़ावे से निकालता है। यद्यपि बिशन बुद्धू पहलवान से सकपका जाता है, पर जब बुद्धूसिंह कहता है कि "हम गण्डा लेते आए हैं, गण्डा बाँध लो" और सोरांव में बुद्धू पहलवान के रहते दूसरा गुरु नहीं हो सकता, तो बिशन भी निर्भीकता से कहता है, "गण्डा तो एक ही उस्ताद का बँधता है। हम जग्गू पहलवान से गण्डा बँधवा चुके हैं। अब तो हम खुद गण्डा बाँधते हैं।" दंगल में बुद्धूसिंह अपने शिष्य मैकूसिंह के विरुद्ध बिशन की जीत करा देते हैं और बिशन को बुद्धूसिंह का शिष्य बनना पड़ता है।

भभूत देकर मुट्ठी में गोमेध, मूँगा आदि निकालने वाले घुंडी स्वामी का पाखंड भी बिशन से छिपा नहीं रहता। वह ज्वालाप्रसाद से कहता है, "आप भी किस जालिये के चक्कर में फंस रहे हैं दादा!"

बिशन को दुःख है कि उसके बड़े भाई श्यामू और किशनू खानदान की नाक कटाने पर तुले हुए हैं। जब ज्वालाप्रसाद राधेलाल और उसके परिवार से तंग आ जाता है तो वह सबको चले जाने को कहता है, पर बिशन को वहीं रख लेता है। जब बिशन की माँ ज्वालाप्रसाद से कहती है कि, "बिशन का ख्याल रखना"—तो ज्वालाप्रसाद बिशन के बारे में कहता है, "बिशनू की कोई चिंता न करो चाची, उससे दुनिया में किसी को कोई शिकायत नहीं हो सकती!"

इस प्रकार बिशनलाल स्वच्छन्द, निर्भीक, सच्चा, सच्चरित्र और अखाड़िया नवयुवक है।

(२१) अलीरज़ा :

अलीरज़ा इस्माइल एक्साइज़ विभाग में इन्स्पेक्टर है। गंगाप्रसाद को

वह शराब प्राप्त कराता है और खूब पीता-पिलाता है। गंगाप्रसाद के साथ इसी सिलसिले में उसकी घनिष्ठता हो जाती है। उसके कारण गंगाप्रसाद का शराब का व्यक्तिगत खर्चा कुछ कम हो गया है। वह बड़ी रंगीली तबीयत का दुष्ट आदमी है। वह अन्दर-बाहर से जुदा-जुदा है। बाहर से वह गंगाप्रसाद से मित्रता रखता है, पर दिल का साफ़ नहीं है। ज्ञानप्रकाश ठीक ही गंगाप्रसाद को उसके सम्पर्क से दूर रहने की सलाह देता है।

सुरा-सुन्दरी की उसे बुरी आदत है। वह राग-रंग, नाच, शराब में ही जीवन का आनन्द समझता है। वह बड़ी दुष्टता से मलका पर क़ाबू पाना चाहता है। वह गंगाप्रसाद के सामने मलका के बारे में जो प्रस्ताव रखता है, उससे उसके दुष्ट चरित्र और नीचता का पूरा परिचय मिल जाता है। वह मलका को अपनी बेगम बनाना चाहता है। गंगाप्रसाद के प्रति मलका के प्रेम को देखते हुए वह प्रस्ताव करता है कि मलका का उसके साथ निकाह पढ़वा दिया जाय ताकि बेग़म अलीरज़ा बनकर वह इज्जत-आबरू से रह सके। वह गंगा को कहता है कि लोक-दिखावे के लिए ही मलका बेग़म अलीरज़ा बनेगी, अन्यथा वह गंगाप्रसाद की ही रहेगी। आश्चर्य है कि उसके इस हास्यास्पद प्रस्ताव को गंगाप्रसाद कैसे मान जाता है!

मलका अलीरज़ा से सख्त नफ़रत करती है। वह कहती है, "हाँ, लाजवाब आदमी है—मक्कारी में, शैतानियत में, कमीनेपन में।" जब गंगाप्रसाद मलका को बेगम अलीरज़ा बन जाने को कहता है तो मलका रो देती है, "तो आप मुझको छोड़कर इस मरदूद के गले मढ़ना चाहते हैं!..... मैं खुदकशी कर लूँगी, लेकिन इस बेशरम कमीने के साथ किसी भी हालत में निकाह नहीं पढ़ाऊँगी।"

निस्संदेह अलीरज़ा बहुत ही बेशरम, नीच, कमीना और दुष्ट आदमी है। मान-सम्मान, स्वाभिमान उसमें ज़रा भी नहीं। वह गंगाप्रसाद की डांट-फटकार को बड़ी निर्लज्जता से सहता रहता है। वह बड़ा दब्बू और खुशामदी किस्म का आदमी है। गंगाप्रसाद के क्रुद्ध होकर गालियाँ सुनाने पर वह उसके पांव पड़ जाता है और ऊपर से बड़ी आजिज़ी दिखाता है पर अन्दर से वह काला है। वह डिप्टी अब्दुलहक़, फरहतुल्ला आदि गंगाप्रसाद के विरोधियों की बातें बताकर गंगाप्रसाद को भड़काता है। ऊपर से वह ज़ाहिर करता है जैसे उसमें तास्सुब बिल्कुल नहीं। पर अपने स्वार्थ के लिए वह कट्टर साम्प्रदा-

यिक बन जाता है। समीउल्ला के मामले में वह गंगाप्रसाद को कहता है, "जी, यहाँ काबिल-नाकाबिल का सवाल नहीं उठता ; यहाँ तो सवाल यह है कि एक मुसलमान को हटाकर उसकी जगह एक हिन्दू मुक़र्रर हुआ है।" वह गंगाप्रसाद को सलाह देता है कि "आप इस बात का ख्याल रखिएगा कि आपकी कोई भी हरकत फिरकेवाराना न दिखे······।"

अलीरज़ा बाद में अब्दुलहक़ से मिलकर साज़िश करता है। वह माया शर्मा बनी हुई मलका को उठवा लाता है। उसे अपनी बेग़म मलका बनाने के लिए कैद रखता है, दबाव डालता है। जब गंगाप्रसाद मलका को उसकी कैद से छुड़ाता है, तो वह मज़हब की दुहाई मचाता है। वह गंगाप्रसाद को गालियाँ देता हुआ कहता है, "दोज़ख का कुत्ता कहीं का! तेरी इतनी हिम्मत कि तू मलका को यहाँ से निकालकर ले जा सके! तेरी मौत खींच लाई है तुझे!" यहाँ पता चलता है कि गंगाप्रसाद से उसकी दोस्ती की बातें सब फरेब था, झूठ था! वह मुसलमानों को भड़काता हुआ कहता है, "दीनदारो! यह काफिर मेरी बेगम को जबरदस्ती भगाए लिये जा रहा है। इसकी इतनी हिम्मत कि यह दीनदारों के घर पर डाका डाले! ज़िन्दा न जाने पावे!" अलीरज़ा फरहतुल्ला को भी 'काफ़िरों का ग़ुलाम' कहता है।

अलीरज़ा को 'आज़ादी-वाज़ादी' से कोई मतलब नहीं। उसे तो "रोटी और बोटी से मतलब है।" वह सरकार-अंग्रेज़ी का वफ़ादार है।

इस प्रकार अलीरज़ा पक्का स्वार्थी, मक्कार, ढोंगी, जालिया, बेशरम, लुच्चा, कमीना, नीच, दुश्चरित्र, बुज़दिल और तास्सुबी आदमी है।

(२२) डिप्टी अब्दुलहक़ :

डिप्टी अब्दुलहक़ सरकारी अफसर है। वह कट्टर मुसलमान है और तास्सुब से भरा है। समीउल्ला के मामले को वह फिरकादाराना रंगत दे डालता है। वह फ़रहतुल्ला के भतीजे और अपने भाँजे समीउल्ला के स्थान पर बंसीधर के लगाये जाने को साम्प्रदायिक रंग देता हैं और फरहतुल्ला द्वारा साज़िश कराकर बंसीधर को रिश्वत आदि में फँसवा देता है। वह गंगाप्रसाद से विरोध ठान लेता हैं, पर हर कदम पर बुरी तरह हारता हैं।

अब्दुलहक़ अपने नाक़ाबिल भांजे समीउल्ला की जगह बंसीधर की नियुक्ति पर हिन्दू-मुसलमान का सवाल उठा देता है। वह काबिल-नाकाबिल की बात

नहीं सोचता, उसके सामने "तो सवाल यह है कि एक मुसलमान को हटाकर उसकी जगह एक हिन्दू मुकर्रर हुआ है।"

इसी प्रकार मलका के स्वेच्छापूर्वक माया शर्मा बन जाने पर वह बावेला मचाता है। वह गंगाप्रसाद से कहता है, "मलका मुसलमान है और किसी मर्द या औरत के इस्लाम को छोड़ने पर हर मुसलमान को बुरा लगना चाहिये। मैं कहता हूँ कि हिन्दू इस तरह मुसलमानों का वजूद नहीं मिटा सकते। मलका मुसलमान थी, वह मुसलमान रहेगी।" उसी की साजिश और शै पर अलीरज़ा माया शर्मा को जबरदस्ती उठवाकर अपनी कैद में रखता है।

इस प्रकार वह पक्का तास्सुबी है। वह खिलाफ़त का हामी है। तुर्की के खलीफ़ा को वह भारतीय मुसलमानों का भी खलीफ़ा समझता है। वह हिन्दुस्तान को स्वराज मिलने के हक़ में नहीं है। उसके अनुसार हिन्दुस्तान को बस सुधार मिलने चाहियें और वह भी धीरे-धीरे! उसका विचार है, "डोमीनियन स्टेटस, स्वराज, इनके माने हैं अंग्रेज़ों की सरपरस्ती में हिन्दू-राज का कायम होना······हम मुसलमानों को अंग्रेज़ों की जगह हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी। तो एक हल्की-फुल्की गुलामी से निकलकर जनम-जनम तक अखरने वाली गुलामी में हम बँधने को तैयार नहीं!" जब ज्ञानप्रकाश कहता है कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं तो अब्दुलहक़ हँसते हुए कहते हैं: "मुसलमान इस भाई-भाई के धोखे में नहीं पड़ेंगे। एक हज़ार वर्ष तक हमने हिन्दुओं पर हुकूमत की है, अब स्वराज मिलने के माने हैं कि हिन्दू हम पर हुकूमत करेंगे, हमें सताएँगे।"

इस प्रकार अब्दुलहक़ सर्वथा साम्प्रदायिक कट्टर मुसलमान और हिन्दू-विरोधी राजभक्त है। उसके चरित्र का यही रूप प्रकट हुआ है।

(२३) फ़रहतुल्ला:

फ़रहतुल्ला जौनपुर के नवयुवक किन्तु प्रभावशाली और सफल वकील हैं। खिलाफ़त समस्या को लेकर वह सरकार के विरुद्ध बड़ा उत्तेजनापूर्ण भाषण करते हैं और पकड़े जाते हैं। फ़रहतुल्ला कांग्रेसी बन जाते हैं और गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुए अपनी वकालत छोड़ बैठते हैं।

फ़रहतुल्ला अब्दुलहक़ जैसे तास्सुबी नहीं हैं। जब ज्ञानप्रकाश उन्हें बताता है कि अलीरज़ा की कैद से मलका को छुड़ाने के सिलसिले में गंगाप्रसाद की जान खतरे में है, तो वह तुरन्त वहाँ आता है और उत्तेजित मुसलमानों को

शांत करता है। वह गांधीजी के सविनय सत्याग्रह का यहाँ उपयोग करता हुआ कहता है, "भाइयो, मेरी लाश पर पैर रखकर ही तुम इन लोगों पर हमला कर पाओगे।"

वह कांग्रेसमैन के नाते अपने फ़र्ज़ अदा करता है। फ़रहतुल्ला सुनाता है कि किस प्रकार अलीरज़ा और अब्दुलहक़ ने मुसलमानों को भड़काकर उसका जौनपुर में रहना मुश्किल कर दिया। फ़रहतुल्ला भी बाद में मलका के मामले में कहता है कि "आख़िर मलका मुसलमान थी, उसके हिन्दू बनाने में मेरी तरफ़ से आप लोगों को मदद मिली।" यह सुनकर गंगाप्रसाद चकित रह जाता है! तो क्या फ़रहतुल्ला जैसा कांग्रेसी भी कट्टर मुसलमान है? गंगाप्रसाद को फ़रहतुल्ला तक के हृदय में हिन्दू-मुसलमान का भेद देखकर अपना इस्तीफ़ा देने का विचार बदलना पड़ता है। फ़रहतुल्ला कहता है, "हम दोनों का समाज अलग है, हम लोगों का कल्चर अलग-अलग है।"……"लेकिन मेहरबान, मैं मुसलमान पहले हूँ, और मेरा मज़हब सचाई और बराबरी की नींव पर क़ायम है……।" फ़रहतुल्ला हिन्दू-समाज को "एक्सप्लाइटेशन की नींव पर क़ायम" मानता है और इसीलिए मुसलमानों के हिन्दुओं से अलग रहने को उचित समझता है।

इस प्रकार इस पात्र के चरित्र-चित्रण से वर्मा जी ने दिखाया है कि बहुत-से कांग्रेसी बने हुए मुसलमान भी मजहबी कट्टरता के कारण हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव रखते थे।

(२४) प्रेमशंकर :

प्रेमशंकर नवल का दोस्त है और क्रांतिकारी विचारों का युवक है। उसने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० करने के बाद एल-एल० बी० किया है। वह गरीब परिवार का है। कुछ पाश्चात्य कम्यूनिस्टों के सम्पर्क और साम्यवादी लिट्रेचर पढ़ने से वह साम्यवाद से प्रभावित हो जाता है। वह चरित्र का सबल और ज़बान का धनी है। वह रिश्वत और धोखाधड़ी को सहन नहीं कर सकता। जब उसके सहपाठी सिद्धेश्वरी के कहने पर वह सिद्धेश्वरी के पिता बाबू बिन्देश्वरी की सरपरस्ती में वकालत करने लगता है और देखता है कि डिस्ट्रिक्ट जज बाबू बिन्देश्वरी उसकी वकालत की आड़ में रिश्वत ही लेते हैं तो उसे बहुत ग्लानि होती है। वह इस पाप की कमाई को छोड़ वापस इलाहाबाद लौट आता है।

प्रेमशंकर का समस्त जीवन संघर्षों का जीवन रहा है। पिता उसे अबोध बालक छोड़ मरे थे। माता ने बड़ी कठिनाइयों से उसे पढ़ाया। एम० ए० फर्स्ट क्लास में पास करने पर भी उसे नौकरी नहीं मिली! एल-एल० बी० करके भी वह निराश-सा ही है। "प्रेमशंकर के समस्त व्यक्तित्व में एक प्रकार की कोमलता थी। उसकी वाणी में एक प्रकार की मिठास थी और आँखें कुछ खोई-खोई-सी थीं।"

सिद्धेश्वरी प्रेमशंकर को गालियाँ देता है, पर तो भी प्रेमशंकर शांत रहता है और कहता है, "तुम मेरे घर पर आये हो सिद्धेश्वरी, नहीं तो मैं अभी तुम्हारी अक्ल दुरुस्त कर देता। ज़रा आगे तो बढ़ो, देखूं कितनी जीवट है तुममें!"

वह सिद्धेश्वरी की कुछ लंगड़ी-सी बहन से शादी करने के अपने वायदे को अब भी पूरा करने को तैयार है। वह कहता हैं, "मैं इस समय भी तैयार हूँ विवाह करने के लिए। मुझे तुम्हारा वह बंगला नहीं चाहिए, मुझे किसी भी तरह का दहेज़ नहीं चाहिये।"

बिन्देश्वरी बाबू प्रेमशंकर से बदला लेने के लिए 'मेरठ कांस्पिरेसी केस' में प्रेमशंकर का नाम सम्मिलित कराकर उसके वारंट निकलवा देते हैं। प्रेमशंकर का 'मेरठ कांस्पिरेसी' के क्रांतिकारी युवकों से केवल सम्पर्क था। पर प्रेमशंकर अपने वारंट से भी घबराता नहीं। वह अपने घर की तलाशी की सूचना पहले ही पा लेता है और कम्यूनिज़्म से सम्बन्धित पुस्तकें नवल के यहाँ लाकर जलवा देता है। वह अपने साढ़े तीन हज़ार रुपये भी नवल के पास रख देता है। ज्ञानप्रकाश और नवल को ज़मानत देने तथा उसके मुकदमे की पैरवी करने से मना करता है क्योंकि वह नहीं चाहता कि उसके कारण बिन्देश्वरी के साथ उनके पारिवारिक सम्बन्ध खराब हों।

ज्ञानप्रकाश उसके आदर्श चरित्र पर मुग्ध हो कहता है, "मैं तुम्हारी ईमानदारी, तुम्हारे साहस और तुम्हारे विश्वास पर तुम्हें बधाई देता हूँ।"...... "प्रेमशंकर तुम महान् हो!" ज्ञानप्रकाश नवल से कहता है, "जिस देश में तुम्हारे और प्रेमशंकर जैसे निष्ठावान्, चरित्रवान् और साहसी नवयुवक पैदा होने लगें, उस देश को कोई भी शक्ति गुलामी में बाँधकर नहीं रख सकती।"

इस प्रकार प्रेमशंकर साहसी, विचारवान्, निर्भीक, चरित्रवान्, आत्माभि-

मानी, आत्मविश्वासी, क्रांतिकारी, ईमानदार और अन्याय का विरोधी युवक है। वह नवल की तरह नई पीढ़ी की नई चेतना का प्रतीक है।

(२५) रायबहादुर कामतानाथ :

रायबहादुर कामतानाथ एक पुराने ढंग के सरकारी पिट्ठू हैं। गंगाप्रसाद के लड़के नवल के साथ वह अपनी लड़की उषा की शादी तय करते हैं। बाबू कामतानाथ हर साल गर्मियों में किसी पहाड़ी स्थान पर जाते हैं। वह स्विट्ज़रलैंड में गर्मियाँ बिताने जाते हैं। साथ में उषा भी जाती है। कामतानाथ चाहते हैं कि नवल भुवाली सैनिटोरियम में अपने बीमार पिता के साथ न जाकर, उनके साथ स्विट्ज़रलैंड जाए। वह नवल के विलायत जाने और आई० सी० एस० पढ़ने का सारा खर्च देने को तैयार हैं। अपने भावी दामाद के जीवन और 'कैरियर' की उन्हें चिंता स्वाभाविक ही है।

रायबहादुर कामतानाथ को अपने पद, ऐश्वर्य, बुद्धि का गर्व है। दूसरे चाहे उन्हें कुछ भी समझते हों, पर वह अपने को निहायत बुद्धिमान और सफल समझते हैं। नवल का वकालत पढ़ना उन्हें अच्छा नहीं लगता। वह समझते हैं कि वकालत में कुछ भी नहीं रखा। उनका लड़का गौरी सौ-पचास रुपया महीना हासिल कर पाता है। उनकी इच्छा है कि उनके खानदान में कोई बड़ा अफ़सर हो जाता। इसी से नवल को आई० सी० एस० के लिए ज़ोर देते हैं।

कामतानाथ राजभक्त हैं। उन्हें स्वराज्य-आन्दोलनों से चिढ़ है। उन्हें साइमन कमीशन का बाइकाट अच्छा नहीं लगा। वह कहते हैं, "जी, वे स्वराज देने आयें, और ये उन लोगों से बात न करें, कितनी बड़ी हिमाकत है!"...... "हिन्दुस्तान को स्वराज्य क्या, कद्दू मिलेगा!" वह अंग्रेज़-सरकार को इतना चन्दा देते हैं, इतना बड़ा खिताब है, जायदाद, इज्ज़त सब है, पर फिर भी रायबहादुर साहब को कमीशन के सामने नहीं बुलाया गया! ज्ञानप्रकाश चुटकी लेता हुआ कहता है, "लेकिन आपको पूछा ही नहीं उन लोगों ने!" रायबहादुर कहते हैं, "क्या बताऊँ, ये हरामज़ादे अंग्रेज अफसर हज़ारों रुपया चन्दा ले जाते हैं, और कमीशन से मिलाने के लिए कांग्रेसियों की खुशामदें करते हैं। मैं जाता तो कमीशन वालों को स्वराज देने के लिए राज़ी न कर लेता! मैंने लैफ्टिनेंट गवर्नर को लिखा था, लेकिन मेरी चिट्ठी का जवाब तक नहीं दिया उन लोगों ने! अब आगे से आवें चन्दा मांगने, एक पैसा भी न दूंगा किसी मरदूद को!"

इस प्रकार कामतानाथ एक ऐसे टिपीकल पात्र हैं जो अपने वैभव के गर्व, अपनी बुद्धि के अभिमान तथा जीवन के सुख-स्वार्थों में मग्न हैं। न उन्हें देश से मतलब है, न आज़ादी से। जब वह नवल को खद्दर पहनते और कांग्रेस का वालन्टियर बनते देखते हैं तो आह भरकर कहते हैं, "लड़का हाथ से निकल गया डिप्टी साहब!" वह नवल को अभी भी बांधना चाहते हैं और जल्दी-से-जल्दी शादी करके निन्यानवे के फेर में डाल देना चाहते हैं। उषा के नाम वह पचास हज़ार रुपये बैंक में जमा करा देते हैं और दोनों को शादी के बाद विलायत भेजना चाहते हैं। पर उनकी मुराद पूरी नहीं होती। ज्वालाप्रसाद के सामने रायबहादुर साहब अपने वैभव का बखान करते हुए कहते हैं, "डिप्टी साहब, यह जिन्दगी ही मुसीबत है। सोचा था कि काफ़ी पैदा कर चुके हैं हम लोग, आठ मौजे खरीद लिए हैं, शहर में पाँच बंगले हैं।……ज़मीन-जायदाद गौरी की देखभाल में करके और कारोबार सीतानाथ को सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया था, लेकिन यह सीतानाथ कारोबार इतना फैला लेगा, यह मैंने नहीं सोचा था। अभी एक महीना हुआ उसने एक फ्लोर मिल खरीद ली है।"

ज्वालाप्रसाद जानते थे कि कामतानाथ के पिता रामसजीवन कमसेरियट के स्टोर-कीपर थे। बेईमानी और जालसाज़ी में वह बेजोड़ थे। बर्मा-वार और अफ़ग़ान-वार में उन्होंने बेतहाशा रुपया कमाया था। उन्होंने अपने लड़के कामतानाथ को मिलिट्री कंट्रैक्टर के तौर पर लगवा दिया था। १९१४-१८ के महायुद्ध में कामतानाथ ने करीब पाँच लाख रुपये पैदा किये थे और राय-बहादुरी का खिताब भी प्राप्त कर लिया था। मुंशी रामसजीवन हमेशा ज्वाला-प्रसाद के सामने हाथ बांधकर आते थे। आज कामतानाथ ज्वालाप्रसाद के पौत्र को रुपये से खरीद रहे थे!" ज्वालाप्रसाद, नवल, ज्ञानप्रकाश—सबको उनकी बातों से अरुचि है। ज्ञानप्रकाश तो उनका मज़ाक उड़ाते और उल्लू बनाते हैं।

(२६) बाबू बिन्देश्वरीप्रसाद :

बाबू बिन्देश्वरी फैज़ाबाद के डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज हैं। वह बड़े लोभी और अर्थ-पिशाच हैं। अपने लड़के सिद्धेश्वरी पी० सी० एस० की शादी वह गंगाप्रसाद की लड़की विद्या से पन्द्रह हज़ार के दहेज़ पर तै करते हैं। आठ हज़ार रुपया तिलक पर मांगते हैं। वह परले दर्जे का अर्थ-पिशाच है। मनुष्यता उससे कोसों दूर है। गंगाप्रसाद की मृत्यु के बाद उसके परिवार वालों से सहानुभूति जताना तो दूर रहा, उल्टा वह नवरात्र में तिलक देने की कड़ी मांग

कर डालता है। वह पत्र में लिखता है कि "सिद्धेश्वरी की शादी का पैगाम राजा जसवन्तराय के यहाँ से आया है और वह पच्चीस हज़ार का दहेज़ दे रहे हैं। लेकिन चूंकि उन्होंने गंगा से वरिच्छा मंजूर कर ली है इसलिए अभी उन्होंने उस पैगाम को मंजूर नहीं किया है।"

जब नवल तिलक देने जाता है तो बिन्देश्वरी उसका घोर अपमान करते हैं। तिलक का सामान उन्हें पसन्द नहीं आया तो बोले, "जब इतनी औक़ात नहीं थी तब मेरे यहाँ शादी तै करने की क्या जरूरत थी?" नवल की विनय का भी बिन्देश्वरी पर कोई असर नहीं हुआ, "हम लोगों की नाक कटवा दी तुमने! लोग तिलक देखकर क्या कहेंगे? बड़े-बड़े अफसरों, ताल्लुकेदारों और रईसों को बुलाया है मैंने। अपने बाबा से कह देना कि मेरे साथ यह धोखा-धड़ी नहीं चलेगी। शादी में मुझे नकद चाहिए चार हज़ार, इस सामान-वामान की ज़रूरत नहीं है। मेरे यहाँ भरा पड़ा है।" नवल उसकी बातें सुनकर खून का घूंट पीकर रह जाता है।

बिन्देश्वरी जिस बेईमानी और फरेबबाज़ी से प्रेमशंकर की वकालत में साँझा करके—उसकी वकालत की आड़ में रिश्वत खाता है, उससे उसके चरित्र की धूर्तता स्पष्ट हो जाती है। विद्या उनके बारे में ठीक ही आशंकित होकर नवल को कहती है, "हाथ जोड़ती हूँ, मुझे उन अर्थ-पिशाचों के घर में मत धकेलो, अभी समय है!"

बिन्देश्वरी और उसके परिवार वाले विद्या से बुरा सलूक करते हैं। शादी में ही यह अर्थ-पिशाच विद्या की बी० ए० फाइनल की पढ़ाई पूरी कराने के बारे में निर्लज्जतापूर्वक कहता है, "तो फिर बोर्डिंग-हाउस का खर्चा तुम लोगों को बरदाश्त करना पड़ेगा।" "कितनी कृत्रिम और स्वार्थ से भरी बातचीत थी बिन्देश्वरी की!" उसका लड़का सिद्धेश्वरी भी परले दर्जे का स्वार्थी और अर्थ-पिशाच है। शादी के बाद वे बाप-बेटा विद्या को मार-मारकर घर से निकाल देते हैं। जब विद्या को नवल और ज्ञानप्रकाश अपने साथ ले जाते हैं तो बिन्देश्वरी विद्या के गहने रखवा लेना चाहते हैं। वह अपने लड़के सिद्धेश्वरी से कहते हैं, "देख क्या रहे हो, गहने वाला ट्रंक उठा लो!" ज्ञानप्रकाश के रिवाल्वर निकाल लेने और कड़ाई से पेश आने पर वह दाँत किटकिटाते हुए कहता है, "मैं तुम्हें समझ लूंगा, मैं तुमको तबाह करके रख

दूंगा।" ज्ञानप्रकाश उसे चुनौती देता है, "मैं तुम्हें मौका दे रहा हूँ कि मुझे समझ लो !......पुलिस बुलवाओ......अगर हिम्मत है ! पापी कहीं का !"

यह दुष्ट बिन्देश्वरी अपने लड़के सिद्धेश्वरी की दूसरी शादी तै कर देता है और विद्या के सब अधिकार छीन लेता है। वह विद्या से, इलाहाबाद आकर, एक कागज पर हस्ताक्षर कराना चाहता है कि "इन लोगों का साथ मैं अपने मन से छोड़ रही हूँ।" ताकि विद्या को खर्चा पाने का अधिकार न रहे। विद्या साफ़ कहती है कि "तुम लोगों के साथ रहना नरक में रहने से भी भयानक है।"......"तुम लोगों की पाप की कमाई का मैं एक पैसा भी नहीं चाहती।" पर विद्या उसकी मरजी के मुताबिक न लिखकर लिखती है कि "इन लोगों के अमानुषिक व्यवहार से खिन्न होकर इनका घर, मैं खुद छोड़ रही हूँ।"

जाता हुआ जब यह दुष्ट विद्या को कहता है, "इतना याद रखना कि हिन्दू लॉ में तलाक नहीं होता। तू जिन्दगी भर सिद्धेश्वरी की बीवी ही रहेगी। अगर कभी तेरी बदमाशी या बदचलनी की ख़बर हम लोगों को मिली तो तुझे सीधा जेल भिजवा देंगे !"—तो विद्या बिन्देश्वरी को "शैतान कहीं का !" कहती हुई और चप्पल हाथ में लेकर बिन्देश्वरी के पीछे दौड़ती है। यह कायर और दुष्ट भागकर तांगे पर चढ़ जाता है।

प्रेमशंकर के साथ भी यह और इसका दुष्ट लड़का सिद्धेश्वरी बुरा व्यवहार करते हैं। वह प्रेमशंकर की 'मेरठ कांस्पीरेसी केस' के सिलसिले में गिरफ्तारी कराने का प्रयत्न करता है।

इस प्रकार बिन्देश्वरी का चरित्र एक रिश्वतखोर, बेईमान, अर्थ-लोलुप, स्वार्थी, बुज़दिल, भावनाहीन और दुष्ट व्यक्ति का काला चरित्र है।

(२७) मीर जाफ़र अली :

"मीर जाफ़र अली बरेली में डिप्टी सुपरिंटेण्डेण्ट-पुलिस थे और किसी हद तक युवक कहे जा सकते थे—लम्बे गठे बदन के आदमी, रंग गेहूँए से कुछ खुला हुआ ! मीर साहब अपने को पठान कुल का कहते थे। मीर साहब को वैसे धर्म-कर्म से कोई रुचि नहीं थी; न रोज़ा रखते थे, न नमाज़ पढ़ते थे, लेकिन मज़हबी मामलों को लेकर घण्टों बहस करना इधर उनका पेशा-सा हो गया था।" वह खुशामदी, फ़ितना, चरित्रहीन, तास्सुबी और स्वाभिमानरहित दुष्ट आदमी है। गंगाप्रसाद से उसे ईर्ष्या है। जब गंगाप्रसाद बताता है कि उसका नाम दिल्ली दरबार की इन्तज़ामिया कमेटी में नामज़द हो गया है और उसे

दिल्ली जाना है, और बरेली के डिप्टी कलेक्टर पण्डित सोमेश्वरदत्त गंगाप्रसाद की प्रशंसा करते हैं, तो मीर जाफ़र अली गंगाप्रसाद की बुराई करता है और कहता है कि "किसी दिन चक्कर में पड़ जायेंगे यह बरखुरदार !"—तो डॉ० किशोरीरमण हँसते हुए कहते हैं, "जी, जलन होती है आपको मीर साहेब ? आप अपनी तमाम खुराफ़ातों के साथ सही-सलामत रहेंगे, और यह गंगाप्रसाद चक्कर में पड़ जाएगा !"

पं० सोमेश्वरदत्त मीर साहेब का जिक्र करते हुए कहते हैं, "यह जो मीर साहेब आ रहे हैं न, इनके वालिद लम्बी दाढ़ी रखते थे, हमेशा अबा पहनते थे, उनके हाथ में हर समय तसबीह रहा करती थी और इन्हें देखिए, कोट और जाँघिया पहने हुए, दाढ़ी घुटी हुई, मूंछ इस कदर ऐंठी हुई कि देखने वाला उनके खौफ़ से भाग खड़ा हो। चुरट मुंह में दबा हुआ !"

मीर जाफ़र अली विनोदी स्वभाव के हैं। वह जोनाथन डेविड का मज़ाक उड़ाते हैं और साथ-ही-साथ आर्य-समाजी पं० सोमेश्वरदत्त पर फब्ती कसते हैं, "पण्डत जी, जरा होश की दबा कीजिए ! ये धोतीपरशाद दुनिया फतह करेंगे ? मरने से पहले जो चींटी के पर निकलते हैं, ठीक उसी तरह हिन्दू-धर्म में यह आर्य समाज पैदा हुआ है।"

मीर जाफ़र अली के बारे में सोमेश्वरदत्त फिर कहते हैं, "हमारे मीरसाहब निहायत बुज़दिल किस्म के आदमी हैं। इनका सुपरिण्टेंडेण्ट इन्हें गालियाँ देता है, लेकिन क्या मजाल है कि उनके चेहरे पर शिकन तक आ जाय !...... मीर साहब के भीतर-बाहर में ज़मीन-आसमान का अन्तर है" और वाकई जब गंगाप्रसाद मीर साहेब को भी दिल्ली दरबार की इन्तजामिया कमेटी में रखवाने के लिए सुपरिटेण्डेण्ट मि० क्लीमेण्ट्स के पास ले जाता है और मीर साहेब की क्लीमेण्टस के पास सिफ़ारिश करता हुआ कहता है कि मीर साहेब को आपसे बात करने में डर लगता है—तो क्लीमेंट्स मुस्कराकर कहते हैं, "गंगाप्रसाद, यह मीर मुझसे डरता है ? क्या कहा तुमने ? बहुत बड़ा सुअर है यह ! इसके मुकाबिले का पाजी आदमी नहीं मिलेगा तुम्हें ! क्यों मीर ! हम गलत तो नहीं कहते ! हो न तुम छटे हुए बदमाश और लम्बरी हरामज़ादे ?"

मीर साहेब अपमान पी जाने वाले निरभिमानी और खुशामदी हैं। बड़ी विनम्रता से कहते हैं, "हुजूर की बात काट सकूं, भला इतनी जुर्रत मुझमें कहाँ !"......"हुज़ूर गुस्ताखी माफ़ हो, यह पुलिस का महकमा ही नम्बरी

हरामजादों का होता है। हुजूर, मेरे जैसे आदमी अगर आप लोगों की खिदमत में न हों तो सल्तनत एक दिन के लिए भी न टिकने पाए।"

क्लीमेंट्स के खुश होने और उसका नाम शामिल कर लेने पर मीर जाफर अली का मुख खिल उठता है और वह झुककर क्लीमेंट्स को लम्बा सलाम मारता है।

यह दुष्ट बरेली के छटे हुए गुण्डे अल्लामा वहशी को गांठ कर आर्यसमाज के स्वामी जटिलानन्द की शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार करने को कहता है। वह दोनों को भिड़ा देता है। गंगाप्रसाद के जवाब में अल्लामा वहशी कहता है कि "यह सब हमारे मीर साहेब का मखौल है, वरना अल्लामा वहशी को इन जाहिलों से बहस-मुबाहिसे से क्या मतलब! इन्होंने मुझसे कहा कि उस स्वामी की दलीलों में घूंसेबाजी, मुक्केबाजी, डण्डेबाजी भी शामिल हैं, तो मैंने सोचा कि छुरेबाजी मैं शामिल कर दूं;......।"

मीर साहब शराबी-कबाबी होने के साथ परले दर्जे के खुराफाती हैं। वह अपनी बीवी को तो उसके मायके शाहजहाँपुर भेज देता है और रामगढ़ से नायक जाति की एक पहाड़िन लड़की को खरीद लाता है। लड़की के बाप को लोभ या धोखा देकर और पुलिस का बेजा दबाव डालकर राज़ी किया जाता है। वह उस लड़की रुक्मा को मुसलमान बनाकर उससे निकाह पढ़वाना चाहता है। लड़की मुसलमान बनने को राजी नहीं होती तो मीर जाफ़र अली उसे अल्लामा वहशी के हवाले करता है ताकि वह डरा-धमकाकर उसे जबरदस्ती मुसलमान बनाकर निकाह कर सके।

इस प्रकार मीर जाफ़र अली एक खुशामदी, दब्बू, खुराफ़ाती, फ़ितना-मिज़ाज, दुश्चरित्र और स्वाभिमानरहित आदमी है।

(२८) पण्डित सोमेश्वरदत्त

"पण्डित सोमेश्वरदत्त बरेली में डिप्टी कलेक्टर थे और उनकी अवस्था प्रायः पचास वर्ष की थी। क़द्दावर आदमी, रौबीला चेहरा, रंग गेहुँआ। उनका संस्कृत का अध्ययन अच्छा था और वह आचार-विचार वाले आदमी थे। लेकिन पं० सोमेश्वरदत्त स्पष्टभाषी और खरे आदमी थे—किसी हद तक झगड़ालू।" तीसरे खण्ड के आरम्भ में ही हमें इनका परिचय मिल जाता है। वह कहते हैं, "अब हम पूर्ण रूप से गुलाम हो गए। इंगलैंड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है, हिन्दुस्तान के राजे-महाराजे उसके सामने

अपना सिर झुकाएँगे······।" पर इस गुलामी का पं० सोमेश्वरदत्त को एक तरह दुःख नहीं क्योंकि उनका विचार है कि "किसी तरह इन म्लेच्छ यवनों का शासन तो अपने ऊपर से हटा, देश की अराजकता दूर हुई, जुल्मों से त्राण मिला, हर जगह अमन-अमान फैला।"

पण्डित सोमेश्वरदत्त विदेशी रहन-सहन, खान-पान के विरुद्ध हैं। विदेशी रहन-सहन के कारण वह मीर जाफ़र अली और जोनाथन डेविड का मज़ाक उड़ाते हैं। वह आर्य समाजी हैं और मीर जाफ़र अली को कहते हैं, "हम हिन्दुओं की पोप-लीला ने हमारे धर्म को खोखला कर दिया था, और हमारे धर्म की इस कमजोरी का फायदा मुसलमानों और क्रिस्तानों ने उठाया; लाखों और करोड़ों की संख्या में हिन्दू विधर्मी बन गए। आर्य समाज हिन्दूधर्म को सुगठित और संगठित कर रहा है। ऋषियों की परम्परा को पुनः जीवित कर रहा है, यह तैयारी कर रहा है कि हिन्दू-धर्म विश्व-विजय करे।" वह आर्य-समाज के शुद्धि आन्दोलन के हामी हैं।

पं० सोमेश्वरदत्त की स्पष्टवादिता मीर जाफ़र अली को खरी-खरी सुनाने में न संकोच करती है, न भय खाती है। वह कट्टर हिन्दू होते हुए भी साम्प्रदायिक झगड़ों को अच्छा नहीं मानते। जब मीर जाफ़र अली आर्य समाज के स्वामी जटिलानन्द के साथ शास्त्रार्थ में अल्लामा वहशी को भिड़ा देते हैं और गंगाप्रसाद कहता है कि शास्त्रार्थ में लुत्फ रहेगा—तो पं० सोमेश्वरदत्त खीझ के साथ कहते हैं, "लुत्फ रहेगा खाक ! सिर फटेंगे वहाँ। अल्लामा अपने शागिर्दों के साथ आ रहा है वहाँ शास्त्रार्थ करने और स्वामी जी के भी बीस चेले आज सुबह अम्बाला से आ गए हैं—एक से एक मुस्टण्डे !" रुक्मा नामक हिन्दू पहाड़िन लड़की के बारे में भी पं० सोमेश्वरदत्त उदासीन रहते हैं, मजहबी झगड़े में पड़ना उनकी हिम्मत से बाहर की बात है। उनका ख्याल है कि आर्य समाज "पहले अपने हिन्दूधर्म को बदले, दूसरों से हम बाद में समझेंगे।"

इस प्रकार पं० सोमेश्वरदत्त धार्मिक विचारधारा के हिन्दू आर्य समाजी, ईमानदार और कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति हैं।

नारी-पात्रों का चरित्र-परिचय

(१) जैदेई

लम्बरदारिन जैदेई 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास के नारी-पात्रों में प्रमुख है। "लाला प्रभुदयाल की पत्नी जैदेई, या जैसा उन्हें सब लोग कहते थे लम्बरदारिन, हंसमुख और मिलनसार स्त्री थी।" जैदेई के कारण ही प्रभुदयाल के परिवार और ज्वालाप्रसाद के परिवार में आत्मीयता बढ़ती गई। "लम्बरदारिन ज्वालाप्रसाद को देवर कहती थी और उन्होंने ज्वालाप्रसाद से अपने को भौजी कहला लिया था। लम्बरदारिन अपने पति के विपरीत खुले हाथ की उदार स्त्री थी। उसमें भावना, ममता आदि मानवीय गुण प्रचुर मात्रा में मौजूद थे।"

"लम्बरदारिन जैदेई की अवस्था प्रायः पैंतीस वर्ष की थी, लेकिन वह उन्नीस-बीस वर्ष की अवस्था वाली यमुना की समवयस्क दिखती थी। इसीलिए वह यमुना के साथ सहेली का-सा व्यवहार भी करती थी। इसका कारण सम्भवतः यह था कि जैदेई की पहली संतान के बाद फिर कोई संतान नहीं हुई, और वह पहली संतान थी उनका पुत्र लक्ष्मीचन्द।"

जैदेई मिलनसार है। वह बहुत जल्दी यमुना और ज्वालाप्रसाद के साथ हेल-मेल बढ़ा लेती है। यद्यपि अपने पति की बेईमानी और निर्दयता उसे नहीं भाती, तथापि वह एक पतिपरायणा नारी के नाते अपने पति प्रभुदयाल के प्रति प्रेम रखती है। पति की मृत्यु का उसे बेहद दुःख होता है। वह अपने को बेसहारा समझ ज्वालाप्रसाद का सहारा चाहती है। वह ज्वालाप्रसाद के उपकार का बदला सौ अशर्फियाँ भेंट कर चुकाना चाहती है। ज्वालाप्रसाद के रुपयों की भेंट अस्वीकार करने पर वह अपने तन-यौवन की भेंट देकर उसे अपना बना लेती है। वह ज्वालाप्रसाद की ईमानदारी, बुद्धि, सौन्दर्य आदि गुणों से बहुत प्रभावित है। वह ज्वालाप्रसाद को देवता मानती है।

जब ज्वालाप्रसाद यह कहकर कि "ममता और न्याय न ये बिकते हैं और न खरीदे जाते हैं," सौ अशर्फियों की थैली लौटा देता है तो जैदेई अवाक् रह जाती है। "जिस परम्परा में वह जन्मी और पली थी, वहाँ हर चीज़ बिकती थी या खरीदी जाती थी।" वह कह उठती है, "तुम आदमी नहीं हो, देवता हो देवर जी! भगवान् तुम्हारा भला करें।" और वह बरबस ही भक्ति के साथ ज्वालाप्रसाद के पैर छू लेती है।

जैदेई अपने पति और पुत्र के विपरीत, उदार और दयालु है। जब ज्वालाप्रसाद उसे बरजोरसिंह की बेवा और बच्चों की दयनीय दशा बताता है और उनकी खुदकाश्त जमीन पर कब्जा न करने को कहता है, तो जैदेई मान जाती है। वह कहती है, "देवर जी, तुम कितने अच्छे हो, कितने महान् हो! लच्छीराम से कह दो कि वह यह कार्रवाई रोक दे।"

जैदेई ज्वालाप्रसाद से बहुत प्रेम करती है। वह इसी प्रेम से ज्वालाप्रसाद को आत्मार्पण करती है। वह व्यभिचारिणी नहीं है। अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण ज्वालाप्रसाद के प्रति उसका मोह बढ़ जाता है। मरते समय जब उसका बेटा लक्ष्मीचन्द पैसे के लोभ से उसे गालियाँ देता है और 'छिनाल' तक कह देता है, तो उसे मर्मांतक पीड़ा होती है। वह कहती है, "आखिरी चेतना है देवरजी, अब जा रही हूँ। सिर्फ़ एक बात पूछती हूँ तुमसे। क्या मैंने तुमसे प्यार करके कोई पाप किया है देवरजी?" जब ज्वालाप्रसाद जवाब में करुणा से भरकर कहता है, "मैं क्या जानूँ भौजी, यह तो भगवान् ही जानता है!"—तो जैदेई एक ठंडी साँस भरकर कहती है, "भगवान् ही जानता है! कितना सहा है इस ज़िन्दगी में देवरजी! भगवान् ने मुझे सहने को जो पैदा किया था। पति दिया—बेईमान और निर्मम! कोख से पैदा किया बेटा—बेईमान और निर्मम! दुनिया को इन दोनों ने कितना सताया है! और मैं सब-कुछ देखती रही अपनी छाती पर रखकर!"......"भगवान् ने तुम्हारे रूप में एक देवता मेरे जीवन में भेजकर मेरा थोड़ा-बहुत ताप हरा भी। देवरजी, उसी भगवान् की साक्षी देकर मैं कहती हूँ कि मैंने कोई पाप नहीं किया!"

जैदेई के इन अंतिम शब्दों से उसके जीवन की करुणा, उसके चरित्र की उज्ज्वलता, न्यायप्रियता, सदाशयता, अत्याचार और अन्याय के प्रति वितृष्णा, अपने सच्चे प्रेम के औचित्य पर अडिग विश्वास, उसकी नारी-विवशता आदि अनेक बातों पर प्रकाश पड़ा है। सचमुच उसने बहुत सहा है। पति की बेईमानियों को उसने देखा-सहा है, और उससे भी बढ़कर अपनी कोख के जाये बेटे लक्ष्मीचन्द और उसकी पत्नी की हृदयहीनता, बेईमानियों और उसके प्रति उपेक्षा को ज़हर के घूँट की तरह पान किया है। कितना स्नेह लुटाया था उसने अपने बेटे और अपनी बहू राधा के प्रति! पर फल मिला—उसकी उपेक्षा! जैदेई लक्ष्मीचन्द के खिताब पाने की खुशी के अवसर पर कानपुर

जाती है और उस उत्सव-समारोह में उसकी उपेक्षा होती है, राधा उसे एक अलग कमरे में रखती है। कोई उससे बात नहीं करता, कोई उसे पूछता नहीं! जैदेई लक्ष्मीचन्द और उसकी पत्नी की इसी भावनाहीनता के कारण सारा जीवन इलाहाबाद में अकेली रहकर गुजार देती है। जब जैदेई कहती है कि बिल्कुल अकेली हूँ, वहाँ इलाहाबाद में, तो राधा तुरन्त बोल उठती है, "वहाँ अकेली कैसे हैं अम्मा जी! नौकर-चाकर तो सब हैं वहाँ, इतना बड़ा बंगला, सवारी, क्या नहीं है?······अम्मा जी अगर कानपुर में आकर नहीं रहना चाहतीं तो इसमें हरज क्या?"

जैदेई ने स्पष्ट अनुभव किया कि "कानपुर के गृह की स्वामिनी राधा थी।" "और कानपुर में आकर जैदेई के रहने के अर्थ होते राधा की अधीनता में रहना, या फिर घर में निरन्तर कलह।"

जैदेई कानपुर इस वजह से भी नहीं रहना चाहती थी क्योंकि उसके बेटे लक्ष्मीचन्द ने अपने भाभा के बेटों की सम्पत्ति बेईमानी से हड़प रखी थी। जैदेई के भतीजे कानपुर में ही दयनीय स्थिति में रहते थे। जैदेई उनकी हालत देखकर बहुत दुःखी थी। वह कानपुर रहकर इस दुख को अपनी छाती पर कैसे झेलती! अपने पुत्र के अन्याय को तो वह विवशतापूर्वक सहती रही।

जैदेई पुराने ज़माने की औरत है। स्नान-पूजा, तीर्थ-व्रत में उसकी आस्था है। मरती हुई वह गंगाजल पीती है। वह देशी वैद्य जी का इलाज ही ठीक समझती है। अंग्रेजी दवाइयों से उसे नफ़रत है। जब ज्वालाप्रसाद कहता है कि "कल सुबह से तुम्हारा डाक्टरी इलाज शुरू होगा"—तो जैदेई कहती है, "देवरजी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, यह विलायती दवा न पीने को कहो, धरम चला जायगा।" वह ज्वालाप्रसाद के ज़ोर देने पर बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी इलाज कराती है।

जैदेई गंगाप्रसाद को कितना स्नेह देती है! वह उसे अपने यहाँ अपने बेटे की तरह रखती है। सुख-विधाओं में उसे पालती और पढ़ाती है। बड़े हौसले से उसकी शादी करती है। वह उसे ठाठ का जीवन बिताने को खूब रुपये देती है। हीरे की बहुमूल्य अंगूठी उसकी उंगली में पहना देती है। किस राजा-महाराजा से कम है उसका बेटा! वह मरते समय अपनी लगभग पच्चीस हज़ार की सम्पत्ति गंगाप्रसाद को देना चाहती है, पर उसका बेटा लक्ष्मीचन्द

उसकी अंतिम अभिलाषा पूरी नहीं होने देता। जैदेई अपने पुत्र की स्वार्थपरता पर तड़पकर रह जाती है।

इस प्रकार जैदेई का चरित्र कर्त्तव्य, भावना, प्रेम, उदारता, सदाशयता, नारी की करुण विवशता से पूर्ण एक भव्य चरित्र है।

(२) छिनकी

"छिनकी कहारिन की उम्र प्रायः तीस साल की थी, गठा हुआ शरीर, साँवला रंग, मुँह पर लगातार नाचने वाली अल्हड़ हँसी ! छिनकी घसीटे की दूसरी बीवी थी,......छिनकी के कोई लड़का-वाला न हुआ था, और न होने की कोई आशा थी। घसीटे की अवस्था भी तो अब क़रीब साठ साल की होने आई थी।"

छिनकी का चरित्र निम्न वर्ग की उस स्नेहशीला, ममता की मूर्ति नारी का चरित्र है, जो अपने जीवन की विवशता के कारण अपने मालिकों या बड़े लोगों की रखैल-सी रहकर अपना जीवन बिताती थीं।

"मुंशी शिवलाल की लाडली होते हुए भी छिनकी को मुंशी शिवलाल के घर के मामलों पर कोई अधिकार न था।" जब छिनकी देखती है कि मुंशी शिवलाल के सम्मिलित परिवार में राधेलाल की पत्नी शासन चलाती है और ज्वाला की कमसिन पत्नी से दिनरात काम लेती है, तो छिनकी शिवलाल से कहे बिना नहीं रह सकती, "देखो, छोटी मालकिन बहू के साथ बड़ी जादती करती हैं। बिचारी ज्वाला की बहू कच्ची उमिर की, तौन दिनरात असे काम लेती हैं। हम पूछत हन कि तुम छोटी मालकिन का मना काहे नाहीं करत हौ।" और जब मुंशी शिवलाल छिनकी की बात को अनसुना कर देते हैं और कहते हैं कि राधे की बहू घर की मालकिन है, तो छिनकी हतप्रभ होकर रह जाती है।

जब सोरांव में ज्वालाप्रसाद के यहाँ शिवलाल और छिनकी रहने लगते हैं और वहाँ राधेलाल की पत्नी और परिवार के भी आ जाने पर राधे की पत्नी अपना शासन चलाना चाहती है, तो छिनकी को बहुत बुरा लगता है। छिनकी आपत्ति करती हुई कहती है, "घर की मालकिन ज्वाला की बहू आय। ई जो सब राज-पाट आय तौन ज्वाला की बदौलत सब लोग भोग रहे हन। तौन ज्वाला की बहू है लौंडी और मालकिन हुइ गई छोटी !" मुंशी शिवलाल छिनकी को डाँटते हुए कहते हैं, "जब तक राधे की बीवी जिन्दा है और यहाँ

पर है तब तक इस घर की मालकिन वही रहेगी, यह भी समझ ले। इस घर के मामले में तू दखल देने वाली कौन होती है ?"

"इस उत्तर से छिनकी की आँखों में आँसू भर आये, लेकिन वह उसी तरह मुंशी शिवलाल का सिर दबाती रही। यह डाँट, यह अन्याय, यह सब छिनकी के लिए नया नहीं था। जिन्दगी-भर उसे प्रायः नित्य ही इस प्रकार के अपमानों और प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा था।......वह बैठी हुई रोती रही और मुंशी शिवलाल का सिर दबाती रही और शिवलाल शांत भाव से लेटे थे, जैसे उन्हें छिनकी की भावनाओं का, भावना ही नहीं, छिनकी के अस्तित्व तक का पता नहीं है।"

इस प्रसंग से छिनकी की करुण परिस्थिति, उसकी विवशता, अपमान सहते हुए भी मुंशी शिवलाल और ज्वाला के परिवार के प्रति असीम स्नेहशीलता, सेवा-परायणता आदि बातें स्पष्ट हुई हैं। छिनकी के मुख से निकला एक-एक शब्द सम्मिलित परिवार की परम्परा टूटने का संकेत देता है। वह ज्वाला के घर को उजड़ता नहीं देख सकती। जब मुंशी राधेलाल और उनका सारा परिवार ज्वाला के यहाँ मुफ्तखोरी करने और उसके घर को लूटने-खसोटने लगते हैं तो छिनकी को बहुत बुरा लगता है। वह राधे के परिवार को दुर्योधन का परिवार तक कह डालती है ! जब ज्वालाप्रसाद भी तंग आकर अपने चाचा को परिवार-सहित वहाँ से चले जाने को कहता है और राधेलाल गाली देने के साथ-साथ कह डालता है कि "हम लोगों की नज़र में तुम मर गए !"—तो छिनकी तड़पकर चिल्ला उठती है, "मर गये तुम और तुम्हार बिटवा ! मुँहजरा कहूँ का ! भवानी ई का खाय, हमरे बिटवा को कोस रहा है !" छिनकी की ममता कितनी गहन और उग्र है !

मरते हुए मुंशी शिवलाल ज्वाला को ठीक ही कहते हैं, "यह छिनकी, यह तेरी दूसरी मां है। मैंने इसे बड़ा कष्ट दिया है, इसकी कोई बात नहीं सुनी मैंने ! तो इसे अब तेरी दया पर छोड़ रहा हूँ। तेरी सबसे अधिक सगी यही है !"

छिनकी व्यवहार-कुशल और चतुर है। ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार लग जाने पर वह बड़ी चतुराई से भीखू और ज्वाला की पत्नी यमुना को ज्वाला के साथ भेज देती है। जब मुंशी शिवलाल ज्वाला की पत्नी के जाने का विरोध करते हैं तो छिनकी कहती है, "बलिहारी जाऊँ तुम्हारी अक्किल पर ! नौकरन

के वल पर कबहूँ कौनो की गिरिस्ती चली है कि ज्वाला की ही गिरिस्ती चली है। परदेस का मामला, हकूमत का जोर और ऊपै मद्दर जवानी की उमिर! मान लेव ज्वाला कौन जवान पठिया घर मां बैठाय लेय तो?" छिनका ही मुंशी शिवलाल को ज्वाला के पास धाटमपुर जाने की सलाह देती है, "तुमही काहे नहीं धाटमपुर चले जात हौ एक दफा! लड़का की मोह-माया ई सब एकै बार बिसराय दीन्हेव?"

छिनकी ही मुंशी शिवलाल को सुझाती है कि "ज्वाला पर ज़ोर डालके कहूँ, किसनू का नौकरी दिलाय देव। मुला सोरांव से दूर।......तो अपने बिटवा के साथ ऊकी देखभाल करैं का छोटे मालिक और छोटी मालकिन रहैं जाय के और बिसनूहूँ उहाँ जायके अपने भाई और बाप की देखभाल मां कौनो काम-काज सीखैं।" यही नहीं, छिनकी यहाँ तक सुझाती है कि "न होय तो धाटमपुर की लम्बरदारिन के इहाँ किसनू का नौकरी दिलाय देव। उनकेर बड़ा काम-काज आय,......।"

मुंशी शिवलाल को भी मानना और कहना पड़ता है, "तू तो धीरे-धीरे बड़ी चतुर होती जा रही है।"

और यह सेवा-परायणा, स्नेहशीला, विवश नारी मुंशी शिवलाल, ज्वाला तथा गंगा की सेवा और प्यार में अपनी जिन्दगी लगा देती है। मरती हुई वह भीखू का नाम रटती है। वह भी तो उसका अपना सगा था! वह भीखू को अपनी जमा-जथा सौंप जाना चाहती है। वह पुराने संस्कारों की अशिक्षित औरत थी। मुंशी शिवलाल के धरम-करम का उसे बहुत ख्याल है। उसका विश्वास है कि उस निम्न वर्ग की नारी के हाथ की कच्ची रोटी खाने से शिवलाल का धर्म चला जायेगा और उसे पाप लगेगा। वह कहती है, "यू का कहि रहे हो? तुम हमार बनाई कच्ची रसोई कैसे खईहै?......तुम्हरे हाथ जोड़त हन, ई पाप हमसे न कराओ—हम चौका मां न घुसब। तुम्हार परलोक हमरे हाथ न बिगड़े!"

(३) यमुना

ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना इस उपन्यास का ऐसा नारी-पात्र है, जो आरम्भ से अन्तिम खण्ड तक विद्यमान रहता है। कथा के सब खण्डों में एक-सूत्रता लाने और आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहने के कारण ज्वालाप्रसाद

यदि 'भूले-बिसरे चित्र' के सर्वप्रमुख पुरुष पात्र हैं तो उनकी पत्नी यमुना सर्वप्रमुख नारी-पात्र है।

आरम्भ में यमुना का परिचय एक सोलह साल की कमसिन, भोली-भाली, भीरु कुल-वधू के रूप में होता है। उसका पति नायब तहसीलदार नियुक्त हो गया है, अफसर बन गया है, पर इस बात का महत्त्व जैसे यमुना की समझ में ही नहीं आया। "जमुना को चाची से और अधिक पूछने की हिम्मत भी नहीं पड़ी, विशेषतः अपने पति के सम्बन्ध में। छिनकी से उसने पूछा, "नायब तहसीलदार हुइ गए हैं तो का होई छिनकी चाची ?" छिनकी उसके भोलेपन पर ठीक ही हँसती है। जब छिनकी जमुना को सिखाती है कि ज्वाला के साथ तू ही परदेस चली जा, अपन घर-गिरिस्ती बसाय जाय के बहू ! ज्वाला का अकेले न जाय दीन्हेस !"—तो यमुना इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता प्रकट करती है। छिनकी कहती है कि मैं मुंशी शिवलाल से कहकर तुम्हें ज्वाला के साथ भिजवाती हूँ। "छिनकी की बात सुनकर यमुना सहम गई। उसने छिनकी का हाथ पकड़कर कहा, "तुमसे हमार बिन्ती है छिनकी चाची, ई सब बात तुम ई समै न उठाओ ! चाची जी समझिहैं कि ई सब हमार काम है, तो उइ हम का कहूँ की न छुड़िहैं, तुम तो जानती ही हो !" इस प्रकार यमुना राधे की पत्नी से बहुत भय खाती है। उसे अपनी चाची (जो एक तरह से उसकी सास है) के कड़े शासन में रहना पड़ता है, खूब काम करना पड़ता है। सम्मिलित परिवार की इस बुराई का शिकार हुई वह ज्वालाप्रसाद के साथ घाटमपुर जाकर ही प्रसन्नता का अनुभव करती है।

घाटमपुर जाकर तहसीलदारिन यमुना एक बड़े अफसर की पत्नी के कर्त्तव्यों को निभाती है। वह अपनी गृहस्थी की मालकिन बन जाती है। "पलंग पर बैठकर शासन करती है।" यमुना यद्यपि पर्दे वाली नारी है, पर वह तहसीलदारिन के नाते ठाकुर गजराजसिंह, लाला प्रभुदयाल आदि बड़े-बड़े आदमियों के यहाँ दावत पर, ब्याह-शादी, होली उत्सव के समय जाती है। प्रभुदयाल की पत्नी लम्बरदारिन जैदेई से तो उसकी घनिष्ठता हो जाती है। लम्बरदारिन के यहाँ से आई होली की सौगात में मखमल और कीमखाब के थानों को देखकर उसका मन खिल उठता है, "पर सौ रुपयों को देखकर उसका मुख धुँधला पड़ गया।"

यमुना को साधारण मध्यवर्गीय नारी की तरह कपड़ों और गहनों का मोह है। "गजराजसिंह के घर के वैभव को देखकर यमुना को कभी-कभी लालच आ

जाता था ।······जमीदारिन के कपड़े और गहने देखकर उसके मन में ईर्ष्या"
उठ जाती थी ।

यमुना एक पति-परायणा नारी है । वह अपने पति के अनिष्ट की आशंका से ज्वालाप्रसाद को प्रभुदयाल और बरजोरसिंह के झगड़े में पड़ने से रोकना चाहती है, कहती है, "सुनो, अगर मेरी मानो तो तुम इन दोनों के मामले में न पड़ो । न जाने क्यों मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा ।"

ज्वालाप्रसाद के साथ लम्बरदारिन जैदेई का अवैध सम्बन्ध उससे छिपा नहीं है । वह जानती हुई भी कुछ नहीं कहती, बुरा नहीं मानती ! उसे अपने प्रेम पर विश्वास है । वह कहती है, "लम्बरदारिन का मुँह कि वह तुम्हें मुझसे छीन सके ! इस घर की मालकिन तो मैं हूँ । तुम लम्बरदारिन के साथ हँस-खेल भले ही लो, लेकिन रहोगे मेरे, हमेशा-हमेशा के लिए ।" वह जानती है कि "मर्द का तो स्वभाव ही होता है बहकना ।······औरत सदा सहारा ढूंढ़ती है । लम्बरदार के चले जाने के बाद लम्बरदारिन ने तुम्हारा सहारा चाहा ।"

यमुना स्नेहशीला नारी है । वह लम्बरदारिन और उसके परिवार के प्रति आत्मीयता का भाव रखती है । लक्ष्मीचन्द और उसकी पत्नी राधा से स्नेह करती है । वह अपने पुत्र गंगा को सहर्ष जैदेई के पास छोड़ देती है । भीखू, छिनकी, अपने श्वसुर मुंशी शिवलाल—सबके साथ उसका व्यवहार बड़ा ही अच्छा है ।

यमुना उदार-हृदया है । यद्यपि उसे भी धाटमपुर और सोरांव में आकर भी चाची द्वारा घर का शासन करना अखरता है, तो भी वह बड़ी उदारता और शांत स्वभाव से झगड़ा बचाना चाहती है । जब छिनकी कहती है, "जबरदस्ती हमसे भण्डार-घर की चाबी छीन लीन्हिन । फतेपुर के घर की मालकिन तो रहै ही, यहूँ आयके मालकिन बन बैठी । बेदरदी के साथ खरच होई ।"—तो यमुना यही कहती हैं, "छोड़ो छिनकी चाची, अपने भाग का खात-पियत आँय ।" जब छिनकी कहती है कि, नहीं गंगा का भाग्य खा रहे हैं तो यमुना सन्न रह जाती है ! राधेलाल की पत्नी से यह सुनकर कि उनका सारा परिवार फतहपुर से यहाँ आ रहा है, यमुना चिंतित हो उठती है । वह मुंशी शिवलाल से डरती-डरती कहती है । वह स्वयं इस मामले में पीछे रहती है और छिनकी को छोटी मालकिन से लोहा लेने देती है ।

इस प्रकार यमुना का जीवन संघर्षों से भी खेलता रहा है । वह सारी उम्र

अपनी गृहस्थी को बनाने में लगा देती है। ज्वालाप्रसाद की तरह उसे भी बुढ़ापे में बहुत दुख सहने पड़ते हैं। उसके सामने उसके बेटे गंगाप्रसाद की तपेदिक से मृत्यु हो जाती है। विद्या की शादी में अपने और बहू के हाथ-कान के गहने देने की नौबत आ जाने से कितना दुख होता है! विद्या के ससुराल वालों से तंग आकर आ जाने और विद्या की चिंता से तो वह बिल्कुल टूट जाती है, प्राण दे देती है।

(४) संतो

संतो के रूप में वर्माजी ने उस युग की स्वच्छन्दता की ओर परिवर्तित होती हुई नारी का चित्रण किया है। संतो की चंचलता का आभास आरम्भ में ही रेल के सफर में मिल जाता है, जब वह पर्दे की आड़ में गंगाप्रसाद की ओर आकर्षण प्रकट करती है। गाड़ी में उसके मुख से पति के लिए निकले ये शब्द उसके व्यक्तित्व तथा अपने पति के प्रति वितृष्णा का आभास दे देते हैं, "इन्हें क्यों तंग कर रहे हो, बेचारों ने इतना कष्ट उठाया। नींद लग रही होगी, आधी रात का समय है। तुम यहाँ आ जाओ, यह सोएँ!" "आवाज में एक प्रकार का संगीत है, एक प्रकार की मिठास है, गंगाप्रसाद ने यह अनुभव किया।" उसकी बातचीत में गंगाप्रसाद को योग का निमंत्रण था।" अतः वह भी और गंगाप्रसाद भी खुल पड़े! "गंगाप्रसाद की दृष्टि (पर्दे से निकले) उस हाथ से उलझ गई। सुडौल, मांसल और कुछ गुलाबीपन लिए हुए सफेद संग-मरमर के रंग वाला वह हाथ! उसके मन में हुआ कि वह उस हाथ को पकड़-कर चूम ले।" उसका गंगाप्रसाद को पान के लिए पूछना, नाश्ते की प्लेट देकर आग्रहपूर्वक नाश्ता कराना, दिल्ली में अपने यहाँ ठहरने को आमंत्रित करना आदि उसके गंगाप्रसाद के प्रति आकर्षण को प्रकट करते हैं।

संतो सुन्दर है। उसके सौन्दर्य के आकर्षण से सब उसे पाना चाहते हैं। अपने पति लाला राधाकिशन के प्रति उसके मन में एक वितृष्णा का भाव है। एक तो अपना पति उसे पसन्द नहीं है। वह उसे जनखा-सा आदमी समझती है जिसे बात करने की भी तमीज नहीं है। दूसरा कारण यह है कि वह अपने पति को अपनी भाभी कैलासो के साथ फँसा अनुभव करती है और इसीलिए कैलासो और अपने पति से हर समय चिढ़ी रहती है। उसके अन्तर्द्वन्द्व का वर्माजी ने अच्छा चित्रण किया है। वह गंगाप्रसाद के प्रति आकर्षित होती जाती है। वह इस आकर्षण को विकृत बनने से बचाना चाहती है। एक बार तो

गंगाप्रसाद द्वारा उसे आलिंगनबद्ध कर लिये जाने पर वह गंगाप्रसाद को चाँटा जड़कर हटाती है। पर आखिर कब तक बचती-बचाती ! वह गंगाप्रसाद को समर्पित हो जाती है। गंगाप्रसाद इसकी सब लज्जा-हया खुलवा देता है। संतो एक स्वच्छन्द नारी बन जाती है। वह शराब पीने लगती है, बाल-डांस में सम्मिलित होती है। उसे ऐश्वर्य-विलास और वैभव का चसका पड़ जाता है। वह अपने रूप का प्रदर्शन करती फिरती है। रानी साहेबा विजयपुर के ज़रिये उसका परिचय राजा साहब धाटबागान और रानी हेमवती से हो जाता है और रानी हेमवती के माध्यम से वह वायसराय के ए० डी० सी० मेजर वाट्स से हिलमिल जाती है। मेजर वाट्स के प्रयत्न से उसके पति को 'राजाबहादुर' का खिताब मिलता है। उसकी अधिकांश शामें आधी रात तक मेजर वाट्स के साथ बीतती हैं। उसके कारण मेजर वाट्स की बदनामी हो जाती है और उसे वापस इंगलैंड बुला लिया जाता है। इस अपमान के कारण मेजर वाट्स संतो की हंटर से पिटाई करता है। संतो स्वयं अपने पतन की कहानी गंगाप्रसाद से बताती है : "तुम्हीं ने तो मुझे वह बनाया है, जो मैं हूँ। मेरा बुरा न मानना, मुझसे नाराज़ न होना, लेकिन मैं कहती हूँ कि तुम मुझसे, मेरे जीवन से बहुत दूर हो, बहुत दूर हो ! सीमा को एक बार तोड़ने पर अन्त नहीं मिलता !"

वह गंगाप्रसाद को कहती है, "मैं संतो से जो रानी सतवंत कुंवर बन गई हूँ, वह कुछ ऐसे ही ? इन्हें कौन नहीं जानता ? रुपये-पैसों के हिसाब-किताब में डूबा हुआ जनाना आदमी······भला इस जनखे को कोई राजाबहादुर का खिताब देता ? इसे बात करने की तो तमीज़ नहीं, और इस साल इसे ढाई-तीन लाख रुपये का मुनाफ़ा हुआ। राजा-महाराजाओं का जौहरी बन गया। यह सब ऐसे ही हो गया क्या ? मैंने ही तो यह सब किया है, मेजर वाट्स के ज़रिये से।"

संतो राजा धाटबागान की अंकशायिनी बनकर बहुमूल्य माणिक की विष्णुमूर्ति उपहार में लाती है, राजा साहब की लड़की लावण्यप्रभा की शादी के लिए ज़ेवर बनाने का आर्डर और एक लाख रुपया एडवांस लाती है।

गंगाप्रसाद संतो के इस रूप को देखकर चकित रह जाता है। संतो अपनी विवशता जताती हुई कहती है, "मैं अपने से ही विवश हूँ। मैं भी कभी-कभी सोचने लगती हूँ कि मैं ग़लत कर रही हूँ, लेकिन मेरी ग़लती दिखलाने वाला

भी तो कोई नहीं है। सोचो तो, कौन-सा सहारा है मेरे पास, जिसे पकड़कर मैं बचूँ ? जिस सहारे को मैं पकड़ती हूँ वही मुझे नीचे घसीटता है।"

और वाकई संतो पुरुषों की वासना का शिकार बनी हुई ऐसी सुन्दरी है, जिसे जीवन में कोई हितैषी पुरुष नहीं मिला। पति मिला जनखा और निर्लज्ज, जिसे अपनी पत्नी के स्वच्छन्द विचरण की ग्लानि नहीं, पत्नी के पाप-कर्मों की कमाई पाने की लज्जा नहीं। सब पुरुष, अफसर, राजे-महाराजे उसके सौन्दर्य और यौवन के लोभी बने उसे भटकाते हैं। जब गंगाप्रसाद उसे संभलने की शिक्षा देना चाहता है तो उसका भरा हुआ अन्तर फूट पड़ता है, "हाँ, मैं अपने को बेच रही हूँ। मैं वेश्या हूँ, यही कहना चाहते हो तुम ! लेकिन कौन नहीं बेच रहा है अपने को। कुछ अपना शरीर बेचते हैं, कुछ अपनी आत्मा बेचते हैं। भोग-विलास में अपने को खो देना, पशु बन जाना, यह आत्मा को शैतान के हाथ में बेच देना है। राजा सत्यजित प्रसन्न, रानी हेमवती, कैलासो और तुम······तुम सब-के-सब अपनी आत्मा को बेच चुके हो। मैं कम-से-कम इतना नहीं गिरी हूँ। एक वार मुझसे अपने को शैतान के हाथ में सौंपने की ग़लती हो गई थी और उस ग़लती की प्रेरणा दी थी मुझे तुमने ! और उस ग़लती का परिणाम तो देख रहे हो तुम ! लेकिन मैंने अपनी ग़लती सुधार ली। मेरे पास मान है, मर्यादा है, ऐश्वर्य है, वैभव है। मैं रानी हूँ, मेरे पास लाखों रुपये हैं। और तुम अपनी तरफ़ तो देखो, तुम क्या हो ? तुम जलते हो, कुढते हो, तुम्हारे अन्दर घृणा है, तुम्हारे अन्दर हिंसा है।" और संतो यह कहते-कहते फूट पड़ी,······उसकी हिचकियाँ बंध गईं।"

संतो के इस कथन से उसके जीवन की विडम्बना का बड़ा मार्मिक परिचय मिलता है। उसका जीवन और चरित्र विषम परिस्थितियों से एक कुल-नारी के ऐश्वर्य-विलासी स्वच्छन्द नारी बनने की कहानी है।

(५) विद्या

गंगाप्रसाद की पुत्री, नवल की बहन विद्या अपने भाई की तरह नवयुग की नई चेतना की प्रतीक है। नवल के साथ विद्या का बालिका रूप में परिचय हमें चौथे खण्ड में ही मिल जाता है। वह अपने भाई के साथ तुतलाती हुई बग़ावत के गीत गाती है। वह ज्ञानप्रकाश से गुड़िया लाने का आग्रह करती है।

पांचवें खण्ड में इसी बालिका को हम नवयुग की विद्रोहिणी युवती के रूप

में देखते हैं। वह बी० ए० में पढ़ती है। उसके पिता उसकी शादी तै कर जाते हैं। उसके मन में पढ़ने की लगन है। शादी की वजह से अपनी पढ़ाई छूटने की आशंका से वह अपने भाई नवल से वचन ले लेती है कि शादी के बाद उसका बी० ए० फाइनल पूरा कराया जायगा।

विद्या को अपने भाई नवल, अपने परिवार से बेहद प्यार है। जब उसे विदित होता है कि उसकी शादी में दिये जाने वाले दहेज़ की चिंता घर वालों को घुन की तरह खा रही है और नवल इसी वजह से विलायत में आई० सी० एस० करने नहीं जा रहा, तो वह तड़प उठती है। उसे अपने भावी ससुर की अर्थ-पिशाची प्रवृत्ति का पता लग जाता है। वह नवल के आगे फूट पड़ती है, "तो मेरे विवाह में यह घर तबाह हो रहा है!......मैं अब समझी कि तुम विलायत क्यों नहीं जा रहे!......लेकिन मैं तबाह हो जाऊँगी दादा! हाथ जोड़ती हूँ, मुझे उन अर्थ-पिशाचों के घर में मत धकेलो, अभी समय है!"

विद्या स्वाभिमानिनी और विद्रोहिणी लड़की है। अपने ससुर और पति के अन्याय को वह सहन नहीं करती। वह अपने पति की ज्यादतियों का विरोध करती है। वह ऐसे अर्थ-पिशाचों, बेईमानों और कमीनों के घर एक पल भी नहीं रहना चाहती। जब बिन्देश्वरी बाबू उसके अधिकार छीनने के लिए दस्तावेज़ पर उसके हस्ताक्षर कराने आते हैं और पूछते हैं कि क्या वह सिद्धेश्वरी के साथ रहने को तैयार है, तो वह जले-कटे शब्दों में कहती है, "तुम लोगों के साथ रहना नरक में रहने से भी भयानक है।......तुम लोगों की पाप की कमाई का मैं एक पैसा भी नहीं चाहती।" जब बिन्देश्वरी उसे अत्यन्त अपमानित करता हुआ कहता है कि "तू ज़िन्दगी-भर सिद्धेश्वरी की बीवी ही रहेगी। अगर कभी तेरी बदमाशी या बदचलनी की खबर हम लोगों को मिली तो तुझे सीधा जेल भिजवा देंगे"—तो यह वीर बाला उस दुष्ट के पीछे चप्पल निकालकर भागती है।

इस प्रकार विद्या विद्रोहिणी, निर्भीक, स्वाभिमानिनी, आत्मविश्वस्त, राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, अपने पांव पर खड़ी होने वाली, स्नेहशीला नवयुवती है। वासनाएँ उसे छू भी नहीं सकतीं। वह अपने पांव पर खड़ी होने के लिए ज्ञान बाबा को नौकरी दिलाने का अग्रह करती है। वह 'नारी शिक्षा सदन' में नियुक्ति पाकर बहुत प्रसन्न होती है। नौकरी करने में उसे

ग्लानि नहीं, गर्व का अनुभव होता है। वह स्वावलम्बिनी बन जाती है। अपने भाई, दादा, माता सबके प्रति उसका हृदय ममता और करुणा से भरा है।

यद्यपि विद्या सत्याग्रह आदि आन्दोलनों में सक्रिय भाग नहीं लेती तथापि उसकी राष्ट्रीय भावनाएँ पूर्ण विकसित हैं। वह अपने देश को स्वतन्त्र देखना चाहती है। वह नवल को कांग्रेस में कार्य करने को प्रोत्साहित करती है।

जब नवल उषा से दूर हो जाता है और उसे खोने का दुख प्रकट करता हुआ कहता है, "मैं तो इतना जानता हूँ कि मैं बराबर खोता जा रहा हूँ, टूटता जा रहा हूँ"—तो विद्या उसे निराशा से आशा और उत्साह की ओर लाती हुई कहती है, "दादा, तुम टूटकर फिर से बन रहे हो, खोकर अपने को पा रहे हो। फिर यह अविश्वास और कायरता क्यों? साहस करो, अपने को बटोरो!"

निस्संदेह विद्या आदर्श युवती है। वह प्रेरणा है, शक्ति है, नवयुग की नई चेतना है।

(६) राधे की पत्नी

राधेलाल की पत्नी मुंशी शिवलाल के घर की मालकिन है। छिनकी का चरित्र यदि सम्मिलित परिवार की परम्परा के टूटने का प्रतीक है तो राधे की पत्नी, अपने पति की ही तरह, परंपरागत सम्मिलित परिवार के जोड़े रखने को प्रयत्नशील है। पर उनके प्रयत्नों के बावजूद इस परंपरा की जड़ों में जो घुन लग गया था, वह उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए पर्याप्त था। सच तो यह है कि सम्मिलित परिवार प्रथा के इन हामियों के इस परंपरा को जीवित रखने के प्रयत्न भी स्वार्थ और नीचता से पूर्ण थे। इनके प्रयत्नों ने ही इस परंपरा के अतिशीघ्र टूटने में योग दिया।

सम्मिलित परिवार की मालकिन राधे की पत्नी घर में अपना कड़ा शासन रखती है। वह ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना से खूब काम कराती है। यमुना उससे भय खाती है। यमुना उसकी आज्ञा में रहती है। यमुना ही नहीं, श्यामू की बहू भी उसके कड़े शासन में पिसती है। ऐसे व्यर्थ के आतंक और दबाव का विरोध और उसके प्रति विद्रोह स्वाभाविक था। विरोध और विद्रोह की अग्रदूत बनती है छिनकी।

ज्वालाप्रसाद की नियुक्ति घाटमपुर के लिए होती है। यह स्थिति प्राचीन सम्मिलित परिवार की स्थान की इकाई को खण्डित कर देती है: परिवार

एक स्थान पर नहीं रह सकता। अलगाव जरूरी है। राधे की पत्नी का स्वार्थ है अलगाव न होने देने में। इसीसे ज्वाला के साथ यमुना के भेजे जाने की बात उसे पसन्द नहीं। उसकी पुत्र-वधू (रामलाल की पत्नी) के बच्चा होने वाला है, इसलिए वह नहीं जा सकी, अन्यथा वह "जाने के लिए तुली हुई थी।"

जब माघ मेले पर राधेलाल और उसकी पत्नी फतहपुर से मुंशी शिवलाल के पास आ जाते हैं तो राधे की पत्नी छिनकी को फतहपुर भेजना चाहती है, क्योंकि वह देखती है कि छिनकी ही मुंशी शिवलाल और ज्वाला के घर की सारी देखभाल रखती है। छिनकी सोरांव जाना चाहती थी। राधे की पत्नी कर्कश स्वर में छिनकी से झगड़ती है, "तौन ज्वाला तुम्हार सगै आँय, दादा जी तुम्हार सगे आँय तो सम्हालौ उन्हें, हम आजै चली जाव! अपन राजपाट सम्हालौ! हम इहाँ तबही रहबै जब तुम फतहपुर जाव! उइ आवैं तो आज हम दादा जी का और उनका बैठायके फैसला करइबे। तुम भूली का भई हो!" अपने संयुक्त परिवार पर राधेलाल की पत्नी के शासन के मुंशी शिवलाल अभ्यस्त हो गए थे, इसीसे वह राधे की पत्नी को मालकिन कहकर झगड़ा समाप्त कराते रहते हैं।

ठीक है राधे की पत्नी ने ज्वाला को अपने बेटे की तरह पाला था, पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि राधे का परिवार ज्वाला के बेटे गंगा का भाग खाता रहे और छिनकी देखती रहे!

राधे की पत्नी छिनकी, राधेलाल आदि की तरह छुआछूत, चौका-बरतन की शुद्धता, जात-पांत का भेद-भाव आदि परंपरागत रूढ़ियों से ग्रस्त है। जब वह छिनकी को मुंशी शिवलाल की रसोई में घुसते देखती है तो विरोध करती हुई कहती है, "हाँ छिनकी रानी, अब रसोई माँ तुम्हार पैर घुसगा है न! दादा जी केर धरम लै लीन्हेव है। उन्हें दाल-भात खिलायकै, अब हम लोगन केर बारी है। हमें ई बेकारै अपने साथ लाए हैं, छिनकी रानी तो दादा जी का रोटी पाण के खिलाय रही हैं।" उनकी दृष्टि से निम्न जात की छिनकी के हाथ का खाना और खिलाना पाप है।

राधे की पत्नी की संयुक्त परिवार बनाये रखने की धारणा स्वार्थ पर ही स्थित थी। वह ज्वाला के घर अपने बेटों को पूरियाँ कब तक खिला सकती थी! आखिर राधे के परिवार से तंग आकर ज्वालाप्रसाद अपने चाचा-चाची

को वहाँ से चले जाने को कहते हैं। तब राधेलाल ज्वाला को कोसने लगता है। ज्वाला कहता है, "सुन लिया चाची, तुम लोगों के लिए अब मैं मर चुका हूँ। संभालना अपने परिवार को और खानदान को।"—तो राधेलाल की पत्नी ज्वालाप्रसाद के पांव पकड़कर कहती है, "हाय बेटा, यह दिन भी देखना बदा था हमारे भाग में! बेटा, हम लोगन का छमा करौ! भगवान् कौनो बहुत बड़ी बिपदा हम लोगन के सिर पर लावन वाले हैं तब ही तो इनकी मति बौराय गई हैं। तुम्हें हम अपने लड़कन की तरह पाला-पोसा है। हमरै कहे से इनका छमा कर देव बेटा!"

इस प्रकार राधे की पत्नी एक पुराने ढंग की घर-गृहस्थी वाली औरत है जो अपने परिवार की ममता और स्वार्थ में ही अपना जीवन बिता रही है।

(७) माया शर्मा (मलका)

मलका जौनपुर की प्रसिद्ध वेश्या है। जौनपुर के रंगीले लोगों के लिए वह जौनपुर की रौनक है। गंगाप्रसाद अपनी महफ़िलों में उसका गाना और नाच कराता है। उसकी सुरीली आवाज़ और सौंदर्य पर सब मस्त हो उठते हैं। मलका के रूप में वर्माजी ने एक ऐसी वेश्या का चित्रण किया है जो परंपरा की विवशता से वेश्या बनी है, पर अपने पेशे से तंग आकर इज्ज़त-आबरू का जीवन बिताना चाहती है। वह गंगाप्रसाद से बेहद प्रेम करने लगती है। गंगाप्रसाद पर जान देती है। गंगाप्रसाद अपनी इज्ज़त-आबरू और समाज की दुहाई देकर उससे शादी नहीं करता, नहीं कर सकता, फिर भी वह गंगाप्रसाद की प्रेम-जोगन बनी बैठी है। अपने पिता ज्वालाप्रसाद और परिवार के जौनपुर आ जाने पर गंगाप्रसाद मलका को बनारस भेज देता है।

मलका बनारस में इज्जत-आबरू का जीवन बिताना आरम्भ करती है। वह शरीफ़ों के मुहल्ले में मकान ले लेती है। गंगाप्रसाद अब हफ़्ते-दस दिन में बनारस जाता है। अलीरजा मलका की प्रशंसा करता हुआ कहता है, "आप बड़े खुशकिस्मत हैं बाबू गंगाप्रसाद, वरना रण्डी की मुहब्बत किसे मिलती है? बड़ी पाक व नेक औरत है यह मलका! सुना है किसी ताल्लुकेदार के नुत्फ़े से पैदा हुई है यह। लम्बी रकम है इसके पास। इसकी माँ करीब पचास हज़ार के गहने व जवाहरात छोड़कर मरी थी। फिर उसके पास नकद भी दस-बीस हज़ार रुपये से कम न होगा।" मलका कई बार गंगाप्रसाद को

कहती है कि वह उससे शादी कर ले। वह आर्य समाज में जाकर हिन्दू बनने को तैयार है।

पर जब मलका देखती है कि गंगाप्रसाद अपनी इज्जत और कुल की बदनामी के भय से उसके साथ शादी नहीं करता तो वह भी सच्ची मुहब्बत रखती हुई गंगाप्रसाद के घर में आना नहीं चाहती, उसके "वालिद को उससे छुड़वाना नहीं चाहती, उसे गंगाप्रसाद के रुतबे का ख्याल है। वह यह ज़रा भी नहीं चाहती कि उसकी वजह से गंगाप्रसाद की ज़रा भी बदनामी हो या उसके घर में ज़रा भी निफ़ाक हो।"

जब अलीरज़ा गंगाप्रसाद को बहकाकर मलका को बेगम अलीरज़ा बनाने की बेतुकी सलाह देता है और गंगाप्रसाद मलका को इसके लिये राज़ी होने को कहता है, तो मलका गंगाप्रसाद की बुद्धि पर हैरान रह जाती है! वह अलीरज़ा से सख्त नफरत जताती है। वह रोती हुई गंगाप्रसाद से कहती है, "मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझसे दूर होते जा रहे हैं। जिस नरक से मैं निकल आई हूँ, आप मुझे फिर से उसी नरक में धकेलना चाहते हैं। मैंने अपना नाम बदल लिया, बिल्कुल हिन्दुआनी की तरह रहती हूँ। मुहल्ले-पड़ोस में मेरा आना-जाना है। लेकिन आप इन्हें अपने साथ लिवा लाये हैं। अब यह मेरा पता दूसरों को बतला देंगे, सारा राज़ खुल जायगा।...तब लोग मुझे अपने घर में भी न घुसने देंगे।...वे लोग मुझे इस मुहल्ले में भी न रहने देंगे। अब मैं अपनी पिछली ज़िन्दगी की तरफ़ नहीं जाना चाहती।"

बेगम अलीरज़ा बनने के प्रस्ताव से मलका दुःखी हो उठी। उसे लगा कि उसके सामने उसे चाहने वाला गंगाप्रसाद नहीं, बल्कि "एक नितान्त अजनबी आदमी उसके सामने बैठा हुआ है, जो चरित्रहीन है, आचारहीन है...।" साथ ही "मलका ने अनुभव किया कि वह स्वयं कितनी विवश है, कितनी असहाय है! दुनिया में उसका कोई नहीं है!"

मलका चतुर और समझदार है। वह बेगम अलीरज़ा बनने के प्रस्ताव की अस्वाभाविकता और अलीरज़ा की दुष्टता को समझ लेती है। वह बड़ी चतुराई से यह शर्त लगा देती है कि पहले उसके जौनपुर वाले दोनों मकान बिकवा दें। अलीरज़ा कोशिश करके झगड़े में फंसे उसके दोनों मकान अच्छे दामों बिकवा देता है। मकानों को बेचकर मलका उनके फंदे से निकल भागती

है। अलीरज़ा हाथ मलता और गंगाप्रसाद उसकी बेवफ़ाई का रोना रोता रह जाता है।

मलका माया शर्मा बन जाती है। सत्यव्रत शर्मा को अपने जीवन में पाकर वह धन्य हो जाती है। मलका आर्यसमाज में जाकर हिन्दू हो जाती है और इस देशभक्त शिक्षित युवक से शादी करा लेती है। वह अपने पति सत्यव्रत के साथ राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने लगती है। "अपने तौर-तरीके बदलने में उसे काफ़ी मेहनत" करनी पड़ी, पर सहर्ष बदल लेती है—एक आमूल-चूल परिवर्तन !

जब गंगाप्रसाद को वह अपने परिवर्तन की कहानी सुनाती है और गंगाप्रसाद अपनी पशु-प्रवृत्ति के प्रभाव से उसे अपने आलिंगन-पाश में कस लेता है, तो वह जबरदस्ती अपने को छुड़ाती है और रोती हुई कहती है, "हाथ जोड़ती हूँ, पैर छूती हूँ, अब मुझे मत घसीटो इस नरक की तरफ़, फिर से। मैंने तुमसे मुहब्बत चाही, मैंने तुम पर भरोसा किया, मैंने तुमसे सहारे की भीख माँगी, लेकिन वह सब मुझे नहीं मिल सका। तुम्हारी मजबूरियाँ थीं। लेकिन भगवान् बड़ा रहमदिल है। उसने इनको मेरी जिन्दगी में भेजकर मुहब्बत दी, भरोसा दिया, सहारा दिया। अब इन्हें मुझसे मत छीनो !" उसकी सच्ची आत्मा के साक्षात्कार से "गंगाप्रसाद हतप्रभ और निस्तेज हो गया। उसके अन्दर वाला पशु एक क्षण में ही लुप्त हो गया, मानव जाग उठा।"

मलका दूरदर्शी है। वह जानती है कि उसके इस परिवर्तन से उस पर संकट पड़ने की संभावना है। वह कहती है, "जो-जो मुसीबतें हम पर पड़ेंगी, उन्हें मैं जानती हूँ। यह दुनिया बड़ी जालिम है।" इसीलिए माया शर्मा गंगाप्रसाद से सहायता का वचन ले लेती है और वाकई जब मलका के माया शर्मा बन जाने पर, मुसलमान से हिन्दू हो जाने पर, जौनपुर के अलीरज़ा और अब्दुलहक बावेला मचा देते हैं और अलीरज़ा उसे जबरदस्ती उठवाकर अपनी कैद में रखता है, तो गंगाप्रसाद ही उसकी सहायता कर माया शर्मा को वहाँ से बचाकर निकाल कर लाता है।

माया शर्मा अन्त समय तक गंगाप्रसाद का उपकार मानती और उसकी इज्ज़त करती है। गंगाप्रसाद के बीमार पड़ जाने का उसे बहुत दुःख होता है। सत्यव्रत और माया दोनों उसकी बीमारपुरसी के लिए आते हैं।

गंगाप्रसाद की हालत देखकर उसकी चीख निकल जाती है, "हाय राम ! यह क्या हो गया है आपको, मुझे यह दिन देखना बदा था !" वह फूट-फूट कर रोने लगती है।

अन्त में माया शर्मा का परिचय घर-गृहस्थी वाली जिम्मेदार औरत के रूप में मिलता है। जब गंगाप्रसाद माया से पूछता है कि वह क्यों नेता नहीं बनी, इधर अखबारों में कहीं उसका नाम नहीं छपा—तो माया कहती है, "आग लगे इस नेतागीरी में। मुझे अपने बच्चों से ही कहाँ फुरसत मिलती है। घर-गृहस्थी से जो थोड़ा-बहुत वक्त मिलता है, उसमें कुछ चरखे-वरखे का भी काम कर लेती हूँ लेकिन मुझे दिखता है कि यह सब बेकार है।"

इस प्रकार मलका का चरित्र परिवर्तनशील है। वह मलका वेश्या से एक सुगृहिणी बन जाती है। उसके चरित्र की स्नेहशीलता, चतुरता, पवित्रता, नारी-विवशता, करुणा, राष्ट्रीयता-भावना, कर्त्तव्यपरायणता, पतिपरायणता आदि विशेषताएँ स्पष्ट प्रकट हुई हैं।

(८) उषा

"उषा ! असीम सुन्दरता का वरदान लेकर वह आई है ! कितना मधुर कंठ है उसका !" उषा के सामने नवल खोया-खोया-सा, बेसुध-सा रह जाता था। उषा रायबहादुर कामतानाथ की लड़की है। उसने इन्टरमीडिएट की परीक्षा पास की है। नवल ने उसे पढ़ाया है। नवल के साथ उसके विवाह की संभावना है। उषा भी नवल की ओर आकर्षित है।

उषा सुख-सुविधाओं में पली है। ऐश्वर्य और सुख-वैभव की उसे अभिलाषा है। जब उसके पिता रायबहादुर कामतानाथ गर्मियों में स्विट्जरलैंड जाने का प्रोग्राम बनाते हैं तो उषा भी साथ जाने की ज़िद पकड़ लेती है। वह अपनी माँ के विरोध के बावजूद स्विट्जरलैंड जाकर रहती है। माता के विरोध और बुरा-भला कहने से वह फूट पड़ती है, "मैं नहीं जाऊँगी पापा, मैं नहीं जाऊँगी। मैं जमुना में डूबकर मर जाऊँगी, अगर अम्माँ को इसमें संतोष है। तुम लोग मेरा काला मुँह नहीं देखोगे !" उषा रूठकर पड़ जाती है। आखिर माँ को अपना विरोध छोड़ना पड़ता है।

इस प्रकार उषा एक सुन्दर, आत्माभिमानिनी, सुख-अभिलाषिनी किशोरी है। वह चाहती है कि नवल आई० सी० एस० के लिए विलायत जाए, उसके साथ स्विट्जरलैंड चले, पर जब नवल अपने पिता की बीमारी और मृत्यु के

कारण यह सब नहीं करता तो उषा को दुख होता है। जब नवल कहता है कि उसे अपने पिता के साथ भुवाली सैनेटोरियम जाना है तो उषा के पिता कहते हैं, "तुम किसी भी हालत में तपेदिक के कीटाणुओं से भरे उस भुवाली सैनेटोरियम में नहीं जा सकते !" उषा भी नवल को समझाती है, "मैं तो इतनी आशा लगाए बैठी थी कि आप चलिएगा। विपत्ति तो हरेक पर आती ही रहती है, लेकिन इन विपत्तियों में अपने को खो देना, यह मेरी समझ में नहीं आता। आपके यहाँ रहने या विलायत जाने से तो आपके बाबू जी की बीमारी पर कोई असर पड़ेगा नहीं; ..."

"नवल ने उषा को देखा।" एकदम भावनाहीन, सहानुभूति-शून्य था उसका मुख ! नवल तिलमिला उठता है। "उषा के अपने सपने हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं।" विद्या ठीक ही कहती है कि नवल विलायत नहीं जाता तो कामतानाथ की लड़की से भी शादी नहीं कर सकेगा। "दादा ! यह असमान विचारों और मान्यताओं वालों में विवाह, यह असमान परिवारों में विवाह, यह बड़ा भयानक है !"

उषा की महत्त्वाकांक्षा और वैभव-लालसा उसे राजेन्द्रकिशोर आई० सी० एस० की ओर ले जाती है। जब उषा देखती है कि नवल विलायत नहीं जा रहा तो वह नवल की ओर से मुँह मोड़ लेती है और राजेन्द्रकिशोर की ओर आकर्षित होती है, हालाँकि राजेन्द्रकिशोर विवाहित और बड़ी आयु का है। वैभव और सम्पन्नता की भूखी उषा नवल से दूर हट जाती है।

यूरोप में घूमने के कारण उषा का एक साल पढ़ाई का जाता रहा। वह बी० ए० में दाखिल हुई है, वह विद्या को कहती है कि "न जाने क्यों, मन में एक तरह का उतावलापन भर गया है। किसी भी चीज के लिए इन्तजार करने को जी नहीं होता। फिर कभी-कभी तो यह भी सोचने लगती हूँ कि यह पढ़ने-लिखने का झँझट बेकार ही ले लिया है। आखिर मुझे बी० ए० पास करने की जरूरत ही क्या है ? कौन नौकरी करनी है मुझे ?"

उषा नारी के नौकरी करने के पक्ष में नहीं है। जब विद्या बताती है कि वह "नारी शिक्षा सदन" में अध्यापिका लग गई है तो उषा चौंककर कहती है, "तो क्या नौकरी करोगी ? लोग क्या कहेंगे ? और तुम्हें भी कैसा लगेगा ?" उषा नई उम्र की होती हुई भी नई दुनिया की नहीं बन पाई है। नारी-सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हुई वह कहती है, "वह घर के बाहर

निकलकर गुलामी करे, वह पुरुषों के कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करे, परिवार और घर की मर्यादा को तोड़ दे—आपकी यह नई दुनिया आप ही को मुबारक हो ! ······स्त्री-पुरुष, निर्बल-सबल, गरीब-अमीर के भेद-भाव अनादि काल से रहे हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे।"······"मैं यूरोप हो आई हूँ और वहाँ··· कुछ स्त्रियाँ नौकरी करती हैं, क्योंकि वे नौकरी करने को विवश हैं, ठीक उसी तरह जैसे हमारे यहाँ नीच जाति की स्त्रियाँ नौकरी करती हैं। लेकिन जो नौकरी करने को विवश नहीं हैं, वे मौज से रहती हैं, खुलकर खर्च करती हैं; उनके नौकर-चाकर हैं, उनके पास शानदार मोटरें हैं······।" उषा का विचार है कि स्त्री की स्वतन्त्रता का अर्थ यही है कि घर से बाहर सभा-सोसाइटी में घूम-फिर सके।

इस प्रकार उषा सम्पन्नता, वैभव, सुख, स्वार्थ की भूखी एक साधारण युवती है।

(९) राधा

जैदेई की पुत्र-वधू (लक्ष्मीचन्द की पत्नी) राधा आरम्भ में एक अबोध कुल-वधू प्रतीत होती है। वह गांव में अपनी सास जैदेई के साथ रहती है। अपनी सास की ममता और संरक्षता की पात्र बनी हुई है।

जब जैदेई, मुंशी शिवलाल और राधेलाल लक्ष्मीचन्द के इलाहाबाद में लकड़ी का कारखाना खोलने पर टीका-टिप्पणी करते हैं तो "एक कोने में लक्ष्मीचन्द की पत्नी राधा बैठी यह बातचीत सुन रही थी। बातें कुछ उसकी समझ में आती थीं, कुछ नहीं आती थीं, पर अपने पति पर टीका-टिप्पणी उसे अवश्य अरुचिकर लग रही थी।" इस प्रकार राधा भोली-भाली, पर्दे में रहने वाली, किन्तु पति-परायणा नारी है। जब किसनू जैदेई के यहाँ कारिन्दा बनकर घर के लड़के की तरह रहने लगता है और राधा से मीठी-मीठी बातें करके, उसके लिए फूलमाला और फल लाकर, अड़ोस-पड़ोस की रस की बातें सुनाकर उसे फुसलाना चाहता है, तो आरम्भ में भोली राधा उसकी बुरी नीयत नहीं समझ पाती। किन्तु एक दिन जब किसनू भांग पिलाकर उसे एकांत में पकड़ना चाहता है तब वह अपनी इज्जत की रक्षा के लिए चिल्ला उठती है। वह पतिव्रता है, भोली है तो क्या ! राधा अपनी यह कहानी भी बड़े भोलेपन के साथ यमुना को सुनाती है।

किन्तु यही राधा कानपुर में अपनी स्वतन्त्र गृहस्थी में बड़ी चतुर और

पूरी स्वार्थिन बन जाती है। वह अब अपने घर की मालकिन थी। वह जैदेई की उपेक्षा करती है। वह नहीं चाहती कि उसकी सास इलाहाबाद से आकर यहाँ कानपुर में रहने लगे। जब जैदेई कहती है कि वह इलाहाबाद में बिल्कुल अकेली पड़ी है, तो राधा कहती है, "वहाँ अकेली कैसे हैं अम्मा जी! नौकर-चाकर तो सब हैं वहाँ, इतना बड़ा बंगला......।" जैदेई ने स्पष्ट अनुभव किया कि कानपुर के गृह की स्वामिनी राधा थी, जैदेई नहीं थी। और कानपुर में आकर जैदेई के रहने के अर्थ होते राधा की अधीनता में रहना,......।"

राधा जिस प्रकार अपनी सास को तिमंजिले पर बिल्कुल एकांत के एक कमरे में ठहराती है और वह तथा उसके बच्चे जैदेई की उपेक्षा करते हैं, उससे राधा भी अपने पति की तरह भावनाहीन और ममताहीन औरत प्रतीत होती है। कानपुर में रहती हुई वह अपने मायके के लोगों, अपने भाई-बहन, अपने नाते-रिश्तेदारों को ही अधिक मानती है, जैदेई के भाई के परिवार से कोई मेल-मिलाप नहीं रखती।

जो राधा एक अत्यन्त सुन्दर, कोमलांगी तन्वंगी युवती थी, वह कुछ ही वर्षों में गृहस्थी के चक्कर तथा ऐश्वर्य-सुख के कारण स्थूलकाय ललानी बन गई थी। जब गंगाप्रसाद कानपुर का जंट बनकर जाता है और लक्ष्मीचन्द उसे अपने घर ले जाता है तो गंगाप्रसाद राधा को कितनी बदली पाता है। "राधा काफ़ी मोटी हो गई थी और भद्दी-सी दिखने लगी थी। गहनों से लदी हुई एक अधेड़-सी औरत को अपने सामने देखकर गंगाप्रसाद उसे पहचान ही नहीं सका।"

इस प्रकार राधा धन, वैभव, सुख, शासन के लोभ में पड़कर अपनी गृहस्थी के ही स्वार्थों में डूब जाती है और अपनी सास के प्रति, अपने पति की ही तरह, भावना और ममता से शून्य हो जाती है।

(१०) रुक्मिणी

गंगाप्रसाद की पत्नी रुक्मिणी पुराने ज़माने की पर्दे वाली औरत है। वह दो हाथ का घूंघट निकालकर बाहर निकलती है। जब गंगाप्रसाद दिल्ली-दरबार के इन्तज़ाम के लिए जाने की खुशखबरी सुनाता है और कहता है कि तुम भी दिल्ली और दरबार देख लो चलकर, तो रुक्मिणी आश्चर्य से कहती है, "राम, राम! तुम्हारे साथ दिल्ली घूमने पर लोग क्या कहेंगे? दो हाथ का घूंघट काढ़कर मैं तुम्हारे साथ चलूंगी तो लोग हँसेंगे नहीं?"

रुक्मिणी नये ढंग की मेम नहीं बन सकती। भीखू भी जब कहता है कि "साया पहिन कै तुमहूँ मेम साहब बन जाओ न! उहैं अंगरेजिउ सीख लीन्हेव! हमार बचवा की हविस पूरी हुई जाय। नई दुनिया आय न, तौन नए-नए गुण सीखैं का पड़ि है।"—तो रुक्मिणी अंग्रेजी सीखने और नये अंग्रेजी रंग-ढंग अपनाने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है। वह दिल्ली न जाकर इलाहाबाद या बांदा में अपनी चाची जैदेई या ससुर ज्वालाप्रसाद के यहाँ रहती है।

रुक्मिणी पति-परायणा लज्जाशीला नारी है। जब गंगाप्रसाद शराब-कबाब और यहाँ तक कि वेश्यागामिता में डूब जाता है, तो रुक्मिणी को बहुत दुःख होता है। पर वह शिकायत का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालती। उसका मन जौनपुर में अपने पति के पास रहने को नहीं करता, वह अधिकतर अपने सास-ससुर के पास रहने लगती है। जब ज्वालाप्रसाद और यमुना को भीखू गंगाप्रसाद की खुराफातों के बारे में बताता है तो यमुना रोती हुई कहती है, "बहू के मुँह की हँसी तो गायब हो ही गई है, लेकिन जबान से कुछ नहीं बोलती। अब हमारी समझ में आया कि क्यों उसका मन जौनपुर में नहीं लगता है!"

जब समस्त परिवार जौनपुर जाकर रहने लगता है और गंगाप्रसाद के जीवन में सुव्यवस्था आ जाती है, तभी रुक्मिणी के चेहरे पर भी प्रसन्नता आती है। पर उसकी मुसीबतों का ठिकाना नहीं। पति की बीमारी और मृत्यु का संकट उसपर पड़ता है।

अपनी बेटी विद्या का उसके ससुराल वालों द्वारा तंग करके निकाला जाना भी कितना बड़ा मुसीबत का पहाड़ था! वह सब झेलती है, सब सहती है! विद्या के प्रति उसके हृदय में अगाध ममता है। विद्या की करुणा भरी चिट्ठी पाकर वह नवल को कहती है कि विद्या को तुरन्त जाकर उन चाण्डालों के यहाँ से ले आये। उसे विश्वास है कि विद्या का कोई दोष नहीं, वे ही "सब के सब जमराज बनकर उसकी लड़की को पेर रहे हैं।"

रुक्मिणी यमुना की अपेक्षा अधिक उदार और नई चेतना वाली है। विद्या के लाहौर कांग्रेस में जाने से यमुना चिढ़कर कहती है कि "उन्नाव वाले क्या कहेंगे? उनसे फिर से बनने की जो थोड़ी-बहुत आशा है, वह भी टूट जायेगी।...... पैदा होते ही मर गई होती यह अभागिन तो अच्छा होता। अब तो ऐसा लगता

है कि कुल की नाक कटायेगी !" इस कथन से रुक्मिणी और भी दुखी होती है। वह अपनी लड़की की आलोचना नहीं सुन सकती, कहती है, "अम्मा जी, अच्छा तो मुझे भी नहीं लग रहा विद्या का लाहौर जाना, लेकिन अगर विद्या की यही हालत रही तो ज्यादा दिन जिन्दा न रहेगी।"......"अम्मा जी, हाथ जोड़ती हूँ यह सब न कहो ! अगर विद्या ने यह सब सुन लिया तो कहीं कुछ और न कर बैठे।"

इस प्रकार रुक्मिणी हिम्मत और उत्साह वाली नारी है। वह सब सहती है। सिद्धेश्वरी के दूसरा विवाह कराने के दुःसंवाद को वह सहती है। वह नवल के सत्याग्रह कर जेल जाने का दुःख झेलती है। वह नवल को रोकना चाहती है, "निरीह, विवश, निर्बल नारी, जो सब कुछ लुटता हुआ देख रही थी, कहीं से कोई सहायता चाहती थी। उसने कराह के स्वर में कहा, "बप्पा, किसी तरह रोकिये उसे। वह जेल में कैसे रहेगा ?" पर जब नवल नहीं रुकता तो वह भाग्य का दोष मानकर रह जाती है। वह जी कड़ा करके नवल को सहर्ष विदा करती है। "अपने लड़के की जयजयकार रुक्मिणी ने सुनी और उसने देखा कि अपार जनसमुदाय उसके लड़के को विदा देने के लिए उमड़ पड़ा है। और रुक्मिणी ने अपने अन्दर एक पुलकन अनुभव की—उसका सारा विषाद छुट गया। उसने अपने आँचल से अपने आँसुओं को पोंछा; एक बार उसने अपने अंक से अपने लड़के को लगाया, फिर उसने काँपते हाथों से नवल का तिलक किया और उसकी आरती उतारी।"

(११) कैलासो

कैलासो के रूप में वर्माजी ने पूर्वयुग की एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो अर्द्धशिक्षित किन्तु सम्पन्न व्यापारी परिवार से सम्बन्ध रखती है और पर्दे की पुरानी परम्परा के स्थान पर वैभव, विलास, महत्त्वाकांक्षा में डूबी उच्च-से-उच्च पद पाना और उच्च अफसरों और राजा-महाराजाओं की सोसाइटी में प्रवेश चाहती है। राधाकिशन के भाई श्रीकिशन की पत्नी कैलासो अपने देवर राधा-किशन को अपने जाल में फँसाये रखती है। अपनी देवरानी संतो से उसे ईर्ष्या है। वह सच्चे अर्थों में रानी साहिबा बनना चाहती है। उसकी उत्कट अभि-लाषा है कि उसके पति को राजा बहादुर का खिताब मिल जाये। वह इसके लिए सब कुछ करने को तैयार है।

वह स्वच्छन्द नारी है। काम-वासना की भूखी वह हरदम किसी की ओर

झुकने को तैयार रहती है। गंगाप्रसाद के प्रति वह बुरी तरह आकर्षित होती है। गंगाप्रसाद से मिलने को उत्सुक और लालायित रहती है। "उस स्त्री की हँसी में, उसके बात करने के ढंग में कुछ अजीब निर्लज्जता थी, गंगाप्रसाद ने यह अनुभव किया।" कैलासो "गोरी-सी, मोटी-सी, अधेड़-सी थी। वह किसी समय निश्चय ही सुन्दरी रही होगी, और ऐसा मालूम होता है कि अपनी सुन्दरता को जाने से रोकने का वह प्रयत्न कर रही है।"

कैलासो अपने को रानी समझती है। गंगाप्रसाद जब उसका परिचय "रानी कैलाश कुँवर, रानी दरीबा" कहकर कराता है तो वह फूली नहीं समाती। कीमती बनारसी साड़ी पहने और जड़ाऊ गहनों से लदी कैलासो हँसती, कुहुकती और इठलाती हुई असीरगढ़ देखती है। "उसकी आवाज़ काफ़ी तेज़, मोटी और प्रभावशाली थी।"

जब कलकत्ता में गंगाप्रसाद की पुनः कैलासो से भेंट होती है, तब भी कैलासो वैसी ही प्रतीत होती है। "कैलासो के हाव-भाव में, उसकी बातचीत में जो एक सस्ते प्रकार की कामुकता थी, उससे गंगाप्रसाद में एक कौतूहल-सा जाग उठा।" कैलासो भी उसपर टूटती हुई-सी प्रतीत हुई। वह गंगाप्रसाद को उलाहना देती है कि हम तो तुम्हें हरदम याद करते रहे, तुम भूल ही गए। वह संतो के सम्बन्ध से गंगाप्रसाद पर व्यंग्य भी करती है। संतो के प्रति ईर्ष्या और खीझ व्यक्त करती है। जब कैलासो और उसके पति श्रीकिशन देखते हैं कि कलकत्ता में राधाकिशन ने संतो की बदौलत राजाओं-महाराजाओं से मेल बढ़ाकर लाखों रुपये कमा लिये हैं तो वे कलकत्ता की दुकान का हिसाब माँगते हैं और सम्मिलित परिवार की दुहाई मचाते हैं। इस बात पर राधाकिशन और उसकी भाभी कैलासो में तकरार हो जाती है। जो कैलासो दिल्ली में अपने देवर को अपने कमरे में लिये पड़ी रहती थी, वही पैसे के मामले में अपने देवर से झगड़ती है।

इस प्रकार कैलासो कामुक, स्वच्छन्द, महत्त्वाकांक्षिणी, वैभव-विलासिनी और स्वार्थिन नारी है।

★

१०

चरित्र-चित्रण कला की विशेषताएं

'भूले-बिसरे-चित्र' वर्माजी का एक बृहदाकार उपन्यास है, जिसकी चरित्र-सृष्टि विशाल है। विराट् युग-बोध कराना लेखक का उद्देश्य है। उसने इसीसे जीवन के अनेक क्षेत्रों से कई प्रकार के पात्र चुने हैं। सन् १८८५ से १९३० ई० तक की दीर्घ कालावधि में उसने चार पीढ़ियों के बदलते हुए पात्रों का चित्रण किया है। युगबोधकारी 'भूले-बिसरे चित्र' की चरित्र-सृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि वर्माजी ने युग की बदलती हुई मान्यताओं, परिवर्तित होती हुई राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती हुई पीढ़ियों के पात्रों का सफल चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण की इसी विशेषता के कारण 'भूले-बिसरे चित्र' एक युगबोधकारी सफल उपन्यास बन सका है।

वर्माजी की चरित्र-सृष्टि अधिकतर वर्गगत है। एक ओर तो उनके प्रायः सब पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं, दूसरी ओर वे अपने-अपने युग की पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार युग और वर्ग की संगति 'भूले-बिसरे चित्र' की चरित्र-सृष्टि की सबसे बड़ी विशिष्टता है।

मुंशी शिवलाल तथा राधेलाल पुराने ज़माने के पटवारियों, कानूनगोओं, अर्जीनवीसों के खानदान की पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, जो झूठे अर्जी-परचों, झूठे मुकदमों, झूठे दस्तावेजों तथा अन्य छल-कपट से दूसरों की ज़मीन-जायदाद हड़पने के अवसर ढूंढते रहते थे। रिश्वत लेते-देते और दिलवाते थे, खुशामद से अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे तथा मामूली पढ़े-लिखे होते थे। मुंशी शिवलाल ऐसे ही झूठे-सच्चे इस्तगासे लिखने में माहिर हैं। राधेलाल और मुंशी शिवलाल जैसे-तैसे ज़मीन-जायदाद बनाना चाहते हैं। तीर्थ-स्नान, पूजा, छुआछूत, जात-पांत में उनका विश्वास है। अपने कुल का झूठा गर्व, झूठी मर्यादा सब बातें उन्हें निम्न मध्यवर्ग के प्रतिनिधि सिद्ध करती हैं। इस वर्ग

की यह पीढ़ी अपने पारिवारिक स्वार्थ-सम्बन्धों में ही पड़ी थी। खुशामदी मनोवृत्ति के कारण अंग्रेज़ सरकार और अफ़सरों की भक्त थी। देश की स्वतन्त्रता या नई सामाजिक-राजनैतिक चेतना से इसका कोई सरोकार न था।

निम्न मध्यवर्ग के इस मामूली पढ़े-लिखे मुंशी शिवलाल ने जन्म दिया नई पीढ़ी के ज्वालाप्रसाद को, जो इंटर तक अंग्रेज़ी पढ़ाई पढ़कर और अपने पिता की खुशामदी प्रवृत्ति का लाभ उठाकर नायब तहसीलदार के पद पर सरकारी नौकर बन जाता है। पुरानी पीढ़ी के मुंशी शिवलाल और राधेलाल सम्मिलित परिवार-परंपरा के समर्थक थे। ज्वालाप्रसाद को इस परंपरा के कटु अनुभवों से इसका विघटन करने पर विवश होना पड़ता है। मुंशी शिवलाल देश की राजनीतिक हलचल से बेखबर ही चल बसे थे, ज्वालाप्रसाद अपने बुढ़ापे में विवश भाव से सबकुछ देखते रहते हैं। मुंशी शिवलाल स्वराज्य, डोमीनियन स्टेटस आदि से अनभिज्ञ ही थे, ज्वालाप्रसाद सबकुछ जानता और समझता है, पर इन सब राजनीतिक बातों से दूर रहता है। शिवलाल अपने समस्त छल-छन्दों के बावजूद आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त ही रहे और निम्न मध्यवर्गीय ही बने रहे, ज्वालाप्रसाद अपनी ईमानदारी और मेहनत के बल पर कुछ आर्थिक सुधार करता है, पर सम्पन्न वह भी नहीं बन पाता, क्योंकि उसके भी साधन सीमित थे। फिर भी दो पीढ़ियों का यह अन्तर निम्न मध्यवर्ग से मध्यवर्ग की ओर बढ़ने का द्योतक है।

ज्वालाप्रसाद ब्रिटिश नौकरशाही की पहली पीढ़ी का प्रतिनिधि है, जो ईमानदार, मेहनती और पूर्णतः सरकार-भक्त थी। ये कुछ-कुछ खुशामदी भी थे। भेंट-उपहार के सिवा जो रिश्वत का एक पैसा न लेते थे!

तीसरी पीढ़ी का गंगाप्रसाद अपने पद, शिक्षा, नई चाल-ढाल, नये अंग्रेज़ी रहन-सहन आदि में अपनी पूर्व पीढ़ी से आगे बढ़ता है। वह मध्यवर्ग से उच्च मध्यवर्ग के सोपान पर पहुँचता है और उच्चवर्ग में सम्मिलित होने के प्रयत्न में टूट जाता है। यह टूटन उसकी अगली पीढ़ी के विद्या और नवल को पुनः निम्न मध्यवर्ग की स्थिति में पहुँचा देती है।

गंगाप्रसाद की पीढ़ी तक आते-आते सम्मिलित परिवार परंपरा विस्मृत-सी हो गई है। गंगाप्रसाद अपने चचेरे भाई बंसीधर को भी नहीं जानता, उसे एक दिन भी अपने घर नहीं रखता, उसके साथ विशेष आत्मीयता नहीं जताता। गंगाप्रसाद न केवल राजनीतिक परिस्थिति को जानता और गहराई

से समझता है, अपितु अपनी प्रतिक्रिया भी प्रकट करता है, अपने बाप ज्वालाप्रसाद की तरह तटस्थ द्रष्टा-मात्र नहीं रहता। उसके हृदय में राज-भक्ति और देश-भक्ति का द्वन्द्व दिखाया गया है। पर्दा-घूँघट, तीर्थ-स्नान आदि बातों को वह दकियानूसी समझता है। वह अंग्रेजों से बराबर का व्यवहार करता है, खुशामदी नहीं है।

चौथी पीढ़ी नवल और विद्या की नई पीढ़ी है। इसकी मान्यताएँ सर्वथा बदल चुकी हैं। देश-भक्ति और स्वतंत्रता-संघर्ष में सक्रिय योग देने वाली यह पीढ़ी सर्वथा आधुनिक विचारों की है। विलायत जाकर आई० सी० एस० करने—अपना ऐसा 'कैरियर' बनाने से उसे अरुचि हो गई है। नारी के नौकरी करने और आत्मनिर्भर होने को यह पीढ़ी नारी के गौरव की बात समझती है। इस पीढ़ी में उत्साह है, साहस है, संकटों को झेलने की क्षमता है। यह पीढ़ी गुलामी बर्दाश्त नहीं कर सकती। अपनी आत्मा को किसी भी प्रलोभन से बेच नहीं सकती। यह नई चेतना, नव जागरण की प्रतीक है।

वर्माजी ने न केवल मुंशी शिवलाल की बदलती हुई पीढ़ियों का सफल चरित्र-चित्रण किया है, जो ब्रिटिश नौकरशाही के कारण मध्यवर्ग की विभिन्न स्थितियों के रूप में विकसित हुईं, अपितु पूंजीवादी और सामंतवादी पीढ़ियों के सूक्ष्म अंतर को भी बदलते हुए पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा स्पष्ट किया है।

लाला प्रभुदयाल के पिता तो एक मामूली-सी पंसारी की दुकान करते थे, पर प्रभुदयाल पिता की सीमित वणिक-वृत्ति के स्थान पर महाजनी पूंजीवाद का विकास करता है। प्रभुदयाल ब्याज-बट्टे की कमाई से धन और जमीन बढ़ाता जाता है। ब्याज-दर-ब्याज के चक्कर में जो एक बार फंस गया, प्रभुदयाल उसे फिर कयामत तक नहीं निकलने देते। इस महाजन पूंजीपति का क्षेत्र है केवल गाँव और देहात। परंपरागत सामंतवाद और जागीरदारी प्रथाएं टूट रही हैं और उनकी कब्र पर यह पूंजीवाद विकसित हो रहा है, प्रभुदयाल बन रहा है।

प्रभुदयाल के बाद की पीढ़ी का पूंजीपति अपने बाप की देहाती सीमा को लाँघकर नगरों में फैल रहा है। वह महाजनी पूंजीवादी परंपरा के स्थान पर उद्योगपति-व्यापारी पूंजीपति बन गया है। वह कारखाने खोल रहा है, मिलें लगा रहा है, उद्योग और व्यापार फैला रहा है। वह सरकार को भी चन्दा देता है और स्वदेशी आन्दोलन के लिए कांग्रेस को भी चन्दा देता है। वह

सरकारी अफ़्सरों का भी रिश्वत और भेंट से मुंह बन्द करता है। वह 'सर' और 'रायबहादुर' की उपाधियाँ प्राप्त करता है, सरकार को चन्दा देकर। वह उच्च वर्ग के बड़े-बड़े अफ़्सरों, पूंजीपतियों, राजाओं में सम्मानित स्थान पाता है।

इसी प्रकार के बदलते हुए पूंजीवाद और उसकी परिवर्तित होती हुई पीढ़ियों का चरित्र-चित्रण रायबहादुर कामतानाथ और उनके बेटे सीतानाथ के रूप में किया गया है।

ऐसे ही गजराजसिंह, राजा सरोहन आदि परम्परागत सामन्तवाद के प्रतीक हैं। बेहिसाब खर्चों, झूठी शान और मान-मर्यादा के कारण शादी-ब्याह, उत्सव आदि पर अत्यधिक खर्च, अत्यधिक भोग-विलास आदि के कारण इनकी ज़मीनें, इनके गाँव बिकते और रहन रखे जाते हैं, प्रभुदयाल-जैसे महाजनों के पास ! राज वर्ग का अतिशय अभिमान, ऐय्याशी, अकड़ आदि बुराइयाँ इनके घोर पतन का कारण बनती हैं। इनके टूटते हुए वर्ग-रूप का स्थान लेता है लाल रिपुदमनसिंह। लाल साहब अपनी पूर्व पीढ़ी के विपरीत सच्चरित्र है। वह ज़मींदारी पर निर्भर रहना व्यर्थ समझकर उच्च सरकारी नौकर बनता है। शराब के सिवा कोई व्यसन नहीं करता। वह राजा या सामन्त अथवा ज़मींदार के स्थान पर सरकारी अफ़सर बन जाता है। इस प्रकार सामन्तवाद के विघटन और उसकी बदलती हुई पीढ़ियों का चरित्रांकन भी बड़ी सफलता से किया गया है।

एक ही पीढ़ी के पात्रों में भी अपने-अपने वर्ग की भिन्नता तथा परि-स्थितियों के भेद से चारित्रिक अन्तर प्रकट किया गया है, जो जीवन के सूक्ष्म अध्ययन का परिचायक है। ज्ञानप्रकाश, गंगाप्रसाद और लक्ष्मीचन्द एक ही पीढ़ी के हैं, पर तीनों में कितना अन्तर है ! लक्ष्मीचन्द अपनी परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से उद्योगपति-व्यापारी पूँजीपति बनता है, गंगाप्रसाद सरकारी अफ़सर और ज्ञानप्रकाश सरकार की जड़ें उखाड़ने वाला स्वतंत्रता-सेनानी बना हुआ है। इसी प्रकार विद्या और उषा का अन्तर स्पष्ट है। सम्पन्नता और वैभव की दीवानी उषा रायबहादुर कामतानाथ की पुत्री है और अपने बाबा ज्ञान-प्रकाश से प्रभावित नवल की बहन विद्या सम्पन्नता और वैभव को ठोकर लगाती है।

नारी-पात्रों में भी पीढ़ी का अन्तर बड़ी सूक्ष्मता से प्रकट किया गया है।

रानी हेमवती पुरानी ऐश्वर्य-विलासिनी है जिसे स्वच्छन्द-विहार अच्छा लगता है, पर उसकी पुत्री लावण्यप्रभा उसका विलोम है। उसे मेजर वाट्स जरा भी नहीं भाता। यमुना के बाद रुक्मिणी और रुक्मिणी के बाद विद्या की उपलब्धि भी युग और परिस्थितियों के सर्वथा अनुरूप है। उषा और उसकी माँ में भी पीढ़ी का अन्तर स्पष्ट है।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' की चरित्र-सृष्टि में पात्रों की वर्गगत विशेषताओं और बदलती हुई युग-परिस्थितियों के अनुसार पात्रों की पीढ़ियों के सूक्ष्म अन्तर को बड़ी सफलता के साथ प्रकट किया गया है। पात्र अपने-अपने वर्गों—सरकारी अफ़सरों, महाजन-पूँजीपति, पूँजीपति-उद्योगपति, राजवर्ग, जमींदार वर्ग आदि—का प्रतिनिधित्व भी करते हैं और युग-पीढ़ी का भी।

'भूले-बिसरे चित्र' में पात्रों की विविधता है। पाँचों खण्डों के अनेक कथा-प्रसंगों से सम्बन्धित अनेक पात्रों की इसमें अवतारणा हुई है। विभिन्न प्रकार के पात्रों में व्यक्ति-सजीवता चाहे न आ पाई हो, पर सब पात्र युग-वर्ग की सजीवता के भूले-बिसरे चित्र हैं, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता। अनेक पात्रों का सृजन भी केवल युग-बोध के लिए किया गया है। दिल्ली-दरबार का प्रबन्ध कराने वाले गोरे अफ़सरों का अकड़ते हुए चलना, भारतीय मजदूरों और सिपाहियों को डांटना, गाली देना आदि व्यक्ति-चरित्र या व्यक्ति-चित्र नहीं हैं, अपितु युग-पात्रों के अतीत चित्र हैं। विलियम ग्रिफ़िथ्स की अवतारणा युग-अनुरोध से ही हुई है। उसका व्यक्तिगत चरित्र लुप्त है, केवल ब्रिटिश पार्लियामैण्ट के एक उदार सदस्य के रूप में उसका युगबोधकारी चित्रण हुआ है, जो निश्चय ही युग-चित्र है, व्यक्ति-चरित्र नहीं।

इसी प्रकार स्वामी जटिलानन्द, मौलाना वहशी, पं० सोमेश्वरदत्त आदि पात्रों की लेखक को युग-बोध कराने के लिए—आर्यसमाज के प्रचार और शास्त्रार्थ का दृश्य उपस्थित करने के लिए आवश्यकता थी, इसीलिए उनकी सृष्टि हुई है। डिप्टी अब्दुलहक, फ़रहतुल्ला, समीउल्ला आदि पात्रों का सृजन तत्कालीन मुस्लिम राजनीति तथा हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रकट करने के लिए हुआ है। अंग्रेज़ उद्योगपति हैरिसन की कल्पना भी सोद्देश्य है। उसकी अवतारणा से वर्माजी यह दिखाना चाहते हैं कि उस युग में अंग्रेज़ अंग्रेज़ थे, भारतीय भारतीय, एक शासक थे, दूसरे शासित। इसी प्रकार पात्रों की इतनी

बड़ी भीड़ में अधिकांश पात्र युग-अनुरोध से प्रस्तुत किए गए हैं। वे व्यक्ति-चरित्र नहीं हैं, अपितु युग-बोधक चित्र हैं।

पात्रों में युग-बोधकता और वर्गगतता ही अधिकांश पात्रों की चरित्र-सृष्टि की विशेषता है। घसीटा, भीखू, छिनकी निम्न वर्ग के ऐसे पात्र हैं जो अपने मालिक के परिवार की सेवा में ही अपना जीवन बिता देते हैं, परिवार के अंग-से बन जाते हैं। मीर सखावत हुसैन और मीर जाफ़र अली अलग-अलग वर्ग के हैं। रुक्मा नायक जाति की प्रतीक है, मलका एक आदर्श वेश्या है। संतो, कैलासो, जैदेई, यमुना, राधा आदि सब अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इन वर्गगत पात्रों में भी वर्ग-विचित्रता है। फरहतुल्ला और अब्दुलहक में अन्तर है। प्रेमशंकर और नवल एक ही पीढ़ी तथा वर्ग के पात्र हैं, पर उनमें भी वर्ग-विचित्रता स्पष्ट है। राधाकिशन और लक्ष्मीचन्द अलग-अलग किस्म के पूंजीवादी हैं।

इस प्रकार वर्गगत पात्रों की चरित्र-सृष्टि में वर्मा जी को पर्याप्त सफलता मिली है। 'भूले-बिसरे चित्र' एक युग-बोधकारी सामाजिक उपन्यास है। अतः इसकी चरित्र-सृष्टि व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण हो भी नहीं सकती थी। इस प्रकार के युग-बोधक सामाजिक उपन्यासों में अधिकतर वर्गगत पात्रों की ही संभावना होती है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि 'भूले-बिसरे चित्र' के पात्रों का व्यक्तित्व सजीव है ही नहीं। इसमें संदेह नहीं कि अनेक घटना-प्रसंगों पर थोड़ी-सी देर के लिए उपस्थित होने वाले अनेक पात्रों का व्यवितत्व सजीव नहीं हो पाया है, वे युग-चित्र ही बनकर रह गए हैं, पर जो पात्र कुछ देर टिके हैं, कथा-प्रवाह में कुछ दूर तक चले हैं, उनको सजीव व्यक्तित्व प्रदान कराने का वर्माजी ने भरसक प्रयत्न किया है। मुंशी शिवलाल, मुंशी राधेलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवल, छिनकी, जैदेई, यमुना, विद्या, प्रभुदयाल, बेचू मिसिर, मलका (माया शर्मा) आदि पात्रों के व्यक्तित्व पूर्ण सजीव हैं।

पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा उनमें व्यक्तित्व की सजीवता लाने के लिए वर्माजी ने चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष और नाटकीय दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। प्रत्यक्ष शैली से वह अपनी लेखनी द्वारा अपने प्रायः सभी पात्रों की रूप-आकृति (हुलिया) और प्रकृति का वर्णन कर देते हैं। प्रत्यक्ष शैली के इस

वर्णन-चित्रण के साथ ही वह पात्रों के वार्तालाप तथा क्रिया-कलाप और क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा नाटकीय ढंग से पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन करते जाते हैं।

प्रत्यक्ष शैली : वर्माजी की प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण शैली से पात्रों के वाह्य व्यक्तित्व की रूप-रेखा निर्मित हो जाती है, जैसे यह उदाहरण देखिये : "मुंशी शिवलाल मझोले कद के दुबले-पतले आदमी थे। उम्र करीब पचपन साल, मूँछें छोटी-छोटी और चुनी हुई जो चितकबरी दीखती थीं, चेहरे की बनावट सुन्दर कही जा सकती थी अगर वह चेचकरू न होता, रंग गेहुँआ, लेकिन मुँह पर चेचक के धब्बों के कारण सांवला दीखता था।"

वर्माजी ने अधिकतर इस प्रत्यक्ष शैली से पात्रों की रूप-आकृति का परिचय दिया है। पर एकाध स्थान पर यह रूप-आकृति का उल्लेख भी नाटकीय ढंग पर किया है, जैसे मीर जाफ़र अली के बारे में पं० सोमेश्वरदत्त का यह कथन, "यह जो मीर साहेब आ रहे हैं न, इनके वालिद लम्बी दाढ़ी रखते थे, हमेशा अबा पहनते थे, उनके हाथ में हर समय तसबीह रहा करती थी और इन्हें देखिये, कोट और जांघिया पहने हुए, दाढ़ी घुटी हुई, मूँछ इस कदर ऐंठी हुई कि देखने वाला उनके खौफ़ से भाग खड़ा हो। चुरट मुँह में दबा हुआ !"

वर्माजी इस प्रत्यक्ष शैली में आकृति के साथ प्रकृति का भी अपनी लेखनी से उल्लेख कर देते हैं : "पण्डित सोमेश्वरदत्त बरेली में डिप्टी कलेक्टर थे और उनकी अवस्था प्रायः पचास वर्ष की थी। कद्दावर आदमी, रौबीला चेहरा, रंग गेहुआं। उनका संस्कृत का अध्ययन अच्छा था और वह आचार-विचार वाले आदमी थे। लेकिन पण्डित सोमेश्वरदत्त स्पष्टभाषी और खरे आदमी थे—किसी हद तक झगड़ालू।"

वर्माजी अधिकतर प्रत्यक्ष शैली के अपने कथनों और पात्रों के वार्तालाप द्वारा प्रकट हुए चरित्र के स्वरूप की पात्रों के क्रिया-कलापों, कथनों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा पुष्टि कराते चलते हैं। गंगाप्रसाद के चरित्र-चित्रण में प्रत्यक्ष और नाटकीय शैलियों के प्रयोग का यह उदाहरण देखिए :

"गंगाप्रसाद इकहरे बदन का लम्बा-सा युवक था। इलाहाबाद में बी० ए० पास करने के बाद डिप्टी कलेक्टरी में नामज़द कर दिया गया था। उसके डिप्टी कलेक्टर बनने में ज्वालाप्रसाद की खुशामद और लक्ष्मीचन्द के प्रभाव

के साथ गंगाप्रसाद की योग्यता का भी एक बड़ा हाथ था। बी० ए० में उसे सेकण्ड डिवीज़न मिला था, लेकिन खेल-कूद में और विद्यार्थी जीवन की सामाजिक चहल-पहल में वह काफी आगे था। जैदेई के साथ सिविल लाइंस के बंगले में रहने के कारण उसे सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन सुविधाओं के कारण गंगाप्रसाद इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज का सबसे अधिक प्रख्यात खिलाड़ी हो गया था। क्रिकेट और टेनिस, इन दो खेलों में उसकी अखिल भारतीय ख्याति थी।" (भूले-बिसरे चित्र, पृ० २६२-६३)

इस प्रत्यक्ष चारित्रिक उल्लेख के साथ वर्माजी अन्य पात्रों के वार्तालाप से भी गंगाप्रसाद के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। "गंगाप्रसाद के वहाँ से हटते ही मीर जाफर अली ने कहा, "देखा पण्डत सोमेश्वरदत्त साहब, आपने इन बरखुरदार को ! क्या शान ! क्या अकड़ ! पूरे ताल्लुकेदारी ठाठ हैं इनके !"

पण्डित सोमेश्वरदत्त ने कुछ चुप रहकर उत्तर दिया, "बाप-बेटे में फर्क तो काफी है, लेकिन लड़का खानदानी है। यह गंगाप्रसाद दिल और हौसलेवाला है मीर साहब, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा। नये युग का आदमी है, इस नई दुनिया में यह काफी आगे बढ़ेगा।"

"जी, आगे बढ़ेंगे खाक ! इनकी ऐयाशी की शिकायतें अभी से आनी शुरू हो गई हैं। खुदा जाने इसके ये अनाप-शनाप खर्चे कहाँ से और किस तरह पूरे होते हैं, क्योंकि इसकी रिश्वत लेने की शिकायत कतई कहीं से नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ पण्डत जी, चक्कर में पड़ जायेंगे यह बरखुरदार ! आप बुजुर्ग आदमी हैं, इनके वालिद के दोस्त, तो ज़रा इन्हें समझाइएगा !" मीर जाफ़र अली बोले।

किशोरीरमण ज़ोर से हँस पड़े, "जी, जलन होती है आपको मीर साहेब ? आप अपनी तमाम खुराफातों के साथ सही-सलामत रहेंगे, और यह गंगाप्रसाद चक्कर में पड़ जायगा ! क्यों पण्डितजी, आपका क्या ख्याल है ?"

पण्डित सोमेश्वरदत्त ने गंभीरतापूर्वक कहा, "डाक्टर, मीर साहब ठीक कहते हैं। मीर साहब में और गंगाप्रसाद में फ़र्क इतना है कि गंगाप्रसाद साहसी भी है। अंग्रेज़ों में जो इसकी इतनी घुस-पैठ है, वह इसलिए कि वह उन अंग्रेज़ों से बराबरी के साथ मिलता है, बराबरी का बर्ताव करता है। लेकिन डाक्टर, यही उसमें अवगुण भी है। वह आदमी खुशामद नहीं कर सकता,

क्योंकि वह वीर है और वीरता अपराध की जननी है, यह भी सत्य है। हमारे मीर साहेब निहायत बुज़दिल क़िस्म के आदमी हैं। इनका सुपरिण्टेण्डेण्ट इन्हें गालियाँ देता है लेकिन क्या मजाल है कि इनके चेहरे पर शिकन तक आ जाय! मीर साहेब हरदिल-अजीज हैं और गंगाप्रसाद की अकड़ उसकी सबसे बड़ी दुश्मन है। गंगाप्रसाद के साथ मुसीबत यह है कि वह भीतर-बाहर एक है, जबकि मीर साहब के भीतर-बाहर में ज़मीन-आसमान का अंतर है। डाक्टर साहेब, यह दुनिया निहायत दुरंगी है, आदमी दुरंगा होकर ही पनप सकता है।"

उपर्युक्त लम्बा उद्धरण यही दिखाने के लिए प्रस्तुत किया गया है कि किस प्रकार गंगाप्रसाद के चरित्र की विशेषताएँ प्रत्यक्ष शैली और पात्रों के वार्तालाप की नाटकीय शैली से प्रकट हुई हैं। पर इस प्रत्यक्ष शैली से पाठक की संतुष्टि नहीं होती। पाठक पात्र के क्रिया-कलाप द्वारा उसका चरित्र उद्-घाटित होते देखना चाहता है। उपर्युक्त पात्रों के वार्तालाप से चरित्रोद्‌घाटन भी एक तरह प्रत्यक्ष शैली ही है, फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि लेखक ने अपने सीधे कथन की अपेक्षा अपने पात्रों के मुख से गंगाप्रसाद की चारित्रिक विशिष्टता कहला दी है। पर वर्माजी यहीं तक सीमित नहीं रहते। वह इस सब कथन की पुष्टि पात्र के ही क्रिया-कलाप और प्रतिक्रियाओं द्वारा पूर्ण नाटकीय ढंग पर कराते हैं।

गंगाप्रसाद क्रिकेट आदि का खिलाड़ी है: इस कथन की पुष्टि होती है प्रसंगवश लाल रिपुदमनसिंह के इस कथन द्वारा: "तुम्हीं गंगाप्रसाद हो? मुझे धोखा मत देना, सच-सच बतलाना कि तुम ही वह गंगाप्रसाद हो जिसने यू० पी० और बम्बई के क्रिकेट मैच में डबल सेंचरी बनाई थी?"

गंगाप्रसाद के वीर-साहसी और अकड़ वाला तथा अंग्रेज़ों की खुशामद न करके उनसे बराबरी का बर्ताव करने वाला होने का सबूत गंगाप्रसाद के रुक्मा को छुड़ाने तथा मलका को अलीरजा की कैद से निकाल लाने के प्रयत्न एवं अंग्रेज़ हैरिसन को आड़े हाथों लेने के प्रसंगों में मिलता है। उसकी ऐय्याशी और खर्चे करने की प्रवृत्ति भी उसके ही कामों से पुष्ट होती है। उसका अतिशय शराब पीना, मलका वेश्या से सम्बंध आदि इसी के उदाहरण हैं।

मीर जाफ़र अली की खुशामदी और गालियाँ खाने की स्वाभिमानरहित प्रकृति का परिचय हमें क्लीमेंट्स के साथ उसके साक्षात्कार के प्रसंग में अगले

ही पृष्ठों पर मिल जाता है। क्लीमेंट्स उसे गालियाँ देता है। 'सूअर', 'पाजी', 'बदमाश' और 'हरामजादा' कहता है, तो भी मीर जाफर अली बड़ी विनम्रता से कहता है, "हुजूर की बात काट सकूँ, भला इतनी जुरंत मुझ में कहाँ! हुजूर की बात काटना सबसे बड़ी बेअदबी होगी।"

इस प्रकार वर्माजी ने प्रत्यक्ष शैली और नाटकीय शैली के प्रयोग से पात्रों का सजीव चित्रण किया है। पात्रों के सजीव व्यक्तित्व को उभारने के लिए वर्माजी ने पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं को खूब दर्शाया है। मुंशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवल, विद्या, बेचू मिसिर, मलका आदि पात्रों में व्यक्तिगत विशिष्टता भी खूब पाई जाती है। बेचू मिसिर, बिसनलाल आदि दो-चार पात्रों में तो व्यक्ति-वैचित्र्य की ही प्रधानता है। बेचू मिसिर के चरित्र की विचित्रता इन पंक्तियों से स्पष्ट है: "बेचू मिसिर की अवस्था पैंतालीस और पचास वर्ष के बीच में थी और वे सोरांव के सामाजिक जीवन के नेता समझे जाते थे। बेचू मिसिर नायब तहसीलदारी करते थे, पंचायती करते थे और पुरोहिताई करते थे। दो-चार दफ़ा डिप्टी साहेब ने यह इशारा भी किया था कि एक जिम्मेदार और ऊंचे सरकारी मुलाजिम को यह सब शोभा नहीं देता। पर बेचू मिसिर का कहना था कि आदत से मजबूर हैं, नहीं तो अभी तक खुद डिप्टी कलेक्टर न बन गए होते। वैसे बेचू मिसिर निर्भीक, दबंग और एक हद तक क्रोधी और झगड़ालू आदमी थे। लोग-बाग उन्हें बहुत मानते थे, क्योंकि ईमानदार होने के साथ वह सबसे बराबरी से मिलते थे और लोगों के दु:ख-दर्द में शरीक रहते थे।"

वर्गगत पात्रों में व्यक्तिगत विशिष्टता की झलक दिखाने का भी वर्माजी ने पर्याप्त प्रयास किया है। मुंशी शिवलाल पूर्णत: अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं, पर छिनकी से उनका सम्बंध, बर्ताव और अंत में अपना सिर फोड़कर मर जाना आदि बातें उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता की परिचायक हैं। इसी प्रकार राधेलाल जिस नाटकीय ढंग से मुंशी रामसहाय को ज्वाला के नायब-तहसीलदार बनने की खबर सुनाता और अपने खानदान के गर्व का बखान करता है, वह उसके व्यक्तित्व की सजीवता का द्योतक है।

मलका एक विशिष्ट वेश्या है। उसका वेश्या से एक कुल-नारी और सुगृहिणी बनने का परिवर्तित रूप उसके चरित्र की विचित्रता ही है। ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद के चरित्र तो अत्यन्त व्यापक चित्रपट पर

विविधता के साथ प्रकट हुए हैं। किशोरावस्था से लेकर अंतिम वृद्धावस्था तक ज्वालाप्रसाद के चरित्र का बड़ा ही सुन्दर, सजीव विकास किया गया है। गंगाप्रसाद का चरित्र भी एक कर्मठ, साहसी, वीर, सक्रिय, संघर्षशील व्यक्ति का सजीव चरित्र है।

इस प्रकार वर्माजी की वर्गगत चरित्र-सृष्टि में भी व्यक्तिगत विशिष्टता पाई जाती है। ये वर्गगत पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि होते हुए भी अपना-अपना सजीव व्यक्तित्व लिए हुए हैं। उनके व्यक्तित्व की सजीव रेखाएँ उनके बाह्य आकार—रूप-रंग के प्रत्यक्ष चित्रण से भी स्पष्ट हुई हैं और नाटकीय ढंग से उनके क्रिया-कलापों और आचारों-विचारों से भी निर्मित हुई हैं।

वर्माजी की चरित्र-सृष्टि सर्वथा यथार्थवादी है। उन्होंने आदर्शवादी कला को नहीं अपनाया। सब पात्र इसी धरती के यथार्थ मानव हैं, न तो उन्होंने किसी देवलोक के देवता की कल्पना की है, न दानव-लोक के राक्षस की। सभी पात्र अपनी दुर्बलताओं और सबलताओं से युक्त इसी दुनिया के हाड-मांस के पुतले सजीव मानव हैं। उनमें मानवीय स्पंदन है।

अधिकांश पात्रों में मानवीय गुण और दुर्गुण दोनों हैं। सर्वथा आदर्श—देवलोक का देवता—एक भी पात्र नहीं है। इस दृष्टि से 'भूले-बिसरे चित्र' के पात्रों को मुख्य तीन कोटियों में रखा जा सकता है: कुछ पात्र ऐसे हैं जिनमें चारित्रिक दृढ़ता और गुण अधिक हैं, दुर्गुण बहुत कम हैं। ज्वालाप्रसाद, ज्ञानप्रकाश, नवलकिशोर, विद्या, प्रेमशंकर, जैदेई, मीर सखावत हुसैन, सत्यव्रत, लाल रिपुदमन आदि पात्र ऐसे ही आदर्शात्मक पात्र हैं। इनके चरित्रों में सबलता अधिक है, दुर्बलता कम है। इनमें भी ऐसा कोई पात्र नहीं है, जिसमें मानवीय बुराई का लेश न हो। साथ ही इनके आदर्श भी इसी धरती के आदर्श हैं, किसी प्रकार के काल्पनिक आदर्श का समावेश किसी में नहीं किया गया है।

कुछ पात्र अवश्य ऐसे हैं जिनके दुर्गुणों का ही चित्रण हुआ है, उनके गुणों या मानवीय सबलता का कोई प्रसंग नहीं प्रकट हुआ है। मानवीय यथार्थ चरित्र-सृष्टि का तकाजा यही था कि इन पात्रों के मानवीय पक्ष का भी कुछ-न-कुछ उद्घाटन होता। फिर भी ऐसा नहीं है कि ऐसे पात्र इस धरती से परे किसी पाताल-लोक के हों। परिस्थितियाँ और मूल प्रवृत्तियाँ ही इन पात्रों के

एकांगी चित्रण का कारण हैं। जैसे संतो के स्वच्छन्द और विलास-वासना की पुतली बनने में गंगाप्रसाद के आकर्षण और पारिवारिक परिस्थिति का हाथ है। मेजर वाट्स, डिप्टी अब्दुलहक़ आदि के चरित्रों का एक पक्ष ही उद्घाटित हुआ है क्योंकि उनके जीवन के अन्य पक्ष कथा-प्रसंगों में नहीं आए हैं। कैलासो का भी एक ही रूप सामने आया है। इसी प्रकार रानी हेमवती, राजा सत्यजित प्रसन्नसिंह, विन्देश्वरी, सिद्धेश्वरी, अलीरज़ा, किसनू, श्यामू, मीर जाफ़र अली ऐसे ही पात्र हैं जिनके चरित्र-चित्र की स्याही ज्यादा काली हो गई है, कुछ सफेदी की लकीरें भी प्रकट की जातीं, तो ज्यादा अच्छा रहता, क्योंकि एकरंगा काली तस्वीरें मुसव्वर की कला का ही दोष प्रतीत होती हैं। डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज बिन्देश्वरी का सर्वथा काला रूप कुछ अस्वाभाविक-सा ही लगता है।

'भूले-बिसरे चित्र' में अधिकांश पात्र तीसरी कोटि के ऐसे ही हैं जिनमें मानवीय गुण और दुर्गुण दोनों ही हैं। ये यथार्थ पात्र अपने 'कु' और 'सु' के द्वन्द्वों में झूमते रहते हैं। किन्हीं प्रसंगों पर इनकी दुर्बलता इनकी मानवता पर हावी हो जाती है और कहीं मानवता हावी रहती है। गंगाप्रसाद, प्रभुदयाल, बरजोरसिंह, गजराजसिंह, बिसनलाल, लक्ष्मीचन्द, छिनकी, भीखू, मुंशी शिवलाल, उषा, माया, बेचू मिसिर, फरहतुल्ला, कामतानाथ, पण्डित सोमेश्वरदत्त, राधा, रुक्मिणी, यमुना, राधेलाल की पत्नी आदि ऐसे ही यथार्थ पात्र हैं। मुंशी शिवलाल की खुशामदी, स्वार्थी, धन-लोभी और छल-कपटमयी प्रकृति उनके चरित्र की दुर्बलता है। पर उनके हृदय में दया, ममता आदि गुण भी विद्यमान हैं। मरते हुए जिस प्रकार मुंशी शिवलाल अपने पुत्र ज्वालाप्रसाद से क्षमा चाहता है, छिनकी के प्रति अपना अपराध स्वीकार करता है और उसे ज्वालाप्रसाद की देखभाल में सौंपता है, उससे उसके हृदय की कोमलता और उच्चता का अच्छा परिचय मिलता है। इसी प्रकार सब पात्रों में मानवीय स्पंदन पाया जाता है। सब पात्र अपनी जीवन-परिस्थितियों और अपने संस्कारों के अनुरूप आचरण करते हैं। परिस्थितियाँ उन्हें बनाती हैं और वे परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति भी कई स्थानों पर प्रकट हुई है। पर वर्माजी की चरित्र-सृष्टि सरल होने के कारण 'भूले-बिसरे चित्र' में पात्रों की मनोवैज्ञानिक जटिलता नहीं है। जटिल प्रकृति का पात्र संभवतः कोई नहीं है। संतो के चरित्र-चित्रण में कुछ मनोवैज्ञानिक जटिलता अवश्य दिखाई देती है।

उसकी अतृप्त काम-वासना एक बार जो अपना बाँध तोड़ती है, तो फिर बाढ़ की तरह सीमा नहीं मानती। पर वह भी अपनी अन्तर्प्रकृति का विश्लेषण करती हुई गंगाप्रसाद से कहती है, "लेकिन मैं क्या करूँ? मैं अपने से ही विवश हूँ। मैं भी कभी-कभी सोचने लगती हूँ कि मैं गलत कर रही हूँ, लेकिन मेरी गलती दिखाने वाला भी तो कोई नहीं है। सोचो तो, कौन-सा सहारा है मेरे पास, जिसे पकड़कर मैं बचूँ? जिस सहारे को मैं पकड़ती हूँ, वही मुझे नीचे घसीटता है।"

जब गंगाप्रसाद, जो स्वयं काम-वासना का पुतला है और जिसकी प्रेरणा से ही संतो की मर्यादा का बाँध टूटा था, संतो को शिक्षा देता हुआ कहता है कि इतना गिरना और अपने को बेचना उचित नहीं, तो संतो तड़प उठती है और अपने हृदय की खीझ, क्षोभ, शोक, ग्लानि इन शब्दों में व्यक्त करती है, "हाँ, मैं अपने को बेच रही हूँ। मैं वेश्या हूँ, यही कहना चाहते हो तुम! लेकिन कौन नहीं बेच रहा है अपने को! कुछ अपना शरीर बेचते हैं, कुछ अपनी आत्मा बेचते हैं। भोग-विलास में अपने को खो देना, पशु बन जाना, यह आत्मा को शैतान के हाथ में बेच देना है। राजा सत्यजित प्रसन्न, रानी हेमवती, कैलासो और तुम···तुम सब-के-सब अपनी आत्मा को बेच चुके हो। मैं कम-से-कम इतना नहीं गिरी हूँ। एक बार मुझ से अपने को शैतान के हाथ में सौंपने की गलती हो गई थी और उस गलती की प्रेरणा दी थी मुझे तुमने! और उस एक गलती का परिणाम तो देख रहे हो तुम! लेकिन मैंने अपनी गलती सुधार ली। मेरे पास मान है, मर्यादा है, ऐश्वर्य है, वैभव है। मैं रानी हूँ, मेरे पास लाखों रुपये हैं और तुम अपनी तरफ तो देखो, तुम क्या हो? तुम जलते हो, कुढ़ते हो, तुम्हारे अन्दर घृणा है, तुम्हारे अन्दर हिंसा है।" और संतो यह कहते-कहते फूट पड़ी, उसकी आँखों से आँसू झरने लगे, उसकी हिचकियाँ बंध गईं।"

संतो के चरित्र का कैसा मनोवैज्ञानिक उद्घाटन हुआ है!

ज्वालाप्रसाद के चरित्र की एक मनोवैज्ञानिक स्थिति का यह चित्रण देखिए। जब ज्वालाप्रसाद अशर्फियों की थैली लेकर और जैदेई से रंग-रेली मना कर "जैदेई के कमरे से निकले उस समय उन्होंने देखा कि संध्या खत्म हो रही है और चांद निकल रहा है।···फाटक के राधाकिशन के मन्दिर के पट खुल गए थे और आरती हो रही थी। ज्वालाप्रसाद को भगवान् के दर्शन करने की

हिम्मत नहीं हुई। उनको ऐसा लगा कि वे नौकर उन पर हंस रहे हों, व्यंग्य कर रहे हों। उनके हाथ में अशर्फियों की थैली थी और उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। एक जलन-सी भरी हुई थी उनके मन में, उनकी आँखों में, उनके शरीर में। जल्दी-जल्दी वे अपने इक्के में बैठे और घाटमपुर के लिए रवाना हो गए।

"दूर से हर्ष-उल्लास के पागलपन की आवाजें उनके कानों में पड़ रही थीं, लेकिन उन्हें ऐसा लग रहा था कि दुनिया चीख रही है। एक अजीब तरह का तनाव था उनके मुख पर! इक्के वाले को ज्वालाप्रसाद की यह हालत देखकर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "मालिक, का कुछ तबियत खराब आय?"

"नहीं तो! क्या मेरी तबियत खराब दिखती है तुमको?'"...ज्वालाप्रसाद को ऐसा लगा मानो वह इक्के वाला भी उन पर व्यंग्य कर रहा है। गाँव की पगडंडियाँ होली मनाने वालों की भीड़ से भरी थीं, और यह भीड़ फाग गा रही थी, गालियाँ बक रही थी। गंदे-गंदे स्वांग निकल रहे थे, चारों ओर एक भयानक नैतिक अराजकता दिख रही थी उन्हें, मानो दुनिया का असंयम बाँध तोड़कर उमड़ पड़ा हो।

"और इस भीड़ को, इस असंयम को देखकर जैसे उनके मन को एक प्रकार की सांत्वना मिल रही थी। उन्हें यह स्पष्ट दिख रहा था कि जीवन विशुद्ध संयम और साधना ही नहीं है,...।

"...ये सौ अशर्फियाँ उन्हें जैदेई ने दी थीं, उस जैदेई ने जिसके आलिंगन-पाश में उन्होंने अपने को कुछ क्षण पहले पूरी तरह खो दिया था।

"इक्के वाला इक्का हाँक रहा था और गा रहा था, 'फागुन के दिन चार बावले कर ले जी-भर मौज!' और ज्वालाप्रसाद को ऐसा लग रहा था कि वह इक्के वाला अब भी उन पर व्यंग्य करने से बाज नहीं आ रहा है। उन्होंने झल्लाकर कहा, "बन्द करो यह गाना, मुझे नहीं अच्छा लगता।"

"...लेकिन अशर्फियों की वह थैली उनके हाथ में थी, और वे अशर्फियाँ खनखन की आवाज के साथ हँस रही थीं, हँसे जा रही थीं।"

ज्वालाप्रसाद की मनःस्थिति का कैसा सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण है! पात्रों की मनःस्थितियों के ऐसे मनोवैज्ञानिक चित्र यद्यपि कम प्रकट हुए हैं तथापि जो प्रस्तुत किये गए हैं उनसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि वर्माजी

मनोविज्ञान के भी कच्चे नहीं हैं। उन्होंने पात्रों के चरित्र-चित्रण में चाहे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का सहारा नहीं लिया है, मनोवैज्ञानिक उपन्यास रचना उनका उद्देश्य भी नहीं था, पर उनके पात्रों के चरित्र-चित्रण में पर्याप्त मनोवैज्ञानिक संगति दिखाई देती है। प्रमुख पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर प्रकाशन हुआ है।

'भूले-बिसरे चित्र' के अधिकांश पात्र विकासशील हैं, परिवर्तनशील हैं। मीर सखावत हुसैन, ज्ञानप्रकाश, छिनकी, जैदेई, सत्यव्रत, भीखू, बरजोरसिंह, गजराजसिंह, बिन्देश्वरी आदि कुछ पात्र अपरिवर्तनशील और निश्चित प्रकृति के भी हैं, पर इनका चरित्र भी उनकी परिस्थितियों और आधारभूत प्रवृत्तियों के अनुसार गतिशील दिखाया गया है। जैसे मीर सखावत हुसैन की फकीराना तबियत और गंभीर व्यक्तित्व के बारे में बताया गया है कि "पन्द्रह साल पहले जब उनका इकलौता लड़का मरा था, उनकी तबियत दुनिया से हट गई थी, और इधर जब पाँच साल पहले उनकी पत्नी मरी तो उन्होंने एक तरह से फकीरी ले ली।" इस दृष्टि से ये स्थिर प्रकृति के दिखाई देने वाले पात्र भी गतिशील और परिवर्तनशील ही कहे जा सकते हैं।

वर्माजी का जीवन-दर्शन भी यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आधारभूत प्रवृत्ति के अनुसार आचरण करता हुआ भी परिस्थितियों के प्रभाव से बच नहीं सकता। लाल रिपुदमनसिंह इस सम्बन्ध में गंगाप्रसाद से जो-कुछ कहता है, वह एक तरह से लेखक का ही मन्तव्य है। जब गंगाप्रसाद इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करता है कि एक निरीह, अबोध, सीधी-सादी संतो कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई, तो लाल रिपुदमनसिंह कहता है, "इसमें आश्चर्य की क्या बात है? परिस्थिति और आधारभूत व्यक्तित्व! बाबू गंगाप्रसाद, आधारभूत व्यक्तित्व में देवता होता है, दानव होता है। नेकी और बदी, क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में हर एक व्यक्तित्व के भाग हैं। अन्तर इतना है कि यह आधारभूत व्यक्तित्व परिस्थिति के अनुसार अपने को प्रकट करता है।......व्यक्ति की आधारभूत प्रवृत्तियाँ विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही; उभारने के लिए यदि तुम साधन न बने होते तो कोई दूसरा साधन बन गया होता। आदमी कुछ नहीं करता, जो कुछ कराती हैं वे परिस्थितियाँ ही कराती हैं।"

इस प्रकार नियति और परिस्थितियों पर विश्वास रखने वाले वर्माजी के प्रायः सभी पात्र परिस्थितियों के अनुसार गतिशील और परिवर्तनशील हैं।

गंगाप्रसाद, संतो, मलका, राधा प्रेमशंकर, फरहतुल्ला, लाला रिपुदमनसिंह आदि पात्रों में परिवर्तनशीलता बहुत ही स्पष्ट है। ये पात्र परिस्थितियों के अनुसार बदलते और अपना चारित्रिक विकास करते दिखाये गये हैं। ज्वालाप्रसाद, भीखू, जैदेई, यमुना, विद्या, नवल, उषा, मुंशी शिवलाला, लक्ष्मीचन्द, प्रभुदयाल, बिसनलाल, किसनलाल, बेचू मिसिर, रुक्मिणी आदि पात्र गतिशील और विकासशील हैं। इनके चरित्रों का विकास भी इनकी अवस्था, आधारभूत प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के अनुसार हुआ है। ज्वालाप्रसाद की आरम्भिक युवावस्था से अन्तिम वृद्धावस्था तक चरित्र की जो विकास-यात्रा हुई है, वह सर्वत्र सर्वथा गतिशील रही है। यही बात अन्य पात्रों के बारे में कही जा सकती है।

बाबू बिन्देश्वरीप्रसाद-जैसे एक-दो पात्र ही ऐसे दिखाई देते हैं जिनका चरित्र सर्वथा स्थिर-सा रहा है और ऐसे ही पात्रों के चरित्र-चित्रण में वर्मा जी को असफलता मिली है।

वर्माजी की चरित्र-चित्रण कला की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ 'भूले-बिसरे चित्र' की चरित्र-सृष्टि में कुछ न्यूनताओं का उल्लेख करना भी आवश्यक है। पहली बात तो यही है कि इस उपन्यास में पात्रों की बेहद भीड़ है जिसके कारण कई पात्रों का चरित्र-विकास नहीं हो सका, कई पात्रों का चरित्र सर्वथा एकांगी ही रह गया है। कई ऐसे भी हैं जो नाम-मात्र को आये हैं और कुछ की अवतारणा केवल विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु होने से उनके चरित्र की रेखाएँ अधूरी रह गई हैं। ग्रिफिथ्स-जैसे पात्र ऐसे ही सोद्देश्य पात्र हैं। डिप्टी अब्दुलहक का चरित्र सर्वथा एकांगी है।

डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज बिन्देश्वरी बाबू जैसे एकाध पात्रों का सर्वथा काला चित्र भी अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि बिन्देश्वरी-प्रसाद को अर्थ-पिशाच दिखाने की नोक-झोंक में वर्माजी ने उसके चरित्र में कुछ कृत्रिमता ला दी है। जब शादी के अवसर पर नवल बिन्देश्वरी बाबू से विद्या की पढ़ाई जारी रखने की अनुमति चाहता है तो बिन्देश्वरी का यह कथन उसके चरित्र की अस्वाभाविकता ही प्रकट करता है। वह कहता है, "तो फिर बोर्डिंग-हाउस का खर्चा तुम लोगों को बरदाश्त करना पड़ेगा। क्यों सिद्धेश्वरी, मैं गलत तो नहीं कहता ?" लगता है, जैसे बिन्देश्वरी नहीं, लेखक बोल रहा

है। इतने पढ़े-लिखे, इतने ऊँचे पदाधिकारी की इतनी नीचता, उसके चरित्र की इतनी काली तस्वीर कुछ जंचती नहीं।

इसी प्रकार गंगाप्रसाद के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक असंगति वहाँ दिखाई देती है जहाँ वह अलीरज़ा की बेतुकी सलाह को मानकर मलका को बेगम अलीरज़ा बनने को तैयार करना चाहता है। बुद्धि यह मानने से जवाब दे देती है कि गंगाप्रसाद जैसा विचारवान् और बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बेहूदा बात को कैसे मान लेता है!

कई पात्रों के चरित्र का उद्घाटन प्रत्यक्ष शैली में ही अधिक हुआ है। लेखक अपनी ओर से पात्रों की रिपोर्ट-भर देता है, उनके क्रिया-कलापों आदि नाटकीय ढंग से चरित्र का बिम्ब प्रस्तुत नहीं कर पाया है। बेचू मिसिर का चरित्र-चित्रण इसका विशेष उदाहरण है। वर्माजी को पात्रों की रिपोर्ट देने की यह आदत पुरानी है और भद्दी है।

इस प्रकार की कुछ कमियों के रहते भी 'भूले-बिसरे चित्र' की चरित्र-सृष्टि पर्याप्त सफल है। मुंशी शिवलाल, छिनकी, ज्वालाप्रसाद, जैदेई, गंगाप्रसाद, मलका, संतो, भीखू, नवल, ज्ञानप्रकाश, विद्या आदि पात्र वर्माजी की अमर चरित्र-सृष्टि हैं। वर्माजी के पात्रों में उनकी जीवन-दृष्टि के अनुसार नियति और भाग्य के प्रति आग्रह होने पर भी उपन्यास में ज्ञानप्रकाश, नवल, विद्या, मलका, सत्यव्रत, ज्वालाप्रसाद आदि कई पात्रों का चरित्र गरिमामय है, प्रेरणाप्रद है। कुल मिलाकर वर्माजी की चरित्र-सृष्टि पर्याप्त सफल है। उनके पात्र मन-वचन और कर्म से अपने युग और वर्ग के प्रतिनिधि होते हुए भी अपने निजी व्यक्तित्व से ओत-प्रोत हैं।

नायक-विचार : बहु-नायक रचना

'भूले-बिसरे चित्र' के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि उसका नायक हम किसे मानें ? क्या यह नायकविहीन रचना है ? वस्तुतः 'भूले-बिसरे चित्र' न तो उस अर्थ में नायकरहित रचना है, जैसी थैकरे की 'वेनिटी फेयर' (Vanity-Fair) या हिन्दी का फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' उपन्यास है, क्योंकि 'भूले-बिसरे चित्र' में ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद कम-से-कम दो पात्र ऐसे अवश्य हैं जो कथा के प्रायः समस्त सूत्रों का संचालन करते हैं। आरम्भिक पच्चीस पृष्ठों का संचालन मुंशी शिवलाल करते हैं और अन्तिम पाँचवें खण्ड के डेढ़ सौ पृष्ठों में नवलकिशोर नायक है। वस्तुतः उपन्यास के कुल पाँच खण्डों में से प्रथम दो खण्डों के ढाई सौ से ऊपर पृष्ठों की कथा में ज्वालाप्रसाद नायक है और अगले दो खण्डों के लगभग ३२५ पृष्ठों की कथा का मुख्य पात्र गंगाप्रसाद है। अन्तिम खण्ड में लेखक ने नई चौथी पीढ़ी के नवलकिशोर को नायक बनाया है।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' एक-नायकीय रचना न होकर एकाधिक नायकीय है। उसे नायकरहित रचना नहीं कहा जा सकता। वर्माजी ने इस उपन्यास में मध्यवर्ग के परिवार की चार पीढ़ियों का चित्रण किया है। अतः किसी एक ही पात्र के आद्यन्त नायक बने रहने की संभावना नहीं थी, फिर भी यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वर्माजी ने ज्वालाप्रसाद को आरम्भ से अन्त तक रंगमंच पर उपस्थित रखा है और उसका वृत्त न केवल आरम्भिक दो खण्डों में है जहाँकि वह स्पष्टतः नायक है, अपितु गंगाप्रसाद की कथा के बीच-बीच में भी उससे सम्बन्धित कई प्रसंग प्रकट हुए हैं और अन्तिम खण्ड में भी यद्यपि गंगाप्रसाद की मृत्यु हो जाती है और लेखक ने नवलकिशोर को प्रमुखता दी है, पर ज्वालाप्रसाद सर्वत्र विद्यमान है। यहाँ तक कि उपन्यास का अन्त भी लेखक ने ज्वालाप्रसाद की इस अनुभूति से किया है : "हाँ भीखू, कुछ

समझ में नहीं आ रहा। आज पचास साल में क्या-से-क्या हो गया! सब कुछ बदल गया, एकदम बदल गया! तुम बदल गए भीखू, मैं बदल गया! न जाने कितने नये लोग आए, न जाने कितने पुराने लोग चले गए!"......

'दो बूढ़े, जिन्होंने युग देखा था, ज़िन्दगी के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे। और दूर हज़ारों, लाखों-करोड़ों आदमी जीवन और मौत से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे।'

इस प्रकार यद्यपि तीसरे और चौथे खण्ड में ज्वालाप्रसाद की प्रधानता नहीं है, गंगाप्रसाद प्रमुख है और पाँचवें में नवलकिशोर के चित्रण पर लेखक का अधिक ध्यान है तथापि कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यदि किसी एक पात्र की प्रमुखता खोजनी हो, तो वह ज्वालाप्रसाद की ही कही जा सकती है। उसका प्रभाव और सम्मानित स्थान उपन्यास में सर्वत्र है। उसका चरित्र अपने पिता मुंशी शिवलाल के चरित्र को भी धूमिल बना देता है और उसका बेटा गंगाप्रसाद तो अपने पिता का आदर ही नहीं करता, उनसे डरता भी है। जब ज्वालाप्रसाद इलाहाबाद छोड़कर गंगाप्रसाद के पास जौनपुर रहने लगते हैं तो गंगाप्रसाद को अपनी चारित्रिक उच्छृंखलता छोड़ देनी पड़ती है। अन्तिम खण्ड में नवलकिशोर भी अपने बाबा का सम्मान करता है। नवल की बहन विद्या की शादी के लिए दहेज़ जुटाने की सर्वाधिक चिन्ता ज्वालाप्रसाद को ही है। ज्वालाप्रसाद ही इस परिवार के मुखिया हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के सिवा सब बातों में नवल अपने बाबा ज्वालाप्रसाद की ही सलाह लेता है। इस प्रकार ज्वालाप्रसाद इस उपन्यास का सर्वप्रमुख पात्र है।

पर इतने पर भी समग्रतः ज्वालाप्रसाद को 'भूले-बिसरे चित्र' का नायक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बीच के दो खण्डों में गंगाप्रसाद की ऐसी प्रधानता है कि बहुत देर तक पाठक ज्वालाप्रसाद को भूले रहता है। बीच के दो खण्डों का नेतृत्व ज्वालाप्रसाद के हाथ में बिल्कुल नहीं रहता। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' एक नायकीय रचना नहीं है। इसमें एकाधिक अर्थात् कम-से-कम तीन नायक हैं—ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवलकिशोर।

एकाधिक नायकीय और नायकविहीन उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति वर्माजी में आरम्भ से पाई जाती है। उनके 'पतन' नामक प्रथम उपन्यास में ही तीन पृथक्-पृथक् कहानियों से सम्बन्धित तीन अलग-अलग पात्रों की प्रधानता है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में तो स्पष्टतः 'भूले-बिसरे चित्र' की तरह चार पात्रों की प्रधानता है। रामनाथ तिवारी 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में छाये हुए अवश्य हैं और इस दृष्टि से कोई उन्हें नायक कहने की भले ही भूल कर बैठे, पर वास्तविकता यह है कि उनके तीनों बेटों—दयानाथ, उमानाथ और प्रभानाथ—के हाथों ही उनकी अपनी-अपनी कथा का सूत्र रहता है। अतः 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' भी 'भूले-बिसरे चित्र' की तरह एकाधिक नायकीय उपन्यास है।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' या 'भूले-बिसरे चित्र' को नायक-विहीन उपन्यास कहना युक्तियुक्त नहीं है। नायकविहीन उपन्यास उसी रचना को कहा जा सकता है, जिसमें किसी पात्र की प्रधानता न हो, जिसमें कथा का केन्द्र-बिन्दु कोई पात्र न होकर समाज या परिस्थितियाँ ही केन्द्र-बिन्दु हों। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला-आँचल', शिवप्रसाद रुद्र का 'बहती गंगा', कृशनचन्दर का 'एक गधे की आत्मकथा' आदि हिन्दी के कुछ नायक-विहीन उपन्यास गत दस-पन्द्रह वर्षों में रचे गये हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' इस कोटि का नायक-विहीन उपन्यास नहीं है।

एकाधिक नायकीय उपन्यास-रचना सर्वथा युगानुरूप है। आज का युग न राजतंत्र का युग है, न एकाधिनायकत्व (Dictatorship) का। आज के प्रजातंत्र-युग में सामूहिक चिंतन और सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective responsibility) का महत्व है। आज किसी एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा (Personality cult) के स्थान पर व्यक्ति-समूह का महत्त्व माना जाता है। नायकत्व का अधिकारी कोई एक व्यक्ति नहीं रहा है। स्टालिन, ख्रुश्चेव, नेहरू, सुकर्ण आदि विश्व के महान् नेताओं का पतन इसी तथ्य की पुष्टि करता है। साहित्य में भी धीरोदात्त नायक की परम्परागत अवतारणा बहुत पहले से बन्द हो चुकी है। अतः आज के नायक-समूह के युग में उपन्यासों में नायक-समूह की सृष्टि सर्वथा युगानुरूप है।

आज के यथार्थवादी युग में 'महामानव' का स्थान 'लघुमानव' ने ले लिया है। धीरोदात्त आदर्शवादी नायकों का ज़माना गया। इसी कारण हमारे

'गोदान'-जैसे उपन्यासों में 'लघु मानव' को नायक का दर्जा प्राप्त हुआ। होरी-जैसे किसान को केन्द्रबिन्दु बनाकर जीवन का महाकाव्य रचना बहुत ही टेढ़ी खीर है। फिर आज के परिवर्तित युग में होरी भी बहुत कम रह गए हैं। ऐसे 'लघुमानव' को बहुत दूर तक वृहत् रचना का नायक बनाना अत्यन्त कठिन कार्य है। वैसे भी आज नायकत्व बिखर गया है, एक व्यक्ति के हाथ की बात नहीं रही है। प्रेमचन्द भी यदि आज 'गोदान' लिखते तो गोबर का नायकत्व दिखाये बिना न रहते। अतः आज के उपन्यासों में एकाधिक नायकत्व की परिकल्पना सर्वथा उचित है।

फिर 'भूले-बिसरे चित्र' की तो एक और बात स्पष्ट है। इसमें सन् १८८५ से सन् १९३० ई० तक के लगभग पचास वर्षों के भारतीय जीवन को एक मध्यवर्गीय परिवार की बदलती हुई चार पीढ़ियों के माध्यम से प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य है। अतः लेखक के उद्देश्य की पूर्ति भी बिना एकाधिक नायकों की योजना के संभव नहीं थी। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' में एकाधिक नायकों की सृष्टि लेखक के उद्देश्य-अनुसार भी बहुत समीचीन है।

कुछ लोगों का विचार है कि 'भूले-बिसरे चित्र' की बहुनायक योजना से कथा में बंध की शिथिलता आ गई है। पर हम समझते हैं कि 'भूले-बिसरे चित्र'-जैसे सम्पूर्ण युग-बोध कराने वाले उपन्यासों में सर्वथा एकसूत्र में सुगठित कथा की अपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर 'भूले-बिसरे चित्र' में तो कथा एक पारिवारिक सम्बन्ध-सूत्र में भी बंधी हुई है। अतः बहुनायकत्व के कारण कथा-शिथिलता का आरोप लगाना भी अनुचित है।

'भूले-बिसरे चित्र' एक महाकाव्य-रूप उपन्यास (एपिक नावल) है। कथा-सामग्री की विपुलता, सम्पूर्ण युग-बोध की विशालता, चरित्र-चित्रण की गरिमा आदि विशेषताएँ इसे गद्यात्मक महाकाव्य (Epic in Prose) सिद्ध करती हैं। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में एक व्यक्ति-नायक के स्थान पर समूचे रघु-वंश को नायक बनाया गया है, उसी प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में मुंशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद आदि का एक कायस्थ वंश ही नायक बना हुआ प्रतीत होता है। किन्तु यह कथन भी इस बात को सिद्ध नहीं कर सकता कि 'भूले-बिसरे चित्र' नायकविहीन रचना है। ठीक है, इसमें मुंशी शिवलाल के कायस्थ परिवार की चार पीढ़ियों का चित्रण हुआ है, पर इन पीढ़ियों और परिवार के मुखिया तो स्पष्टतः तीन या चार व्यक्ति ही

हैं जो समूची कथा और परिस्थितियों का नेतृत्व करते हैं। अतः औपचारिक रूप से भले ही यह कह दिया जाय कि 'भूले-बिसरे चित्र' में एक वंश नायक है, पर वास्तविकता यही है कि उसमें एक वंश के ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवलकिशोर—ये तीन प्रमुख नायक हैं।

युग-चित्रण की व्यापकता को देखते हुए कोई यह भी कह सकता है कि 'भूले-बिसरे चित्र' वस्तुतः एक कायस्थ वंश की ही कहानी नहीं है, अपितु सन् १८८५ से सन् १९३० ई० तक के समूचे भारतीय समाज और जीवन की कहानी है। अतः इसका नायक किसी एक व्यक्ति या दो-तीन व्यक्तियों को न मानकर समूचे भारतीय समाज को ही नायक मानना चाहिये और इस प्रकार व्यक्ति-बद्धता के अभाव में 'भूले-बिसरे चित्र' एक नायकविहीन रचना है।

इसमें संदेह नहीं कि इस उपन्यास में युगीन परिस्थितियों, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश पड़ा है और लेखक का उद्देश्य भी केवल ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद आदि किसी एक या दो-चार पात्रों का चित्रण करना नहीं है, अपितु युग-बोध कराना है, पर सवाल यह है कि क्या उपन्यास में समस्त कथा, घटनाओं, परिस्थितियों का केन्द्रबिन्दु कोई व्यक्ति नहीं है? यों तो 'गोदान' में भी युगधर्म का व्यापक और सजीव चित्रण हुआ है, तो क्या इसी आधार पर उसे भी नायकविहीन रचना कहा जा सकता है? स्पष्ट है कि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उपन्यास का समस्त कथा-व्यापार, सारी परिस्थितियाँ होरी के इर्दगिर्द रहती हैं, वह केन्द्रबिन्दु है, अतः नायक है। इसी प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में भी उपन्यास के सभी प्रसंगों और घटनाओं के केन्द्रबिन्दु ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवलकिशोर बने हुए हैं। इन व्यक्ति-पात्रों की प्रधानता के कारण इनका नायकत्व स्पष्ट सिद्ध होता है। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' को नायकविहीन उपन्यास कहना युक्तियुक्त नहीं है, वह वस्तुतः बहुनायक-उपन्यास है।

★

युग-बोध : युगधर्म की सजीवता

(देश-काल-वातावरण और युग-समस्याएँ)

'भूले-बिसरे चित्र' एक युग-बोधकारी उपन्यास है। इसमें युग-धर्म की पूर्ण सजीवता पाई जाती है। सन् १८८५ ई० से सन् १९३० ई० तक के भारतीय जीवन की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्य सांस्कृतिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों की इसमें सजीव झाँकियाँ पाई जाती हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि हम उसी युग में विचरण कर रहे हैं। इस दृष्टि से 'भूले-बिसरे चित्र' का ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है। आधुनिक युग-जीवन से सम्बन्धित और वर्तमानकाल से निकटस्थ होने के कारण भले ही 'भूले-बिसरे चित्र' को ऐतिहासिक उपन्यास अभी न कहा जाय, पर ऐतिहासिक सत्यों की जो उपलब्धि इस रचना में होती है, वह इतिहास की पुस्तकों में भी शायद ढूँढ़े से न मिले।

श्री भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास की रचना में मुख्य उद्देश्य भी युग-बोध कराकर सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के प्रति पाठक की भावनात्मक संवेदनाएँ जगाना ही है। इसीसे 'भूले-बिसरे चित्र' में युग-धर्म अर्थात् देशकाल-वातावरण की सजीवता और ऐतिहासिक सत्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। आरम्भ से अन्त तक युग और काल की दीर्घ तथा विशाल चित्रपटी पर अतीत के 'भूले-बिसरे चित्रों' को सिने-रीलों की तरह प्रस्तुत किया गया है। अगले पृष्ठों में हम इन समस्त परिस्थितियों और सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं का सोदाहरण उल्लेख करेंगे।

सामाजिक समस्याएँ और परिस्थितियाँ : 'भूले-बिसरे चित्र' में युगीन अनेक सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों की यथार्थ झाँकियाँ इसमें पाई जाती

हैं। भारतीय समाज की चिरपुरातन सम्मिलित परिवार-परम्परा के विघटन का इस रचना में बड़ा व्यापक एवं सूक्ष्म चित्रण हुआ है। किस प्रकार सम्मिलित परिवार टूट रहे थे, किस प्रकार इस प्रथा में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो गए थे : एक की कमाई पर परिवार के अनेक लोगों का मुफ़्तखोरी करना, सास का बहुओं पर आतंक होना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव, घुटन, द्वेष, ईर्ष्या, कलह आदि की स्थितियाँ सब सम्मिलित परिवार-प्रथा के विघटन में योग दे रही थीं। ब्रिटिश नौकरशाही और मध्यवर्ग के उदय के साथ स्थान की इकाई खण्डित हो गई थी, परिवार एक ही स्थान पर संयुक्त नहीं रह सकता था। इससे विघटन अवश्यम्भावी था। सम्मिलित परिवार की समस्या और उसके विघटन की अभिव्यक्ति को हमने आगे विस्तारपूर्वक दर्शाया है।

मुंशी शिवलाल के समय विवाह तै करने की प्रथा भी विचित्र थी। प्रायः नाऊ विवाह तै कर आते थे। प्रथा के अनुसार मुंशी रामसहाय की बहन (ज्वालाप्रसाद की माँ) का मुंशी शिवलाल के साथ विवाह उनके नाऊ ने तै कराया था। "मुंशी शिवलाल के पिता मुंशी बनवारीलाल रईसी ढंग से रहते थे, और नाऊ उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ था। बरिक्षा की रस्म हो जाने के दो महीने बाद मुंशी हरसहाय (ज्वाला के नाना) को पता चला कि लड़की का विवाह पटवारियों के खानदान में तै हो गया है।" बरिक्षा को प्रायः बन्धन माना जाता था। इसीसे लोगों के कहने पर भी मुंशी हरसहाय ने विवाह नहीं तोड़ा। बरिक्षा के बन्धन को अगली पीढ़ी के विन्देश्वरी बाबू भी मानते हैं।

विवाह अधिकतर छोटी उम्र में ही कर दिये जाते थे। ज्वालाप्रसाद का विवाह उसकी बारह साल की अवस्था में कर दिया गया था। गौना बाद में होता था। ज्वालाप्रसाद का गौना विवाह के पाँच-छः वर्ष बाद हुआ था।

विवाह की इस पुरानी पद्धति का कालान्तर में लोप होता गया। शिक्षित युवक-युवतियों का विवाह उनकी अपनी पसन्द और इच्छा से होने लगा। नवल और उषा के विवाह की बातचीत केवल माँ-बाप तक सीमित नहीं है। वे स्वयं इस बारे में सचेत और प्रबुद्ध हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' में नारी की विविध समस्याओं—विधवा-समस्या, नारी की स्वच्छन्दता की समस्या, वेश्या-समस्या, पुरुष के बहु-विवाह और नारी-परित्याग की समस्या (विद्या की समस्या), नारी स्वतंत्रता और नारी के नौकर

करने की समस्या आदि—का भी विस्तृत चित्रण हुआ है। नारी-समस्याओं पर हमने आगे विस्तृत प्रकाश डाला है।

हिन्दू-समाज जातियों और वर्णों में बँटा हुआ था। ठाकुर, बनिये, ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण में गिने जाते थे, हरिजन निम्न वर्ण के समझे जाते थे। यह परम्परागत वर्ण-व्यवस्था, जात-पात, छुआ-छूत, ऊँच-नीच की बुराइयों के कारण विकृत हो गई थी। गांधी जी ने हरिजनों के उद्धार का बीड़ा उठाया हुआ था। ऊँच-नीच का भेद मिटाने के प्रयत्न सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं ने चला रखे थे। फिर भी यह भेद-भाव अभिजात वर्ग में पर्याप्त संस्कारबद्ध हो चुका था। गंगाप्रसाद-जैसा शिक्षित और नवयुग का प्राणी भी गेंदालाल नामक पढ़े-लिखे हरिजन युवक को अपने ड्राइंग रूम से अपमानित कर निकाल देता है। ज्ञानप्रकाश इस सम्बन्ध में गंगाप्रसाद की निन्दा करता हुआ कहता है कि इस प्रकार की छुआछूत से हमें छः करोड़ अछूतों को अपने से पृथक् नहीं करना चाहिए। कांग्रेस इन्हें नहीं छोड़ सकती।

ठाकुर और बनियों में तनाव था। ठाकुर बनिये-बक्काल को अपने से हेठा समझते थे : बनियों को डरपोक और कंजूस समझकर उनसे कुछ घृणा करते थे। आरम्भ में ही जब मुंशी शिवलाल इस्तगासे में यह लिख देते हैं कि "मुसम्मी मेकूलाल ने फ़िदवी की बुरी तरह मरम्मत की व कुन्दी बनाई।"—तो ठाकुर भूपसिंह की भौंहें तन गईं और भड़ककर बोले, "यू का अनाप-सनाप लिख दीन्हेव मुंशी जी ? ऊ सार बनिया की मजाल कि हमें उठाय के पटकी और हमार कुन्दी बनावे !"

इसी प्रकार बरजोरसिंह द्वारा लाला प्रभुदयाल के अपमान करने में ठाकुर जाति की बनिया जाति के प्रति तनाव और वितृष्णा की स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है। बनिया जाति के लोग सूदखोरी के कारण भी बदनाम थे। "यह वर्ण-व्यवस्था, यह सामाजिक वर्गीकरण, अपमान तो इनमें केन्द्रित है।"

कहार आदि निम्न जातियों के लोग सेवा-कार्य ही करते थे। छिनकी-जैसी छोटी जात की कहारिन को कई बार मुंशी शिवलाल-जैसे सवर्ण हिन्दू अपनी रखैल-सी भी बना लेते थे, पर उसका छुआ खाने को पाप समझते थे और अपनी गृहस्थी में उसका दखल नहीं होने देते थे।

"जिस कुएँ से चमार पानी भरते हों उस कुएँ से ब्राह्मणों के पानी लेने से ब्राह्मणों का धर्म कैसे बच सकता था ? ब्राह्मण उस कुएँ से तभी पानी ले

सकते थे जब चमारों को उससे पानी भरने को मना कर दिया जाय।" जात-पाँत और छुआछूत-सम्बन्धी यह समस्या लेकर ब्राह्मण-मण्डली मुंशी रामसहाय के पास आती है।

हिन्दुओं में मुसलमान के घर का खाना भी निषिद्ध था। किसनू इलाहाबाद मेले के अवसर पर करीमन के यहाँ रहता और खाता-पीता था। उसे जब मुंशी राधेलाल ले जाते हैं तो करीमन कहती है कि "अब इसे ले जायँ आप! मैं भी चुप रहूँगी कि यह मेरे यहाँ खाता-पीता था।" इसी प्रकार जब सत्यव्रत मलका से कहता है कि अपने हाथ का खाना ही खिलाओ, तो मलका आश्चर्य से कहती है कि यह जानते हुए भी कि मैं मुसलमान हूँ, आप मेरे घर का खा लेंगे?

रामगढ़ की पहाड़ी नायक जाति में विचित्र प्रथाएँ प्रचलित थीं। पण्डित सोमेश्वरदत्त कहते हैं, "यह नायक जाति भी पहाड़ों में अजीब होती है, जहाँ लड़कियाँ बेची जाती हैं। सामन्तवादी गुलामी की प्रथा इस युग में भी वहाँ चल रही है, और यह ब्रिटिश सरकार भी कुछ नहीं करती। एक तरफ़ तो ये लड़कियों को बेचते हैं, और दूसरी तरफ़ ये लोग धर्म पर इतने दृढ़ हैं कि लड़की धर्म नहीं बदलेगी।" रुक्मा के प्रसंग से नायक जाति की इस प्रथा पर प्रकाश पड़ा है।

पुराने समय में विलायत जाने वाले लोगों को बिरादरी से खारिज कर दिया जाता था। मुंशी राधेलाल बताता है कि इलाहाबाद के प्रसिद्ध "वकील बटेश्वरीप्रसाद फतहपुर के ही हैं। विलायत हो आए तो बिरादरी से खारिज कर दिये गए।" इसी प्रकार जब ज्ञानप्रकाश विलायत से लौटकर आते हैं तो अपने घर और गाँव जाने में संकोच करते हैं। वह ज्वालाप्रसाद को कहते हैं, "अभी राजापुर जाने का कोई इरादा नहीं है।...फिर अभी घर जाने में बावेला खड़ा हो सकता है। विलायत से लौटा हूँ, लोग कहेंगे प्रायश्चित्त करो, यह करो, वह करो। तो इन झंझटों में कौन पड़े जाकर!" ज्वालाप्रसाद भी कहते हैं, "हाँ, यह तो ठीक कहते हो। देहातों में यह दक़ियानूसीपन अभी बुरी तरह भरा हुआ है।" शनैः-शनैः कालान्तर में यह धारणा बदलती गई थी, इसका बड़ा स्पष्ट उल्लेख इस उपन्यास में हुआ है। मुंशी शिवलाल, राधेलाल के समय में बिरादरी से खारिज करने की कट्टरता थी तो एक पीढ़ी आगे वह कट्टरता नहीं रही और थोड़ा-बहुत प्रायश्चित्त करके ही काम चलने लगा।

पर नवल के युग में विलायत जाना 'कैरियर' बनाने के लिए आवश्यक समझा जाने लगा। लड़कियाँ तक विलायत जाने लगी थीं, वह भी केवल सैर-सपाटे के लिए। रायबहादुर कामतानाथ अपनी पुत्री उषा के साथ यूरोप की सैर करके आते हैं। उषा के जाने पर उसकी माँ कुछ विरोध करती है, पर थोड़ी देर में मान जाती है। नवल को आई० सी० एस० के लिए इंगलैंड भेजने के प्रयत्न किये जाते हैं।

दहेज की समस्या : 'भूले-बिसरे चित्र' में दहेज़ की सामाजिक बुराई का भी चित्रण हुआ है। विद्या का विवाह गंगाप्रसाद को बिन्देश्वरी के पुत्र सिद्धेश्वरी के साथ पन्द्रह-सोलह हज़ार रुपये के दहेज़ के वायदे पर तै करना पड़ा था। गंगाप्रसाद की मृत्यु के पश्चात् ज्वालाप्रसाद, नवल आदि बड़ी कठिनाई में पड़ जाते हैं। उधर अर्थ-पिशाच बिन्देश्वरी बाबू कहला भेजते हैं कि आठ हज़ार का तिलक इस नवरात में आ जाना चाहिए। उन्होंने लिखा था कि "सिद्धेश्वरी की शादी का पैग़ाम राजा जसवन्तराय के यहाँ से आया है और वह पच्चीस हज़ार का दहेज़ दे रहे हैं। लेकिन चूँकि उन्होंने गंगा से बरिच्छा मंजूर कर ली है, इसलिए अभी उन्होंने उस पैग़ाम को मंजूर नहीं किया है।"

ज्ञानप्रकाश इस अर्थ-लोलुप के यहाँ शादी करने के पक्ष में नहीं है। वह ज्वालाप्रसाद को कहता है, "मैं तो समझता हूँ आप यह रिश्ता तोड़ दीजिए!" विद्या भी अपने विवाह में सामर्थ्य से बाहर इतना दहेज़ देने का विरोध करती हुई कहती है, "तो मेरे विवाह में यह घर तबाह हो रहा है। सुना है बाबू बिन्देश्वरी प्रसाद को बाबा ने लिखा था कि दहेज़ कम कर दें, लेकिन उन्होंने रुखाई के साथ इंकार कर दिया।...दादा, मेरा विवाह तुम वहाँ मत करो,...। हाथ जोड़ती हूँ, मुझे उन अर्थ-पिशाचों के घर में मत धकेलो, अभी समय है!"

इस दहेज़-प्रथा, इस असमान विचार वालों में विवाह-सम्बंध का जो दुष्परिणाम होता है, वह इस प्रथा की लानत को सिद्ध करता है।

धार्मिक परिस्थितियाँ : हिन्दू जनता—विशेषतः ग्रामीण और अर्द्धशिक्षित लोगों का तीर्थ-व्रत-स्नान-कथा-वार्ता आदि में विश्वास था। माघ के प्रयाग-मेले पर त्रिवेणी-स्नान के लिए दूर-दूर से लोग एकत्रित होते थे—आज भी होते हैं। मुंशी शिवलाल, राधेलाल, जैदेई आदि इलाहाबाद में मड़ैया में ठहरते हैं। पुरोहितों-पण्डितों से सत्यनारायण की कथा कराने का भी पुण्य समझा

जाता था। बेचू मिसिर ठाकुर वीरभानसिंह के यहाँ सत्यनारायण की कथा करते हैं। मुंशी शिवलाल बाबा राघवदास की रामायण की कथा से प्रभावित होकर कण्ठी लेते हैं। ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के बड़े-बूढ़े सामान्यतः प्रातः-सायं स्नान करने के बाद पूजा-पाठ और संध्या करते थे। ठाकुर गजराजसिंह, मुंशी शिवलाल, लाला प्रभुदयाल आदि सब पूजा-पाठ का नियम निभाते हैं। "मुंशी शिवलाल का यह रोज का क्रम था कि शाम के समय कचहरी से लौटकर वह गर्मी में स्नान करके और जाड़े में अपने ऊपर गंगाजल छिड़ककर, प्रायः एक घण्टा पूजा करते थे।" लाला प्रभुदयाल ने तो "अपनी हवेली के फाटक पर ही राधा-कृष्ण का एक बड़ा-सा मन्दिर" बनवा रखा था। "वहाँ रोज सुबह-शाम आरती होती थी और प्रसाद चढ़ता था। रामायण और भागवत की कथा भी उनके यहाँ प्रायः हो जाया करती थी, जिसे सुनने दूर-दूर से लोग आते थे।" इसी आयोजन से लाला प्रभुदयाल को धर्म-कर्म का आदमी समझा जाता था।

रामायण और भागवत के अतिरिक्त गीता का पाठ भी नित्य पूजा-पाठ का अंग था। ज्वालाप्रसाद अपनी वृद्धावस्था में गीता का पाठ करते और सुनते हैं। मंगलवार के दिन हनुमानजी के मन्दिर में चढ़ावा होता था। घुमरू मिसिर और बिसनू सूनी पड़ी अमराई वाली जगह पर जब पुराने हनुमानजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करते हैं तो वहाँ मंगलवार के दिन प्रसाद चढ़ाने वालों का तांता बंध जाता है। धर्म का अधिकतर यही परंपरागत रूप 'भूले-बिसरे चित्र' में प्रकट हुआ है।

वीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में आर्यसमाज के शास्त्रार्थों और धर्म-सुधार की भी धूम थी। आर्यसमाज के प्रचारक स्थान-स्थान पर घूमकर शास्त्रार्थ की चुनौती देते और आर्यसमाज का प्रचार करते थे। स्वामी जटिलानन्द आर्यसमाज के ऐसे ही प्रचारक हैं। उनकी शास्त्रार्थ की चुनौती को न केवल मुसलमान मौलवी या अल्लामा और ईसाई पादरी स्वीकार करते थे, अपितु हिन्दू धर्म के ही सनातन धर्म से भी आर्य समाज का जबरदस्त वाद-विवाद था। बरेली में स्वामी जटिलानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने को अल्लामा वहशी और फ़ादर मसीह तो प्रस्तुत होते ही हैं, साथ ही "पण्डित गोवर्धन शास्त्री ने भी सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ करने की बात उठाई।" ऐसे शास्त्रार्थों में प्रायः झगड़ा होने की भी संभावना रहती थी,

क्योंकि ऊट-पटांग प्रश्नोत्तर गाली-गलौच और हाथा-पाई के भी आगे डंडेबाजी और छुरेबाजी तक बढ़ सकते थे। इसीसे अल्लामा वहशी अपने शागिर्दों समेत तैयार होकर शास्त्रार्थ में सम्मिलित होते हैं और स्वामी जटिलानन्द ने भी अपने कई चेले अम्बाला से बुला रखे हैं—"एक-से-एक मुस्टण्डे !"

आर्य समाज का उद्देश्य था अपने वैदिक धर्म का प्रचार और वर्तमान हिन्दू धर्म का सुधार। पण्डित सोमेश्वरदत्त कहते हैं, "आर्य समाज का कर्त्तव्य है कि पहले अपने हिन्दू धर्म को बदले, क्योंकि कमजोरी और बुराई हमारे धर्म में है; दूसरों से हम बाद में समझेंगे।" पर आर्यसमाज के प्रचारक दूसरों से भी साथ-साथ समझते रहते थे। आर्यसमाज ने शुद्धि आन्दोलन भी चला रखा था और अपने हिन्दू धर्म की रक्षा का बीड़ा पूरी तरह उठा रखा था। सुमेरसिंह रुक्मा को ज़बरदस्ती हिन्दू से मुसलमान बनाये जाने के प्रयत्न की बात सुनाता हुआ कहता है, "लेकिन हुजूर, मुसलमान हिन्दुओं को इसी तरह विधर्मी बनाते जाएँ और हम देखते रहें, तो फिर हमारे महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का आना ही निरर्थक साबित हुआ और हम लोगों का आर्य-समाज कायम करना ही बेकार हुआ।"

धार्मिक साम्प्रदायिकता बढ़ रही थी। न केवल हिन्दू-मुस्लिम साम्प्र-दायिकता ज़ोर पकड़ रही थी, अपितु हिन्दू धर्म के भी आर्य समाज, सनातन धर्म आदि विविध सम्प्रदायों में बहुत मतभेद था।

हिन्दुओं में धार्मिक अंध-विश्वास भी खूब प्रचलित था। गंगाजल को अत्यन्त पवित्र माना जाता था। मुंशी शिवलाल शराब पीने का बहाना ढूंढते हुए घसीटे को यही कहते हैं कि उसमें चार बूंद गंगाजल छिड़क ले, "गंगाजल से सब-कुछ सुद्ध हुइ जात है।" जैदेई मरने के समय गंगाजल पीकर मरना चाहती है। जात-पाँत, छुआ-छूत, चौका-बरतन आदि में भी धर्म घुसा हुआ था। छिनकी (निम्न जाति की औरत) के हाथ की कच्ची रोटी खाने से राधेलाल आदि धर्म बिगड़ने का विचार प्रकट करते हैं। घुंडी स्वामी जैसे पाखंडियों ने धर्म को ढकोसला बना दिया था।

गाँवों में और बहुधा शहरों में भी धर्म के नियामक ब्राह्मण माने जाते थे। कथा-वार्ता के अतिरिक्त विवाह-शादी, जन्म-मरण सबमें ब्राह्मण की आवश्य-कता होती थी। मुंशी शिवलाल की बरसी पर राधेलाल कम-से-कम सवा सौ ब्राह्मणों को भोजन और तीन-चार सौ आदमियों की बिरादरी की दावत

कराना चाहते हैं। वह कहते हैं, "बड़े पुण्यात्मा, बड़े प्रतापी थे दादा। उनकी सद्गति भी होनी चाहिये। ब्राह्मणों को खिलाने से और बिरादरी के खिलाने से उनकी आत्मा को संतोष होगा और उन्हें सद्गति मिलेगी।"

आर्थिक परिस्थितियाँ और समस्याएँ : ब्रिटिश-राज्य ने देश के उद्योग-धंधे नष्ट कर डाले थे। बड़े-बड़े और नये-नये व्यापार और उद्योग भी अंग्रेजों ने अपने नियंत्रण में कर रखे थे। मुंशी राधेलाल ठीक ही कहता है, "हाँ, रुपया कार-बार में है, रुपया व्यापार में है। लेकिन जब यह कार-बार और व्यापार अंग्रेजों से बचने पावे! इलाहाबाद में जितनी बड़ी-बड़ी दूकानें हैं जहाँ सरकारी खरीद होती है, वे सब अंग्रेजों की हैं। तो ज्वाला, लछमीचन्द को अंग्रेजों का मुकाबिला करना पड़ेगा, यह समझ रखना और अंग्रेजों का मुकाबिला करना कोई हँसी-खेल नहीं है।"

ब्रिटिश-नौकरशाही का बोलबाला होता जा रहा था। सरकारी अमले बढ़ते जा रहे थे। खुशामदी लोग अपने लड़कों को सिफारिश के बल पर अच्छी नौकरी पर नियुक्त करा सकते थे। मुंशी शिवलाल कलेक्टर को खुश करके अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदार नामज़द करा लेते हैं। ज्वालाप्रसाद की खुशामद का भी गंगाप्रसाद के डिप्टी कलेक्टर नामज़द होने में हाथ था।

पर सन् १९३० के आसपास ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अच्छे पढ़े-लिखे उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकों को भी उचित नौकरी मिलनी कठिन हो गई थी। प्रेमशंकर एम० ए० प्रथम श्रेणी में पास करके भी उचित नौकरी पाने में असमर्थ रहा, इसी से उसने एल-एल० बी० ज्वाइन की थी।

मध्य-वर्ग का उदय : 'भूले-बिसरे चित्र' में मध्य-वर्ग के उदय और विकास की भी विस्तृत झाँकी प्रस्तुत की गई है। पूर्वयुग में राज-वर्ग और प्रजा—ये दो वर्ग ही समाज में विद्यमान थे। एक वर्ग सम्पन्न और समर्थ था, दूसरा अभाव-ग्रस्त और दुर्बल; एक उच्च वर्ग था, दूसरा निम्न वर्ग। पर ब्रिटिश राज्य में ब्रिटिश नौकरशाही का जाल फैलने से मध्य-वर्ग का उदय हुआ। आरम्भ में इस मध्यवर्ग का भी रूप निम्न मध्यवर्ग का रहा। पटवारी, कानूनगो, तहसीलदार आदि सब निम्न मध्यवर्ग के ही घटक बने। ऊँचे-ऊँचे पद और ऊँची नौकरियाँ अंग्रेजों को ही दी जाती थीं। पटवारियों के खानदान के मुंशी शिवलाल निम्न मध्यवर्ग के ही प्रतिनिधि हैं। कुछ अंग्रेजी-शिक्षा

(इंटर तक) प्राप्त कर लेने पर उनका बेटा ज्वालाप्रसाद नायब तहसीलदार बन जाता है। उस जमाने में बहुत कम लोग शिक्षित बनते थे, अतः नौकरी पाना इतनी बड़ी समस्या नहीं थी, और फिर मुंशी शिवलाल की खुशामद ने भी तो काम किया। अब इस वर्ग की हालत अपेक्षाकृत सुधरती है। रहन-सहन, खान-पान कुछ अच्छा होता है। पर मध्यवर्गीय ज्वालाप्रसाद भी बहुत उन्नति नहीं कर पाता। सम्पन्नता ज्वालाप्रसाद से भी दूर ही रही। रुपये-पैसे की उसे भी तंगी थी। वह अपनी मेहनत और ईमानदारी के बल पर नायब तहसीलदार से तहसीलदार और अन्त तक डिप्टी कलेक्टर बन जाता है।'

पर उसका बेटा गंगाप्रसाद बी० ए० पास करके अपनी योग्यता, ज्वालाप्रसाद की खुशामद और लक्ष्मीचन्द के रुपये के प्रभाव से डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हो जाता है। बेटा अधिक पढ़-लिखकर, अधिक अनुकूल परिस्थितियों से अपना 'कैरियर' वहाँ से आरम्भ करता है, जहाँ से उसके पिता ज्वालाप्रसाद अन्त करते हैं। यह स्थिति मध्यवर्ग की चरम उन्नति की स्थिति थी; उसके निम्न मध्यवर्ग से ही नहीं, मध्यवर्ग से उच्च मध्यवर्ग तक पहुँचने की स्थिति थी। पर अपनी विलास-प्रियता और चरित्र-हीनता के कारण गंगाप्रसाद सुरा-सुन्दरी में ही सब-कुछ लुटाता जाता है, उच्च वर्ग में छलाँग लगाने के प्रयत्न में औंधा गिरता है, टूट जाता है, कर्जदार हो जाता है, पैसा बचा नहीं पाता।

उधर परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। पढ़े-लिखे युवकों की बाढ़ आ जाती है और नौकरियाँ मिलना एक बड़ी समस्या बन जाती है। वैसे भी गंगाप्रसाद के बाद की पीढ़ी विद्रोही निकली। अतः उनका बेटा नवल राष्ट्र-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेता है। वह अपने पिता की तरह गुलामी नहीं कर सकता। आर्थिक दृष्टि से तो उसकी हालत अपने परदादा मुंशी शिवलाल की-सी निम्न मध्यवर्ग की हो जाती है, पर आत्म-सम्पन्नता उसमें अपने पिता से भी बहुत अधिक है। यही स्थिति मध्यवर्ग के चरम विकास की स्थिति है। अर्थ न सही, चरित्र और आत्मा की सम्पन्नता ने इस मध्यवर्ग को गौरवान्वित किया। इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में मध्यवर्ग के उदय और विकास की विस्तृत झाँकी प्रकट की गई है। इस पर हमने आगे और विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

पूँजीवाद के साथ 'टका-धर्म' संस्कृति का उदय हुआ। प्रेमचन्द ने इसे "महाजनी सभ्यता' कहा था, भगवतीचरण वर्मा ने 'बनियों की दुनिया' कहा है। लाल रिपुदमनसिंह कहते हैं, "यहाँ हर चीज बिकती है—दीन, ईमान, सत्य,

चरित्र ! यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है।" धन के लोभ ने मानवीय संवेदनाओं को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। लाला राधाकिशन 'राजा बहादुर' का खिताब खरीदते हैं, लाखों का मुनाफ़ा उठाते हैं—अपनी पत्नी के जरिए ! उन्हें अपनी पत्नी के स्वच्छन्द विहार की कोई ग्लानि नहीं। लक्ष्मीचन्द धन के लोभ से अपनी मरणासन्न माता जैदेई की उपेक्षा व अपमान करता है, उसे गालियाँ तक दे डालता है। धन के इस लोभी—व्यावसायिक वृत्ति वाले लक्ष्मीचन्द में भावना और ममता नाम की कोई चीज़ नहीं रही है।

देश में नैतिक पतन भी चारों ओर दिखाई देता है। रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार और अन्याय तो ब्रिटिश नौकरशाही की रग-रग में घुसे हुए थे। अमजद अली-जैसे थानेदार, मीर जाफर अली-जैसे डिप्टी सुपरिटेण्डेंट पुलिस रिश्वत-शराब-खोरी तथा अन्य खुराफ़ातों में लगे थे। बिन्देश्वरी-जैसे डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज भी बड़ी सफाई के साथ रिश्वत लेने में निपुण थे।

राजनैतिक परिस्थितियाँ और समस्याएँ : 'भूले-बिसरे चित्र' में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों और समस्याओं का भी अत्यन्त व्यापक और सजीव चित्रण हुआ है। अंग्रेज़ी-राज्य के दुष्परिणाम, भारत का शोषण, ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र, ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचार, राजभक्त बने हुए भारतीयों की देशद्रोहात्मक भावनाएँ, जलियांवाला बाग के हत्याकांड की प्रतिक्रिया, असहयोग, खिलाफ़त, स्वदेशी, नमक-कानून भंग आदि आन्दोलन और सत्याग्रह, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता की हानियाँ, मुस्लिमलीगी जहनियत का कुपरिणाम, महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक कार्रवाइयाँ, चौरी-चौरा काण्ड की प्रतिक्रिया, जलूसों और सभाओं के आयोजन, पुलिस के लाठी-चार्ज, दिल्ली-दरबार का आयोजन, राजकुमार के भारत-आगमन पर विरोध, साइमन कमीशन का बाइकाट, डोमीनियन स्टेटस की मांग, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू का कांग्रेस की गति-विधियों में योग, अमृतसर, लाहौर आदि स्थानों पर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों का आयोजन, अंग्रेजों की रंग-भेद नीति, ब्रिटिश सरकार की 'डिवाइड एण्ड रूल' नीति, भारतीय जनता, पुलिस, भारतीय अफ्सरों का अंग्रेजों द्वारा अपमान, नवल किशोर-जैसे सत्याग्रहियों की उत्साहपूर्ण विदाई, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार और उनकी होली जलाना, क्रांतिकारियों और साम्यवादियों की गुप्त एवं उग्र कार्रवाइयाँ आदि सब

हलचलों और संघर्षों तथा विचारधाराओं का इस उपन्यास में बड़ा विस्तृत और सजीव चित्रण हुआ है। देश की राजनीति का मानो इतिहास ही उपन्यास के रूप में प्रकट कर दिया गया है। प्रमुख घटनाओं और प्रसंगों की सही तिथियाँ और काल-क्रम का ठीक-ठीक उल्लेख हुआ है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की यथार्थ झांकी पाई जाती है। इस राजनीतिक चित्रण पर हमने आगे विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

देशकाल-सम्बन्धी अन्य वर्णन : उस पुराने समय में सोने की अशर्फियां बड़ा सिक्का थीं। अशर्फियों की थैली ही जैदेई ज्वालाप्रसाद को भेंट करती है। रुपये के सिक्के भी थैलियों में ही रखे और दिये जाते थे। होली की सौगात में लाला प्रभुदयाल सौ रुपयों की थैली ही लाता है।

रहन-सहन और खान-पान तथा पहनावे आदि का भी युगानुरूप बड़ा ही सजीव वर्णन वर्मा जी ने किया है। पुराने समय में स्त्रियां लहंगा पहनती थीं। बाद में सम्पन्न नारियाँ ज़री की साड़ियाँ पहनने लगी थीं। संतो-कैलासो जरी की कीमती साड़ी और जड़ाऊ गहने पहनकर बाहर निकलती हैं। पं० सोमेश्वरदत्त पुराने मुसलमानों की पोशाक और सादा रहन-सहन से नये युग के मीर जाफ़र अली के रहन-सहन की तुलना इस प्रकार करते हैं, "यह जो मीर साहेब आ रहे हैं न, इनके वालिद लम्बी दाढ़ी रखते थे, हमेशा अबा पहनते थे, उनके हाथ में हर समय तसबीह रहा करती थी और इन्हें देखिए, कोट और जांघिया पहने हुए, दाढ़ी घुटी हुई, मूंछ इस कदर ऐंठी हुई कि देखने वाला उनके खौफ़ से भाग खड़ा हो। चुरट मुंह में दबा हुआ!"

इस प्रकार रहन-सहन-सम्बन्धी बदलती रंगत का 'भूले-बिसरे चित्र' में कई जगह अच्छा चित्रण हुआ है। 'भूले-बिसरे चित्र' में स्थानों, नगरों, गांवों के नाम और वर्णन, छिनकी, भीखू, राधे की पत्नी आदि अशिक्षित पात्रों की जनपदीय भाषा आदि की सजीवता भी देश-काल-वातावरण को सजीव बनाने में सहायक हुई है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'भूले-बिसरे चित्र' में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का बहुत ही व्यापक और सजीव चित्रण हुआ है, जो युगधर्म की सजीवता या युग-बोध का पूर्ण परिचायक है। इतनी सफल युगबोधकारी रचनाएँ हिन्दी साहित्य में विरल ही हैं।

★

१३

सम्मिलित परिवार-परम्परा का विघटन

'भूले-बिसरे चित्र' में युगीन सामाजिक परिस्थितियों तथा सामाजिक समस्याओं का बड़ा व्यापक चित्रण हुआ है। भारतीय समाज की सम्मिलित परिवार परम्परा दम तोड़ रही थी। इस टूटती हुई प्रथा का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। मुंशी शिवलाल, राधेलाल, राधे की पत्नी आदि पुरानी पीढ़ी के लोग उसे किसी तरह जिन्दा रखना चाहते थे, परिवार के सम्मिलित रहने में ही खानदान की बड़ाई समझते थे। पर परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। सम्मिलित परिवार की परम्परा में ही ऐसे दोष उत्पन्न हो गए थे कि ज्वालाप्रसाद-जैसे सम्मिलित परिवार के समर्थक को भी इसका विरोध करना पड़ा। परिवार में सास का कड़ा शासन असह्य था। मुंशी शिवलाल के घर में राधेलाल की पत्नी का शासन था। बहुएँ काम-काज में पिसतीं और डरी-सहमी रहती थीं। इस स्थिति ने बहुओं या उनके समर्थकों के मन में अन्दर-ही-अन्दर विरोध और विद्रोह की चिंगारी सुलगाई। यमुना तो लज्जा-लिहाज के कारण चुप रहती है, पर छिनकी उसके पक्ष में विरोध और विद्रोह के स्वर प्रकट करती रहती है।

इस परम्परा का एक बड़ा दोष यह हो गया था कि एक आदमी की कमाई पर कई-कई मुफ्तखोरी करने लगे थे। राधेलाल और उसके लड़के श्यामू, किसनू और बिसनू सब ज्वालाप्रसाद की कमाई पर पूरियाँ खाने, गहने गढ़वाने और यहाँ तक कि अपने दुष्टतापूर्ण आचरणों से ज्वाला को बदनाम करने लगते हैं। उनके दुष्कृत्यों से तंग आकर आखिर ज्वाला को, न चाहते हुए भी, उन्हें अपने यहाँ से भगाना पड़ता है, सम्मिलित परिवार-परम्परा तोड़नी पड़ती है।

यह कहना ग़लत है कि नई पीढ़ी ने ही परंपरागत सम्मिलित परिवार-प्रथा को तोड़ा। वस्तुतः जहाँ-जहाँ जिस-किसी को भी इस परंपरा की हानियों से

आशंका अनुभव हुई, वहीं उसने इस पर प्रहार किया है। पुरानी पीढ़ी के लोग—छिनकी, भीखू, मुंशी रामसहाय की पत्नी महारानी और यहाँ तक कि ज्वालाप्रसाद भी इसका खुला विरोध करते हैं। ज्वालाप्रसाद की नियुक्ति फतहपुर से बाहर घाटमपुर होने की नई स्थिति में ज्वालाप्रसाद के सब हितैषी इस परंपरा की हानि की आशंका से इसे तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। ज्वालाप्रसाद की मामी महारानी ज्वाला को विदा करती हुई कहती है, "घाटमपुर यहीं पास में तो है, अपने साथ अपनी बहू को लेते आना। कभी मैं बहू के यहाँ चली जाऊँगी, कभी बहू मेरे यहाँ चली आएगी। लाख कोई कहे, बहू को फतहपुर मत छोड़ना। मैं तुम्हारे मामा से चिट्ठी लिखवाकर तुम्हारे चाचा के हाथ भिजवा दूंगी।" और वाक़ई मुंशी रामसहाय शिवलाल को चिट्ठी में यह बात लिख देते हैं। स्पष्ट है कि ज्वालाप्रसाद के रिश्तेदारों और हितैषियों को ज्वाला और यमुना की भलाई इसी बात में प्रतीत होती है कि वे परंपरागत सम्मिलित प्रथा के कीचड़ से निकल जायें।

छिनकी को पहले ही शिकायत है कि छोटी (राधे की पत्नी) घर की मालकिन बनकर ज्वाला की बहू को बहुत सताती है। उससे बहुत काम कराती है। अब उसके त्राण की स्थिति आई है तो क्यों न उसे ज्वाला के साथ भेजा जाय? वह मुंशी शिवलाल पर जोर डालती है। कुत्सित यथार्थ की संभावना जताने से भी नहीं हिचकती: "परदेस का मामला, हकूमत का जोर और ऊ पै मद्दर जवानी की उमिर! मान लेव ज्वाला कौन जवान पठिया घर मां बैठाय लेय तो?"

उधर राधे की पत्नी का स्वार्थ सम्मिलित-प्रथा में है। उसके लड़के अभी निठल्ले हैं, पति की कोई आय नहीं। अतः वह घर-गृहस्थी को सांझा रखना चाहती है। वह यमुना को भेजने के पक्ष में नहीं थी, क्योंकि उसे आशंका थी कि ज्वाला और उसकी बहू के अलग रहने से अलगाव की स्थिति दृढ़ होगी, यमुना अपने घर की मालकिन बन जायगी! इसीसे वह स्वयं ज्वाला के साथ जाना चाहती है। यह तो उसके बेटे रामू की बहू के बच्चा होने वाला है, इसलिए मुंशी शिवलाल उसकी तैयारी रुकवा देते हैं, अन्यथा वह तो "जाने के लिए तुली हुई थी।"

इस परिस्थिति में छिनकी की बात की यथार्थता तथा मुंशी रामसहाय की

चिट्ठी—सबसे प्रभावित होकर मुंशी शिवलाल यमुना को ज्वाला के साथ भेज देते हैं। घाटमपुर जाकर यमुना अपने घर की मालकिन बन जाती है।

शिवलाल फतहपुर रहते हैं तो ज्वाला बीस रुपये महीना घर भेजता है। पर मुंशी शिवलाल की सेहत खराब रहने लगती है, उधर ज्वालाप्रसाद भी अपने पिता को घाटमपुर बुलाता है, इधर घसीटा और घसीटे की मृत्यु के बाद छिनकी भी मुंशी शिवलाल को घाटमपुर रहने की सलाह देते हैं, तो मुंशी शिवलाल घाटमपुर जाने को तैयार हो जाते हैं। छिनकी कहती है, "तौन हमार तुमसे यू कहब आय कि तुम्हें इहाँ लौटेकी कौनो जरूरत नाहीं। तुम अब अपने लड़िका के पास रहौ चलिके।" मुंशी शिवलाल छिनकी को भी अपने साथ ले जाते हैं।

राधेलाल को यह स्थिति अखरती है। "मुंशी शिवलाल के साथ छिनकी के जाने का प्रस्ताव सुनकर मुंशी राधेलाल का माथा ठनका। क्या मुंशी शिवलाल हमेशा के लिए अपने लड़के के साथ रहने जा रहे हैं?······इस खबर से मुंशी राधेलाल के परिवार में भी एक खलबली-सी मच गई थी।" राधेलाल को सम्मिलित परिवार-प्रथा टूटने की स्पष्ट आशंका हो गई। वह इस स्थिति को बचाना चाहता है। 'राधेलाल ने मुंह लटका कर कहा, "दादा, घर की हालत तो आप देख ही रहे हैं। आपके जाने के बाद ज्वाला जो बीस रुपया महीना घर भेजता था, उसका भेजना बन्द तो न कर देगा?"

"शिवलाल की आश्वासन से भरी बातचीत से राधेलाल का मन कुछ हल्का हो गया। लेकिन उन्हें यह भासित हो गया कि जीवन-क्रम में कुछ परिवर्तन आने वाला है।"

राधेलाल अपने स्वार्थ से सम्मिलित परिवार को जुड़ा रखना चाहते हैं। वह छल-कपट से सलीमा की ज़मीन श्यामू के नाम लिखा लेते हैं और ज्वाला की सहायता से मौजा रहीमपुरा की सारी ज़मीन हड़पना चाहते हैं। इसके लिए श्यामू सारी ज़मीन ज्वाला के नाम लिखने को तैयार है। मुंशी राधेलाल कहता है कि सम्मिलित परिवार में ज़मीन चाहे किसी के नाम हो, होती तो वह सबकी साँझा ही है। वह बार-बार यही कहता है कि तहसीलदार के खानदान की कोई इज्ज़त होती है। इसलिए अपनी जमींदारी जरूर होनी चाहिये। मुंशी शिवलाल को भी वह धोखा-धड़ी के इस आयोजन में सम्मिलित

कर लेता है। पर ज्वालाप्रसाद के झूठ बोलने और जालसाजी में पड़ने से इन्कार करने पर उन्हें बहुत दुःख होता है।

मुंशी शिवलाल सम्मिलित परिवार परंपरा के समर्थक अवश्य हैं, पर उन्हें भी कई बार लगता है कि ज्वाला के साथ अन्याय हो रहा है। एक बार तो वह कहते भी हैं कि ज्वाला बड़ा अफ़सर है, उसकी बदनामी नहीं होनी चाहिये। जब राधेलाल का सारा परिवार सोरांव में आकर डेरा डाल देता है और राधेलाल की पत्नी यहाँ आकर भी घर की मालकिन बनना चाहती है, छिनकी के हाथ से ज़बरदस्ती भण्डार-घर की चाबी छीन लेती है तो छिनकी विरोध करती है। यद्यपि मुंशी शिवलाल छिनकी को डांट देते हैं और यही कहते हैं कि घर की मालकिन छोटी ही है, पर उनका भी मन कहता है—"अधिकार और शक्ति अपना स्थान बदल रहे थे, एक जगह से हटकर दूसरी जगह जा रहे थे। परिवार की परंपरा टूट रही थी।" जब यमुना दबी जबान से अपने ससुर को बताती है कि चाची जी कह रही हैं कि सब खानदान फतहपुर से यहाँ आ रहा है, तो मुंशी शिवलाल भी इस बात को सुनकर चौंकते हुए कहते हैं, "क्या कहा? राधे का खानदान यहाँ आ रहा है? मुझसे तो इस तरह की कोई बातचीत हुई नहीं। फतहपुर में घर है, जमीन है, सभी कुछ तो है। फिर उन लोगों को यहाँ आने की क्या ज़रूरत है?"

स्पष्ट है कि मुंशी शिवलाल भी इस परंपरा के दुर्बल समर्थक रह गए हैं, क्योंकि परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि इस परंपरा का कोई समर्थन नहीं कर सकता।

यमुना उदार है और कलह नहीं चाहती। इसलिए वह प्रत्यक्ष विरोध नहीं करती और यही समझती है कि चलो महीना-दो महीना चाची को शासन चला लेने दो, पर जब उसे कहा जाता है कि फतहपुर से सब यहीं आकर रहने लगेंगे तो वह तिलमिला उठती है। वह सोचती है: "तो फिर छिनकी ठीक ही कहती थी। गंगा के भाग्य का और गंगा के भाग का अपहरण करने के लिए चाचाजी का पूरा परिवार यहाँ आकर बैठेगा, ज्वालाप्रसाद की छाती पर!"

छिनकी से नहीं रहा जाता। वह बार-बार विरोध करती है। डांट खाने पर भी सच्ची बात कहने से नहीं हटती: "इहै जो ज्वाला के चाचा का खान-दान ज्वाला की कमाई पर मौज करैं का आय रहा है तौन दुरजोधन का खानदान इकट्ठा हुई रहा है।"

"दुर्योधन का खानदान ! क्या बकती है......" मुंशी शिवलाल छिनकी को डाँटते-डाँटते रुक गए। उन्होंने अनुभव किया कि छिनकी ने जो-कुछ कहा उसमें सत्य हो सकता है। मुंशी शिवलाल को ऐसा लगा जैसे वे पाण्डु हैं...... और राधेलाल धृतराष्ट्र हैं, घर की सत्ता जिनके हाथ में उनके मरने के बाद में आ जायगी। पूरा महाभारत का रूपक है, छिनकी ग़लत नहीं कहती।"

छिनकी सम्मिलित परिवार की इस लानत को बचाने के लिए सलाह देती है कि ज्वाला पर ज़ोर डालकर किसनू को कहीं लगवा दो ताकि राधेलाल और उसका परिवार अपने बेटे के पास रहने लगे, यहाँ ज्वाला की छाती से दूर हो।

मुंशी शिवलाल की मृत्यु के बाद भी राधेलाल और उनकी पत्नी सम्मिलित परिवार-परंपरा का ढोंग रखना चाहते हैं। छिनकी और भीखू के विरोध करने पर राधेलाल कहता है, "अब मैं आ गया हूँ घर का मुखिया, तो ठहरो, मैं इन लोगों (छिनकी व भीखू) की अक्ल ठिकाने लगा दूँगा।"

ज्वालाप्रसाद यद्यपि इस परम्परा का विरोधी नहीं है, वह जहाँ तक हो निभाने को तैयार है, पर जब उसकी जान को बन आती है, उसके घर को लूटने-खसोटने की कार्रवाई चलती है, रामलाल उसके नाम पर अपनी बहू के लिए जेवर बनवा लाता है, ज्वाला के सिर सर्राफ का तीन सौ रुपया चढ़ जाता है, श्यामू और किसनू अपनी खुराफातों—चोरी और गुण्डागर्दी से उसका नाम बदनाम कर देते हैं, उसका चाचा राजा सरोहन के साथ मिलकर जाल-साजी करता है और ज्वाला को मुकदमेबाजी में धकेलना चाहता है, राधे की पत्नी और परिवार के लोग श्यामू की बहू को मारते हैं, ऊधम मचाते हैं, पूरियाँ खाते और गुलछर्रे उड़ाते हैं, तो ज्वालाप्रसाद बुरी तरह तंग आकर उन से पिंड छुड़ाना चाहता है।

ज्वालाप्रसाद को अपनी पत्नी यमुना की तरह स्पष्ट विरोध और विद्रोह करने में संकोच होता है। इसी से वह भीखू से कहता है कि चाचा जी को कह दो फतहपुर चले जायं। वह स्पष्ट अपने मुंह से कहने की बजाय एक कागज पर लिखकर चाचा को देने की बात सोचता है। इस प्रकार सम्मिलित परिवार-परम्परा को तोड़ने वाली पहली पीढ़ी का व्यक्ति यह ज्वालाप्रसाद विद्रोह करने में सकुचाता है। पर चाहे कठिनाई से सही, उसे एक दिन मुंह खोलना ही पड़ता है। ज्वालाप्रसाद की पीढ़ी के हृदय में अपने सम्मिलित

परिवार वालों के लिए ममता है, आदर है। वह दिल से इनका भला चाहता है। बाद में भी रामलाल के लड़के बंसीधर को गंगाप्रसाद के पास नौकरी के लिए भेजता है। राधेलाल और उनके परिवार को रूठ कर नहीं जाने देता।

परन्तु आगे गंगाप्रसाद की पीढ़ी सम्मिलित परिवार को भूल ही गई है। गंगाप्रसाद बंसीधर को जानता-पहचानता नहीं। उसके साथ विशेष आत्मीयता का व्यवहार नहीं करता।

इस प्रकार सम्मिलित-परिवार-परम्परा को भारी धक्का लगा ब्रिटिश नौकरशाही से। नौकरी पर नियुक्तियाँ घर से बाहर होने लगीं। इस स्थिति ने इस परम्परा की स्थान की इकाई को तोड़ डाला। अब सम्मिलित परिवार एक जगह नहीं रह सकता था। इस परिस्थिति ने स्वतः ही अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। ज्वालाप्रसाद की नियुक्ति घाटमपुर हो जाने से उसकी पत्नी का भी उसके साथ जाना स्वाभाविक था। ज्वाला की व्यक्तिगत कमाई सम्मिलित परिवार की कमाई कब तक समझी जा सकती थी? यद्यपि मुंशी शिवलाल, राधेलाल, राधे की पत्नी आदि इस परिस्थिति में भी सम्मिलित परिवार-परम्परा बनाये रखना चाहते हैं, पर उनके प्रयत्न अपने स्वार्थों से प्रेरित हैं, इसलिए सफल नहीं हो पाते। ऊपर से भले ही मुंशी शिवलाल विरोध को दबाने का प्रयत्न करें, पर सच्ची बात भला कैसे दबाई जा सकती थी! अपने बेटे गंगाप्रसाद का भाग्य राधे के परिवार को मुफ्त में खाते यमुना कब तक देखती रहती! ज्वालाप्रसाद अपने चाचा और चचेरे भाइयों की खुराफ़ातों को कब तक सहता!

अतः सम्मिलित परिवार के टूटने का चित्रण वर्माजी ने बड़ी ही सजीवता के साथ किया है। जैदेई की पुत्र-वधू राधा जो आरम्भ में जैदेई के ही पास उसकी आज्ञा में रहती थी, कानपुर में लक्ष्मीचन्द द्वारा कारखाने लगा लिये जाने पर, अलग घर की मालकिन बन जाती है। जैदेई ने ठीक ही अनुभव किया कि कानपुर के घर की मालकिन राधा है, जैदेई नहीं, और कानपुर में रहने का अर्थ है राधा की अधीनता में रहना या फिर झगड़ा-कलह। इसीसे जैदेई अकेली इलाहाबाद रहती है। राधा भी अपनी स्वतंत्रता में बाधा पड़ने के भय से जैदेई को कानपुर रखना नहीं चाहती।

श्रीकिशन गोपीकिशन की सम्मिलित फर्म थी, सम्मिलित परिवार था। पर श्रीकिशन दिल्ली की दुकान का मालिक हो गया, उसके छोटे भाई

राधाकिशन ने कलकत्ता की दुकान संभाल ली। उनके पिता गोपीकिशन अलग कानपुर में कारोबार करने लगे। इस प्रकार स्थान की इकाई खण्डित हो जाने से सम्मिलित परिवार-परम्परा स्वतः ही खण्डित हो गई। जब राधाकिशन कलकत्ता की दुकान पर कई लाख रुपया कमा लेता है, तो लोभ के वश में आकर ही श्रीकिशन और उसकी पत्नी कैलासो सम्मिलित परिवार की दुहाई मचाकर कलकत्ता की दुकान के मुनाफे का हिसाब लेना चाहते हैं। संतो ठीक ही कहती है, "हिसाब-किताब समझना चाहते हैं? यह क्यों? उन्हें कलकत्ता की दुकान से क्या मतलब?"

राधाकिशन भी बोले, "हाँ, मैंने तो उनसे साफ-साफ कह दिया कि हम लोगों का बटवारा तो उसी दिन हो गया था, जिस दिन लालाजी इस फर्म से अलग होकर कानपुर रहने चले गए थे। जब पिता ही संयुक्त परिवार तोड़ चुका हो, तो फिर कैसा संयुक्त परिवार? उन्होंने मुझे कलकत्ता की दुकान में भेज दिया, दिल्ली की दुकान उनकी हो गई। भला उन्होंने मुझे दिल्ली की दुकान और दिल्ली की जायदाद का हिसाब-किताब कब दिया।"

सम्मिलित परिवार का विघटन मूलतः परिवार के घटकों के स्थान-परिवर्तन से हुआ है। ज्ञानप्रकाश मुंशी रामसहाय का छोटा लड़का है। वह बैरिस्टर बनने विलायत चला जाता है। वहाँ से आकर अपने गाँव राजपुर जाना और परम्परागत जमींदारी के धंधे में सम्मिलित होना वह कैसे स्वीकार करता! अतः वह अपने भाई और उसके परिवार से टूट जाता है। स्वतंत्र रूप में अपनी वकालत आरम्भ करता है।

इसी प्रकार लाल रिपुदमनसिंह का अपने भाई राजा विजयपुर और रानीसाहिबा विजयपुर से अलगाव दिखाया गया है। परम्परागत सामंतीय प्रथा के नवोदित राजकुमार लाल रिपुदमनसिंह पढ़-लिखकर अपनी परम्परागत सामंतीय पद्धति और सम्मिलित-परिवार-व्यवस्था में पड़ने की बजाय डिप्टी कलेक्टर बनना पसंद करते हैं। वह घर से बाहर नियुक्त होकर अपना स्वतंत्र 'कैरियर' बनाते हैं, स्वतंत्र जीवन बिताते हैं।

सम्मिलित परिवार के टूटने का एक और चित्र है कानपुर में लक्ष्मीचन्द के मामा के लड़कों में बटवारे का। जैदेई ने अपने भतीजों की बुरी हालत देखी। "उसके पिता की वह बड़ी-सी हवेली अब दो भागों में विभक्त हो गई थी और इन दोनों भागों के बीच में एक दीवार खड़ी हो गई थी।......घर

में एक भयानक कलह का वातावरण उसने देखा। बुद्धूलाल और मन्नूलाल में बटवारा हो गया था।"

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में परम्परागत सम्मिलित परिवार-प्रथा के विघटन का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। इस प्रथा की कमजोरियों को वर्माजी ने बदलती हुई युग-परिस्थितियों में बड़ी स्पष्टता से प्रकट किया है। ब्रिटिश-नौकरशाही तथा अन्य कारणों से न केवल मध्यवर्ग अपितु सामंतों, पूंजीपतियों और बड़े व्यापारियों के घरानों में भी सम्मिलित परिवार-प्रथा टूट रही थी। मध्यवर्ग के उदय ने तो इसका सर्वथा विघटन कर डाला और वर्मा-जी ने दिखाया है कि परम्परागत गली-सड़ी घुटन से भरी, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थों तथा अन्य बुराइयों में सिसकती हुई इस परम्परा का टूटना ही व्यक्ति और समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ।

१४

ह्रासोन्मुख सामंतीय व्यवस्था : उदीयमान पूँजीवाद

'भूले-बिसरे चित्र' में वर्माजी ने पतनोन्मुख सामन्तीय व्यवस्था का भी बड़ा सजीव चित्रण किया है। इस परम्परागत पद्धति के स्थान पर विकसित होने वाली पूँजीवादी पद्धति का भी अच्छा चित्रण हुआ है। बड़े-बड़े राजाओं, सामंतों, जमींदारों की हालत बिगड़ती जा रही है। ताल्लुकेदारी पर ही निर्भर रहने वाले इस वर्ग की आय के साधन घटते जा रहे हैं। इनके अनाप-शनाप खर्चे इनकी कमर तोड़ रहे हैं। विवाह-शादी, मुण्डन-संस्कार या इसी प्रकार के आयोजनों पर अनाप-शनाप खर्चा करने के लिए इन्हें महाजन पूंजीपति से ऋण लेना पड़ता है, अपनी जमीन-जायदाद, इलाके, गाँव रहन रखने पड़ते हैं।

ठाकुर गजराजसिंह धाटमपुर के सबसे बड़े जमींदार हैं। उन्होंने अपनी लड़की का विवाह यज्ञपुर के ताल्लुकेदार राजा चन्द्रभूषणसिंह के बड़े लड़के लाल इन्द्रभूषणसिंह के साथ तै किया है। यह विवाह उन्हें "काफी महंगा पड़ा था। वैसे दहेज कुछ भी तै नहीं हुआ था, लेकिन ठाकुर गजराजसिंह ने भी राजसी आन दिखलाई थी। इस आन को निभाने के लिए ठाकुर गजराजसिंह को कर्ज लेना पड़ा था, और यह कर्जा उन्होंने लाला प्रभुदयाल के पास अपने पाँच गाँव रेहन रखकर लिया।"

गजराजसिंह के यहाँ जो बरात आई थी, "इतनी धूम की बरात पहले कभी घाटमपुर में नहीं आई। उस बरात में करीब बारह सौ बराती आए थे। मेहमानों के अलावा बरात के साथ ग्यारह हाथी, इक्यावन ऊँट, एक सौ एक घोड़े और तीन सौ बहलियों में जुते हुए छः सौ बैल भी थे। मेहमानों की और जानवरों की देखभाल करने के लिए प्रायः आठ सौ नौकर भी थे।" ठाकुर गजराजसिंह को इस बरात और दहेज आदि के खर्चें के लिए प्रभुदयाल

से बीस हज़ार रुपये ऋण लेने पड़े थे—अपने पाँच गाँव रेहन रखकर। ठाकुर साहब को अपने "इलाके से बीस हज़ार साल का मुनाफ़ा था, लेकिन उनके खर्चे भी वैसे ही लम्बे थे। उनमें एक नहीं, अनगिनत व्यसन थे और इसलिए वे रुपया नहीं बचा सके। उनकी दृष्टि में मितव्ययिता एक दोष था,…।"

गजराजसिंह के साले बरजोरसिंह की हालत बहुत ही खराब हो चुकी है। "ठाकुर बरजोरसिंह के पिता किसी समय एक अच्छे-खासे जमींदार थे, लेकिन समय ने पलटा खाया और धीरे-धीरे बरजोरसिंह के पास एक छोटा-सा गाँव रह गया, जिसकी अधिकांश जमीन बंजर थी। उस गाँव से उन्हें करीब ढाई सौ रुपया साल का मुनाफ़ा मिलता था। लेकिन बरजोरसिंह जमींदार तो थे ही!……उनके गाँव चुनौठा में उनकी बहुत बड़ी हवेली थी, जिसके आगे उनके पिता का हाथी अभी तक झूमता था। वह हवेली मरम्मत न होने के कारण जहाँ-तहाँ से टूटती जाती थी।……अपने लड़के के मुण्डन-संस्कार में उन्हें एकाएक अपनी सीमा के बाहर खर्च करके जो स्वयं मुंडने की सूझी तो उन्होंने पाँच साल पहले अपनी खुदकाश्त लाला प्रभुदयाल के पास रेहन रख दी थी। वह खुदकाश्त एक हज़ार रुपये पर रेहन रखी गई थी, लेकिन सूद-दर-सूद चढ़ते-चढ़ते अब वह रक़म दो हज़ार के ऊपर पहुँच चुकी थी।"

और किस प्रकार लाला प्रभुदयाल मुकदमा करके बरजोरसिंह की ज़मीन अपने नाम करा लेता है, बरजोरसिंह के बच्चों के भूखों मरने की नौबत आ जाती है, यह सब वर्माजी ने बड़ी सजीवता के साथ प्रकट किया है।

इसके विपरीत महाजन बन रहा है। सामंतों के टूटने पर महाजनी पूंजीवाद विकसित हो रहा है। गजराजसिंह, ठाकुर बरजोरसिंह ह्रास और विनाश की ओर जा रहे हैं, लाला प्रभुदयाल बढ़ रहे हैं। "बीस वर्ष पहले प्रभुदयाल के पिता की एक छोटी-सी पंसारी की दूकान थी। बीस वर्ष के अन्दर ही लाला प्रभुदयाल ने छः गाँव खरीद लिए थे और उनका लाखों का लेन-देन का कार-बार हो गया था। तहसील घाटमपुर में इतना अधिक नक़द रुपया किसी के पास न था जितना लाला प्रभुदयाल के पास था।"

जब मीर सखावत हुसैन को पता चलता है कि ठाकुर गजराजसिंह ने अपने पाँच गाँव रेहन रखकर प्रभुदयाल से कर्ज लिया है तो वह तुरंत कहते हैं, "तो फिर ये पांच गाँव भी इस परभूदयाल के हो गए,……। भई मान गया इस आदमी को। मेरे देखते-देखते इतना बड़ा आदमी बन गया है।"

गजराजसिंह के यह कहने पर कि "बनिया राजा बनने चला है," ज्वाला-प्रसाद कहते हैं, "इसमें अचरज की बात क्या है ? सत्ता इस युग में भुज-बल में नहीं है, सत्ता अब रुपये में है।" और वाक़ई वह ज़माना गया जब सामंत अपने डण्डे का ज़ोर रखता था, इस ब्रिटिश राज्य में पुलिस का आतंक सामंत को भी है, उसकी ज़ोर-जबरदस्ती, उसकी हुकूमत नहीं रही है। हुकूमत है आज रुपये-पैसे वाले की। रुपये के ज़ोर से मुकदमे जीते जा सकते हैं, अमजद अली-जैसे थानेदार अपनी मुट्ठी में किये जा सकते हैं, भारी चंदा देकर सरकार से लाभ उठाया जा सकता है, ऊँचे पद प्राप्त किये जा सकते हैं, अफ़सरों का मुंह बंद किया जा सकता है। बरजोरसिंह ठण्डी सांस भरकर कहता है, "समय बदल गया है नायब साहेब, नहीं तो इस परभूदयाल को हम रातों-रात लुटवा देते।"

इलाहाबाद के लाला "घनश्यामदास प्रसिद्ध रईस थे। लोगों का अनुमान था कि उनकी हैसियत पन्द्रह-बीस लाख की होगी। उनका पेशा था लेन-देन का और इलाहाबाद के आस-पास के अधिकांश जमींदार उनके कर्ज़दार थे।" राजा साहब सरोहन ने चार साल पहले सेठ घनश्यामदास के पास अपने तीन गाँव रखकर चालीस हज़ार रुपये कर्ज़ लिये थे। छुड़ाना तो कहाँ होता, ब्याज भी नहीं दे सका, छल और जाल-साज़ी से अपने गाँव बचाने के उसके प्रयत्न भी बेकार गए। यह राजा सरोहन भी बहुत ही आवारा, अय्याश और सरकश है। विलायती शराब और विलासिता में अनाप-शनाप खर्च करता है। वह स्वयं स्वीकार करता हुआ कहता है, "साला ब्याज माँगता था। भला राजा सरोहन के अनाप-शनाप खर्चे ! हमारे बाप ने इलाका आधा कर दिया, तो अगर हम चार-छः मौजे न बेचें तो अपने बाप के बेटे कैसे !"

ठाकुर वीरभानसिंह राजा सरोहन का मज़ाक उड़ाते हुए कहता है, "जी हाँ राजा साहेब, जैसा बाप वैसा बेटा ! लेकिन मामाजी, नानाजी ने तो हज़ारों रुपये दान दिये थे ; उन्होंने न जाने कितने लोगों की परवरिश की थी,·········रण्डीबाज़ी और शराबखोरी में उन्होंने अपनी जायदाद नहीं उड़ाई।"

इन राजाओं और ताल्लुकेदारों का भोग-विलास का जीवन इनके डूबने की सूचना दे रहा है। राजा धाटबागान और रानी हेमवती की दुश्चरित्रता और विलासिता से लाल रिपुदमनसिंह, गंगाप्रसाद आदि को घृणा है। लाल

रिपुदमनसिंह अपने सामंत कुल की निंदा करता हुआ कहता है, "यह ऐश्वर्य और भोग-विलास का जीवन, जहाँ कोई चिंता नहीं, कोई कर्म नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं……इस जीवन में मनुष्य बड़ी जल्दी वहकता है। जहाँ धन है वहाँ धन ही देवता बन जाया करता है,……यह मेरा दुर्भाग्य है बाबू गंगाप्रसाद, कि मैं ऐसे कुल में पैदा हुआ जहाँ चिंताओं के अभाव में विकृतियों का साम्राज्य है।"

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में सामंतवाद के ह्रास और पतन का सुन्दर चित्रण हुआ है। इस वर्ग की आत्मा में बल नहीं रहा है। आर्थिक दृष्टि से भी दिनोंदिन यह वर्ग खोखला होता जा रहा है, और नैतिक दृष्टि से भी इसका पतन हो चुका है। इसीसे तो राजवंश के ही लाल रिपुदमनसिंह अपने इलाके पर निर्भर रहना छोड़कर सरकारी नौकरी करते हैं।

वर्माजी ने उदीयमान पूंजीवाद का चित्रण शहरों में बड़े-बड़े उद्योग-धंधों के विकास के रूप में दिखाया है। लक्ष्मीचन्द अपने पिता के जमींदारी और महाजनी के काम को अपनाने की बजाय बड़े व्यापार और बड़े-बड़े कारखानों में पैसा लगाकर उद्योगपति-पूंजीपति बन जाता है। वह महाजनी पूँजीवाद और महाजनी-जमींदारी को इस औद्योगिक पूँजीवाद की तुलना में कोई महत्व नहीं देता। वह कपड़े के कारखाने खोलकर बहुत मुनाफ़ा कमा रहा है। रायबहादुर कामतानाथ के लड़के सीतानाथ ने "इतना कारोबार फैला लिया है! एक फ्लोर मिल भी खरीद ली है!" व्यापारी, उद्योगपति बढ़ रहे हैं, पैसे का खेल खेल रहे हैं।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में परंपरागत सामंतवाद के पतन और विकसित होते हुए पूँजीवाद का पर्याप्त सजीव चित्रण हुआ है। युग की बदलती हुई पद्धतियों का चित्रण करने में वर्माजी पूर्ण सजग दिखाई देते हैं। पर यह पूँजीवाद भी झूठ, फरेब, धोखा-धड़ी और बेईमानी से ही पनपा है। लक्ष्मीचन्द ने अपने मामा की फर्म का रुपया उड़ाकर एक चीनी की मिल और एक तेल की मिल लगा ली थी। कानपुर में उसने अपना कारोबार खूब बढ़ा लिया था। वह पक्का अवसरवादी बन गया था। सरकार को चंदा देकर उसने 'सर' का खिताब पा लिया था। टका ही उसका धर्म बन गया था। वह अपनी मरणासन्न माँ जैदेई से जो दुर्व्यवहार करता है, उससे उसकी व्यावसायिक बुद्धि और स्वार्थपूर्ण वणिक्-मनोवृत्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। अपनी माँ की

मृत्यु की इन्तज़ार में ठहरना और अपने व्यापार का हर्जा करना उसे असह्य-सा होता है। धन के लोभ ने उसे ममता और भावना से शून्य बना दिया है।

लाला राधाकिशन और संतो भी ऐश्वर्य-विलास और अर्थ के अनर्थ में फंसे हुए हैं। संतो को धन और वैभव के लिए अपना शरीर बेचने में भी कोई ग्लानि नहीं। लाला राधाकिशन को अपनी पत्नी के व्यभिचार की कोई लज्जा नहीं। लाल रिपुदमनसिंह ठीक ही कहता है कि "यहाँ हर चीज़ बिकती है—दीन, ईमान, सत्य, चरित्र ! सब बिकता है। यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है !......यह राधाकिशन सब कुछ देखकर भी आँख बन्द कर लेगा। यही नहीं, बहुत संभव है, यह राधाकिशन तुम्हारे ज़रिये कुछ फायदा उठाने की भी कोशिश करे।"

ज्ञानप्रकाश भी अवसरवादी पूँजीवादी लक्ष्मीचन्द पर टिप्पणी करता हुआ कहता है, "यह पूंजीपति जबरदस्त मुनाफ़ा उठाता है। उस मुनाफे का एक छोटा-सा हिस्सा सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें। इस मुनाफ़े का छोटा-सा भाग वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी आन्दोलन ज़ोर पकड़े और उसका माल ज़ोरों के साथ बिके। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द जो लूट-खसोट करता है, बेईमानी करता है, उसकी ओर से सरकारी कर्मचारी आँखें बन्द कर लें। रुपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है।"

इस प्रकार वर्माजी ने न केवल सामंतवाद और जमींदारी पद्धति की विकृतियों पर प्रकाश डालकर उसके पतन की कहानी स्पष्ट की है, अपितु उसके स्थान पर विकसित होने वाली पूँजीवादी पद्धति की विकृतियों का भी अच्छा चित्रण किया है और स्पष्ट संकेत दिया है कि यह विकृत पद्धति भी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेगी।

★

१५

मध्यवर्ग का उदय और विकास

'भूले-बिसरे चित्र' में मध्यवर्ग के उदय और विकास की भी एक पूर्ण कहानी और विस्तृत झांकी प्रकट की गई है। अंग्रेज़ी राज्य से पूर्व भारत में प्रायः दो ही वर्ग थे : एक उच्च वर्ग और दूसरा निम्नवर्ग। एक राज-वर्ग था—राजा, सामंत, सरदार, जागीरदार सब राज-वर्ग में आते थे—और दूसरा प्रजा-वर्ग था ; एक सम्पन्न और समर्थ वर्ग था, दूसरा विपन्न और दुर्बल था। सामंतवादी युग में मध्यवर्ग की स्थिति प्रायः नहीं थी।

पर ब्रिटिश-राज्य में राज-वर्ग तो अंग्रेज़ों या यूरोपीय जाति के लोगों का बना, जिन्हें ऊँचे-ऊँचे सरकारी पद और ऊँची नौकरियाँ मिलती थीं, साधारण छोटी नौकरियाँ ही भारतीयों को मिलने लगी थीं। अंग्रेज़ी राज्य में भारतीयों के लिए ब्रिटिश नौकरशाही का अंग बनने के सिवा कोई चारा नहीं था। इस ब्रिटिश नौकरशाही का जाल फैलने से ही मध्यवर्ग का उदय हुआ। आरम्भ में इस वर्ग का भी रूप अधिकतर निम्न मध्यवर्ग का रहा। पटवारी, कानूनगो, नायब, तहसीलदार, थानेदार आदि अनेक अमले और अफ़सर इसी वर्ग के घटक बने। एक ओर तो यह वर्ग अपने शासक-वर्ग—अंग्रेज़ अफ़सरों और अंग्रेज़ धनपतियों-उद्योगपतियों के उच्च वर्ग से निम्नतर था, दूसरी ओर सर्वसाधारण मज़दूरों-किसानों, परचूनिया दुकानदारों, बढ़ई-लोहार-सुनार आदि कर्मकारों, चपरासियों आदि के निम्न वर्ग से ऊँचा था। इसकी स्थिति मध्य की थी।

पटवारियों के खानदान के मुंशी शिवलाल इसी मध्यवर्ग के प्रतिनिधि थे। मुंशी शिवलाल के "बाबा मुंशी कुन्दनलाल फतहपुर में पहले-पहल पटवारी की हैसियत से आये थे और अपनी चालाकी, बेईमानी, जाल-फरेब के लिए बुरी तरह बदनाम थे। कुन्दनलाल ने एक पक्का मकान बनवाया था और हज़ारों रुपये नक़द पैदा किये थे।" इस वर्ग का वेतन कम ही था, पर 'ऊपर की

कमाई' के रास्ते खुल गये थे, अतः यह मध्यवर्ग ही बन गया था। मुंशी शिवलाल अपने बाबा की इसी परंपरा के अर्ज़ीनवीस हैं। उस ज़माने में वकील तो बहुत कम थे, अर्जीनवीस ही दावे-परचे का सब काम करते थे, इससे धोखा-धड़ी और खुशामद के व्यवहार से मुंशी शिवलाल मध्यवर्ग की श्रेणी में ही आते थे। पर इस वर्ग की यह हालत न आर्थिक दृष्टि से कुछ अच्छी थी और न नैतिक दृष्टि से।

जो लोग ब्रिटिश नौकरशाही का पुर्ज़ा नहीं बने थे, उनमें से भी कुछ लोग ऊपर उठे और मध्यवर्ग की श्रेणी में आए। लाला प्रभुदयाल के पिता बीस साल पहले एक मामूली-सी पंसारी की दूकान करते थे और निम्नवर्ग का-सा जीवन बिताते थे, पर प्रभुदयाल ने ब्रिटिश-राज्य के संरक्षण में लेन-देन का काम करके अपने वर्ग की हालत सुधार ली और निम्नवर्ग से मध्यवर्ग की उन्नत स्थिति प्राप्त कर ली। बढ़ते-बढ़ते वह उच्च मध्यवर्ग की भी स्थिति को पार कर गए। उनका पुत्र लक्ष्मीचन्द तो आगे चलकर अधिक अनुकूल और परिवर्तित परिस्थितियों में उच्च वर्ग का उद्योगपति-पूँजीपति सर लक्ष्मीचन्द ही बन जाता है।

मुंशी शिवलाल केवल वर्नाक्युलर पढ़े थे, पर उन्होंने अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को इंटर तक पढ़ाया, कुछ अंग्रेज़ी शिक्षा दिलाई। अतः ज्वालाप्रसाद नायब तहसीलदार नियुक्त हो गए। उस ज़माने में बहुत कम लोग शिक्षा पाते थे, अतः नौकरी पाना शिक्षित व्यक्ति के लिए इतनी बड़ी समस्या नहीं थी और फिर ज्वालाप्रसाद की नियुक्ति में मुंशी शिवलाल की खुशामद का भी तो हाथ था! मध्यवर्ग के उत्थान की यह पहली सीढ़ी थी। अब इस वर्ग की हालत अपेक्षाकृत अच्छी होती है: आर्थिक दृष्टि से भी और नैतिक दृष्टि से भी। रहन-सहन, खान-पान, इज्ज़त-आबरू सबमें सुधार होता है। ज्वालाप्रसाद ईमानदार और नेक है। पर मध्यवर्गीय ज्वालाप्रसाद भी एक सीढ़ी से आगे नहीं चढ़ पाता; अधिक उन्नति नहीं कर सकता। वह अपनी मेहनत और ईमानदारी के बल पर तहसीलदार से डिप्टी कलेक्टर तक ही बढ़ता है। सम्पन्नता और समृद्धि उसे भी प्राप्त नहीं होतीं। "और सब कुछ पास में होते हुए भी ज्वालाप्रसाद के पास रुपयों का अभाव था।" ऊपर की कमाई से उसकी हालत बहुत अच्छी हो सकती थी, पर ऊपर की कमाई में उसका विश्वास नहीं था। फिर इस प्रकार के अर्थ-लाभ से नैतिकता की भी तो हानि होती।

ज्वालाप्रसाद का बेटा गंगाप्रसाद बी० ए० सेकण्ड क्लास में पास करके अपनी योग्यता, कुछ-कुछ ज्वालाप्रसाद की खुशामद और कुछ लक्ष्मीचन्द के रुपये के प्रभाव से डिप्टी कलेक्टर नियुक्त होता है। बेटा अपने बाप से ज्यादा पढ़-लिखकर और अधिक अनुकूल परिस्थितियों से अपना 'कैरियर' वहाँ से आरंभ करता है, जहाँ से उसके पिता ज्वालाप्रसाद अंत करते हैं। उसके पिता डिप्टी कलेक्टरी से रिटायर होते हैं और गंगाप्रसाद इस पद से आरंभ करता है। यह स्थिति मध्यवर्ग के उत्थान की दूसरी कड़ी है, दूसरी सीढ़ी है। संभवतः यह स्थिति मध्यवर्ग के चरम विकास की स्थिति हो सकती थी : उसके निम्न मध्यवर्ग से ही नहीं, अपितु मध्यवर्ग से उच्च मध्यवर्ग तक पहुँचने की स्थिति थी। आर्थिक और नैतिक दोनों ही दृष्टि से इस स्थिति में सम्पन्नता संभव थी।

पर अपनी विलासप्रियता, ऐयाशी, अनाप-शनाप खर्चों, सुरा-सुन्दरी आदि में ही वह सबकुछ लुटाता जाता है। उच्च वर्ग में छलांग लगाने के प्रयत्न में वह औंधे मुँह गिरता है, कर्जदार हो जाता है, पैसा बचा नहीं पाता, अपनी आत्मा को बेचता रहता है, अतः टूट जाता है। वह अपने पिता के सामान्य आदर्शवादी मध्यवर्ग के स्थान पर नये बुद्धिजीवी बौद्धिक-भौतिक मध्यवर्ग का प्रतीक बन जाता है।

नवलकिशोर की चौथी पीढ़ी तक आते-आते परिस्थितियाँ वहुत बदल जाती हैं। पढ़े-लिखे युवकों की बाढ़-सी आ जाती है। अब अच्छी नौकरियाँ पाना एक बड़ी समस्या बन जाती हैं। वैसे भी गंगाप्रसाद के बाद की पीढ़ी विद्रोही निकली। प्रेमशंकर को एम० ए० में फर्स्टक्लास प्राप्त करने पर भी अच्छी नौकरी नहीं मिली। विद्या बी० ए० पास करके भी 'नारी शिक्षा सदन' में एक मामूली अध्यापिका का ही स्थान पाती है। मध्यवर्ग की इस पीढ़ी के कुछ युवकों को सरकारी नौकरियों से घृणा भी हो गई थी। नवलकिशोर इसी से आई० सी० एस० के लिए विलायत नहीं जाता। वह अपने पिता की तरह गुलामी नहीं कर सकता। वह राष्ट्र-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेता है।

इस मध्यवर्ग की मर्यादाएँ और खर्चे उसी तरह बढ़े-चढ़े थे, पर आय के साधन अब नवल की पीढ़ी के समय बहुत कम रह गए थे। विद्या की शादी पर उन्हें अठारह हज़ार रुपये के दहेज़ का प्रबंध करना पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से अब यह मध्यवर्ग पुनः विपन्न होता जा रहा है। नवलकिशोर की

हालत आर्थिक दृष्टि से तो अपने परदादा मुंशी शिवलाल की-सी निम्न मध्य-वर्ग की ही हो जाती है, पर आत्म-सम्पन्नता या नैतिकता उसमें अपनी पूर्व पीढ़ी के परदादा, दादा और पिता सबसे बहुत अधिक है। नैतिक दृष्टि से यह मध्यवर्ग के चरम विकास की स्थिति है। अर्थ चाहे न हो, पर चरित्र और आत्मा की सम्पन्नता ने इस मध्यवर्ग को विशेष गौरवान्वित किया। मुंशी शिवलाल से नवलकिशोर तक मध्यवर्ग के उदय, उत्थान-पतन और विकास की यह कहानी 'भूले-बिसरे चित्र' में खूब अच्छी तरह प्रकट हुई है।

सामंतीय वर्ग, जो पूर्व-युग में उच्चवर्ग था, ब्रिटिश-राज्य में उत्तरोत्तर ह्रास को प्राप्त होता गया। उसके पतन की कहानी भी इस रचना में बड़ी सजीव है। हमने अन्यत्र उसका विस्तृत विवेचन किया है। यहाँ यही कहना है कि बदलती हुई परिस्थितियों ने प्राचीन राज-वर्ग या उच्चवर्ग को भी मध्यवर्ग की स्थिति में ला उपस्थित किया। बल्कि उसका भी पतन उत्तरोत्तर निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति और नैतिक अवस्था तक पहुँच गया। उच्च-वर्ग की कोटि में कुछ बड़े-बड़े परंपरागत राजा, जैसे राजा घाटबागान, कुछ अंग्रेज अफसर, जैसे क्लीमेंट्स, मेजर वाट्स आदि, हैरिसन जैसे कुछ उद्योगपति-पूँजीपति, लक्ष्मीचन्द, कामतानाथ, सीतानाथ-जैसे भारतीय उद्योगपति और पूँजीपति, कुछ गिने-चुने भारतीय आई० सी० एस० अफसर ही रह गये थे।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में मध्यवर्ग के उदय और विकास की अच्छी झाँकी प्रस्तुत की गई है। वर्माजी ने युग की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न वर्गों के आर्थिक और नैतिक उत्थान-पतन का अच्छा चित्र खींचा है।

*

१६

नारी-समस्या

परंपरागत सामाजिक बंधनों में नारी की दशा बहुत शोचनीय हो गई थी। पर्दे की प्रथा ने उसे घर की चारदीवारी में बंद कर दिया था। घूँघट और घाघरा में लिपटी वह जीवन और जगत् की बातें सोच ही नहीं सकती थी। यमुना, रुक्मिनी, छिनकी, राधा, जैदेई आदि ऐसी ही भारतीय नारियाँ हैं। विधवा-विवाह निषिद्ध था, इसीसे जैदेई-जैसी जवान विधवाओं को मृत्यु-पर्यन्त विधवा ही बना रहना पड़ता था। पुरुष-प्रधान समाज में नारी की दशा बहुत चिंतनीय थी। पुरुष एकाधिक विवाह कर सकता था। स्त्री को तलाक का अधिकार किसी भी हालत में नहीं था। हिन्दू कोडबिल की पृष्ठ-भूमि का 'भूले-बिसरे चित्र' में बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। विद्या को उसके ससुराल वाले यातनाएँ देकर निकाल देते हैं। उसका पति सिद्धेश्वरी दूसरा विवाह करा लेता है। वह और उसका बाप बिन्देश्वरी विद्या को सब अधिकारों से वंचित कर देते हैं। बिन्देश्वरी कहता है, "मुझे यह पूछना है कि क्या यह (विद्या) इस शादी में शरीक होगी और इस शादी के बाद सिद्धेश्वरी के साथ रहने को तैयार होगी?" अन्यथा, "यह समझ लीजिए कि यह हम लोगों से किसी भी तरह के गुज़ारे की हक़दार न होगी।" यही नहीं, बिन्देश्वरी विद्या का अपमान करता हुआ कहता है, "इतना याद रखना कि हिन्दू लॉ में तलाक नहीं होता। तू ज़िन्दगी-भर सिद्धेश्वरी की बीवी ही रहेगी। अगर कभी तेरी बदमाशी या बदचलनी की ख़बर हम लोगों को मिली तो तुझे सीधा जेल भिजवा देंगे!"

नारी की इस करुण परिस्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है। पूर्व युग की नारी तो घर से बाहर ही नहीं निकलती थी। जब गंगाप्रसाद रुक्मिनी को कहता है कि तुम भी दिल्ली चलकर नगर और दरबार को देख लो, तो वह

कहती है, "राम, राम, तुम्हारे साथ दिल्ली घूमने पर लोग क्या कहेंगे ? दो हाथ का घूँघट काढ़कर मैं तुम्हारे साथ चलूँगी तो लोग हँसेंगे नहीं !"

संतो जब घूंघट काढ़े राधाकिशन के साथ गाड़ी में सवार होती है तो उसके लिए पर्दा टांगना पड़ता है। इस प्रकार पुरानी परम्परा की नारियाँ पर्दे में ही रहती थीं। घर नें भी लक्ष्मी की बहू राधा ज्वालाप्रसाद से पर्दा करती है। पर शनैः-शनैः नारी की शिक्षा के साथ पर्दे की यह लानत हटती जाती है। शिक्षित नारी न केवल पर्दे से बाहर निकल आई है, अपितु अब वह घर की चार दीवारी को लांघ कर जीवन के व्यापक क्षेत्र में कार्यरत होने लगी है। वह स्वदेशी आन्दोलन आदि राष्ट्र-आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने लगी, जेल जाने लगी, कांग्रेस आदि के अधिवेशनों में शामिल होने लगी। मलका या माया शर्मा, विद्या आदि नवयुग की ऐसी ही नारियाँ हैं।

पूर्वयुग में नारी का घर से बाहर निकलना ही कठिन था, विदेश जाना तो दूर की बात थी। अब उच्चवर्ग की शिक्षित नारी भी विलायत जाने लगी। उषा की माँ उषा के स्विट्ज़रलैंड जाने का विरोध करती है। उसके विचार से नारी का इस प्रकार घूमना निर्लज्जता की बात है। पर रायबहादुर कामतानाथ उषा को अपने साथ स्विट्जरलैंड ले जाते हैं। यमुना को विद्या का लाहौर काँग्रेस में जाना बहुत अखरा था, क्योंकि वह पुराने युग की नारी है।

पूर्वयुग में नारी के नौकरी करने की बात तो कल्पनातीत ही थी। पूर्वयुगीन संस्कारों के ज्वालाप्रसाद आदि को विद्या का नौकरी करना बहुत अटपटा-सा और मर्यादा के विपरीत लगता है। एक ओर तो ये पुराने लोग नारी के नौकरी करने के विरुद्ध थे—इसे नारी और कुल की मर्यादा के विपरीत मानते थे : विद्या के 'नारी शिक्षा सदन' में अध्यापिका के स्थान पर नौकरी करने पर ज्वालाप्रसाद एक ठण्डी सांस भरकर कहते हैं, "यह दिन भी देखना बदा था ! घर की लड़की घर से निकलकर नौकरी करे, दूसरों की गुलाम बने !"

दूसरी ओर आधुनिक युग की सम्पन्न नारी नौकरी करने के विरुद्ध है। विद्या जब उषा को अपनी नौकरी लगने की सूचना देती है तो उषा चौंककर कहती है, "तो क्या नौकरी करोगी ? लोग क्या कहेंगे और तुम्हें भी कैसा लगेगा ?"

विद्या कहती है, "मुझे तो बहुत अच्छा लगेगा, मैंने इसके लिए कोशिश की है। अपने पैरों पर मैं खुद खड़ी हो रही हूँ, इस पर मुझे गर्व है। न किसी पर निर्भर हूँ, न किसी की आश्रित हूँ। रही यह बात कि दूसरे क्या कहेंगे, तो इसकी चिन्ता ही बेकार है।" नवल भी विद्या की बात का समर्थन करता हुआ कहता है, "जो लोग विद्या पर उँगलियाँ उठाएँगे, वे पुरानी दुनिया के लोग होंगे—उस पुरानी दुनिया के जो मिट रही है। जहाँ तक नई दुनिया वालों का सवाल है, वे लोग इसे ठीक समझेंगे, वे लोग विद्या का आदर करेंगे। स्त्री का भी अपना एक अस्तित्व है।"

उच्च और सम्पन्न वर्ग की उषा नारी की स्वतंत्रता के तो पक्ष में है, पर नौकरी को नारी की मजबूरी ही मानती है। वह नारी की शोभा सुगृहिणी के रूप में ही स्वीकार करती है। नवल की बात का उत्तर देती हुई उषा कहती है, "वह घर के बाहर निकलकर गुलामी करे, वह पुरुष के कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करे, परिवार और घर की मर्यादा को तोड़ दे—आपकी यह नई दुनिया आप ही को मुबारक हो!......स्त्री-पुरुष, निर्बल-सबल, गरीब-अमीर के भेद-भाव अनादि काल से रहे हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। जिन मान्यताओं की आप दुहाई दे रहे हैं वे झूठी हैं।"

उषा स्पष्ट शब्दों में कहती है कि यूरोप में भी जो नारियाँ नौकरी करती हैं, वे इसीलिए कि वे नौकरी करने को विवश हैं, ठीक उसी तरह जैसे हमारे यहाँ नीच जाति की स्त्रियाँ नौकरियाँ करती हैं। लेकिन जो नौकरी करने को विवश नहीं हैं वे मौज से रहती हैं, खुलकर खर्च करती हैं; "उनके नौकर-चाकर हैं, उनके पास शानदार मोटरें हैं, उनके पास आलीशान कोठियाँ हैं। थियेटर, सिनेमा, कार्नीवाल, वे सब जगह जाती हैं;...।"

स्पष्ट है कि उषा की विचारधारा एक सम्पन्न नारी की विचारधारा है जो सम्पन्न व्यक्ति को ही अपना पति बनाना चाहती है और सुख-मौज का संघर्षरहित जीवन बिताना चाहती है। वह कहती भी है, "स्त्री की स्वतंत्रता के यह अर्थ नहीं होते कि उसे गुलामी करने के लिए दुनिया में भटकना पड़े। स्त्री की स्वतंत्रता के यह अर्थ होते हैं कि वह घर की चहारदीवारी के बाहर निकल सके, उसे घर के बन्धनों से मुक्ति मिले, वह बाहर घूम-फिर सके, परदे से निकलकर वह सभा सोसाइटियों में मिल-जुल सके और यह स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सम्पन्नता चाहिये नवल बाबू!"

स्पष्ट है कि विद्या के नौकरी करने और उसके तथा नवल के दृढ़ चरित्र और प्रगतिशील विचारों से वर्माजी ने नारी के नौकरी करने, स्वावलम्बन का मार्ग अपनाने का समर्थन किया है।

आधुनिक युग में नारी की स्वच्छन्दता और विलासप्रियता भी एक समस्या बन गई थी। जहाँ पुराने ढंग की अशिक्षित नारी परदे में रहती थी और नैतिकता के बंधनों में बन्धी थी, वहाँ अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा और उच्चवर्ग की विलासिता के प्रभाव से आधुनिक नारी स्वच्छंदता की ओर बढ़ती गई। संतो के चरित्र का विकास वर्माजी ने इसी हेतु किया है। वह पहले एक कुल-वधू ही थी, किन्तु वैभव और विलास ने उसे ऐसा उकसाया कि वह काम-वासना की पुतली स्वच्छन्द नारी बन जाती है। गंगाप्रसाद ही नहीं, वह मेजर वाट्स, राजा घाटबागान आदि कई पुरुषों के साथ स्वच्छन्द विहार करती है। वह अंग्रेजी सीख कर क्लबों और दावतों, डिनर-पार्टियों में सम्मिलित होती है। पुरुषों के साथ वाल-डांस में भाग लेती और सुरापान करती है। रानी हेमवती, राजा घाटबागान, मेजर वाट्स आदि सब वासना के पुतले बने हुए हैं। नारी को स्वयं अपने इस स्वच्छन्द रूप पर ग्लानि होती है, पर एक बार इस चक्कर में फँस जाने पर, एक बार मर्यादा का बाँध टूट जाने पर संभलना कठिन हो जाता है। संतो कहती भी है: "मैं अपने से ही विवश हूँ। मैं भी कभी-कभी सोचने लगती हूँ कि मैं गलत कर रही हूँ, लेकिन मेरी गलती दिखाने वाला भी तो कोई नहीं है। सोचो तो, कौन-सा सहारा है मेरे पास, जिसे पकड़कर मैं बचूँ ? जिस सहारे को मैं पकड़ती हूँ, वही मुझे नीचे घसीटता है।" उसके रूप-सौन्दर्य का लोभी पुरुष उसे भटकाता है और वह भटकती है, अपना शरीर बेचती है, बदले में धन, वैभव, पद और प्रतिष्ठा पाती है। इस प्रकार वैभव की दीवानी नारी का चित्रण वर्माजी ने संतो और कैलासो के कुत्सित चरित्रों द्वारा प्रस्तुत किया है। कैलासो भी रानी साहिबा बनने के लिए—अपने पति को राजा साहब का खिताब दिलाने के लिए 'सब कुछ' करने को तैयार है। वह गंगाप्रसाद-जैसे सरकारी अफ़सर पर झुकी पड़ती है।

इस प्रकार वर्माजी ने नारी की स्वच्छन्दता और विलासिता को भी सामाजिक अभिशाप माना है। नारी के इस पाश्चात्य तितली रूप से समाज में व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि बुराइयाँ ही बढ़ती हैं।

नारी की एक और समस्या मलका वेश्या के जीवन-प्रसंग से प्रस्तुत की

गई है। मलका वेश्या है, पर अपने पेशे से उसे घृणा हो गई है। वह इज्जत-आबरू का जीवन बिताना चाहती है। वह गंगाप्रसाद से बहुत प्रेम करती है और चाहती है कि गंगाप्रसाद की ब्याहता बनकर इज्ज़त का जीवन बिताए। पर गंगाप्रसाद तो उसे केवल अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाये हुए था। वह समाज और कुल की मर्यादा की दुहाई देकर मलका से शादी नहीं करता। मलका के जीवन में सत्यव्रत शर्मा का प्रवेश उसके उद्धार का सूचक है। वर्मा-जी ने वेश्या की समस्या का एकमात्र हल यही दर्शाया है कि सत्यव्रत जैसे उदार और प्रगतिशील युवक वेश्या से शादी करके उसे इज्ज़त-आबरू का जीवन बिताने का अवसर दें।

इस प्रकार नारी की विविध समस्याओं का प्रकाशन 'भूले-बिसरे चित्र' में हुआ है। नारी-जीवन के अनेक पहलुओं का चित्रण हुआ है; उसके अबला से सबला बनने की प्रेरणा मलका, विद्या-जैसी श्रेष्ठ नारियों के चरित्र-चित्रण द्वारा जगाई गई है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ, समस्याएं और राष्ट्रीय आन्दोलन

भारत में अंग्रेजी-शासन अपनी समस्त कूटनीतियों से सशस्त्र और सशक्त होकर दृढ़ हो चुका था। दिल्ली-दरबार का आयोजन ब्रिटिश-साम्राज्य के वैभव और शक्ति का ही प्रदर्शन था। भारतीय जनता परतंत्रता की चक्की में पिस रही थी। भारत पूरी तरह गुलाम हो चुका था। देशी राजाओं-महाराजाओं ने भी अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। सैंकड़ों वर्षों की राजनीतिक अराजकता, जो मुस्लिम-शासन-काल में व्याप्त रही थी, वह पहली बार अंग्रेजी शासन से समाप्त हुई और इस दृष्टि से भारतीय जन-जीवन ने कुछ राहत महसूस की थी—अमन-चैन का अनुभव किया था। इस कारण १९वीं शताब्दी के अन्त तक बहुत से भारतीयों ने अंग्रेजी-राज्य का स्वागत भी किया था। पं० सोमेश्वरदत्त कहते हैं, "अब हम पूर्ण रूप से गुलाम हो गए। इंगलैंड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है, हिन्दुस्तान के राजे-महाराजे उसके सामने अपना सिर झुकाएँगे,...।...जो कुछ हो रहा है, वह अच्छा ही हो रहा है। किसी तरह इन म्लेच्छ यवनों का शासन तो अपने ऊपर से हटा, देश की अराजकता दूर हुई, जुल्मों से त्राण मिला, हर जगह अमन-अमान फैला।"

पर विदेशी विदेशी ही था। अंग्रेजों का उद्देश्य तो भारत का शोषण करना था। सुशासन की स्थापना भी एक धोखा था। नई राजनैतिक अवस्था और नई शिक्षा-दीक्षा ने एक ओर तो भारत के एक बहुत बड़े शिक्षित समुदाय को राजभक्त (अंग्रेजी सरकार-भक्त) बना दिया था, दूसरी ओर इसके साथ ही एक ऐसे शिक्षित-वर्ग का निर्माण हुआ जो देश के शोषण, उसकी परतन्त्रता, अधोगति और पतन को सहन नहीं कर सकता था। मुंशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, मीर जाफ़र अली आदि पहले प्रकार के खुशामदी राजभक्त हैं,

गंगाप्रसाद बुद्धिजीवी राजभक्त है, तो ज्ञानप्रकाश, नवलकिशोर, सत्यव्रत शर्मा आदि दूसरी कोटि के शिक्षित भारतीय हैं।

अंग्रेज़ अपने को शासक-वर्ग का समझते थे। रंग-भेद की उनमें बड़ी विकृत भावना थी। यूरोपियन क्लबों में भारतीय काले आदमियों को घुसने नहीं दिया जाता था। ईसाई बने हुए भारतीय जोनाथन डेविड को अंग्रेज़ सिविल सर्जन मेकगिल ने अपनी यूरोपियन क्लब में घुसने नहीं दिया, पर उसकी गोरी मेम को प्रवेश प्राप्त था। रेलवे कम्पनी यूरोपियन गोरों के लिए अलग डिब्बा रिज़र्व रखती थी। उसमें भारतीय सफर नहीं कर सकते थे। कानपुर का अंग्रेज स्टेशन मास्टर ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद को इस डिब्बे से उतारना चाहता था। अंग्रेज गोरे फर्स्टक्लास में भी भारतीयों को अपने साथ सफ़र नहीं करने देते थे। इस रंग-भेद की नीति से भारतीयों में विद्रोह की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक था। हैरिसन नामक अंग्रेज़ पूँजीपति से झगड़ा होने पर गंगाप्रसाद को कितनी हानि उठानी पड़ती है! उसे ज्वाइंट मजिस्ट्रेट से पुनः डिप्टी कलेक्टर बना दिया जाता है। हैरिसन बड़ी दुष्टता से कहता है कि आगे किसी अंग्रेज़ से उलझने की धृष्टता मत करना। अंग्रेज़ कमिश्नर ने भी गंगाप्रसाद से कहा था, "अंग्रेज अंग्रेज़ है, हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी है! एक शासक है, दूसरा शासित है। यह बात तुम्हें बुरी भले ही लगे, लेकिन यह सत्य है।"

अंग्रेज़ी-राज्य के वैभव का वर्णन भी बड़ा सजीव हुआ है। गंगाप्रसाद कहता है कि दिल्ली में दरबार इसलिए किया जा रहा है "कि अकबर और औरंगज़ेब की रूहें इस विदेशी बादशाह के वैभव को देखें और उस पर रश्क करें।" दिल्ली दरबार के निर्माण का वर्णन करते हुए वर्माजी ने लिखा है, "एक मिनट के बाद ही अंग्रेज घुड़सवारों से घिरी हुई चार घोड़ों से जुती हुई एक फ़िटन निकली जिस पर एक अंग्रेज़ सुनहरी बर्दी में बैठा था। रास्ते के पुलिस के सिपाही उस फ़िटन के आगे झुक-झुककर सलाम करते थे और वह अंग्रेज़ दूर तक फैले हुए नगर के निर्माण-कार्य को अजीब संतोष और गर्व के साथ देख रहा था।" यह पंजाब का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर था। इस दरबार का सारा प्रबन्ध इसके हाथ में था।

लाल रिपुदमनसिंह कहते हैं, "बाबू गंगाप्रसाद, हिन्दुस्तान पर राज्य जार्ज पंचम का नहीं है; यहाँ राज्य अंग्रेजों का है। आपने देखा, उस पंजाब के

लेफ्टिनेण्ट गवर्नर से लेकर उस (हिन्दुस्तानी) सिपाही को गाली देता हुआ टामी, ये सब अपने को यहाँ का राजा समझते हैं और उन मज़दूरों से लेकर निज़ाम हैदराबाद तक जितने हिन्दुस्तानी हैं, वे सब गुलाम हैं।"

अंग्रेज़-सरकार भारी चन्दा देने वाले पूँजीपतियों तथा राजभक्त भारतीयों को हर वर्ष 'सर', 'रायसाहब', 'रायबहादुर', 'राजा बहादुर' आदि उपाधियाँ देती थी। दिल्ली-दरबार के लिए लक्ष्मीचन्द ने पचास हज़ार रुपये दिये थे। "पहली जनवरी १९१२ ई० के 'पायोनियर' में नववर्ष की उपाधियाँ पाने वालों की सूची में अपना नाम देखकर लक्ष्मीचन्द उछल पड़ा।" उसे 'सर' का खिताब मिला था। सन्तो के सम्बन्ध से मेजर वाट्स लाला राधाकिशन को "राजाबहादुर' का खिताब दिलाता है। कामतानाथ ने खुशामद और चन्दे के बल से 'रायबहादुर' की पदवी प्राप्त की थी। इस प्रकार भारतीयों को सरकार का भक्त बनाने के लिए ब्रिटिश-सरकार उपाधियाँ वितरित करती थी।

प्रथम महायुद्ध में अंग्रेज़ों की लड़ाई भारतीयों ने जीती थी। ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन दिया था कि युद्ध के बाद भारत को सुधार मिलेंगे। इसीसे महात्मा गांधी आदि भारतीय नेताओं ने ब्रिटेन का युद्ध में साथ देना स्वीकार किया था। जब गंगाप्रसाद ब्रिटिश-साम्राज्य की प्रशंसा करता है और कहता है कि "जर्मनी को कुचलकर रख दिया है इस ब्रिटिश साम्राज्य ने!" तो ज्ञानप्रकाश कहते हैं, "जी हाँ, जर्मनी को कुचलकर रख दिया है इस साम्राज्य ने! लेकिन तुमने कभी यह भी सोचा है कि जर्मनी को हराया किसने है! जानते हो कितने हिन्दुस्तानी इस महायुद्ध में मरे हैं? अंग्रेज़ों की लड़ाई हिन्दुस्तानियों ने लड़ी है—गुरखा, सिख, पठान, बिलोची, राजपूत, गढ़वाली, तिलंगाने, मराठे—सारे हिंदुस्तान से सैनिक गये थे। पचास लाख की फौज थी हिन्दुस्तानियों की, तब कहीं जर्मनी हारा! गंगा, अब यह सब कहने से काम नहीं चलेगा। हम लोगों को डोमीनियन स्टेटस मिलना ही चाहिए।"

भारतीय जनता दो पाटों के बीच पिस रही थी। एक ओर तो अपनी ही मूढ़ता, चारित्रिक दुर्बलता, अशिक्षा तथा गली-सड़ी सामाजिक परम्पराओं और बुराइयों में फँसी भारतीय जनता दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गई थी, दूसरी ओर ब्रिटिश-राज्य तथा अन्य शोषक-शक्तियाँ मगरमच्छ की तरह उसे निगल रही थीं। हमारे समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं को भी इसी से दो

मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था : एक था सामाजिक, धार्मिक बुराइयों के विरुद्ध और दूसरा था विदेशी शासन के विरुद्ध। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामतीर्थ आदि ने ब्रह्मो समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं की स्थापना करके धर्म-सुधार, समाज-सुधार तथा राजनैतिक चेतना जगाने के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिये थे। आल इण्डिया कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ ई० में हो चुकी थी, जिसका मूल उद्देश्य था देश में राजनैतिक सुधार उत्पन्न करना और भारतीयों को राजनैतिक अधिकार दिलाना।

किन्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाल गंगाधर तिलक (बाल), लाला लाजपतराय (लाल) तथा विपिनचन्द्रपाल (पाल), गोखले और गांधी के राजनीतिक मंच पर अवतरित हो जाने से डोमीनियन स्टेटस, स्वराज्य आदि की माँग और ब्रिटिश-राज्य के विरुद्ध व्यवस्थित आन्दोलन आरम्भ हुए। देश के राजनीतिक संघर्ष की बागडोर गांधीजी के हाथ में आने पर असहयोग, खिलाफत, सत्याग्रह, स्वदेशी आन्दोलन, नमक कानून तोड़ना आदि कितने ही संघर्ष समय-समय पर चले। इस समस्त राजनीतिक चेतना और संघर्ष का सजीव चित्रण 'भूले-बिसरे चित्र' में हुआ है।

प्रथम महायुद्ध के बाद भारतीयों को राजनीतिक अधिकार देने के आश्वासन की पूर्ति तो दूर रही, उल्टा दमन-चक्र तेज हो गया। ब्रिटिश-सरकार ने अपनी मूर्ख और मूढ़ सी० आई० डी० का जाल फैला दिया था। इसी सी० आई० डी० के भय से गंगाप्रसाद अमृतसर कांग्रेस देखने जाने को तैयार नहीं होता।

इंगलैंड की ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में कुछ सदस्य ऐसे थे जो भारतीयों के विरुद्ध दमन-चक्र के खिलाफ़ थे और भारतीयों को शनैः-शनैः अधिकार दिये जाने के पक्ष में थे। विलियम ग्रिफिथ्स ऐसा ही अंग्रेज़ है जो ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का सदस्य है और इंगलैंड से हिन्दुस्तान की हालत, और खास तौर से अमृतसर-कांग्रेस को देखने के लिए आया है। साथ ही वह यह भी पता लगाना चाहता है कि सर माइकेल ओडायर द्वारा हिन्दुस्तान में जो ज्यादतियाँ की गई हैं उनका असर हिन्दुस्तान की जनता पर कैसा पड़ा है!" मि० ग्रिफिथ्स रंग-भेद नीति के विरुद्ध है और भारत को स्वराज्य दिये जाने के भी विरुद्ध है। वह कहता है, "हिन्दुस्तान की इकत्तीस करोड़ की आबादी ब्रिटिश-

साम्राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। ब्रिटेन के लिए हिन्दुस्तान को खो देने के अर्थ होंगे ब्रिटेन की महत्ता का विनाश। फिर हिंन्दुस्तान इस योग्य भी तो नहीं है कि वह खुद शासन कर सके। हाँ, हिन्दुस्तान को सुधार मिलेंगे, धीरे-धीरे।"

मि० ग्रिफिथ्स को आश्चर्य है कि जलियाँवाला बाग़ जैसे हत्याकाण्ड के बाद भी इस देश में कोई उत्तेजना नहीं, कोई हलचल नहीं। वह कहता है कि अधिकांश हिन्दुस्तानी सन्तुष्ट हैं: अंग्रेज़ी शिक्षा ब्रिटिश-राज्य के सर्वथा अनुकूल है। वह कहता है, "शिक्षित व्यक्तियों के स्वार्थों की रक्षा हम लोग करते जायँ, तो हम सही-सलामत हैं।" इस प्रकार ग्रिफिथ्स उस युग के उन ब्रिटिश संसद-सदस्यों का प्रतिनिधि है, जो भारत के प्रति उदार नीति रखते हुए भी उसे स्वराज्य देने के हक़ में नहीं थे।

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता

ब्रिटिश-सरकार का सबसे बड़ा तर्क यही था कि भारत इस योग्य नहीं है कि वह स्वयं शासन कर सके। ब्रिटिश-सरकार इसके लिए सबसे बड़ा प्रमाण यह देती थी कि यहाँ विभिन्न सम्प्रदायों विशेषतः हिन्दू-मुसलमानों नें परस्पर द्वेष, कलह और लड़ाई-झगड़ा होता है। अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिश-सरकार ने 'फूट डालो और राज्य करो' (Divide And Rule) की नीति अपना ली थी। मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने और उनमें पृथक्ता की प्रवृत्ति उकसाने के लिए ही अंग्रेज़ों ने शै देकर मुस्लिम लीग की स्थापना कराई थी। ज्ञानप्रकाश कहते हैं, "हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को अंग्रेज़ों ने मुस्लिम लीग की स्थापना कराके खड़ा कर दिया है, इससे मुझे इन्कार नहीं, लेकिन लखनऊ-कांग्रेस में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो गया है। अब वह समस्या समाप्त हो गई है।"

'भूले-बिसरे चित्र' में हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का बड़ा ही यथार्थ चित्रण हुआ है। वर्माजी ने एतत्सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के लोगों की विभिन्न विचारधाराओं पर बड़ा ही तथ्यपूर्ण प्रकाश डाला है। ज्ञानप्रकाश महात्मा गांधी का अनुयायी है, कांग्रेस की नीति का समर्थक है, उसकी दृष्टि में हिन्दू-मुस्लिम समस्या काल्पनिक है, अंग्रेज़ों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उठाई हुई है। पर मुस्लिम-नेता और हिन्दू-विचारधारा के लोगों का मत है कि यह समस्या वास्तविक है। गंगाप्रसाद हिन्दू-विचारधारा का हिन्दू है। वह मि० ग्रिफिथ्स

को कहता है, "हमारे देश की एक बहुत बड़ी और जटिल समस्या हिन्दू-मुसलमान की समस्या है। इस समस्या को सुलझाने में हम करीब तीन सौ साल से उलझे रहे हैं। जब यह समस्या सुलझने पर आ रही थी उसी समय यहाँ अंग्रेज़ आ गए।......आपसी युद्ध में रत हिन्दुओं और मुसलमानों ने समान भाव से अंग्रेज़ों का स्वागत किया, और इस वैमनस्य के कारण धीरे-धीरे सारा देश अंग्रेज़ों की गुलामी में आ गया। उस समय अगर अंग्रेज न आए होते तो सौ वर्ष के अन्दर हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का अन्त हो गया होता। लेकिन अंग्रेज़ों के आ जाने से समस्या वैसी-की-वैसी बनी रही।"

मि० ग्रिफिथ्स जब पूछता है कि यह समस्या वास्तविक है या काल्पनिक ?—तो जहाँ ज्ञानप्रकाश इसे काल्पनिक बताता है, वहाँ गंगाप्रसाद कहता है, "यह वास्तविक है। लखनऊ का समझौता कागज पर हुआ है, दिलों में नहीं हुआ है। वह समझौता सिद्धांत है, कर्म नहीं है और फिर आप यह भूल जाते हैं कि वह केवल समझौता है। अगर समस्या ही नहीं है तो समझौते की क्या आवश्यकता ?"

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर संघर्ष इतिहास की एक परम्परा थी और कुछ मुसलमानों की पृथकतावादी नीति के कारण और कुछ हिन्दुओं की कायरता और कूपमंडूकता के कारण मुसलमानों का पूर्ण भारतीयकरण नहीं हो सका था। पर भारतीयकरण और हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रक्रिया जारी थी और यदि अंग्रेज-सरकार फूट डालने और मुसलमानों को पृथकता के लिए उकसाने का कार्य न करती, तो गांधीजी आदि नेता हिन्दू-मुस्लिम एकता के अपने प्रयत्न में सफल हो जाते।

मुसलमानों को कांग्रेस की ओर आकर्षित करने, उन्हें ब्रिटिश-सरकार के विरोध में हिन्दुओं का साथी बनाने के लिए गाँधीजी ने खिलाफत आन्दोलन में योग दिया। "१६ मार्च, १६२० का शोक-दिवस वैसे काँग्रेस द्वारा राष्ट्रीय दिवस के रूप में घोषित हुआ था और मनाया गया था, लेकिन उस दिन सभाएँ अधिकांश में मुसलमानों की ही हुई थीं। तुर्की के खलीफ़ा के प्रति देश के हिन्दुओं में एक प्रकार की उदासीनता ही थी।" कहीं-कहीं दुर्भाग्यवश मुसलमान "भाषणकर्त्ताओं ने ब्रिटिश-सरकार के खिलाफ़ विष-वमन करते-करते हिन्दुओं के खिलाफ़ भी विष-वमन कर डाला था।" इससे हिन्दू-मुस्लिम तनाव

घटने की बजाय कुछ बढ़ा ही। हाँ, फरहतुल्ला-जैसे कुछ मुसलमान अवश्य कांग्रेस में सम्मिलित हो गए।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'भूले-बिसरे चित्र' की रचना के समय भगवती बाबू पर हिन्दुवादी विचारधारा का प्रभाव था। इसी से उन्होंने ज्ञानप्रकाश-जैसे प्रगतिशील विचारधारा के अपने आदर्श पात्र के मुख से भी कुछ ऐसी मुस्लिम-विरोधी बातें प्रकट की हैं, जो पूर्ण सत्य नहीं मानी जा सकतीं। उसके इन कथनों से वर्माजी का गांधी-नीति से विरोध स्पष्ट आभासित होता है। गंगाप्रसाद जब कहता है कि "कांग्रेस में और तुर्की के खलीफ़ा में क्या रिश्ता? यह जो कांग्रेस ने शोक-दिवस की घोषणा की थी, वह मेरी समझ में जरा भी नहीं आई।"—तो "अपना सिर खुजलाते हुए" ज्ञानप्रकाश कहता है, "हाँ यार बरखुरदार, यह शोक-दिवस आया तो मेरी भी समझ में नहीं, लेकिन इस शोक-दिवस की कल्पना महात्मा गाँधी ने और कांग्रेस के नेताओं ने की थी और महात्मा गांधी गलत नहीं करते, यह तै है, यानी हम सब कांग्रेसमैन ऐसा तै किये हुए हैं। तुम तो जानते ही हो कि मुसलमान हमारे भाई हैं।"

गांधीजी के खिलाफत में योग देने की यह आलोचना तो यथार्थ है, और ज्ञानप्रकाश द्वारा गांधीवादी यह समाधान भी कांग्रेसी विचारधारा के अनुरूप है—"तुर्की का खलीफ़ा इन मुसलमानों का धर्मगुरु है।······हिन्दुस्तान के मुसलमानों से सरकार बरतानिया ने वादा किया था कि तुर्की पर कोई आँच न आने पाएगी, यानी वह तुर्की का कोई नुकसान नहीं करेगी, तब जाकर कहीं हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने बरतानिया की तरफ से जंग में हिस्सा लिया था। अब हमारे देश के मुसलमानों को क्रोध भी होना चाहिये, दुःख भी होना चाहिये और चूँकि मुसलमान हमारे भाई हैं, इसलिए हमें क्रोध भले ही न हो, दुःख तो होना ही चाहिए।"

पर जब हिन्दूवादी गंगाप्रसाद कहता है कि "मेरा तजुर्बा तो यह कहता है कि यह मुसलमान हिन्दुओं का न कभी भाई रहा है और न कभी भाई रहेगा। यह तो हिन्दुओं का सबसे बड़ा दुश्मन है और हजार साल से यह दुश्मनी चली आ रही है।"—तो ज्ञानप्रकाश का यह कथन गांधीजी की हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रयत्नों की खिल्ली ही उड़ाने का सूचक नहीं है, अपितु मुस्लिम-विरोधी भी है। वह कहता है, "कहते तो बरखुरदार बिलकुल ठीक हो। इस मुसलमान की जड़ें हिन्दुस्तान में नहीं हैं, इसकी जड़ें तुर्की में और मक्का-

मदीना में हैं। लेकिन महात्मा गांधी तो कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं और जब वह कहते हैं तब उनकी बात माननी ही पड़ती है। तो बरखुरदार, इस भाई-भाई की आवाज़ से अगर हिन्दू-मुसलमानों में एका हो जाय तो क्या बुरा है?"

वर्माजी ने इस उपन्यास में मुस्लिम-साम्प्रदायिकता का काला रूप दिखाया है। डिप्टी अब्दुल हक़अलीरजा आदि ही नहीं, अपितु कांग्रेसी फरहतुल्ला तक को उन्होंने कट्टर मुसलमान और पृथकतावादी दिखाया है। सब मुसलमानों को साम्प्रदायिक रंग में रंगे दिखाना भी एकांगी दृष्टिकोण का ही परिचायक है। क्या उन्हें एक भी मुसलमान सच्चा राष्ट्रवादी नहीं मिला?

खिलाफ़त के जिन तीन मुसलमान आन्दोलनकारियों की ज्ञानप्रकाश ने, कांग्रेस के आदेश पर इलाहाबाद से जौनपुर आकर, ज़मानतें कराई थीं, जुलूस के समय उन्होंने जेल से छूटने के बाद ज्ञानप्रकाश को पूछा तक नहीं। डिप्टी अब्दुलहक़ और फरहतुल्ला समीउल्ला के स्थान पर बंसीधर की नियुक्ति को साम्प्रदायिक रंग दे डालते हैं। "यहाँ क़ाबिल नाक़ाबिल का सवाल नहीं उठता; यहाँ तो सवाल यह है कि एक मुसलमान को हटाकर उसकी जगह एक हिन्दू मुकर्रर हुआ है।" वे इस बात पर बावेला मचा देते हैं, गंगाप्रसाद के विरुद्ध—'गंगाप्रसाद काफिर है' के नारे लगवा देते हैं, बंसीधर को रिश्वत के अभियोग में फँसवा देते हैं और मुसलमानों को भड़काते हैं।

अलीरज़ा, डिप्टी अब्दुलहक़ जैसे मुसलमान भारत के स्वराज्य या डोमीनियन स्टेटस प्राप्त करने के विरुद्ध हैं। अलीरज़ा कहता है कि अन्दर से तो खिलाफत के लिए मेरी कोई हमदर्दी नहीं है, पर बाहर तो मुझे फिरके में शामिल होकर इस तुर्की के खलीफ़ा के लिए ज़ार-ज़ार आँसू बहाने पड़ते हैं।......"मेहरबान, हिन्दुस्तान की आज़ादी की बाबत सोचना-विचारना हमारा काम नहीं है। यहाँ तो रोटी और बोटी से मतलब है, जो खुदा की मेहरबानी से सरकार बरतानिया हमें देती जा रही है।"

इस प्रकार वर्माजी ने दिखाया है कि अधिकांश मुसलमान अंग्रेज़ी सरकार के वफ़ादार थे और देश की आज़ादी से कोई सरोकार न रखते थे। खिलाफत आन्दोलन की हिमायत में ब्रिटिश-सरकार का विरोध करने वाले एक मुसलमान खानबहादुर मुहम्मद मूसा से जब ज्ञानप्रकाश पूछता है कि "हिन्दुस्तान को डोमीनियन स्टेटस मिलने के बारे में आपका क्या ख्याल है?"—तो खान-

बहादुर साहब कहते हैं, "पागलपन की बात है मेरे अजीज, क़तई पागलपन की बात है !……मैं कहता हूँ कि अगर आज हिन्दुस्तान को स्वराज मिल जाय तो वह मार-काट मच जायगी, वह खून-खराबा बरपा होगा कि पनाह खुदा की !"

और डिप्टी अब्दुलहक़ तो इतने साम्प्रदायिक हैं, जो यहाँ तक कह डालते हैं, "डोमीनियन स्टेटस, स्वराज, इनके माने हैं अंग्रेज़ों की सरपरस्ती में हिन्दू-राज का कायम होना ठाकुर साहेब ! यह जो डेमोक्रेसी है, जहाँ वोट पड़ते हैं, वहाँ हिन्दुओं की बन आएगी, क्योंकि उनकी तादाद हम मुसलमानों की तादाद से बहुत ज्यादा है। ऐसी हालत में हम मुसलमानों को अंग्रेज़ों की जगह हिन्दुओं की गुलामी करनी पड़ेगी। तो एक हल्की-फुल्की गुलामी से निकलकर जनम-जनम तक अखरने वाली गुलामी में हम बंधने को तैयार नहीं।"

ज्ञानप्रकाश इन सम्प्रदायवादियों को समझाता हुआ कहता है, "मैं समझा नहीं, यह हिन्दू-मुसलमान का सवाल किस तरह उठ खड़ा होता है ! हम लोग इस देश के निवासी हैं, चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान ! और इस देश के निवासी होने के नाते हम हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं।" पर ये कट्टर मुसलमान तो अपनी साम्प्रदायिकता में अंधे बने हुए थे। वे 'भाई-भाई' की आवाज़ को धोखा समझते थे। इन्हें इस बात का दंभ था कि "हमने एक हज़ार वर्ष तक हिन्दुओं पर हुकूमत की है ! सरकार भी समय-समय पर मुसलमानों को भड़काती रहती थी। कानपुर के अंग्रेज कलेक्टर ने होली के अवसर पर मुसलमानों पर रंग छिड़कने की स्थिति पर अशांति का जो रहस्यपूर्ण संकेत किया था, उससे गंगाप्रसाद को आश्चर्य हुआ था। "वह सोच रहा था कि सैंकड़ों वर्षों से यह होली का त्यौहार मनाया जा रहा है, लेकिन कभी दंगे नहीं हुए। हिन्दू-मुसलमान सब मिलकर होली खेलते थे। इस बार होली के अवसर पर साम्प्रदायिक अशान्ति पर विचार करने की क्या आवश्यकता थी ?" कट्टर मुस्लिम नेताओं की हिन्दू-विरोधी भावना और पृथकता की प्रवृत्ति के बावजूद कुछ मुसलमान अवश्य नेशलिस्ट विचारधारा के बने। हिन्दूवादी गंगाप्रसाद को भी ज्ञानप्रकाश इस प्रकार समझाता है, "इस हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को मिटाना होगा और गंगाप्रसाद, यह भेदभाव केवल सद्भावना से ही मिट सकता है। तुम्हारी सद्भावना से दूसरों की सद्भावना जागेगी।" पर हिन्दुओं में भी एक वर्ग ऐसा रहा जो अपनी कट्टरता के कारण मुसलमानों के प्रति

सदा अनुदार रहा। गंगाप्रसाद कहता है, "खिलाफ़त आन्दोलन पर काँग्रेस में सार्वजनिक और देशव्यापी आन्दोलन का प्रस्ताव पास कराने वाले लोगों को जरा यह तो देख लेना चाहिये कि यह हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव की खाई कितनी गहरी है! इस भेद-भाव की खाई को नहीं पाटा जा सकता।"

गांधीजी के प्रयत्नों से हिन्दू-मुसलमानों के भेद-भाव पर्याप्त दूर हो रहे थे। फरहतुल्ला ने वकालत छोड़ दी। कांग्रेस ज्वाइन कर ली। कांग्रेस का बड़ा नेता बन गया। कलकत्ता कांग्रेस में वह शामिल हुआ। खिलाफ़त लीग कांग्रेस में शामिल हो गई थी। मौलाना मुहम्मदअली व मौलाना शौकतअली कांग्रेस के नेता बन गए थे।

पर देश के कुछ स्थानों से हिन्दू-मुसलमानों में दंगे होने की खबरें आने लगी थीं। "मालाबार में मोपला मुसलमानों ने जो उत्पात किया" था—कितने हिन्दुओं को जान से मार डाला था, कितनों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया था! उससे हिन्दू भड़क उठे थे। क्रिया-प्रतिक्रिया का दौर सारे देश में आरम्भ हो गया था।

किस प्रकार खिलाफ़त आन्दोलन के सिलसिले में मुसलमान कांस्टेबल मस्जिद के अंदर घुसने और पुलिस पर पत्थर फेंकने वाले मुसलमानों तथा मुस्लिम-नेताओं को गिरफ्तार करने से इन्कार कर देते हैं, गंगाप्रसाद हवलदार शिवलाल से कहता है, "तुम हिन्दू-कांस्टेबलों को लेकर इन लोगों को गिरफ्तार करो, मेरा हुक्म है।"—इस प्रकार बात-बात में हिन्दू-मुसलमान का मामला बनने-बनाने की नौबत आ जाती थी—इसका सजीव चित्रण 'भूले-बिसरे चित्र' में हुआ है। मलका के मामले में डिप्टी अब्दुलहक़ और अलीरजा का तास्सुब कितना फ़िसाद बरपा करता है, यह भी बड़ी ही सजीवता से प्रकट हुआ है।

असहयोग आन्दोलन—खिलाफ़त में सहयोग देने के साथ गांधीजी ने देश-भर में असहयोग आन्दोलन चला दिया। ज्ञान प्रकाश कहता है, "करीब दस-बीस लाख हिन्दुस्तानी, जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पाई है, अंग्रेजी सरकार की नौकरी कर रहे हैं और समस्त देश को अंग्रेजों का गुलाम बनाए रखने में अंग्रेजों की सहायता कर रहे हैं। अगर ये लोग अंग्रेजों को अपना सहयोग देना बन्द कर दें तो इन अंग्रेजों के लिए हिन्दुस्तान का शासन चलाना असम्भव हो जायगा; यही नहीं, इनका हिन्दुस्तान में रहना ही असम्भव हो जायगा।...... इस असहयोग को खिलाफ़त आन्दोलन से बहुत बड़ा बल प्राप्त हुआ है। देश

के मुसलमानों में इस समय अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रबल भावना जाग उठी है। मद्रास में जो खिलाफ़त-परिषद् हुई थी उसमें देश के मुसलमानों ने असहयोग-आन्दोलन के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया है। ये मुसलमान मूलतः भारतवर्ष के निवासी हैं, यह भी मुसलमानों ने अनुभव कर लिया है। अभी हाल में ही खबर आई है कि उन हज़ारों मुसलमानों को जो ब्रिटिश-हुकूमत के विरोध में हिन्दुस्तान छोड़कर अफ़गानिस्तान में बसने जा रहे थे, अफ़गानिस्तान की सरकार ने अपने देश की सीमा में घुसने तक नहीं दिया। अब आप समझ सकते हैं कि असहयोग के लिए इससे बढ़कर मौक़ा और क्या मिलेगा ! बड़ी मुश्किल से अब जाकर कहीं हिन्दू-मुसलमानों में एका हो पाया है। हमें इस मौके का फायदा उठाना चाहिए और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की जड़ को मजबूत कर लेना चाहिए।"

गांधीजी ने असहयोग के साथ स्वदेशी आन्दोलन का भी सूत्रपात कर दिया था। देश-भर में "आन्दोलन चल रहा था, बड़ी तेज़ी के साथ—एक अजीब ढंग से ! हड़तालें हो रही थीं, चरखा चलाया जा रहा था, खादी का और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था ; विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था। जलूस निकलते थे और खुल्लम-खुल्ला सरकार की निंदा की जाती थी। अंग्रेज़ों को गालियाँ दी जाती थीं।" गंगाप्रसाद-जैसे सरकारी अफ़सर निर्दयता और सख्ती के साथ आन्दोलन दबाने में लगे थे। जेलें भर गई थीं, लोगों पर कड़े जुर्माने किये गए थे। "८ जुलाई सन् १९२१ ई० को करांची में खिलाफ़त-परिषद् की कांफ्रेंस" से मुसलमानों में और उत्तेजना फैली थी। "अली भाइयों की गिरफ्तारी से तो जैसे देश में आग ही लग गई" थी।

"अहिंसा पर विश्वास रखने वाले नेताओं के जेलों में होने के कारण नेतृत्व कुछ ऐसे लोगों के हाथ में आ गया था, जो हिंसा पर विश्वास करते थे।" कई स्थानों पर अंग्रेज़ों के साथ ही हिन्दुओं को भी मुसलमानों के क्रोध का शिकार होना पड़ा था। मोपला मुसलमानों के अत्याचारों से देशभर में कटुता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। खिलाफ़त के प्रति हिन्दुओं की सहानुभूति भी नहीं रही थी।

कांग्रेस स्वयंसेवक दल को ग़ैरकानूनी घोषित किया जाने वाला था। देश के छः करोड़ हरिजनों को साथ मिलाने के लिए गांधीजी ने छुआछूत के विरुद्ध अभियान छेड़ रखा था। उन्होंने हरिजनों के उत्थान के लिए कई कार्य-

क्रम तैयार किये थे। ज्ञानप्रकाश एक पढ़े-लिखे चमार गेंदालाल को असहयोग-स्वदेशी आन्दोलन में योग देने को कहता है। पर जिन हरिजनों को गंगाप्रसाद-जैसे सवर्ण हिन्दू अपने कमरे में भी दाखिल होने देना नहीं चाहते, वे किस आशा पर आन्दोलन में भाग लेते! गेंदालाल गंगाप्रसाद द्वारा अपमानित होकर ज्ञानप्रकाश से कहता है, "जहाँ बैठने का अधिकार भी लोग हमें न दें, वहाँ बातचीत ही क्या होगी? आन्दोलन कीजिए, स्वराज्य लीजिए, लेकिन हम लोगों को ज़िन्दा रहने दीजिए! हम लोग तो आप लोगों की गुलामी करने के लिए ही पैदा हुए हैं।" इस प्रकार अछूतों की समस्या का भी बड़ा यथार्थ चित्रण हुआ है।

स्वदेशी आन्दोलन का भी इस रचना में बड़ा यथार्थ चित्रण हुआ है: "मूलगंज के चौराहे पर यह (कांग्रेस का) जलूस रुका। बीच चौराहे पर विदेशी कपड़ों का ढेर लगाया गया। कपड़ों के साथ लकड़ी का कुछ सामान लोग इधर-उधर से बटोर लाये थे ताकि आग अच्छी तरह जल सके। फिर लोगों ने जोश से भरे हुए व्याख्यान दिये। व्याख्यानों के बाद इस विदेशी कपड़ों के ढेर में आग लगा दी गई।......लपट के निकलते ही लोगों ने 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाए।" सत्यव्रत शर्मा-जैसे कांग्रेसी युवक घर-घर में जाकर विदेशी कपड़े इकट्ठे करते थे और इस प्रकार विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाती थी। एक कांग्रेस-स्वयंसेवक गंगाप्रसाद से भी कहता है, "महाशयजी! एक कपड़ा, चाहे रुमाल हो, चाहे टाई हो, बस एक ही कपड़ा आप भी दे दीजिए। इस पुण्य काम में हाथ बटाना भारत-माता के हर एक सुपुत्र का धर्म है!"

विदेशी दूकानों पर पिकिटिंग की जाती थी, विलायती माल की बिक्री को भारी धक्का लगा था। कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि औद्योगिक नगरों में स्वदेशी आन्दोलन ने खूब ज़ोर पकड़ा, क्योंकि देशी मिल-मालिक और उद्योगपतियों की आर्थिक सहायता इस आन्दोलन को प्राप्त थी। कानपुर में लक्ष्मीचन्द इस आन्दोलन के लिए कांग्रेस को खूब चन्दा देता था।

बम्बई में युवराज के आगमन का बायकाट किया गया था, पुलिस को भीड़ पर गोली चलानी पड़ी थी। युवराज का बायकाट बड़ा उग्र और हिंसात्मक हुआ था।

"दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में बंगाल तथा समस्त उत्तर भारत में

क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट ऐक्ट लागू कर दिया गया। बंगाल तथा युक्त-प्रान्त के समस्त प्रमुख कांग्रेस-नेता गिरफ्तार कर लिये गए। २५ दिसम्बर (१६२१ ई०) को युवराज कलकत्ता में पहुँचे, लेकिन वहाँ जितनी बड़ी हड़ताल हुई तथा समस्त उत्तर भारत में जो हड़तालें हुईं और जो प्रदर्शन हुए उनसे हालत और भी चिन्ताजनक हो गई।"

असहयोग, स्वदेशी, सत्याग्रह और लगानबन्दी आदि आन्दोलनों से एक बार तो ब्रिटिश-सरकार बहुत चिंतित हो चुकी थी। स्थान-स्थान पर ऊँचे सरकारी अफ़सर भी तंग आ गए थे। गंगाप्रसाद कहता है, "जान आफ़त में है इस असहयोग और धरने की वजह से! उसपर यह सत्याग्रह और लगान-बन्दी!"

सत्याग्रहियों और विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर धरना देने वालों को गंगाप्रसाद सख्त सजाएँ देता है। रामनारायण नामक युवक से, जिसे धरना देने के अभियोग में पकड़ा गया था, गंगाप्रसाद पूछता है कि क्या तुम्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है?—तो रामनारायण कहता है, "तुम टोडी बच्चे, अंग्रेज़ों के गुलाम हो, गद्दारों और देशद्रोहियों के इजलास में सफ़ाई देना पाप है! महात्मा गांधी की जय!" पुरुष ही नहीं, भारतीय नारियाँ भी आन्दोलन में भाग लेने को निकल पड़ी थीं। गंगादेवी, माया शर्मा आदि भी विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना देती हैं।

"सन् १६२२ ई० की जनवरी का महीना एक भयानक अस्थिरता और आशंका को लेकर आरम्भ हुआ था। कांग्रेस और ब्रिटिश-सरकार में अब एक विकराल संघर्ष छिड़ गया था, और अधिकारीगण शंकित तथा चिंतित थे।" खिलाफ़त की समाप्ति के बाद गंगाप्रसाद ने "अनुभव किया कि धीरे-धीरे यह (असहयोग) आन्दोलन हिन्दुओं का आन्दोलन बनता जा रहा है। गिरफ्तार होने वालों में मुसलमानों की संख्या अब नहीं के बराबर होती थी। ऐसा लगता था कि मुसलमानों ने उस आन्दोलन से हाथ खींच लिया था।"

असहयोग, स्वदेशी आन्दोलन शहरों तक ही सीमित था। गांधीजी ने इस आन्दोलन को देहातों में ले जाने के लिए देहातों में करबन्दी को सामूहिक सत्याग्रह का कार्यक्रम बनाया। पर आन्दोलन ने हिंसात्मक रूप ले लिया। चौरी-चौरा की हिंसात्मक घटना से गांधीजी को बड़ा धक्का लगा था। वहाँ "इक्कीस पुलिस के सिपाहियों और एक सबइंस्पेक्टर को ज़िन्दा जला दिया

गया था और थाना फूंक दिया गया था।" महात्मा गांधी इस हिंसा से बहुत दुःखी हुए थे और १२ फ़रवरी को बारदोली में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक में प्रस्ताव पासकर गांधीजी ने सामूहिक सत्याग्रह को वापस ले लिया था। "सारे देश में एक प्रकार की निराशा और कुण्ठा की लहर फैल गई।...... चौबीस फ़रवरी को दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस की महासमिति का अधिवेशन" हुआ। "सत्याग्रह का स्थगित किया जाना अधिकांश सदस्यों को अच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन जो प्रभावशाली सदस्य थे, वे जेलों में थे......। फिर भी बहुमत की माँग थी—और महात्मा गांधी स्वयं इससे सहमत थे—कि व्यक्तिगत सत्याग्रह तो चलता रहे।"

"आन्दोलन में निश्चित रूप से शिथिलता आ गई थी...कांग्रेस कार्यकर्ता जेलों से छूटकर बाहर आ रहे थे—थके-से, टूटे-से। उनमें आन्दोलन को फिर से चलाने का कोई उत्साह नहीं था।" उधर सरकार ने यह देखकर कि गाँधी जी का प्रभाव उसके अपने कांग्रेस दल में ही, सत्याग्रह वापस लेने के विरोध के कारण, फीका पड़ गया है, गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी के विरोध में कानपुर आदि कुछ नगरों में हड़तालें हुईं, लेकिन लोगों में क्रोध नहीं था, उत्तेजना नहीं थी, एक घुटन से भरी करुणा और पीड़ा भरी थी।"

मुल्तान आदि कई स्थानों से हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबरें फिर आने लगी थीं। गंगाप्रसाद को गुलामी की नौकरी से घृणा हो गई थी और वह इस्तीफ़ा देना चाहता था, पर जब इन दंगों की खबरें सुनता है और फ़रहतुल्ला-जैसे नेशनलिस्ट मुसलमान के मुख से भी यह सुनता है कि मुसलमानों का कल्चर अलग है और हिन्दू-मुसलमानों में बुनियादी भेद है, तो वह अपना विचार बदल देता है। वह फरहतुल्ला से कहता है, 'मुझे ऐसा लगता है कि ये दंगे अभी बढ़ेंगे, बेतहाशा बढ़ेंगे। यह तो शुरूआत-भर है। आपने उस दिन यह तसलीम किया था कि यह हिन्दू-मुसलमानों का भेद-भाव बुनियादी है और मैं अब इस बात को मान गया। इस बुनियादी भेद-भाव को मिटाने में सैकड़ों साल लग जायेंगे।...जब गुलामी ही भोगनी है तो आराम के साथ, हँस-खेलकर क्यों न भोगी जाय।' और यह कहते-कहते गंगाप्रसाद ने अपने हाथ वाला इस्तीफ़ा फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया?"

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में राष्ट्र-आन्दोलन और राजनीतिक

परिस्थितियों का बड़ा व्यापक और तथ्यपूर्ण चित्रण हुआ है। अंग्रेजी-सरकार की कूटनीति, 'फूट डालो और शासन करो' की नीति, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, मुसलमानों की पृथकतावादी मनोवृत्ति, स्वराज्य-आन्दोलन का सख्ती से दमन-चक्र, आन्दोलन की तीव्रता और शिथिलता आदि परिस्थितियों के बावजूद राष्ट्र-आन्दोलन जारी रहा। सन् १९३० से कुछ पूर्व देश में कम्यूनिज्म का भी प्रचार और प्रसार होने लगा था। प्रेमशंकर का कुछ ऐसे ही विदेशी साम्यवादियों से सम्पर्क होता है, जो "अंग्रेज होते हुए भी ब्रिटिश-सरकार के और ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के घोर शत्रु" थे। साम्यवाद के प्रवेश से देश में उग्र क्रांतिकारी संगठन को बल मिला। 'मेरठ कांस्पिरेसी' में कितने ही युवक गिरफ्तार किये गए। प्रेमशंकर का इन क्रांतिकारियों से केवल सम्बंध था, उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया था, फिर भी सी० आई० डी० ने 'मेरठ कांस्पीरेसी केस' के सिलसिले में उसका नाम शामिल करके उसकी गिरफ्तारी के वारंट निकाल दिये थे।

साइमन-कमीशन का कांग्रेस ने बड़ी सफलता के साथ बहिष्कार किया था। पर हिन्दू-मुस्लिम दंगों ने एक तरह से राष्ट्र-आन्दोलन तथा भारत के राजनीतिक जीवन को तोड़ दिया था। सत्यव्रत शर्मा-जैसे कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में भी निराशा और घुटन-सी भर गई थी। देश में बेकारी और गरीबी बढ़ रही थी। ज्ञानप्रकाश नई परिस्थिति का इस प्रकार वर्णन करता है, "लेकिन अब देश में हजारों, लाखों ऐसे युवक हैं जो शिक्षित हैं, लेकिन असम्पन्न हैं, बेकार हैं। यह क्रांतिकारी आन्दोलन···आखिर यह इसी बेकारी का अभिशाप है न! बहुत दिनों तक अंग्रेजों ने शिक्षित लोगों की बेकारी के असन्तोष को हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न खड़ा करके तथा हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़वाकर दबाए रखा। लेकिन झूठे उपचारों से तो सभी समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं;···मैं समझता हूँ कि देश की राजनीतिक स्थिति में यह सड़न अधिक दिन तक क़ायम नहीं रह सकेगी।"

"लार्ड अरविन ने विलायत से लौटकर ३१ अक्तूबर १९२९ को जो घोषणा की, उसकी चारों ओर चर्चा हो रही थी।" इलाहाबाद में १६ नवम्बर को "सर्वदल सम्मेलन हुआ। लेकिन बड़े निराशाजनक वातावरण में। वाइसराय की घोषणा पर ब्रिटिश-पार्लियामेंट में जो-जो बातें की गईं तथा ब्रिटिश-मंत्रियों द्वारा जिस प्रकार उस घोषणा का स्पष्टीकरण किया गया उससे देश

का नवयुवक समुदाय बहुत अधिक क्षुब्ध हो उठा। देश का नवयुवक ब्रिटिश-शासकों की छल-कपट-भरी नीति का शिकार बनने को तैयार नहीं था। उसमें उमंग थी, उत्साह था, संघर्ष के प्रति मोह था, प्राणों की बाज़ी लगाने का शौक था। इस नवयुवक समुदाय का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के हाथ में था।" २३ दिसम्बर को दिल्ली में वायसराय लार्ड इरविन और महात्मा गाँधी में समझौता होने वाला था। 'लीडर' और 'पायोनियर' दोनों ही दैनिकों ने अपने विशेषांक निकालकर यह खबर दी कि सुबह के समय जब वायसराय दिल्ली वापस आ रहे थे, पुराने किले के पास उनकी स्पेशल ट्रेन के नीचे एक बम फटा। वायसराय बाल-बाल बच गए।"

लाहौर कांग्रेस से नवयुवकों में नया उत्साह उमड़ आया। "लाहौर कांग्रेस का समस्त वातावरण उद्विग्नता से भरा था। गाँधी और लार्ड इरविन में समझौते की बात टूट चुकी थी; देश में निराशा और क्रोध का एक वातावरण भर गया था। लड़ना है, संघर्ष करना है! माँगों से कुछ नहीं मिलने का! जो कुछ लेना है उसे जबरदस्ती लेना पड़ेगा।" गाँधी की पूर्ति जवाहरलाल है। उसके नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष की आशा जगी। "२६ जनवरी १९३० को देश-भर में स्वतंत्रता-दिवस मनाया जाने वाला था। अभी तक कांग्रेस की माँग औपनिवेशिक स्वराज्य की थी, लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल गई थीं। जब स्वराज्य के लिए लड़ना ही है तो पूर्ण स्वतंत्रता के लिए क्यों न लड़ा जाय? कलकत्ता-कांग्रेस में पहली बार स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ था; लाहौर-कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का बीड़ा उठाया। स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र तैयार कर लिया गया और छब्बीस जनवरी को देश के कोने-कोने में हरेक व्यक्ति" ने स्वतंत्रता का व्रत धारण किया।

"२ मार्च सन् १९३० को महात्मा गाँधी ने लार्ड इरविन के नाम एक पत्र प्रकाशित किया और उस पत्र से देश-भर में एक हलचल मच गई। वह पत्र सत्याग्रह-आन्दोलन का घोषणा-पत्र था। हर तरह के प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे। ब्रिटिश-सरकार स्वराज्य देने को ज़रा भी तैयार नहीं थी। महात्मा गाँधी के पास सिवा सत्याग्रह के और कोई चारा न था।" महात्मा गाँधी के इस पत्र का भी ब्रिटिश-सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। फलतः साबरमती में चुने हुए सत्याग्रही एकत्रित हो रहे थे। १२ मार्च को वे सब महात्मा गाँधी के साथ पैदल चलकर दांडी में नमक-कानून भंग करने को

निकल पड़े। पाँच अप्रैल को गाँधी जी ने नमक-कानून भंग किया और उसी दिन पूरे हिन्दुस्तान में सब जगह नमक-कानून तोड़ा गया। हज़ारों लोग सत्याग्रह के लिए घर से निकल पड़े। नवल और ज्ञानप्रकाश ने भी नमक-सत्याग्रह किया, जेल गए। "हज़ारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे।"

इस प्रकार स्वतंत्रता-संघर्ष और देश की राजनीतिक परिस्थितियों का 'भूले-बिसरे चित्र' में बड़ा सजीव वर्णन हुआ है। सन् १८८५ ई० से अप्रैल १९३० तक की राजनीति एवं राजनीतिक संघर्ष का इस उपन्यास के अंतिम तीन खण्डों में बड़ा व्यापक चित्रण हुआ है। इन तीन खण्डों में इस उपन्यास का रूप-स्वरूप एक सफल राजनीतिक उपन्यास का रूप है।

१८

वर्माजी का नियतिवाद

नियतिवाद की एक विशिष्ट छाया भगवतीचरण वर्मा के प्रायः सभी उपन्यासों में दिखाई देती है। इस सम्बंध में उन्होंने स्वयं अपने नियतिवादी होने को स्वीकारा है। उनका कथन है, "मैं नियतिवादी हूँ और मेरे नियति-वादी होने के सुस्पष्ट कारण भी हैं। मैं जो कुछ हूँ, परिस्थितियों ने मुझे वह बनाया है और यह परिस्थितियाँ मेरे हाथ में नहीं थीं।...मुझे याद है कि मैंने कभी अमीर और सम्पन्न बनने के सपने देखे थे, मैंने राजनीतिज्ञ बनने के सपने देखे थे, मैंने शक्तिशाली अफ़सर बनने के सपने देखे थे। लेकिन इनमें से मैं कुछ नहीं बन पाया, मैं बन गया एक साहित्यकार! और अब यह सोच रहा हूँ कि अच्छा हुआ जो साहित्यकार बन गया। करोड़पति और अमीर बनने के लिए बेईमानी नहीं करनी पड़ी, चोरबाज़ारी का सहारा नहीं लेना पड़ा। राजनीति में आकर मिनिस्टर बनकर दूसरों के आगे हाथ फैलाना नहीं पड़ा, ग़लत आदमियों से समझौते नहीं करने पड़े, छल-कपट के प्रपंच में नहीं पड़ना पड़ा।...और इसलिए जो कुछ मैं बन गया उससे मुझे संतोष है।"

जीवन-संघर्षों ने वर्माजी की चेतना और मन के विकास में योग दिया है। अतः उनका नियतिवाद अकर्मण्यता का द्योतक नहीं। मनुष्य को 'परिस्थितियों का दास' मानते हुए भी वह मनुष्य की सबलता इसी बात में मानते हैं कि वह परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करे।

'चित्रलेखा' में ही सर्वप्रथम वर्माजी का नियतिवादी जीवन-दर्शन प्रकट हो गया था। इस रचना में उनका उद्देश्य यही है कि पाप और पुण्य का निर्णय या व्यक्ति के आचरणों का निर्णय उसकी परिस्थितियों के ही संदर्भ में किया जा सकता है, क्योंकि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। परिस्थितियों के वश में पड़कर महायोगी कुमारगिरि स्खलित हो जाता है। चित्रलेखा-जैसी अद्भुत सुन्दरी का उसके पास एकांत में रहना, प्रणय-याचना करना ऐसी परिस्थिति

थी जिसमें उसका साधना-च्युत हो जाना स्वाभाविक ही था। फिर उसे पापी या उसके वासना-पूर्ति के कार्य को पाप कैसे कहा जा सकता है ? इसी प्रकार चित्रलेखा भी परिस्थितिवश ही मार्ग-भ्रष्ट होती है। परिस्थितियों के वश ही योगी भोगी वन जाता है और भोगी बीजगुप्त अंत में योगी बन जाता है। विलासिता के मादक वातावरण में श्वेतांक-सा ब्रह्मचारी भोगी बन जाता है और इसके विपरीत संयम और साधना के पवित्र वातावरण में विशालदेव ब्रह्मचारी और योगी बना रहता है। विशालदेव की दृष्टि में कुमारगिरि देवता है और बीजगुप्त पापमय संसार का पापी है। श्वेतांक की दृष्टि में बीजगुप्त देवता है, त्याग की मूर्ति है, कुमारगिरि पापी है, पशु है। यह भिन्न दृष्टिकोण परिस्थितियों का ही खेल है।

वर्माजी के इस नियतिवादी दृष्टिकोण को उपसंहार में कहे गए महाप्रभु रत्नाम्बर के शब्द स्पष्ट करते हैं : "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनः प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है—प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर अभिनय करने आता है। अपनी मनः प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है। वह कर्त्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पाप और पुण्य कैसा ?" मनुष्य न पुण्य करता है, न पाप, वह केवल वही करता है जो उसे करना पड़ता है।

किन्तु वर्माजी ने मनुष्य की विवशता का प्रकृत अनुभव करके भी उसकी सबलता नियति का खिलौना बनने में नहीं मानी है। महाप्रभु रत्नाम्बर कहते हैं, "मनुष्य की विजय वहीं संभव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाये, वरन् अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे।"

उन्होंने इस सम्बन्ध में 'रंगों के मोह' की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा है, "मेरे ऊपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि मैं नियतिवादी हूँ। जो नियति-वादी है वह किस प्रकार जीवन के उद्देश्य एवं भावना के उदात्तीकरण की बात कर सकता है, यह कुछ लोग पूछेंगे। नियतिवाद में दुःखवाद के अवयव हैं, अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत है। मेरा नियतिवाद इस दुःखवाद

से शासित नहीं है। यह समस्त रचना-विकास के नियमों पर आधारित है। मनुष्य में गुण सक्रिय हैं—वह दया, प्रेम, त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ही सामाजिक प्राणी बन सका है और निरंतर विकास करता जाता है। नियतिवाद का दृष्टिकोण एक स्वस्थ दृष्टिकोण है—मेरा ऐसा विश्वास है, जो मेरे निजी अनुभवों से मुझे प्राप्त हुआ है।"

वर्माजी के इस कथन से स्पष्ट है कि वर्माजी निराशावादी या दुःखवादी नियतिवादी नहीं हैं। श्री जयशंकर 'प्रसाद' के नियतिवाद की तरह उनका नियतिवाद भी कर्मवाद और भोगवाद पर आधृत है, निवृत्ति और भाग्य पर नहीं।

'सामर्थ्य और सीमा' में वर्माजी ने मनुष्य की दुर्बलता और प्रकृति की तुलना में असहाय-दशा का ऐसा वर्णन किया है जो निश्चय ही प्रेरणाहीन है। प्रकृति मनुष्य के अहं को तोड़ डालती है। कुछ ही देर में जल-प्लावन होता है और सब उसमें समाधि ले लेते हैं। मनुष्य की विवशता और अवशता का यह दुःखद रूप है। नियति एक झटके से सबकुछ समाप्त कर देती है। मृत्यु और विनाश का यह संगीत वर्माजी के नियतिवाद का एक दुर्बल पक्ष है।

'सामर्थ्य और सीमा' में लेखक के विचारों का वाहक नाहरसिंह भी नियतिवादी जीवन-दर्शन प्रकट करता है। नियति पर उसकी अटूट आस्था है। वर्माजी की तरह, जीवन के अनुभव ने नाहरसिंह को नियतिवादी बनाया है। उसका विश्वास है कि "नियति का चक्र चल रहा है और इस नियति के चक्र की गति बदलने में मैं असमर्थ हूँ, तुम असमर्थ हो, हरएक आदमी असमर्थ है। बनाने और मिटाने वाला कोई दूसरा ही है, हम तो स्वयं बनाए-मिटाए जाते हैं।...यहाँ किसी का ठिकाना नहीं, कठपुतलियों का नाच हो रहा है, डोर किसी दूसरे के हाथ में है जिसे हम देख नहीं पाते।"

पर इस घोर नियतिवादी को वर्माजी ने कर्मठ-कठोर और जीवट के व्यक्ति के रूप में दिखाया है। वह संघर्षशील और कर्त्तव्य-परायण है। वह मौत से भी जूझने का साहस रखता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उसका नियतिवाद निष्क्रिय भाग्यवाद नहीं है, कर्मवाद है। जिस प्रकार प्रसादजी का पात्र जीवक कहता है, "अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कर्म्मकूप में कूद सकता हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है, वह तो होगा ही, फिर कायर क्यों बनूँ—कर्म से क्यों विरक्त रहूँ—।"

('अजातशत्रु' प्रथम अंक, चौथा दृश्य)—उस प्रकार स्पष्ट शब्दों में तो नाहरसिंह अपने कर्मवाद का उल्लेख नहीं करता, पर उसके कथन और चरित्र का ताल-मेल यही है कि वह कर्मवादी नियतिवादी है। इस पात्र की कर्मठता और सजीवता ने ही उसके या वर्माजी के नियतिवाद को इस रचना में निष्क्रिय दुःखवाद होने से बचाया है।

'रेखा' उपन्यास की अंतिम परिणति भी वर्माजी ने अपने चिरपरिचित नियतिवाद में ही की है। परिस्थितियों ने ही उसका सारा जीवन चालित किया है, वह नियति के धक्कों से लुढ़कती रही। अन्त में नियति के विधान से ही वह डॉ० योगेन्द्रनाथ मिश्र के साथ विदेश नहीं जा पाती: उसके हवाई अड्डे पर पहुंचने से पहले ही उनका हवाई जहाज़ उड़ान ले लेता है। वह सोचती है कि "नियति ने जो मार्ग उसके लिए निर्धारित किया है, वह उससे नहीं हट सकेगी। उस नियति के विधान के प्रति आत्म-समर्पण, उस घुटन, उस कुण्ठा को प्राणों से हमेशा-हमेशा के लिए चिपटाए रखना, जिसको उसने वरण किया है, उसके अन्दर अब सबकुछ बुझ गया है—एक अभेद्य और गहन अन्धकार, इसी में उसे रहना है।" अन्त में बेसहारा, असहाय और एकाकी रह जाने पर भी रेखा नियति से पराजय स्वीकार नहीं करती। वह दृढ़ है, रेखा है—अटल, अचल। वह कहती है, "आप जानते हैं, नियति ने मेरे साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ किया है, लेकिन मैं रेखा हूँ—रेखा! सब मिट गए लेकिन यह रेखा—मिट-मिटकर भी यह अमिट है।"

'भूले-बिसरे चित्र' में भी कई स्थानों पर वर्माजी ने परिस्थितियों की प्रबलता और मनुष्य की अवस्था का वर्णन किया है, पर कहीं भी निराशावाद या अकर्मण्यता का दृष्टिकोण नहीं अपनाया। एक बार संतो के चारित्रिक पतन का दोषी लाल रिपुदमनसिंह ने गंगाप्रसाद को बताया था। पर पुनः भेंट होने पर लाल रिपुदमन कहता है कि संतो के बदल जाने में परिस्थितियों और आधारभूत व्यक्तित्व का हाथ है। "बाबू गंगाप्रसाद, आधारभूत व्यक्तित्व में देवता होता है, दानव होता है। नेकी और बदी, क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में हर एक व्यक्तित्व के भाग हैं। अन्तर इतना है कि यह आधारभूत व्यक्तित्व परिस्थिति के अनुसार अपने को प्रकट करता हैं।......व्यक्ति की आधारभूत प्रवृत्तियाँ विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही; उभारने के लिए यदि तुम साधन न बने होते तो कोई दूसरा साधन बन गया होता। आदमी कुछ नहीं करता,

जो कुछ कराती हैं, वे परिस्थितियाँ ही कराती हैं।······गलती करते हो बाबू गंगाप्रसाद, जो तुम अपने को कर्त्ता समझते हो। तुम केवल साधन हो—बस केवल साधन!" वर्माजी के इस दृष्टिकोण से चरित्र के यथार्थ स्वरूप को समझने की दृष्टि प्राप्त होती है और मानव-जीवन में परिस्थितियों, अदृष्ट या नियति की प्रबलता प्रमाणित होती है।

इस नियतिवाद का अभिप्राय यही है कि जो होना होता है, वह अवश्य होता है, उसे कोई नहीं रोक सकता, जो आगे होना है, वह अवश्य होगा। नियति का विधान अटल है। फिर किसी हानि से शोक कैसा? जब विद्या ज्ञानप्रकाश से कहती है, "क्या करूँ ज्ञान बाबा, मेरे ही कारण दादी गई है।"—तो ज्ञान-प्रकाश कहते हैं, "कोई किसी के कारण नहीं जाता विद्या, वह जाता है इसलिए कि उसे जाना है। तुम्हारे बाबा भी चले जायेंगे, मैं भी चला जाऊँगा, और एक दिन तुम भी चली जाओगी। जो हो गया उसे रोका नहीं जा सकता था, जो होने वाला है, उसे रोका नहीं जा सकेगा।"

यह 'होनहार अटल है' या 'भावी अटल है' का चिरपुरातन दर्शन है। मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं। परिवर्तन प्रकृति या नियति का अटल नियम है। जो आया है, जायगा ही। फिर अभाव से दुःख और निराशा क्यों? बूढ़े ज्वालाप्रसाद ने सबकुछ देखा, विवशता के साथ सबकुछ सहा है! वह दुनिया के परिवर्तन को अवशभाव से देखते रह जाते हैं। "उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। अपने चारों ओर वाला वातावरण उन्हें नितान्त अनजाना लग रहा था। उनके अतीत के चित्र एक के बाद एक उनकी आँखों के आगे आने लगे—धुँधले-से और अस्पष्ट-से। शिवलाल, गंगाप्रसाद, यमुना, ये सब-के-सब गये, जैसे इन लोगों का कभी कोई अस्तित्व नहीं था। और एक दिन वह भी चले जायेंगे, इसी प्रकार अस्तित्वहीन बनकर। तो फिर यह अस्तित्व······ क्या यह एक छलना है, भ्रम है?"

किन्तु यह साठ वर्ष से ऊपर की अवस्था का वृद्ध भी निराश नहीं है, हताश नहीं है। कितनी बड़ी छाती है इसकी! सब कुछ झेला, सब कुछ सहा: पिता की असामयिक और अस्वाभाविक मृत्यु देखी इसने, पुत्र गंगाप्रसाद को क्षयरोग से टूटते देखा, पत्नी यमुना उसे अकेला छोड़कर चली गई, विद्या का दुःख सहा इसने, और अब नवल, ज्ञानू भी उसे सर्वथा अकेला छोड़कर जेल जा रहे हैं! जो हो, वह अब भी रहेगा—चिन्तामुक्त रहेगा। वह कहता है,

"जाओ नवल, जाओ ज्ञानू, मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है, बिलकुल कुछ नहीं है; फिर चिंता किस बात की की जाय ? जो होना है, वह हो चुका है, उसे नहीं रोका जा सकता।"

कितनी दृढ़ता, कितना पौरुष है इन शब्दों में ! स्पष्ट है कि वर्माजी का नियतिवाद दुर्बल का चीत्कार या निष्क्रिय भाग्यवाद नहीं है, कर्मवादी नियतिवाद है।

ज्वालाप्रसाद और भीखू अपनी परिस्थिति के कारण विवश हैं, पर रोते-धोते नहीं। नई दुनिया का यह परिवर्तन उनकी समझ से बाहर है। वे विस्मित हैं, हताश नहीं। भीखू इस परिवर्तन को भगवान् की लीला कहता है, "ई सब भगवान् की लीला आय ! ई पर हमार बस नाहीं। मुला समझ मां नाहीं आवत है।"

जब अदृष्ट या नियति का विधान अटल है, तो फिर निराश और हताश होकर क्यों बैठा जाय ! चिन्ता क्यों की जाय। निर्भय कर्मकूप में क्यों न छलाँग लगा दी जाय ! अतः वर्माजी का नियतिवाद कर्मप्रेरक है, निष्क्रियता या अकर्मण्यता का भाग्यवाद नहीं है।

१९

संवाद-शैली की विशेषताएँ

संवाद या कथोपकथन भी किसी प्रबन्ध-रचना में अत्यावश्यक तत्त्व है। हमारा जीवन बातचीत, वार्तालाप से ही कटता है। व्यापक और विस्तृत जीवन-प्रसंगों की बिना वार्तालाप के कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः कथोपकथन एक ओर तो जीवन-प्रसंगों को स्वाभाविक बनाते हैं, दूसरी ओर उनके समावेश से प्रबन्ध में रोचकता की वृद्धि होती है। किन्तु कथा-प्रबन्ध में उन संवादों को ही स्थान मिलना चाहिए जो कथा तथा चरित्रों के विकास से सम्बन्ध रखते हों, अन्यथा वे प्रबन्ध में शिथिलता और नीरसता का कारण बन जाते हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा की संवाद-शैली सजीव, स्वाभाविक, रोचक और सार्थक है।

संवादों की सार्थकता इसी बात में है कि उनके द्वारा या तो कथा के विकास में योग मिले या चरित्रों पर प्रकाश पड़े अथवा रोचकता की वृद्धि हो। 'भूले-बिसरे चित्र' के संवाद अधिकांशतः सार्थक हैं। वे कथा और चरित्रों के स्वाभाविक विकास में भी सहायक सिद्ध हुए हैं तथा रोचक और सजीव-स्वाभाविक भी हैं। उपन्यास का आरम्भ भी कथोपकथन के रूप में हुआ है। यह नाटकीय आरम्भ कितना सजीव और रोचक है!

'मुंशी शिवलाल ने इस्तग़ासे को हाथ में लिया, "तौन वह इस्तग़ासा लिखा है ठाकुर, कि वह सार भैकूललवा सीधे पाँच साल के लिए लद जाय!"

"अच्छा!" आश्चर्य की मुद्रा के साथ ठाकुर भूपसिंह ने कहा, "तो फिर हमहू का ज़रा एक दफ़ा सुनाय देव!"

मुंशी शिवलाल ने इस्तग़ासे को पढ़ना आरम्भ किया :

"मनकि भूपसिंह, वल्द अनूपसिंह, उम्र तख़मीनन पच्चीस साल,......"

ठाकुर भूपसिंह इस्तग़ासा सुनते जाते थे और उनकी भौंहें चढ़ती जाती थीं। अपनी मरम्मत और कुन्दी की बात सुनते ही ठाकुर भूपसिंह एकाएक भड़क उठे, "यू का अनाप-सनाप लिख दीन्हेव मुँसीजी? ऊ सार बनिया की

का मजाल कि हमें उठाय के पटकी और हमार कुन्दी बनावे ! हम तुमका बतावा न कि हम जो उहिका उठाय के पटका तो ऊकेर हाथ टूटिगा । घर मां पड़ा कराह रहा है ।"

मुंशी शिवलाल मुस्कराए, "तुमहू अजीब गावदी आदमी वाकै हो ठाकुर ! तौन मान लेव कि हम लिख दीन कि तुम मैकूललवा का उठाय के पटक दीन्हेव और ऊकेर हाथ टूटिगा, तो फिर सजा केहि का होई, मैकूललवा का कि तुमका ?"

मुंशी शिवलाल के इस प्रश्न में अकाट्य तर्क था, लेकिन भूपसिंह को सन्तोष नहीं हुआ, "तौन मान लेव मुंसी, कि मैकूललवा हमका उठाय के पटकिस, तो फिर ऊकेर हाथ कैसे टूटा ?"

गर्व से अपनी कलम को अपने कान में खोंसते हुए मुंशी शिवलाल ने कहा, "अरे ठाकुर, हम हैं मुंशी शिवलाल ! अर्जीनवीस हैं तो क्या,······।"

इस वार्तालाप में एक ओर तो सजीव नाटकीयता है । पात्रों के वार्तालाप के साथ उनकी भावभंगियों और चेष्टाओं का नाटकीय उल्लेख किया गया है। मुंशी शिवलाल का 'इस्तगासे को हाथ में लेना', आश्चर्य की मुद्रा से ठाकुर भूपसिंह का सुनाने को कहना, सुनते हुए ठाकुर भूपसिंह की भौंहें चढ़ना और एकाएक भड़क उठना, मुंशी शिवलाल का मुस्कराकर जवाब देना आदि चेष्टाएँ वार्तालाप को अत्यन्त सजीव और नाटकीय बना रही हैं । दूसरे, वार्तालाप पात्रों की बोली में होने से सर्वथा पात्रानुरूप है । न केवल भाषा पात्रानुरूप अशिक्षित लोगों की ग्रामीण भाषा है, अपितु उनके कथन भी उनके स्वभाव, शिक्षा-दीक्षा और संस्कार-प्रवृत्ति के अनुसार हैं ।

तीसरी बात यही कि इस संवाद से पात्रों की प्रकृति और उनके चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ा है । झूठे इस्तग़ासे लिखने वाले, मुकदमेबाज़ी में निपुण, अपने पेशे पर गर्व करने वाले अर्जीनवीस मुंशी शिवलाल के चरित्र की विशेषताओं का इस आरम्भिक संवाद से ही पूरा परिचय मिल गया है । इसी प्रकार ठाकुर भूपसिंह के चरित्र में अपना वंशाभिमान, बनिये-बक्काल के प्रति घृणा का भाव, सरल अज्ञानता, अशिक्षा, स्वाभिमान आदि बातें स्पष्ट प्रकट हुई हैं ।

चौथी बात यह कि यह संवाद युग-बोध कराने में भी पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ है । १८८५ ई० के उस युग में किस प्रकार अर्जीनवीस ही झूठे-सच्चे इस्तग़ासे लिखकर मुकदमे दायर कराते थे, वकील बहुत ही कम होते थे, किस

प्रकार ठाकुर काश्तकारों और सूदखोर बनियों में तनाव की स्थिति रहती थी, बनिये महाजनों का कर्ज़ ठाकुरों के सिर रहता था, सूद-दर-सूद देना होता था, महाजनी पूँजीवाद विकसित हो रहा था, किसान लोग अपनी उपज बेचने के लिए पास के शहरों की मण्डियों और बाज़ारों में जाते थे आदि सब युग-बोध बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक है।

पाँचवीं बात यह कि यह संवाद आगे की घटना और कथा-प्रसंग को गति देने में भी सहायक बना है। इस इस्तग़ासे को पढ़कर ही कलेक्टर साहब मुंशी शिवलाल को बुलाते और उनके पुत्र ज्वालाप्रसाद की नायब तहसीलदार के रूप में नामज़दगी की सूचना देते हैं। इन सब बातों के साथ-साथ संवाद रोचक भी खूब हैं।

इसी प्रकार के सार्थक, स्वाभाविक, पात्रानुरूप, प्रसंगानुकूल, सजीव, नाटकीय, रोचक और चटुल संवाद प्रायः सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं।

वर्माजी की संवाद-शैली में नाटकीयता का गुण खूब पाया जाता है। 'भूले-बिसरे चित्र' में यह गुण चरमोत्कर्ष पर है। वार्तालाप कराते हुए वर्माजी पात्रों की भाव-भंगियों और चेष्टाओं का प्रसंग और भावानुरूप ऐसा सजीव वर्णन करते हैं कि पात्रों का अभिनय साकार हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में इस विशेषता का उल्लेख हम कर चुके हैं। इसी प्रकार प्रसंग, परिस्थिति और भावानुसार कहीं जैदेई आँखों में आँसू भर कहती है, कहीं भावावेश में बोलती हुई ज्वालाप्रसाद के पाँव छू लेती है, कहीं ज्वालाप्रसाद ग्लानि के कारण धीमे स्वर में बोलते हैं, कहीं प्रसन्नता से मुस्कराकर बात करते हैं, कहीं प्रभु-दयाल व्यंग्य की हँसी हँसता हुआ उत्तर देता है, कहीं ज्ञानप्रकाश सोचकर कहता है, ज्वालाप्रसाद उदासभाव से बात कहते हैं, ज्ञानप्रकाश ने चौंककर उत्तर दिया, "अलीरज़ा बात कहकर खिसियाहट की हँसी हँस पड़ा", "गंगा-प्रसाद ने झुंझला कर कहा", "मलका चौंककर उठ खड़ी हुई, 'या अल्लाह ! क्या सुन रही हूँ मैं !' और एकाएक उसकी हिचकियाँ बँध गईं", "गंगाप्रसाद ने मलका को धीरज बँधाते हुए कहा", "गंगाप्रसाद कुछ भकपकाया।" गंगा-प्रसाद की भावुकता का बाँध टूट गया", "अलीरज़ा ने घड़ी देखते हुए कहा", "अलीरज़ा ने मुंह बनाते हुए कहा", "गंगाप्रसाद ने गम्भीर होकर कहा", "गंगाप्रसाद ने एक फीकी मुस्कान के साथ कहा", "गंगाप्रसाद ने लड़खड़ाते स्वर में कहा", "गंगाप्रसाद ने ज्ञानप्रकाश पर एक भेदभरी दृष्टि डाली",

"गंगाप्रसाद कुछ देर तक मौन रहा। फिर एक ठंडी साँस लेकर उसने कहा", "ज्ञानप्रकाश थोड़ी देर तक चुपचाप सोचता रहा। फिर उसने आग्रह-भरे स्वर में कहा",—आदि में नाटकीयता कितनी स्पष्ट और स्वाभाविक है! कथोपकथन कराते समय भावानुकूल भावभंगियों के ये नाटकीय संकेत बहुत ही उपयुक्त हैं।

वर्माजी ने स्वाभाविकता की रक्षा के लिए संवादों में पात्रानुरूपता का पूरा ध्यान रखा है। सभी पात्र अपने-अपने स्वभाव, प्रकृति, संस्कार, शिक्षा और परिस्थिति के अनुसार बातचीत करते हैं। उनकी भाषा भी उनकी शिक्षा-दीक्षा के अनुरूप है और विचार भी। विभिन्न पात्रों से बातचीत करने में पात्रों की भाषा और विचार-दृष्टि में अन्तर रखा गया है, जैसे मुंशी शिवलाल आरम्भ में ही ठाकुर भूपसिंह से तो जनपदीय भाषा में बात करते हैं और उस बातचीत का रूप भी उस ग्रामीण व्यक्ति के लिए उपयुक्त है, लेकिन सदरआला पं० गिरिजाशंकर से निहायत शिष्टता और बुद्धिमानी से बात करते हैं और भाषा भी साफ हिन्दुस्तानी बोलते हैं। इसी प्रकार शिक्षित पात्रों के संवाद उनके बौद्धिक और मानसिक स्तर के अनुरूप हैं और अशिक्षित पात्रों की बातचीत उनके संस्कार और स्वभाव के अनुरूप है। सभी पात्रों के संवाद उन्हें अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि सिद्ध करते हैं। पात्र न केवल अपने कर्म से अपने युग के प्रतिनिधि हैं, अपितु मन और वचन से भी अपने युग और वर्ग के प्रतिनिधि हैं। छिनकी, भीखू, राधे की पत्नी आदि के संवाद उनकी प्रकृति और उनके वर्ग के कितने अनुरूप हैं! पात्रों के संवादों में वैशिष्ट्य भी पर्याप्त पाया जाता है। जैदेई के कथन सर्वत्र स्नेह, कोमलता, ममता और भावना से ओतप्रोत हैं। ज्ञानप्रकाश के कथनों में बौद्धिकता और तार्किकता पाई जाती है। अलीरज़ा के कथन उसकी दुष्ट प्रकृति के अनुरूप मक्कारी और फरेब से भरे हैं। डिप्टी अब्दुलहक के संवाद तास्सुब के रंग में रंगे हैं। मीर सखावत हुसैन के मुख से निकला एक-एक शब्द बुजुर्गी के परिपक्व अनुभव और समझदारी तथा संजीदगी का द्योतक है। इस प्रकार प्रायः सब पात्रों के संवाद उनकी प्रकृति और परिस्थिति के सर्वथा अनुरूप हैं।

परिस्थिति और प्रसंग के अनुसार संवादों में कैसी भावोत्तेजना प्रकट की गई है, यह इस उदाहरण से सिद्ध होता है: मि० हैरिसन दावत में आमंत्रित लोगों से कहता है, "कुल छः साल की सज़ा इस गांधी को! सारे हिन्दुस्तान

में बग़ावत फैलाने वाले इस महान् विद्रोही को गोली मार देनी चाहिये थी। क्यों सर लक्ष्मीचन्द, क्या ख्याल है तुम्हारा ?"

लक्ष्मीचन्द ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर दिया राय-बहादुर गोपीनाथ ने, "चलिये बला टली ! मेरा तो व्यापार ही ख़त्म कर दिया इस बदमाश ने ! मैंचेस्टर से मेरे पास पाँच लाख का कपड़ा आ रहा है; मैं तो बड़ा चिन्तित था।"

खानबहादुर नूरअहमद बोल उठे, "क्या बात कही गोपीनाथ साहेब ! आदमी फ़ितना है, कैसी आग लगा रखी है इसने !"

मि० हैरिसन का जोश और भी बढ़ा, "वह आग बुझ गई। आज मैं आप लोगों को यह बतलाना चाहता हूँ, कि मैंने यह पार्टी उस वहशी गद्दार के जेल जाने की खुशी में दी है।"

गंगाप्रसाद ने अपने साथी हिन्दुस्तानियों की ओर देखा। किसी के माथे पर शिकन नहीं थी इस आदमी की बदतमीजी के कारण। अब उससे न रहा गया, "मिस्टर हैरिसन, अगर आपने पहले से अपने इस डिनर की नीच और नापाक भावना का जिक्र कर दिया होता तो कम-से-कम मैं तो इस डिनर में सम्मिलित न होता, और शायद यहाँ आने वालों में चार-छः आदमी और भी न आते।"

डिनर में आमंत्रित सभी अतिथि गंगाप्रसाद की इस बात से चौंक उठे। मिस्टर हैरिसन······का मुख तमतमा उठा, गंगाप्रसाद की इस बात से, "तो क्या आप उस बदमाश, लुच्चे, झूठे और फरेबी गांधी को महात्मा समझते हैं ?"

अकारण ही हैरिसन की इस गाली-गलौच से गंगाप्रसाद और अधिक भड़का, "मिस्टर हैरिसन, यह तुम्हारा कमीनापन और लुच्चापन है, जो तुम उस महापुरुष को गालियाँ दे रहे हो। हम लोग उसकी राजनीति से भले ही सहमत न हों, लेकिन उसकी महत्ता, ईमानदारी और शराफ़त से कोई इन्कार नहीं कर सकता।"

हैरिसन उठ खड़ा हुआ, "तुम मुझे लुच्चा और कमीना कहते हो, तुम काले आदमी ! हम लोगों ने जो तुम्हें मुँह लगाया, उसका यह नतीजा ! फिर से कहना, मैं तुम्हारा मुँह तोड़ दूंगा !"

गंगाप्रसाद भी अपनी आस्तीन चढ़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ, "तुम लुच्चे हो, तुम कमीने हो, तुम हरामजादे हो!"

इस वार्तालाप में उत्तरोत्तर उत्तेजना की कैसी यथार्थ प्रसंगानुरूप अभिव्यक्ति हुई है! आरम्भ में मि० हैरिसन महात्मा गांधी के खिलाफ़ अधिक कड़े और गाली-गलौच-भरे शब्दों का प्रयोग नहीं करता, और उपस्थित हिन्दुस्तानियों का एतत्सम्बन्धी विचार सुनना चाहता है। जब गोपीनाथ और खानबहादुर नूरअहमद के मुख से भी वह गांधी के विरोध की बात सुनता है, तभी उसे गांधी की शान में बुरे और गाली-गलौच के शब्द कहने का साहस होता है। गंगाप्रसाद भी परिस्थिति के अनुसार पहले हैरिसन को सीधी गालियाँ नहीं देता, अपितु गांधीजी के प्रति गालियाँ बकने पर ही हैरिसन को गालियाँ देता है। इस प्रकार परिस्थिति का अनुरोध संवादों में बड़ा ही उपयुक्त है।

कहीं-कहीं बीच-बीच में हास्य की छटा से वर्माजी ने अपने संवादों को विशेष रोचक बना दिया है। संवाद बड़े ही उपयुक्त और हाजिर-जवाबी या प्रत्युत्पन्नमति से ओतप्रोत हैं। जब ज्वालाप्रसाद अपने चाचा को परिवारसहित फतहपुर चले जाने को कहता है और राधेलाल ज्वाला को गालियाँ देने लगते हैं, अन्न-जल न लेने की कसम खाते हैं और घर में कोहराम मच जाता है तो जैदेई ज्वालाप्रसाद से कहती है, "देवरजी, न हो तो तुम कहीं हो आओ जाकर! यहाँ की हालत तो बिगड़ती ही जा रही है।"

"लेकिन खाने-पीने का क्या होगा भौजी?" ज्वालाप्रसाद ने पुछा।

"खाने-पीने के मामले में आज एकादशी समझो!" जैदेई मुस्कराई, "अगर हमेशा की बला टालने के लिए एक दिन उपवास भी करना पड़ जाय तो क्या बुरा! फिर आज तो घर-भर उपवास करेगा।"

यह वार्तालाप कैसा उपयुक्त और रोचक है!

वर्माजी विशिष्ट पात्र के मुख से विशिष्ट संवाद कराने में बहुत पटु हैं। उनकी यह विशेषता घुंडी स्वामी, अल्लामा वहशी और स्वामी जटिलानन्द के संवादों में विशेष रूप से देखी जा सकती है। घुंडी स्वामी से किशनलाल कहता है, "वाह स्वामीजी, एक दम में इतना चरस फूंक दिया आपने। धन्य हैं!"

"अबे इतने चरस की बात चलाता है, एक सांस में मैं तेरा यह कस्बा फूंक दूं, समझ क्या रखा है तूने!" और घुंडी स्वामी ने बचनू साह की ओर

देखा, "अबे ओ बचनू के बच्चे ! देख क्या रहा है ? चवन्नी का चरस और ले आ ! तुम भक्तों को तो मिला ही नहीं।"

ज्वालाप्रसाद को देखते ही "घुंडी स्वामी ने धूनी में एक लक्कड़ लगाते हुए दबे हुए स्वर में कहा, "चेत साले ! तेरा बड़ा भाई आ रहा है !" और फिर उनकी आवाज़ तेज़ हुई, "बड़ा प्रतापी है ! धरम-करम मरजाद का आदमी है। लेकिन रुपये-पैसे का कष्ट है। लेकिन गड़ा धन मिलेगा—हज़ारों रुपये, सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात !"···घुंडी स्वामी ने ज्वालाप्रसाद की ओर देखते हुए कहा, "ले बच्चा यह भभूत !, बन्द कर ले अपनी मुट्ठी ! हाँ, अब खोल के देख !"

घुंडी स्वामी मुस्कराए, "केतु खराब ; तेरा भगत ! तो बम भोलेनाथ ने गोमेध दिया है। इसे अंगूठी में जड़वाकर पहन लो, छः महीने के अन्दर गड़ा हुआ धन मिलेगा।"

बेचू मिसिर ने घुंडी स्वामी से पूछा, "कब तक यहाँ ठहरने का इरादा है स्वामीजी !"

"बम भोलेनाथ की मरजी भगत ! जब भगवान् भूतनाथ आज्ञा देंगे कि घुंडी चल, उसी समय हम चल देंगे और जो कुछ इन लौंडों ने कहा भगत, सो हम तो ज़हर का घूँट पीने वाले हैं, उसे पी गये। लेकिन यह क्रोध का तीसरा नेत्र कब खुल जाय, और कब ये लौंडे भस्म हो जायं, यह भगवान् शंकर जानें !"

इसी प्रकार स्वामी जटिलानन्द का संवाद कितना यथार्थ है ! स्वामीजी के मुँह से "धौंकनी का-सा एक स्वर सुनाई पड़ा, "हरि ओम् तत्सत्।" और अल्लामा वहशी का मीर जाफ़र अली के कमरे में घुसते ही यह कथन, "शुक्र अल्लाह का, मर्ज़ी रसूल की ! पहाड़ पर बर्फ़ गिर रही है और दुनिया क़हर की तरफ़ बढ़ती जा रही है। मौज करो जब तक ज़िन्दा हो मौज करो, ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। आक़बत तक ज़मीन के अन्दर मिट्टी में दफ़न होकर रहना पड़ेगा, ऐ मूर्ख इन्सान !" और अल्लामा वहशी ने दोनों हाथ उठाकर मीर जाफ़र अली और गंगाप्रसाद को आशीर्वाद दिया।' गंगाप्रसाद को वह कहता है, "खुदा का प्यारा है, दुनिया का दुलारा है, हरदिल अज़ीज़

है, लेकिन गुनाहों में कच्चा है, क्योंकि अभी बच्चा है। गुनाह करो, एक के बाद एक गुनाह करो; वरना बख्शवाओगे क्या ?"

इस प्रकार इन विचित्र पात्रों के वैचित्र्यपूर्ण संवाद यथार्थ होने के साथ-साथ रोचक हैं। विभिन्न प्रकार के पात्रों की सही मनोवृत्ति और विशिष्टता का अनुभवी लेखक ही ऐसे वैचित्र्यपूर्ण संवाद प्रस्तुत कर सकता है।

'भूले-बिसरे चित्र' में अधिकांश संवाद संक्षिप्त और चटुल हैं। छिनकी, भीखू, राधे की पत्नी, मुंशी शिवलाल आदि सभी पात्रों के संवाद संक्षिप्त और चुस्त हैं। उनमें हाज़िरजवाबी, उत्तर-प्रत्युत्तर की उपयुक्तता, प्रसंग और परिस्थिति की अनुरूपता आदि सब विशेषताएँ पाई जाती हैं। पर कुछ शिक्षित पात्रों के सैद्धांतिक संवाद लम्बे-लम्बे और बोझल हो गये हैं। वस्तुतः इनका उद्देश्य तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों तथा विविध विचारधाराओं का प्रकाशन है। कुछ पात्र भावावेश में भी लम्बे कथन प्रकट करते हैं। पर भावावेश के लम्बे संवाद नीरस और भारी नहीं बनते। केवल बौद्धिक सैद्धांतिक वार्तालाप ही जहाँ कुछ अधिक विस्तृत और लम्बे हो गए हैं, वे ही दोषपूर्ण हैं, जैसे ज्ञानप्रकाश और राजबिहारी का वार्तालाप (पृ० ४६४ से ४६७ तक), उषा के जन्मदिन की पार्टी पर लक्ष्मीकांत वर्मा और प्रोफेसर शंकर आदि के लम्बे राजनीतिक कथन (पृ० ६७८-७९), अलीरज़ा का (पृ० ४८४-८५) लम्बा वक्तव्य आदि।

दो-तीन स्थानों पर पात्रों के लम्बे कथन कथात्मक हैं, जैसे मलका द्वारा अपने माया शर्मा बनने का वृत्तान्त गंगाप्रसाद को सुनाना, लाल रिपुदमनसिंह द्वारा गंगाप्रसाद को अपनी पूर्व कहानी सुनाना। ये कथन रोचक कथात्मक होने से, लम्बे होते हुए भी अखरते नहीं। इसी प्रकार भावावेशपूर्ण लम्बे संवाद भी सर्वथा उपयुक्त हैं। संतो का यह रोष-भरा कथन कितना उपयुक्त है :
'संतो तड़प उठी, "हाँ, मैं अपने को बेच रही हूँ। मैं वेश्या हूँ, यही कहना चाहते हो तुम ! लेकिन कौन नहीं बेच रहा है अपने को। कुछ अपना शरीर बेचते हैं, कुछ अपनी आत्मा बेचते हैं। भोग-विलास में अपने को खो देना, पशु बन जाना, यह आत्मा को शैतान के हाथ में बेच देना है। राजा सत्यजित प्रसन्न, रानी हेमवती, कैलासो और तुम···तुम सब-के-सब अपनी आत्मा को बेच चुके हो। मैं कम-से-कम इतना नहीं गिरी हूँ। एक बार मुझसे अपने को शैतान के हाथ में सौंप देने की ग़लती हो गई थी और उस गलती की प्रेरणा

दी थी मुझे तुमने ! और उस एक ग़लती का परिणाम तो देख रहे हो तुम ! लेकिन मैंने अपनी ग़लती सुधार ली। मेरे पास मान है, मर्यादा है, ऐश्वर्य है, वैभव है। मैं रानी हूँ, मेरे पास लाखों रुपये हैं और तुम अपनी तरफ़ तो देखो, तुम क्या हो ? तुम जलते हो, कुढ़ते हो, तुम्हारे अन्दर घृणा है, तुम्हारे अन्दर हिंसा है।"- और संतो यह कहते-कहते फूट पड़ी, उसकी आँखों से आँसू झरने लगे, उसकी हिचकियाँ बंध गईं।'

इस भावावेशपूर्ण लम्बे संवाद से संतो के चरित्र पर बड़ा ही मनोवैज्ञानिक प्रकाश पड़ा है। इसलिए इसकी सार्थकता है। यह नाटकीय भी है।

पात्रों के मुँह से वर्माजी बड़ा ही उपयुक्त जवाब निकालते हैं। मि० क्लीमेंट्स मीर जाफ़र अली को गालियाँ देता हुआ कहता है—"हो न तुम छटे हुए बदमाश और नम्बरी हरामजादे ?"

मीर जाफ़र अली ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा, "हुज़ूर की बात काट सकूँ, भला इतनी जुर्रत मुझमें कहाँ ! हुज़ूर की बात काटना सबसे बड़ी बेअदबी होगी।"

मिस्टर क्लीमेंट्स ने गंगाप्रसाद को देखा, "सुन रहे हो गंगाप्रसाद ! कितना बड़ा पाजी आदमी है यह ! और तुम इसे दिल्ली-दरबार के इन्तज़ाम में भेजने को कहते हो !"

मीर साहेब ने उससे भी अधिक मुलायमियत के साथ कहा, "हुज़ूर गुस्ताखी माफ़ हो, यह पुलिस का महकमा ही नम्बरी हरामजादों का होता है। हुज़ूर, मेरे जैसे आदमी अगर आप लोगों की खिदमत में न हों तो सल्तनत एक दिन के लिए भी न टिकने पाए। इन्तज़ाम तो हम ही लोग करते हैं।"

मीर जाफ़र अली के इस कथन से अधिक उपयुक्त कथन की इस प्रसंग में कल्पना नहीं की जा सकती। कितनी नरमी के साथ उसने यह कहकर कि "पुलिस का महकमा ही नम्बरी हरामज़ादों का होता है" एक तरह अपनी गालियों का बदला भी ले लिया और क्लीमेंट्स को खुश भी कर दिया।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कुछ स्थलों के सैद्धांतिक और राजनीतिक संवादों के सिवा वर्माजी के 'भूले-बिसरे चित्र' में संवाद-शैली की प्रायः सभी विशेषताएँ—रोचकता, सार्थकता, नाटकीयता, स्वाभाविकता, पात्रानुरूपता, प्रसंगानुकूलता, भावानुरूपता, संक्षिप्तता, चटुलता और सजीवता आदि सब पाई जाती हैं।

★

२०

भाषा और शैली-शिल्प

भाषा-प्रयोग और शैली-शिल्पविधि की दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्द संस्थान के ही लेखक दिखाई देते हैं। प्रेमचन्द की ही तरह वर्माजी ने कथा-साहित्य की सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण, मुहावरेदार, प्रसंग-पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग किया है। भाषा का स्वरूप सर्वत्र सरल है। प्रचलित तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है, तत्सम शब्द बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं और जो हैं, वे भी प्रचलित और सरल हैं। भाषा की विशुद्धता या संस्कृत-निष्ठता के वर्माजी क़ायल नहीं हैं। उन्होंने उदारतापूर्वक प्रचलित अंग्रेज़ी शब्दों, जैसे 'कम्पार्टमेंट', 'ड्राइंगरूम', मीटिंग, रिपोर्ट, मूड, 'ड्राइव कर रहा था', 'रिकार्ड' आदि का भी पर्याप्त प्रयोग किया है।

अंग्रेज़ी शब्दों से बहुत अधिक उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वर्मा जी ने हिन्दी-शब्दों के साथ उर्दू-फारसी के शब्दों का खूब प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए सलाह-मश्विरा, खेमे, तारीख, सुबह-शाम, मुबारकबाद, मौजूद, कश, जिम्मे, तकाज़ा, इन्तजाम, खत्म, शनाख्त, तहकीकात, रोजगार, बेतहाशा, मरम्मत, इज्ज़त-आबरू, गुज़ारा, हैसियत, काफ़ी, तनख्वाह, शामिल, हमेशा, मुरव्वत, मुश्किल, शैतानियत, तरक्की, तबादिला, जबरदस्ती, नामज़द, हरकत आदि उर्दू-फ़ारसी के शब्द अनायास ही प्रयुक्त हुए हैं।

वर्माजी की भाषा में साहित्यिकता का गुण अपेक्षाकृत कम है। उन्होंने भाषा की शक्ति के साधनों—लाक्षणिक प्रयोगों, अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों, प्रतीकों, बिम्बों आदि का बहुत ही कम प्रयोग किया है। कहीं-कहीं मुहावरों का प्रयोग मिल जाता है, जैसे, माथे पर बल पड़ना, वाही-तबाही बकना, तांता बंधा था, दम मारने की फुरसत न होना, मामला रंग लायेगा, ज़ार-ज़ार आँसू बहाना, बीड़ा उठाना, ज़हर उगलना, तीर ठिकाने पर बैठा है, मार जाना, पारा चढ़ जाना आदि।

'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी', 'एक मौन सौ बलाओं को टालता है', 'प्यासा कुँए के पास जाता है' आदि दस-पाँच लोकोक्तियाँ भी ढूँढ़ने पर मिल सकती हैं। पाँच साल के लिए लद जाय, बड़े लोगों के साथ नत्थी होकर, चिपके हुए जैसे कुछ लाक्षणिक प्रयोग भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

अलंकारों का प्रयोग शायद ही कहीं ढूँढ़ने से मिले। लेखक ने रूप-वर्णन, स्थित्यंकन आदि सब वर्णन निरलंकृत शैली में प्रकट किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्माजी ने जान-बूझकर अलंकरण को बचाया है। भावात्मक और काव्यात्मक स्थलों पर भी कोई उपमा, कोई रूपक, कोई भी अलंकार-योजना नहीं की। इससे भाषा-शैली में स्वाभाविकता का गुण तो रहा है, पर साहित्यिक शक्ति का अभाव कुछ अखरता है।

उर्दू-हिन्दी-मिश्रित भाषा-शैली का वर्माजी ने खूब प्रयोग किया है। इसी से उनकी भाषा सरल हिन्दुस्तानी भाषा प्रतीत होती है। एक उदाहरण देखिए, "गंगाप्रसाद में **भावना** और **मुरव्वत** नाम की **चीजों** की कमी को ज्वालाप्रसाद ने **हमेशा अनुभव** किया था और इसलिए उस समय अपने पुत्र के मुख से यह बात सुनकर उन्होंने अपने पुत्र में एक नया **परिवर्तन** देखा, जिससे उनको **प्रसन्नता** हुई।"

ऐसे ही सरल तत्सम शब्दों का मिश्रित प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। शिक्षित समुदाय की बोलचाल की ऐसी भाषा बहुत ही स्वाभाविक है। 'भावना' और 'मुरव्वत' का यह संयोग कृत्रिम नहीं है, अनायास ही यह स्वाभाविक मिश्रण हो गया है। उपन्यास की कथा उस युग से सम्बंधित है जबकि अदालतों, दफ़्तरों और शिक्षित लोगों में उर्दू का खूब व्यवहार होता था। इसीसे वर्माजी ने उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया है।

वर्माजी की भाषा में वाक्य-विन्यास साफ और सरल है। छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग पाया जाता है। व्याकरण की निर्दोषता भी है। कहीं-कहीं अपवादस्वरूप व्याकरण का कोई-कोई दोष मिल भी सकता है, जैसे इस वाक्य में लिंग-दोष है : "एक बार उसने अपने अंक से अपने लड़के को लगाया।" 'अंक' का पुल्लिग प्रयोग ग़लत ही है। सामान्यतः भाषा में सरलता, प्रवाह, व्याकरण की निर्दोषता आदि गुण पाये जाते हैं।

वर्माजी ने पात्रानुरूपता का सर्वत्र ध्यान रखा है। प्रेमचन्द की तरह, उनके भी मुसलमान पात्रों या उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की भाषा उर्दू-शैली का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक ही पात्र की भाषा-शैली भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रसंग और पात्रों के वैविध्य से भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। मुंशी शिवलाल छिनकी से तो बिल्कुल सरल तद्भव भाषा में बात करते हैं, पर पढ़े-लिखे व्यक्तियों—सदरआला गिरिजाशंकर आदि से उर्दू-शैली में बात करते हैं। इसी प्रकार राधेलाल अपने पड़ोसियों से जनपदीय भाषा में बात करता है, पर पढ़े-लिखे लोगों से साफ़ हिन्दुस्तानी में। मुंशी रामसहाय से उसकी बातचीत की भाषा का यह उदाहरण पात्रानुरूपता के इलावा प्रसंगानुरूपता का भी सुन्दर उदाहरण है : "मुंशी रामसहाय, हम लोगों के खानदान का यह लड़का, यह ज्वाला, इसे देख रहे हैं आप, तो यह लड़का नायब तहसीलदारी पर नामजद हो गया है, जी हाँ, नायब तहसीलदारी पर! बजवाइए रोशन चौकी, करवाइए मुजरा, दिलवाइए दावत! खर्च की परवाह मती कीजिए।"

मुसलमान पात्र अलीरजा की भाषा में उर्दू-फारसी के शब्दों का खूब प्रयोग मिलता है : "मेहरबान, हिन्दुस्तान की आज़ादी की बाबत सोचना-विचारना हमारा काम नहीं है। यहाँ तो रोटी और बोटी से मतलब है, जो **खुदा की मेहरबानी** से सरकार बरतानिया हमें देती जा रही है। इस **आज़ादी-वाज़ादी** की बातें तो **लीडराने-क़ौम** की बातें हैं। भला हमें इनसे क्या मतलब!"

छिनकी, भीखू, राधे की पत्नी, यमुना, रुक्मिणी आदि पात्र परस्पर अशिक्षित पात्रों की जनपदीय भाषा का प्रयोग करते हैं। एक उदाहरण : हमार तुम लोगन की गिरिस्ती माँ कौनो अधिकार नाहीं आय, ई हमका मालूम है और हमका एहिकी कौनो सिकायतो नाहीं है। मुला हम तुमसे पूछ रही हन कि का ज्वाला अकेले जाय रहा है?" यमुना छिनकी आदि अशिक्षित पात्रों से तो ग्रामीण भाषा में बात करती है, पर अपने पति आदि से हिन्दी में बात करती है। इस प्रकार वर्माजी ने पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग किया है।

वर्माजी की भाषा-शैली में भाव और प्रसंगानुरूप शैलियों का वैविध्य भी खूब पाया जाता है। भावात्मक शैली का यह उदाहरण कितना सुन्दर है!—

'संतो तड़प उठी, "हाँ, मैं अपने को बेच रही हूँ। मैं वेश्या हूँ, यही कहना चाहते हो तुम! लेकिन कौन नहीं बेच रहा है अपने को। कुछ अपनी शरीर बेचते हैं, कुछ अपनी आत्मा बेचते हैं!······मेरे पास मान है, मर्यादा है, ऐश्वर्य है, वैभव है। मैं रानी हूँ, मेरे पास लाखों रुपये हैं और तुम अपनी तरफ़ तो देखो, तुम क्या हो? तुम जलते हो, कुढ़ते हो, तुम्हारे अन्दर घृणा है, तुम्हारे अन्दर हिंसा है।" और संतो यह कहते-कहते फूट पड़ी, उसकी आंखों से आँसू झरने लगे, उसकी हिचकियाँ बंध गईं।' (पृ० ४०४)।

कथात्मक-विवरणात्मक शैली का यह सुन्दर उदाहरण देखिए: "इस घटना को बीते करीब छः महीने हो गए। मेरी पत्नी भी धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी। जाड़ों के दिन थे और खेतों में सवन गिर रहे थे। मैं दौरे पर गया था। एक दिन मैं सवन के शिकार पर निकल पड़ा। सरदी काफ़ी अधिक थी, इसलिए मैं करीब नौ बजे सुबह शिकार के लिए निकल पाया था। तेज उत्तरी हवा चल रही थी और हाथ-पैर ठिठुर रहे थे। दुर्भाग्य मेरे साथ था, क्योंकि उस दिन कोई सवन मेरे हाथ नहीं लगा। जब निशाना लगाया, तब चूका। करीब बारह बजे दोपहर तक घूमता रहा। एक तरह की झुँझलाहट और निराशा लिये हुए मैं वापस लौटा। बुरी तरह थका हुआ था मैं। जिस समय मैं विजयपुर से झाँसी आने वाली सड़क को पार कर रहा था, मैं सहसा ठिठक गया। मैंने देखा कि एक आदमी उस सड़क पर विजयपुर की तरफ से घोड़े पर सवार झाँसी की ओर चला आ रहा है। घोड़े की रफ़्तार मजे की थी। उस आदमी की शक्ल मुझे कुछ पहचानी-सी लगी। मैं एक पेड़ की आड़ में हो गया। अरे, वह तो शिवप्रताप था!" (पृ० ३२२)।

वर्णनात्मक स्थलों पर वर्माजी ने सुन्दर वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। व्याख्यात्मक स्थलों पर सुन्दर व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक शैली पाई जाती है, यद्यपि ऐसे स्थल उपन्यास में बहुत कम हैं। व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक शैली का एक उदाहरण देखिए:

"फाटक के राधाकिशन के मंदिर के पट खुल गए थे और आरती हो रही

थी। ज्वालाप्रसाद को भगवान् के दर्शन करने की हिम्मत नहीं हुई। उनको ऐसा लगा कि वे नौकर उनपर हंस रहे हों, व्यंग्य कर रहे हों। उनके हाथ में अशर्फियों की थैली थी और उनके पैर लड़खड़ा रहे थे।......एक अजीब तरह का तनाव था उनके मुख पर!......ज्वालाप्रसाद को ऐसा लगा मानो वह इक्के वाला भी उनपर व्यंग्य कर रहा है। गाँवों की पगडंडियाँ होली मनाने वालों की भीड़ से भरी थीं,......और इस भीड़ को, इस असंयम को देखकर जैसे उनके मन को एक प्रकार की सान्त्वना मिल रही थी। उन्हें यह स्पष्ट दीख रहा था कि जीवन विशुद्ध संयम और साधना ही नहीं है, जीवन में अपने को खो देने की, अपने को बिखेर देने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति भी है।" (पृ० १०८-९)।

इस प्रसंग में वर्माजी ने ज्वालाप्रसाद की मनःस्थिति का बड़ा यथार्थ विश्लेषण किया है।

'वह फिर नहीं आई' के सिवा, जो आत्मकथात्मक शैली में रचा गया है, वर्माजी के सभी उपन्यास वर्णनात्मक शैली में रचे गए हैं। अतः उनमें वर्णनात्मक शैली की प्रधानता है। अपनी संवाद-शैली को भी वर्माजी ने इस वर्णनात्मक शैली की सहायक बनाया है। वर्माजी विवरण प्रस्तुत करने में बहुत कुशल हैं। वह व्याख्या और विश्लेषण-शैली विशेष नहीं अपनाते, क्योंकि उन्होंने मनोवैज्ञानिक गहराइयों में पड़ने की आवश्यकता नहीं समझी। उनके पात्र सरल हैं, कथा सीधी-सरल है, किसी प्रकार की जटिलता नहीं। इसीसे वह किस्सागो की तरह सीधे कथा कहते और वर्णन-विवरण प्रस्तुत करते जाते हैं। यही शैली प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा आदि उपन्यासकारों की वर्णनात्मक शैली है।

'भूले-बिसरे चित्र' यद्यपि कथा-चरित्र-सापेक्ष उपन्यासों की कोटि में आता है, क्योंकि इसमें घटनाएँ और परिस्थितियाँ चरित्रों को प्रभावित करती हैं और चरित्र परिस्थितियों और घटनाओं का निर्माण करते हैं, तथापि इसमें कथा वाला अंश ही कुछ भारी है। देशकाल-वातावरण की सजीवता उसे वातावरण-प्रधान उपन्यास सिद्ध करती है।

वर्माजी ने अपने उपन्यासों में आकस्मिक और अतिनाटकीय घटनाओं

और प्रसंगों की योजना से भी स्वयं को मूलतः कथाकार प्रमाणित किया है। 'भूले-बिसरे चित्र' में भी गंगाप्रसाद का मलका को अलीरज़ा की कैद से छुड़ा लाना और ज्ञानप्रकाश का विद्या को उसके ससुराल से लाना ऐसे ही दृश्यात्मक प्रसंग हैं। दिल्ली-दरबार के स्थान में पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर का गश्त लगाना और फिटन पर संतों का उस तम्बू-नगर में घूमना भी चित्रपट के-से दृश्य हैं। यह दृश्यात्मकता संभवतः फिल्मी-जगत् के प्रभाव का परिणाम है।

वर्माजी ने कथा-शैली में कोई नवीन प्रयोग नहीं किये हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' में कालिक व्यापकता और एकाधिक नायकीयता की नवीनता अवश्य है। शिल्प की दृष्टि से कोई मौलिक नवीनता नहीं है। एक स्थान पर वर्माजी ने चेतनाप्रवाह शैली का प्रयोग किया है। नवल बी० ए० की परीक्षा से निवृत्त हुआ है। उसकी मानसिक स्थिति का स्मृति-रूप चेतनाप्रवाह शैली में इस प्रकार वर्णन किया गया है : "नवल की नज़र उन फूलों से उलझ गई और वह सोचने लगा। एक बारगी ही तरह-तरह के रंगों के हज़ारों, लाखों फूल खिल उठे थे। लेकिन यह सब फूल आए कहाँ से ? रंगों का यह वैविध्य, इसका स्रोत कहाँ है—उन छोटे-छोटे बीजों में है, उस मिट्टी में है, उस पानी में है, जिससे ये पौधे सींचे गए थे या इस ऋतु में है जिसमें यह फूल खिलते हैं ? ये फूल खिलते हैं, ये फूल मुरझा जाते हैं। यह खिलना और यह मुरझाना, यह सब क्या है ?......अचानक ही उसे कहीं दूर से आने वाली कोयल की 'कुहू-कुहू' की कूक सुनाई दी। कितनी मीठी थी कोयल की यह कूक—मानो बसंत ऋतु की मादकता का समस्त संगीत कोयल की उस कूक में उमड़ आया हो ! अनायास ही कोयल की वह कूक उषा के सुमधुर संगीतमय स्वर में बदल गई।"

"उषा ! असीम सुन्दरता का वरदान लेकर वह आई है ! कितना मधुर कंठ है उसका ! उषा के सामने वह खोया-सा, बेसुध-सा रह जाता है। और उषा नवल से अनायास ही पूछ बैठती है—"क्यों, क्या सोच रहे हैं आप ?" नवल अपने को बटोरता है। वह कह उठता है, "उषा, मैं सोच रहा हूँ कि क्या भगवान् ने तुम्हारे समान सुन्दर किसी और को भी बनाया होगा !" नवल के इस उत्तर से उषा खिलखिलाकर हँस पड़ती है, मानो असंख्य फूल

एक साथ झर पड़े हों, "जाइए, आप मुझे बना रहे हैं !" और वह उसके पास से भाग जाती है। वह भागती है, लेकिन दूर नहीं; कुछ दूर जाकर वह रुकती है और फिर वहाँ से लौटकर वह बड़ी गम्भीर मुद्रा में उससे कुछ दूर हटकर बैठ जाती है और कभी इतिहास पर कभी साहित्य पर कुछ प्रश्न पूछकर उसे अपने में उलझा लेती है।" (पृ० ५६१-६३)।

इस प्रकार वर्माजी की भाषा और शैली सरलता, स्पष्टता, रोचकता, पात्र-प्रसंगानुरूपता आदि गुणों से युक्त है। शैलीगत नवीन प्रयोगों की देन चाहे वर्माजी ने विशेष नहीं दी है, पर अपनी सरलता में ही उसका स्वाभाविक आकर्षण है।

२१

रस-भाव-चित्रण : रसवादी समीक्षा

रस-भाव साहित्य का प्राण-रूप अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना कोई रचना काव्य-साहित्य की परिधि में आ ही नहीं सकती। बहुत-से आधुनिक आलोचक साहित्य-समीक्षा—विशेषकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-तत्त्व की अवहेलना करने लगे हैं। उनका विचार है कि रस के बँधे-बँधाये चौखटे से नव-साहित्य की परख नहीं हो सकती। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी या नई कविता के हिमायती आलोचक भारतीय रस-सिद्धांत के सर्वथा विरुद्ध हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपने एक लेख 'रस-सिद्धांत और आधुनिक साहित्य' में कहा है—"साहित्य विकासमान् है, और वह एक महान् सामाजिक क्रिया है, इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि प्राचीन आचार्यों ने भविष्य देखकर जो सिद्धांत बनाये थे, वे आज नए साहित्य पर पूरी-पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते। उन्हें लागू करने से या तो पैमाना टूट जायगा या फिर अपने ही पैरों को थोड़ा तराशना पड़ेगा। काव्य के नौ रसों से नये साहित्य की परख नहीं होती।······जीवन की धाराएँ एक-दूसरे से इतनी मिली-जुली हैं कि नौ रसों की मेड़ बाँधकर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बढ़ाया जा सकता। प्रेमचन्द के साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस नये साहित्य को परखने के लिए युग के अनुकूल नये सिद्धान्त ढूँढ़ने होंगे।······इसलिए साहित्य के सामने यह समस्या नहीं है कि रस नौ होते हैं या इससे ज्यादा, और 'ग़बन' में शृंगार है या रसाभास। इन संचारी-व्यभिचारी भावों को रटा-रटाकर हम अपने विद्यार्थियों को साहित्य की प्रगति से दूर रखने का विफल प्रयास कर रहे हैं। साहित्यकार सामाजिक उत्तरदायित्व को भूलकर अगर आत्मा की अखण्डता और रस के स्वयंप्रकाश अलौकिक ब्रह्मानन्द-सहोदर होने की बातें दोहराता रहेगा, तो वर्ग-हीन समाज के निर्माण में सहायक न हो सकेगा।"

रस और रस-सिद्धांत के बारे में इस धारणा के कई कारण हैं। एक तो

रस के उदात्त रूप की प्रतिष्ठा—ऐसी कि जिसमें जीवन के प्रगतिशील तत्त्व समाहित रहते हैं—प्राचीन रस-आचार्य नहीं कर सके थे। उनके लिए संभवतः शृंगाररस की कामुकतापूर्ण उक्ति भी रस का उदाहरण थी, और त्याग, कर्त्तव्य, साहस आदि उदात्त भावनाओं से पूर्ण प्रेम का चित्रण भी शृंगाररस का उदाहरण था। इन दोनों में श्रेष्ठता की दृष्टि से परख का विचार उनके सम्मुख था ही नहीं। दूसरे, आजतक हम अपनी रस-दृष्टि केवल इस बात में ही सीमित किए हुए हैं कि अमुक रचना में कौन-कौन-सा रस है, किस रस की प्रधानता है अर्थात् हमारी रस-दृष्टि केवल रस-गिनाने तक ही सीमित रहती है। हम भावों और रसों की जीवनोपयोगिता तथा उसके आधार पर कवि या लेखक की संपूर्ण रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण नहीं करते, और इस प्रकार रस-सिद्धांत एक सीमित समीक्षा-सिद्धांत प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि उसका समाज और जीवन की प्रगति से विशेष सम्बन्ध नहीं, कि वह वैयक्तिक आनन्दानुभूति-मात्र है।

हमने रस-सिद्धांत को समीक्षा का मानदण्ड सिद्ध करते हुए रसों के उदात्त रूप-स्वरूप की विस्तृत विवेचना और सब तत्त्वों से समन्वित रसवादी समीक्षा की रूपरेखा तथा उसके आधार पर नवसाहित्य—नई कविता, नई कहानी आदि की समीक्षा का प्रयत्न अपने ग्रन्थ 'रस-सिद्धान्त (काव्य-मनोविज्ञान) और नया साहित्य', तथा अपनी कई पुस्तकों—'भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत', 'रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा' आदि—में किया है। यहाँ तो हम केवल संक्षेप में यह कहना चाहते हैं कि रस की अवहेलना से काम न चलेगा। रस-तत्त्व में जीवन की सम्पूर्ण उदात्तता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के वैषम्य पर क्षुब्ध, करुणार्द्र या घृणा से प्लावित हुए बिना अर्थात् भावानुभूति या रसानुभूति के बिना कोई व्यक्ति वर्गहीन या वैषम्यहीन समाज के निर्माण में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता। या यों कहें कि काव्य या साहित्य में सामाजिक विषमता के प्रति लेखक की करुणामय या घृणात्मक प्रतिक्रिया ही—जो निश्चय ही पाठक के लिए रसानुभूति होती है—वर्गहीन समाज के निर्माण में सहायक होगी।

'भूले-बिसरे चित्र' के सम्बन्ध में जब यह कहा जाता है कि यह युग-बोध-कारी रचना है, तो क्या इसका अभिप्राय यह है कि वर्माजी ने सन् १८८५ ई० से सन् १९३० ई० तक की भारत की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों

और समस्याओं का चित्रण किया है। क्या समस्याओं का प्रकाशन ही वर्माजी का उद्देश्य है ? निश्चय ही इस सम्बन्ध में यही कहा जायगा कि केवल समस्याओं का वर्णन करना या युगीन परिस्थितियों का अंकन करना लेखक का उद्देश्य नहीं हो सकता। साहित्यकार का उद्देश्य तो युगीन समस्याओं और परिस्थितियों के प्रति पाठक की भावनात्मक संवेदना जगाना ही होता है, जो निश्चित ही रस-भावानुभूति है। केवल समस्याओं या परिस्थितियों का प्रकाशन तो एक इतिहासकार या समाज-शास्त्री भी कर सकता था। उपन्यासकार वर्मा का कार्य तो युग-तस्वीरों, झाँकियों, जीवन-समस्याओं का ऐसा चित्रण ही हो सकता है, जो पाठक का हृदय-उद्वेलन कर सके, उसकी उदात्त भावनाएँ जगा सके अर्थात् उसे रसानुभूति करा सके। उदात्त भावों की अनुभूति ही रसानुभूति है।

कोई रचना श्रेष्ठ तभी बन सकती है, जबकि उसमें उदात्त भावों की व्यापक, विस्तृत और गहन अनुभूति पाई जाए। किसी रचना की शक्ति उसकी उदात्त भाव-संवेदनाएँ ही हो सकती हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' की सफलता का रहस्य भी उसमें चित्रित उदात्त भाव-संवेदनाएँ हैं। उदात्त भावों का विस्तार तो इस उपन्यास में खूब हुआ है, पर वैसी भाव-गहनता इसमें नहीं, जो प्रेमचन्द के 'गोदान', यशपाल के 'झूठा-सच' आदि में है। फिर भी कई स्थलों पर रस-भाव की गहराई भी पाई जाती है।

'भूले-बिसरे चित्र' रस-भावों की विविधता का महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसमें बीभत्स, शृंगार, करुण, हास्य, वीर आदि प्रायः सभी रसों और अनेक भावों का चित्रण हुआ है। लेखक के यथार्थवादी और तटस्थ दृष्टिकोण के कारण इन सब रस-भावों का अधिक गहन प्रकाशन इस रचना में नहीं हो सका है, यही इसकी वह दुर्बलता है, जो इसे 'गोदान'-जैसी प्रभावकारी रचना सिद्ध नहीं करती। जिस रचना में जितनी अधिक उदात्त भावों की गहन व्यंजना होती है, उतनी ही वह श्रेष्ठ प्रमाणित होती है। 'भूले-बिसरे चित्र' में वर्माजी ने कथारस पर अधिक ध्यान केन्द्रित रखा है। इसीसे इसमें रस-भावों की फुलझड़ियाँ ही स्थान-स्थान पर पाई जाती हैं।

हास्य की ऐसी ही फुलझड़ी इस प्रसंग में देखिए : मुंशी शिवलाल घसीटे को चव्वनी की शराब लाने को कहते हैं, पर घसीटा आपत्ति करता है कि कल ही तो कण्ठी ली है और आज शराब पीनी भी शुरू कर दोगे। "मुंशी शिवलाल

सकपकाए। बाबा राघवदास की रामायण की कथा से प्रभावित होकर उन्होंने कण्ठी तो ले ली थी, लेकिन शराब छोड़ना इतना कठिन होगा, इस पर उन्होंने भावावेश में ध्यान नहीं दिया था······मुंशी शिवलाल थोड़ी देर तक चुपचाप सोचते रहे, "बात तो ठीक कहेव ! अबे मार लिया मैदान ! खूब बात सूझी ! देख, घर माँ गंगाजल की जो बोतल है, तो चार बूँद गंगाजल दारू माँ छोड़ लीन्हेव। गंगाजल से सबकुछ सुद्ध हुइ जात है।'

घसीटे हँस पड़ा, "वाह मुंसी, मान गएन तुम्हार खुपड़िया !"

कहने की आवश्यकता नहीं कि घसीटे के साथ पाठक भी हँसे बिना नहीं रह सकता। आरम्भ के पृष्ठ से ही मुंशी शिवलाल के चरित्र का चित्रण हास्योत्पादक है। यहाँ आकर हँसी का फव्वारा छूट जाता है। यह हास्य रस कोरा अनुरंजनकारी हास्य नहीं है। इसमें मुंशी शिवलाल के ढोंगी और फरेबी चरित्र के प्रति मीठा हास्य-व्यंग्य व्यंजित हुआ है, जो जीवन के स्वास्थ्य का प्रेरक है, बुराई के प्रति वितृष्णा जगाने वाला है अतः यह हास्य उदात्त है।

इसी प्रकार मुंशी शिवलाल के भाई राधेलाल का मुंशी रामसहाय से वार्तालाप, अपने खानदान की बड़ाई करना, विचित्र मसखरेपन से ज्वाला के नायब तहसीलदारी पर नामजद होने की सूचना देना आदि हास्योत्पादक हैं।

अंगीरस : पूछा जा सकता है कि 'भूले-बिसरे चित्र' का अंगीरस कौन-सा है अर्थात् उसमें किस रस की प्रधानता है ? इस प्रश्न का दो-टूक उत्तर देना कठिन है क्योंकि इस रचना में आरंभ से अंत तक कोई एक कथा या एक विषय-प्रवृत्ति नहीं है, न ही एक नायक है। एकाधिक नायकों और अन्य पात्रों से सम्बंधित विभिन्न प्रसंगों में विविध रस-भावों का प्रकाशन हुआ है। बीभत्स, शृंगार, हास्य, करुण और वीर रस—इन पाँच रसों का प्रसार अधिक है। यदि गहराई से देखा जाय तो इनमें भी बीभत्स रस की प्रधानता पाई जाती है—प्रसार और विस्तार की दृष्टि से भी और उदात्तता और गहनता की दृष्टि से भी। यह बात कुछ लोगों को चौंका देने वाली प्रतीत होगी क्योंकि अभी तक बीभत्स रस के बारे में परंपरागत संस्कार ही बने हुए हैं। बीभत्स रस का मनोवैज्ञानिक रूप उदात्त घृणानुभूति का है। इस रस के सही रूप-स्वरूप की जानकारी के लिए हमारा थीसिस 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य' पठनीय है।

उदात्त घृणा भाव पर आधृत प्रसंग और चरित्र ही 'भूले-बिसरे चित्र'

में सर्वाधिक हैं। मुंशी शिवलाल और राधेलाल के चरित्र-प्रकाशन में भी उपर्युक्त हास्यरस के बाद ज्यों-ज्यों उनके चरित्र की दुर्बलताएँ अधिकाधिक प्रकाश में आती जाती हैं, उनके प्रति हमारा हास्य-व्यंग्यानुभूति का भाव घृणानुभूति में परिणत होता जाता है। मुंशी शिवलाल की स्वार्थपरता, जैदेई के साथ ज्वाला के सम्बंध की जानकारी पाकर ज्वाला को माल-दौलत हथियाने की सलाह देना, राधेलाल और श्यामू की जालसाज़ी में योग देते हुए ज्वाला को झूठ बोलने पर ज़ोर देना, छिनकी के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार आदि बातें उसके प्रति हमारी घृणा को ही जगाती हैं और यह उदात्त घृणानुभूति ही बीभत्स रस है। इसी प्रकार राधेलाल की जालसाजियाँ और कुत्सित आचरण घृणोत्पादक हैं। श्यामू का धोखाधड़ी, चोरी आदि बुराइयों से भरा चरित्र भी बीभत्स रस का विषय ही है। इसी प्रकार किशनलाल की आवारगी और दुश्चरित्रता उसके प्रति पाठक की उदात्त घृणा जगाती है। घुंडी स्वामी का पाखंड भी घृणोत्पादक है। राधे की पत्नी का घर में अन्यायपूर्ण शासन, ज्वाला के घर में भी स्वार्थवश मालकिन बनी रहने की इच्छा, छुआछूत आदि रूढ़ियों से ग्रस्त होना आदि चारित्रिक बुराइयाँ घृणाजनक ही हैं। प्रभुदयाल की भारी सूदखोरी, बरजोरसिंह की खुदकाश्त पर कब्ज़ा करने का प्रयत्न आदि कृत्य घृणा या बीभत्स रस के ही आलम्बन हैं। बरजोरसिंह का थोथा वंशाभिमान, अपने राज-वर्ग की झूठी शान, प्रभुदयाल का अपमान कर देना, प्रभुदयाल को मार डालना आदि बुराइयाँ भी हमारी घृणा का ही आलम्बन बनी हैं। राजा सरोहन-जैसे व्यसनी, दुश्चरित्र सामंत और ज़मींदार को भी लेखक ने घृणा का ही विषय बनाया है।

इस प्रकार ज्वालाप्रसाद से सम्बंधित पहले दो खण्डों की अधिकांश सामग्री घृणा या बीभत्स रस की ही अनुभूति कराती है।

गंगाप्रसाद से सम्बंधित अगले दो खण्डों के भी अधिकांश प्रसंग और चरित्र घृणोत्पादक हैं। अंग्रेज़ों की रंग-भेद नीति, हैरिसन-जैसे अंग्रेज़-द्वारा गाँधीजी को गालियाँ देना, रेलवे कम्पनी की रंग-भेद नीति, अंग्रेज़ अफ़सरों द्वारा भारतीय सिपाहियों और मजदूरों का अपमान और गालियाँ देना, ब्रिटिश-सरकार का दमन-चक्र, 'फूट डालो' नीति, मीर जाफर अली-जैसे खुशामदी और दुश्चरित्र भारतीय अफ़सर, अलीरजा-जैसे दुष्ट स्वार्थी, तास्सुबी, शराबी और फ़ितना आदमी, अब्दुल हक़-जैसे कट्टर मुस्लिम साम्प्रदायिक—सब हमारी

तीव्र घृणा के आलम्बन बने हुए हैं। गंगाप्रसाद की ऐय्याशी, संतो व मलका के प्रति कामुकता और हरिजन गेंदालाल को अपमानित कर अपने ड्राइंग रूम से निकाल देना आदि दुष्कृत्य भी पाठक की घृणा ही जगाते हैं। मलका अलीरज़ा से सख्त नफ़रत करती है। जब गंगाप्रसाद अलीरज़ा को मलका के यहाँ बनारस में ले जाता है तो मलका उसे साथ लाने पर आपत्ति करती है। गंगाप्रसाद कहता है कि यह मेरा दोस्त है और लाजवाब आदमी है। इस पर मलका घृणा से भरकर कहती है, "हाँ, लाजवाब आदमी है—मक्कारी में, शैतानियत में, कमीनेपन में !" जब गंगाप्रसाद उसे अलीरज़ा के साथ निकाह पढ़ाकर बेगम अलीरज़ा बनने को कहता है तो मलका चौंक और तड़प उठती है : "या अल्लाह ! क्या सुन रही हूँ मैं ! तो आप मुझको छोड़कर इस मरदूद के गले मढ़ना चाहते हैं ! यह नहीं होगा, यह किसी भी हालत में नहीं होगा ! मैं खुदकशी कर लूँगी, लेकिन इस बेशरम कमीने के साथ किसी भी हालत में निकाह नहीं पढ़ाऊँगी। अभी निकालती हूँ इसे मकान से ! इसकी इतनी हिम्मत !"

मलका के मुँह से निकला एक-एक शब्द अलीरज़ा के प्रति तीव्र घृणा जगाता है। इस प्रसंग में मलका के रोष, क्षोभ, विस्मय, शोक आदि संचारी भाव बीभत्स रस की पुष्टि में योग दे रहे हैं। यही नहीं, मलका को गंगाप्रसाद की बातों और व्यवहार से भी ग्लानि हो रही थी। "मलका के अंदर क्रोध और दुःख के स्थान पर धीरे-धीरे वितृष्णा, ग्लानि और घृणा का आविर्भाव हो रहा था। उसने गंगाप्रसाद की ओर देखा। उसकी आँखों के आँसू जाते रहे थे। उसे ऐसा लगा कि एक नितान्त अजनबी आदमी उसके सामने बैठा हुआ है, जो चरित्रहीन है, आचारहीन है, जिसके लिए उसका स्वार्थ और उसका अस्तित्व ही उसका एकमात्र सत्य है,...।" (पृ० ४६४)।

इस प्रसंग में अलीरज़ा और गंगाप्रसाद दोनों ही घृणा के आलम्बन बने हुए हैं। यह भावानुभूति और रसानुभूति के मनोविज्ञान का वैचित्र्य ही है कि एक वेश्या के प्रति हमारा तादात्म्य हो रहा है और गंगाप्रसाद जैसे शिक्षित और सरकारी अफ़सर के प्रति घृणा जागृत हो रही है।

जैदेई की मृत्यु का प्रसंग एक ओर जैदेई के आलम्बनत्व से करुण रस की अनुभूति कराता है, दूसरी ओर स्वार्थी और अर्थ-पिशाच लक्ष्मीचन्द के आलम्बनत्व से घृणा या बीभत्स रस का पोषक है। लक्ष्मीचन्द की स्वार्थी, व्यावसायिक

बुद्धि, मृत्यु-शय्या पर पड़ी अपनी माँ के प्रति अन्याय और अत्याचार, अपनी माँ को गालियाँ तक दे डालना आदि सब कृत्य और वृत्तियाँ पाठक की तीव्र घृणा जगाते हैं। लाल रिपुदमनसिंह शिवप्रताप द्वारा अपनी पत्नी के फुसलाये जाने की जो कहानी सुनाता है और संतो के सम्बन्ध से गंगाप्रसाद की जो भर्त्सना करता है, वह सब बीभत्स रस का बहुत सुन्दर उदाहरण है। लाल साहेब उत्तेजित होकर कहते हैं, "आज मैंने अपनी आँखों से देखा कि वह स्त्री सतवंती...तुमने उसे भयानक रूप से नीचे गिरा दिया है। तुम्हारे गिलास की जूठी ह्विस्की अपने पति के सामने ही पीते मैंने देखा है उसे और मुझे उस समय ऐसा लगा कि तुम्हारे कहने से वह अपने पति की हत्या कर सकती है। तो एकाएक मेरे सामने तुम्हारी जगह शिवप्रताप की शक्ल आ गई। यह दुनिया शिवप्रतापों से भरी है, जिनके इशारों पर स्त्रियाँ गिरती हैं, जिनके प्रभाव से परिवार टूटते हैं, जिनके कहने से हत्याएँ होती हैं। मैं चाहता हूँ इन शिवप्रतापों को चुन-चुनकर दुनिया से हटा दिया जाय। सुना गंगाप्रसाद, ये शिवप्रताप मानवता के अभिशाप हैं, ये मनुष्य की योनि में साक्षात् पिशाच हैं!"...."डर गए बाबू गंगाप्रसाद? मैं तुम्हें मारूँगा नहीं, क्योंकि आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं, आज की मान्यताएँ बदल गई हैं। जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज़ बिकती है—दीन, ईमान, सत्य, चरित्र! यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है!...लेकिन गंगाप्रसाद, तुम इस राधाकिशन के शिवप्रताप भले ही न हो, तुम समाज के शिवप्रताप अवश्य हो! निकलो यहाँ से—निकलो!"

स्पष्ट है कि इस प्रसंग में शिवप्रताप और गंगाप्रसाद के प्रति तीव्र घृणा जगाई गई है। इसी प्रकार कामुकता और विलास-वासना में डूबे रानी हेमवती, कैलासो, संतो, मेजर वाटस, राजा सत्यजीत प्रसन्नसिंह आदि हमारी घृणा के पात्र बने हैं।

स्वदेशी आन्दोलन के सिलसिले में गिरफ्तार किये गए कांग्रेस के वालंटियर गंगाप्रसाद की अदालत में ही ब्रिटिश हुकूमत, उसके गंगाप्रसाद-जैसे राजभक्त भारतीय अफ़सरों के प्रति अपनी घृणा व्यंजित करते हैं।

जगमोहन अवस्थी कहता है, "मैं इस विदेशी शासन की अदालत को नहीं मानता। यह ब्रिटिश-सरकार जुल्म-पर-जुल्म करती जाती है। जलियाँ-वाला बाग का हत्या-काण्ड इसने किया; इसने बम्बई की निहत्थी जनता की

भीड़ पर गोलियाँ चलाईं," "ब्रिटिश हुकूमत मुर्दाबाद !" जब गंगाप्रसाद रामनारायण वर्मा से पूछता है कि, "तुम्हें कुछ अपनी सफाई देनी है या इसी तरह जेल जाना है ?"—तो रामनारायण वर्मा ने कड़ककर कहा, "तुम टोडी बच्चे, अंग्रेजों के गुलाम हो, गद्दारों और देशद्रोहियों के इजलास में सफाई देना पाप है ! महात्मा गांधी की जय !"

इसी प्रकार पाँचवें खण्ड में रायबहादुर कामतानाथ की स्वार्थपरता, सरकार-परस्ती, सिद्धेश्वरी, बिन्देश्वरी का दुष्ट चरित्र, अर्थ-पिशाची प्रवृत्ति, बिन्देश्वरी की रिश्वतखोरी, विद्या के प्रति दुर्व्यवहार आदि बातें उनके चरित्रों के प्रति घृणा उपजाती हैं। प्रेमशंकर के सिद्धेश्वरी को कहे गए इन शब्दों में उन बाप-बेटों के प्रति अपार घृणा व्यंजित हुई है, "मैं रिश्वतखोर, बेईमान और बदनीयत तो नहीं हूँ तुम लोगों की तरह ! मैंने जो वचन दिया था एक स्वाभिमानी मनुष्य की भाँति मैं उसे निबाहने को तैयार हूँ। वैसे तुम्हारे जैसे घृणित और पापी लोगों से सम्बंध जोड़ने में मुझे कोई प्रसन्नता न होगी !"

विद्या इन अर्थ-पिशाचों से घोर घृणा करती है। वह उन "लोगों के साथ रहना नरक में रहने से भी भयानक" समझती है। वह उन "लोगों की पाप की कमाई का एक पैसा भी नहीं चाहती।" जब बिन्देश्वरी उसका अपमान करता है तो वह पैर से चप्पल उतारकर उसकी ओर झपटती है और कहती है, "शैतान कहीं का !"—"कायर कहीं का !"

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में बीभत्स रस की प्रधानता है। घृणा भाव स्थान-स्थान पर जागृत होता है। यद्यपि बहुत स्थानों पर उसमें पर्याप्त तीव्रता और गहनता नहीं आ पाई है, क्योंकि वर्माजी आलम्बनों के चित्रण में पूरे सतर्क नहीं रहे हैं, जैसे विद्या के प्रति बिन्देश्वरी, सिद्धेश्वरी और उसके घर वालों के अमानुषिक व्यवहार और अत्याचार का विशद वर्णन न हो पाने से बिन्देश्वरी, सिद्धेश्वरी के प्रति विद्या के प्रसंग से तीव्र घृणा नहीं जग पाती और न ही विद्या के प्रति अधिक सहानुभूति और करुणा जगती है, तथापि उपन्यास में सर्वत्र उदात्त घृणा का प्रसार पाया जाता है और कई प्रसंगों में उसकी उत्कट अनुभूति उदात्त और गहन बीभत्स रसानुभूति कराती है।

'भूले-बिसरे चित्र' में घृणा का उल्टा प्रेम भाव दूसरा ऐसा भाव है जिसका प्रसार आद्यन्त पाया जाता है। नर-नारी प्रेम के रूप में यह शृंगार रस की अनुभूति कराता है, स्नेहीजनों के प्रेम रूप में या माता-पिता के संतति-प्रेमरूप

में यह वात्सल्य रस का विषय बना हुआ है, देश और देशवासियों के प्रति प्रेम देशप्रेम है और सामान्य मानवप्रेम प्रकट हुआ है। शृंगार रस के प्रसंग भी उपन्यास में कम ही हैं, क्योंकि सच्चे, निश्छल, त्यागपूर्ण नर-नारी-प्रेम की विशेष अभिव्यक्ति इसमें नहीं हो पाई है। इसी से उदात्त शृंगार रस का विशेष प्रकाशन नहीं हो सका है। जैदेई और ज्वालाप्रसाद का प्रेम और शारीरिक सम्बन्ध सामान्य शृंगार रस का विषय है। उसके मूल में भी प्रेम का अनुरोध इतना नहीं है, जितना काम का। होली के दिन ज्वालाप्रसाद जैदेई के यहाँ जाता है। जैदेई की काम-प्रवृत्ति दहक उठती है। वह सज-संवर कर ज्वाला को अपने शयनकक्ष में बुलाती है। "ज्वालाप्रसाद ने देखा कि जैदेई का रूप ही बदल गया है। वह आभूषणों से लदी थी। वह एक कीमती जड़ाऊ लहंगा पहने थी और उसके शरीर पर एक रेशमी ओढ़नी पड़ी थी। उसने ज्वालाप्रसाद से कहा, "देवरजी, ऐन होली के दिन होली दहकाने आए हो तो तुम्हें अपनी भौजी के साथ होली भी खेलनी पड़ेगी और अपनी भौजी से होली खिलाई भी लेनी पड़ेगी"……"देवर जी, होली खेलने आए हो, लेकिन तुमने मुझे गुलाल नहीं लगाया, तुमने मुझे अपनी बाहों में नहीं भरा। मेरे साथ जी भरकर होली खेलो, कोई हौसला बाकी न रह जाय। मेरे पास जो कुछ है वह तुम्हारा है—रुपया-पैसा, रूप-जवानी सभी कुछ" और ज्वालाप्रसाद ने देखा कि जैदेई कमरे का द्वार अन्दर से बन्द कर रही है।

जैदेई के इस प्रेम में उत्तरोत्तर गम्भीरता और प्रौढ़ता आती गई है। वह ज्वालाप्रसाद से असीम प्रेम करती है, उसे देवता के समान समझती है। वह इसी प्रेम के कारण गंगा को बेटे की तरह रखती और पढ़ाती है। मरते समय अपनी जमा-जथा गंगाप्रसाद को देना चाहती है। उसका शृंगार-भाव गंगा के प्रति वात्सल्य में परिणत होता है। जब लक्ष्मीचन्द पैसे के लोभ से अपनी माँ को 'छिनाल' कह देता है तो जैदेई को अपार दुःख होता है। वह ज्वालाप्रसाद से पूछती है, "क्या मैंने तुमसे प्यार करके कोई पाप किया है देवर जी ?"… "भगवान् की यही इच्छा थी देवर जी, जानती हूँ, और उन्हीं भगवान् ने तुम्हारे रूप में एक देवता मेरे जीवन में भेजकर मेरा थोड़ा-बहुत ताप हरा भी। देवरजी, उसी भगवान् की साक्षी देकर मैं कहती हूँ कि मैंने कोई पाप नहीं किया !"

इस प्रकार जैदेई-ज्वाला का यह अवैध प्रेम भी सर्वथा औचित्यपूर्ण है।

उसे रसाभास की स्थिति का शृंगार नहीं कहा जा सकता, यद्यपि आरम्भ में वह रसाभास प्रतीत होता है।

इसी प्रकार जहाँ गंगाप्रसाद का मलका के प्रति प्रेम रसाभास का प्रतिरूप है, वहाँ मलका का प्रेम वास्तविक होने से शृंगार रस का सुन्दर रूप है। पर जब मलका गंगाप्रसाद का असली रूप जान जाती है तो यह शृंगार-प्रेम घृणा या बीभत्स रस में परिवर्तित हो जाता है। तब मलका का सत्यव्रत शर्मा के प्रति सच्चा प्रेम शृंगार रस का उदात्त रूप ग्रहण करता है। सत्यव्रत शर्मा ने एक वेश्या को उदारतापूर्वक अपनाकर और प्यार कर उदात्त शृंगार रस का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह हिन्दू-मुसलमान का भेद भी नहीं विचारता। मलका के अपहरण पर सत्यव्रत दुःखी हो उठता है। वह गंगाप्रसाद से सहायता चाहता है। जब गंगाप्रसाद झल्लाया हुआ सहायता देने से इन्कार कर देता है, तो सत्यव्रत कहता है कि "मैं खुद माया को ढूंढूंगा।"

मुंशी शिवलाल और छिनकी का अवैध सम्बन्ध और प्रेम भी शृंगार रस का अनोखा उदाहरण है। छिनकी मुंशी शिवलाल से अटूट रिश्ते में जुड़ी हुई है। उसकी विवशतापूर्ण स्थिति और मुंशी शिवलाल का उसके प्रति अन्याय कई बार शृंगार रसाभास का भी आभास देता है, पर अन्त में मरते हुए मुंशी शिवलाल जिस संवेदना के साथ छिनकी को ज्वाला के आश्रय में सौंपते हैं, उससे उनका अवैध प्रेम भी पूत हो उठता है, अनौचित्य का दंश समाप्त हो जाता है।

संतो और गंगाप्रसाद का आरम्भिक आकर्षण भी शृंगार रसाभास का उदाहरण है। बाद में वह व्यभिचार सिद्ध होने से घृणा का विषय बन जाता है।

नवल और उषा का आरम्भिक प्रेम और आकर्षण सुन्दर शृंगार का उदाहरण है। "उषा! असीम सुन्दरता का वरदान लेकर वह आई है! कितना मधुर कंठ है उसका! उषा के सामने वह (नवल) खोया-सा, बेसुध-सा रह जाता है और उषा नवल से अनायास ही पूछ बैठती है—'क्यों, क्या सोच रहे हैं आप?' नवल अपने को बटोरता है। वह कह उठता है, उषा, मैं सोच रहा हूँ कि क्या भगवान् ने तुम्हारे समान सुन्दर किसी और को भी बनाया

होगा !' नवल के इस उत्तर से उषा खिलखिलाकर हंस पड़ती है, मानो असंख्य फूल एक साथ झर पड़े हों, 'जाइए, आप मुझे बना रहे हैं !'

पर नवल-उषा का यह प्रेम भी अंततः दो असमान विचार व संस्कार वालों का प्रेम होने से टूट जाता है।

ज्वालाप्रसाद-यमुना तथा गंगाप्रसाद-रुक्मिनी का प्रेम-शृंगार गार्हस्थ्य जीवन का परम्परागत रूप प्रस्तुत करता है। यमुना को अपने प्रेम पर अडिग विश्वास है। गार्हस्थ्य जीवन के कर्त्तव्यों में गुंथा यह प्रेम-सम्बन्ध अन्त तक गम्भीर रहता है।

'भूले-बिसरे चित्र' में वात्सल्य-स्नेह का भव्य रूप भी मिलता है। मुंशी रामसहाय और उनकी पत्नी महारानी ज्वाला से असीम स्नेह रखते हैं। मीर सखावत हुसैन भी ज्वाला को 'वालदैन' का स्नेह देते हैं, 'वालदैन' का कर्त्तव्य निभाते हैं। छिनकी का ज्वालाप्रसाद और उसके परिवार के प्रति असीम स्नेह है। भीखू भी गंगा, नवल, विद्या—सबके प्रति असीम स्नेह रखता है। विद्या की शादी के अवसर पर इस 'खिदमतगार' का वात्सल्य-स्नेह और करुणा भाव कितना पवित्र, कितना उदात्त, कितना प्रगाढ़ है ! दहेज की कमी की समस्या को जानकर वह अपनी जमा-जथा लाकर रख देता है, "भइया विद्या बिटिया के लिए हमार यू कन्यादान है !"

ज्वालाप्रसाद जब कहते हैं, "भीखू, यह तुम्हारी जन्म-भर की कमाई है, इसे हम नहीं ले सकते।"—तो भीखू बोला, "हमें अपने से अलग काहे समझत हौ भइया ? हमारे कौन खानदान-कुनबा आय ? जो कुछ है तौन ई लड़का-बच्चा आंय जिन्हें हम अपनी छाती पर चढ़ाय के पाला, बड़ा कीन।" और भीखू फूट पड़ा, "भइया, गंगा हमें तुमसे बढ़ के मानत रहै। हमें ऊ पर कितना गरब रहै ! तौन निरदई भगवान् ऊ का छीन लीन्हिस हमसे।" और भीखू के हिचकियाँ बंध गईं, "गंगा की बिटिया का हाथ पीला हुई जाय, यहै सधा रहै। तौन भगवान् वहौ दिन दिखाइस। हम विद्या बिटिया के नाम संकलप करके तौ आए हन, ई बकस तौन सम्हाल लेव—हमार कन्यादान !"

'ज्वालाप्रसाद की आँखों में भी आँसू आ गए। उन्होंने भीखू की ओर देखा। असीम करुणा और ममता थी उस बूढे और कुरूप मुख पर !' (पृ० ६५१-५२)।

इसी प्रकार यमुना, रुक्मिणी, जैदेई, ज्वाला—सब का हृदय असीम वात्सल्य से भरा है! रुक्मिणी अपने बेटे नवल को जेल जाते देखकर पहले तो तड़प उठती है किन्तु "अपने लड़के की जय-जयकार रुक्मिणी ने सुनी, और उसने देखा कि अपार जन-समुदाय उसके लड़के को विदा देने के लिए उमड़ पड़ा है। और रुक्मिणी ने अपने अन्दर एक पुलकन अनुभव की—उसका सारा विषाद छट गया। उसने अपने आँचल से अपने आँसुओं को पोंछा, एक बार उसने अपने अंक से अपने लड़के को लगाया, फिर उसने काँपते हाथों से नवल का तिलक किया और उसकी आरती उतारी।"

वात्सल्य का कितना उदात्त और भव्य रूप है यह! गर्व, हर्ष, धैर्य, आशंका, शोक आदि कितने ही संचारी भावों का सुन्दर मेला है यहाँ।

देश-प्रेम की पूत भावना स्वदेशी के सत्याग्रहियों, ज्ञान, नवल, विद्या आदि के प्रयत्नों में स्पष्ट प्रकट हुई है।

करुण रस के भी कई प्रसंग स्थान-स्थान पर प्रकट हुए हैं: बरजोरसिंह की आत्महत्या पर उसकी बेसहारा बेवा और बच्चों की करुणाजनक दशा, जैदेई, गंगाप्रसाद की मृत्यु के प्रसंग, रुक्मा की करुण दशा, मलका की विवशता और अन्त में विद्या का प्रसंग, यमुना का टूटना, नवल, ज्ञानप्रकाश का जेल जाना और ज्वालाप्रसाद का अकेला पड़ जाना—सब मिलकर उपन्यास को करुणापूर्ण अन्त प्रदान करते हैं। सब प्रसंगों में जीवन की उदात्तता प्रकट हुई है।

हास्य का उल्लेख ऊपर हो चुका है। उसके अतिरिक्त दंगल का आयोजन, घुंडी स्वामी का प्रसंग, स्वामी जटिलानन्द के शास्त्रार्थ का प्रसंग आदि सब हास्य रस की सुन्दर अनुभूति कराते हैं। हास्य और व्यंग्य की छटा उपन्यास में स्थान-स्थान पर पाई जाती है। ढोंगी धर्म-ध्वजियों और कामतानाथ-जैसे राजभक्त और वैभव-अभिमानी व्यक्तियों का अच्छा मजाक उड़ाया गया है।

वीररस के भी कई प्रसंग हैं। गंगाप्रसाद द्वारा रुक्मा के उद्धार का प्रयत्न, मलका को अलीरजा की कैद से साहसपूर्वक छुड़ाना, ज्ञानप्रकाश का निर्भीकता और साहस के साथ विद्या को उसके गहनों-समेत बिन्देश्वरी के यहाँ से लाना आदि साहस और द्वन्द्व के उदात्त वीरतापूर्ण प्रसंग हैं। जिस साहस और उत्साह के साथ गंगाप्रसाद अपने विरोधियों—फरहतुल्ला, डिप्टी अब्दुलहक़

आदि को परास्त करता है, जिस निर्भीकता के साथ हैरिसन-जैसे अंग्रेज को मुंहतोड़ जवाब देता है, वह अपमान महसूस करके नौकरी से इस्तीफ़ा देना चाहता है, वह सब गंगाप्रसाद को वीर नायक सिद्ध करते हैं !

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में रस-भावों की मधुर धारा स्थान-स्थान पर पाई जाती है। लेखक ने पाठक की उदात्त भावनाओं को हर प्रसंग पर जगाया है। ये उदात्त घृणा, प्रेम, करुणा, हास्य, साहस, त्याग, उत्साह आदि सुन्दर भाव ही उपन्यास की सरसता का कारण बने हुए हैं। इनके बिना भला उपन्यास पठनीय और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचना कैसे हो सकता था !

२२

यथार्थवाद : आदर्शवाद और 'भूले-बिसरे चित्र'

यथार्थवाद और आदर्शवाद साहित्यकार-द्वारा जीवन को चित्रित करने के दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। आदर्शवादी लेखक अतीत या वर्तमान जीवन में से महान् या भव्य चरित्रों को चित्रित करता है, 'प्रकृतजन' के चित्रण से उसकी सरस्वती ही 'सिर धुनि पछिताने' लगती है। महान् (Sublime) की प्रतिष्ठा आदर्शवादी लेखक का उद्देश्य होता है। इसके विपरीत यथार्थवादी लेखक जनवादी होता है। वह प्रकृत जन—साधारण प्राणी का चित्रण ही अपनी रचना का विषय बनाता है। किसी महान् की प्रतिष्ठा के स्थान पर वह साधारण जीवन का ही यथातथ्य चित्रण करता है। मानव अपनी समस्त दुर्बलताओं और स्वाभाविक सबलताओं के साथ यथार्थ रूप में यथार्थवादी रचनाओं में स्थान पाता है। आदर्शवादी लेखक जीवन के कतिपय महान् क्षणों से सम्बन्धित घटनाएँ चुनता है। इसके विपरीत, यथार्थवादी लेखक जीवन की साधारण घटनाएँ, साधारण व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रसंग अपनाता है। आदर्शवादी लेखक का मूलमंत्र होता है—'कला में दुराव अपेक्षित है' (Art lies in concealment)। वह जीवन की सामान्य बुराइयों पर ध्यान नहीं देता या उन्हें जानबूझकर छोड़ देता है। इसके विपरीत, यथार्थवादी साहित्यकार किसी प्रकार का दुराव-छिपाव नहीं करता; वह सामान्य जीवन की बुराइयों को उघाड़कर रख देता है। आदर्शवादी लेखक की दृष्टि विशेष जीवन पर केन्द्रित रहती है, जबकि यथार्थवादी की सामान्य जीवन पर। आदर्शवादी लेखक विशेष या महत् का उपासक होता है—महत् या उदात्त चरित, महत् घटना, महत् उद्देश्य, महत् या उदात्त (Grand) भाषा-शैली—सब कुछ महत् या उदात्त—ग्रेट एण्ड ग्रैंड ! यथार्थवादी साधारण का चितेरा

होता है—साधारण मानव-चित्रण, साधारण घटना, साधारण पात्र, साधारण जन-भाषा, साधारण जीवन-द्वारा ही प्रेरणापूर्ण उद्देश्य—सब कुछ साधारण अनगढ़ तथापि स्वाभाविक सुन्दर !

आदर्शवादी की आदर्श स्थापना उसकी रचना में स्पष्ट होती है; वह 'जीवन कैसा होना चाहिए'—यही दिखाना अपना उद्देश्य रखता है। 'जीवन कैसा है' और 'कैसा हो सकता है'—इससे उसका विशेष प्रयोजन नहीं होता। महान् पात्रों और उनके सत्-पक्ष का उद्घाटन आदर्शवादी साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है। वह सत्-पक्ष की असत्-पक्ष पर विजय का विधान करता है। इस प्रकार उसके पात्र सत्-पक्ष और असत्-पक्ष में बंटे हुए परंपरागत ढंग पर बंधे-बंधाये होते हैं। यथार्थवादी के पात्र सदसत् से ओतप्रोत यथार्थ होते हैं। यथार्थवादी की दृष्टि 'जीवन कैसा है' और 'कैसा हो सकता है'—इस पर ही रहती है। 'जीवन कैसा होना चाहिए'—यह उसमें प्रायः प्रच्छन्न रहता है, संकेतात्मक होता है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों की ही सीमाएँ हैं। अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने पर ये अपनी मर्यादा खो देते हैं। आदर्शवाद यदि कपोल-कल्पना (Utopia) हो जायगा, अव्यावहारिक तथा असंभाव्य होगा तो किसी काम का न रहेगा, और यथार्थवाद भी यदि नग्न, कुरुचिपूर्ण यथार्थ हो जायगा, तो अग्राह्य एवं त्याज्य बन जायगा। स्वप्निल कोरे आदर्शवाद के स्थान पर व्यावहारिक या क्रियात्मक आदर्शवाद ही वांछनीय होता है। इसी प्रकार स्वस्थ और प्रेरणापूर्ण यथार्थवाद ही साहित्यिक सत्य बन सकता है। मुंशी प्रेमचन्द आदि अनेक विद्वानों ने आदर्शवाद और यथार्थवाद की दो अतियों के खतरे का अनुभव किया था। कोरा या नग्न यथार्थवाद हमें केवल बुराई का अवलोकन कराता है, पर जीवन में बुराई ही बुराई प्रतीत होने से ऐसा यथार्थ-वाद निराशा या जड़ता की-सी स्थिति उत्पन्न कर देता है, कोई स्वस्थ प्रेरणा नहीं जगाता, इसी से अवांछनीय है। कोरा काल्पनिक अव्यावहारिक (Utopia) आदर्शवाद भी व्यर्थ है। प्रेमचन्द के शब्दों में "किसी देवता की कल्पना करना आसान है, पर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करना कठिन ही है।" ऐसा आदर्शवाद हमें किसी अतीन्द्रिय स्वर्गलोक में पहुँचा देता है, जहाँ धरती का स्वर सुनाई नहीं देता। आदर्शवाद और यथार्थवाद की अति से बचने के लिए ही प्रेमचन्द आदि विचारकों ने साहित्य में आदर्श और यथार्थ के समन्वय को उचित बताया।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी या यथार्थोन्मुख आदर्शवादी रचनाएँ कहा है।

'मृच्छकटिक' जैसी दो-चार रचनाओं को छोड़कर हमारा प्रायः समस्त प्राचीन साहित्य आदर्शवादी साहित्य ही है। प्राचीन हिन्दी साहित्य भी एकाध अपवादों को छोड़कर आदर्शवादी ही कहा जा सकता है। जीवन की जन-समस्याओं तथा जन-भावनाओं अर्थात् सर्वसाधारण के जीवन-आयामों का चित्रण आधुनिक युग में ही आरम्भ हुआ। प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा आदि हमारे आधुनिक सामाजिक कथाकारों का साहित्य एक ओर प्राचीन क्लासिकल संस्कृत-साहित्य से भिन्न है, दूसरी ओर प्राचीन हिन्दी साहित्य से भी उसमें दृष्टि और प्रवृत्ति-भेद स्पष्ट है। प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल आदि के उपन्यास पूर्वयुग के आदर्शवादी उपदेश-प्रधान उपन्यासों से भी भिन्न हैं। अतः प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा आदि को आदर्शवादी लेखक उस रूप में नहीं कहा जा सकता, जिस रूप में वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, कबीर और यहाँ तक कि आधुनिक काल के बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास (अपने उपदेश प्रधान उपन्यासों में) और जयशंकर प्रसाद ('कंकाल' उपन्यास और कुछ सामाजिक कहानियों के अपवाद को छोड़कर) आदि हैं।

वस्तुतः यथार्थ की विश्वसनीयता और वास्तविकता के सर्वथा अभाव में कोरा आदर्शवाद साहित्य में अग्राह्य ही होता है और आदर्श के दिशा-संकेत या प्रेरणा के अभाव में कोरा यथार्थवाद प्रकृतवाद हो जाने से त्याज्य है। अतः आदर्शवाद और यथार्थवाद दो विरोधी और विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियाँ होते हुए भी, दोनों के सामंजस्य से ही कला-साहित्य का वास्तविक स्वरूप निर्मित होता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, भगवतीचरण वर्मा को कवि व नाटककार जयशंकर प्रसाद आदि की आदर्शवादी साहित्य-परंपरा में नहीं रखा जा सकता। वर्माजी ने अपने उपन्यासों में सर्वत्र यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। उनके उपन्यासों का अधिकांश कलेवर यथार्थ के ताने-बाने से बुना रहता है। वर्माजी के नियतिवादी दृष्टिकोण ने कहीं-कहीं उन्हें कुछ-कुछ प्रकृतवादी साहित्यकार भी बना दिया है। जीवन का उन्होंने इतने तटस्थ भाव से चित्रण किया है कि अनेक स्थानों पर यथार्थवाद प्रकृतवाद-सा बन गया है और उसमें जीवन

की उदात्त प्रेरणाएँ जगाने की अधिक शक्ति नहीं दिखाई देती। 'सामर्थ्य और सीमा', 'वह फिर नहीं आई'-जैसे उपन्यासों की कुछ ऐसी ही स्थिति है। 'सामर्थ्य और सीमा' में वर्माजी ने जिस प्रकार प्रकृति की तुलना में मानव की असहायावस्था और विवशता का चित्रण किया है, वह प्रकृतिवादी दृष्टिकोण ही है, न उसमें आदर्शवाद है, न यथार्थवाद।

वर्माजी जीवन का चित्रण अपनी ओर से बिलकुल निरपेक्ष भाव से करते हैं। उन्होंने अपने पात्रों के कुत्सित आचरणों पर अपनी ओर से टिप्पणी रूप में प्रतिक्रिया कम प्रकट की है। जहाँ प्रेमचन्द प्रत्यक्ष शैली में स्वयं भी सटिप्पण प्रतिक्रिया खूब व्यक्त करते हैं, वहाँ भगवतीचरण वर्मा स्वयं यह कार्य बहुत कम करते हैं। वह नाटकीय ढंग से अपने पात्रों के वार्तालाप-द्वारा ही अधिकतर यह प्रतिक्रिया व्यंजित कराते हैं। इससे यथार्थ का निर्वाह अधिक ईमानदारी से हो जाता है और लेखक को सीधा उपदेशक और आदर्शवादी बनने की आवश्यकता नहीं रहती। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की अपेक्षा भगवतीचरण वर्मा में यथार्थ का आग्रह अधिक है। भगवतीचरण वर्मा ने अपने 'भूले-बिसरे चित्र' में कहीं भी आदर्शवाद का आग्रह नहीं दिखाया। न तो पात्रों के चरित्र-चित्रण में, न जीवन की अभिव्यक्ति और घटनाओं के आयोजन में कहीं भी आदर्शवादी प्रवृत्ति नहीं है।

'भूले-बिसरे चित्र' के सभी पात्र इसी धरती के यथार्थ मानव हैं। उन्होंने किसी देवता की कल्पना नहीं की है। कुछ पात्रों में मानवीय गुणों की प्रधानता अवश्य है, जैसे ज्ञानप्रकाश, नवल, विद्या, मीर सखावत हुसैन आदि ऐसे ही पात्र हैं, पर उनमें भी मानवीय यथार्थता है। मानव-सुलभ दुर्बलता भी किसी-न-किसी रूप में अवश्य दिखाई देती है। उनके गुण भी इसी लोक का यथार्थ है। किसी पात्र को उपदेशक या आदर्शों की स्थापना का हेतु नहीं बनाया गया है। वर्माजी ने मलका के माया शर्मा-रूप में चरित्र-परिवर्तन को भी यथार्थ रूप में ही प्रस्तुत किया है। आदर्शवादी लेखक होता तो मलका के इस परिवर्तन को आदर्शवाद की स्थिति पर पहुँचाता हुआ उसे देवी और महादेवी बना देता, पर वर्माजी उसे राष्ट्र-आन्दोलन में सक्रिय दिखाकर भी अंत में उसे एक सुगृहिणी तक ही सीमित रखते हैं, जो अपने बाल-बच्चों और घर के प्रति कर्त्तव्यों को नेतागीरी से अधिक पसंद करती है।

वर्माजी ने 'भूले-बिसरे चित्र' की किसी प्रकार की आदर्शात्मक परिणति नहीं की है। प्रेमचन्द ने जैसे अपने 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' आदि कई उपन्यासों को यथार्थ से आरम्भ कर किसी प्रकार के आश्रम या सदन की स्थापना करते हुए उनकी परिणति आदर्शवाद में की है, वैसा प्रयास भी वर्मा जी के किसी उपन्यास में नहीं पाया जाता। बल्कि उनके उपन्यासों का कई बार प्रकृतवादी या नियतिवादी अंत प्रतीत होता है। 'चित्रलेखा' से ही वर्माजी ने यह नियतिवादी दृष्टिकोण अपना लिया था। 'सामर्थ्य और सीमा' में मानव की निरुपायावस्था के रूप में इसका बड़ा ही दुखपूर्ण रूप प्रकट हुआ था। 'भूले-बिसरे चित्र' में भी मानव को यथार्थरूप में परिस्थितियों का दास दिखाते हुए वर्माजी ने अन्त में ज्वालाप्रसाद की स्थिति को कुछ करुणाजनक रूप दिया है। वह वृद्ध जीवन में अकेला पड़ जाता है, पर हारता नहीं। इस प्रकार की नियतिवादी परिणति आदर्शवादी तो है ही नहीं; सर्वथा यथार्थवादी है।

पर वर्माजी ने प्रकृतवादियों की तरह जीवन के दुर्बल पक्षों तक ही अपने को सीमित नहीं रखा। इसलिए उन्हें कोरा प्रकृतवादी या कोरा यथार्थवादी भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने सर्वत्र जीवन की यथार्थ बुराइयों और दुर्बलताओं तथा विवशताओं का चित्रण करके भी भलाई, सबलता और जीवन के प्रति उत्साह और आस्था की प्रेरणा जगाई है। वर्माजी ने ऐसे नग्न कुरुचिपूर्ण स्थूल को प्रायः कहीं नहीं अपनाया जो पाठक का मानसिक स्खलन करता है। संतो के चरित्रांकन में कुछ कुरुचिरता आ गई है, पर लाल रिपुदमनसिंह द्वारा गंगाप्रसाद और संतो की भर्त्सना, स्वयं संतो द्वारा अपनी स्थिति के प्रति ग्लानि और अपनी विवशता का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन उसके चरित्र को स्खलनकारी घोर यथार्थवाद बनने से बचा लेते हैं। वर्माजी ने 'जीवन कैसा है'—यह चित्रित करके भी 'जीवन कैसा होना चाहिये' या कम-से-कम 'जैसा बुरा है वैसा नहीं होना चाहिए'—यह प्रेरणा या सुझाव सर्वत्र दिया है।

'भूले-बिसरे चित्र' में वर्माजी ने समाज की बुराइयों के यथार्थ चित्रण में कोई दुराव-छिपाव की नीति नहीं अपनाई। संतो-कैलासो, रानी हेमवती, राजा घाटबागान, गंगाप्रसाद, मेजर वाट्स आदि की कामुकता, ऐयाशी और निर्लज्जता, मुंशी शिवलाल, राधेलाल, श्यामू आदि की जालसाज़ियाँ और स्वार्थपरता, स्वामी जटिलानन्द, अल्लामा वहशी आदि का धार्मिक पाखण्ड,

डिप्टी अब्दुलहक, अलीरजा आदि की साम्प्रदायिक कट्टरता, बिन्देश्वरी-जैसे अर्थ-पिशाच की रिश्वतखोरी तथा धन-लोलुपता और अमानवीयता, मीर जाफ़रअली की खुराफातें आदि सब प्रसंग, घटनाएं और चरित्र यथार्थवादी शैली में अंकित हुए हैं। पर वर्माजी ने व्यक्ति और समाज की इन सब बुराइयों के प्रति प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपनी घृणात्मक प्रतिक्रिया सर्वत्र प्रकट की है, जिससे किसी भी कुत्सित घटना या चरित्र से पाठक का मानसिक स्खलन नहीं होता। भले ही वर्माजी स्वयं कई स्थानों पर तटस्थ रहे हैं, पर उनका कोई-न-कोई पात्र अपनी प्रतिक्रिया-द्वारा पाठक के मन में बुराई के प्रति वितृष्णा अवश्य जगाता रहा है। इसी से न कोई यथार्थ वर्णन अश्लील बनने पाया है, न कुरुचिपूर्ण। इस यथार्थ से भी पाठक जीवन की स्वस्थ प्रेरणा ग्रहण करता है। कहीं भी वर्माजी का यथार्थ नग्न, कुरुचिपूर्ण, अश्लील या अभद्र नहीं बन पाया है।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' में क्या घटनाओं की दृष्टि से, क्या चरित्र-चित्रण और क्या उद्देश्य की दृष्टि से सर्वत्र यथार्थवादी प्रवृत्ति पाई जाती है। वर्माजी का उद्देश्य यथातथ्यपूर्ण शैली में युग-बोध कराना रहा है। इसीसे इस उपन्यास में सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्र पाये जाते हैं। राधेलाल, राधे की पत्नी आदि की जात-पांत व छुआछूत, जात-बिरादरी के ढकोसले, अंग्रेजों की रंग-भेद और दमननीति, राष्ट्र-आन्दोलन का स्वरूप, तत्कालीन रहन-सहन, आचार-विचार आदि सभी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का लेखक ने यथातथ्यपूर्ण यथार्थ चित्रण किया है। युग की वास्तविक स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। किसी आदर्श की स्थापना का उद्देश्य नहीं अपनाया।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी वर्माजी की कला यथार्थवादी ही है। सभी पात्र यथार्थ मानव हैं—अपनी दुर्बलताओं और सबलताओं से मंडित इसी धरती के हाड-मांस के पुतले यथार्थ मानव हैं। इन पात्रों के अच्छे आचरणों से जीवन की सत् प्रेरणा मिलती है और बुरे आचरणों या बुराई के प्रति वितृष्णा और घृणा उत्पन्न होती है। नवल, ज्ञानप्रकाश, सत्यव्रत शर्मा, विद्या आदि पात्र जीवन में कर्मठता, उत्साह, साहस, देशप्रेम आदि की आदर्श प्रेरणाएँ जगाते हैं। इसी से वर्माजी का यथार्थवाद प्रेरणापूर्ण या स्वस्थ यथार्थवाद है। प्रेमचन्द के 'गोदान' की तरह 'भूले-बिसरे चित्र' को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना कहा जा सकता है। वह यथार्थवादी उपन्यास है, क्योंकि वर्माजी का जीवन के प्रति

सर्वत्र यथार्थवादी दृष्टिकोण पाया जाता है, आदर्शवादी नहीं, पर क्योंकि यह यथार्थ कोरा या नग्न अथवा प्रेरणाशून्य यथार्थवाद नहीं है, स्वस्थ और प्रेरणा-पूर्ण है, इसीसे जीवन के उच्च आदर्शों की ओर संकेत देने के कारण वह आदर्शोन्मुख अर्थात् आदर्श का दिशा-संकेत करने वाला है। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' यथार्थवादी उपन्यास होते हुए भी आदर्श के सामंजस्य से ओतप्रोत है। उसे आदर्शवादी रचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वर्माजी का उद्देश्य किसी आदर्श की साग्रह स्थापना करना नहीं है।

सारांश यह कि 'भूले-बिसरे चित्र' स्वस्थ प्रेरणापूर्ण यथार्थवादी या यथार्थ और आदर्श के सामंजस्य से युक्त आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना है। उसकी भाषा-शैली जन-भाषा-शैली है, उनमें जन-जीवन का चित्रण है, जनता की समस्याओं का अंकन है, साधारण जन-पात्र हैं, किसी महान् की कल्पना नहीं की गई है।

२३

'भूले-बिसरे चित्र' : नामकरण

किसी साहित्यिक रचना का नामकरण भी महत्त्व रखता है। उससे लेखक की सूझ-बूझ, कलात्मक प्रवृत्ति और रुचि का परिचय मिलता है। नाम उपयुक्त, सार्थक, आकर्षक और संक्षिप्त होना चाहिए। साहित्यिक रचनाओं का नामकरण करते समय लेखक को कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है।

पहली बात तो यह कि नाम सार्थक होना चाहिए। नाम ऐसा होना चाहिए जो रचना की मुख्य कथा, मुख्य घटना, मुख्य पात्रों के चरित्र अथवा रचना के मुख्य उद्देश्य या रचना की विषय-सामग्री से सम्बन्धित हो। रचना के नाम से ही उसकी आन्तरिक तस्वीर मनःचक्षु के आगे प्रत्यक्ष हो जानी चाहिए। नाम की सार्थकता इसी बात में है कि वह नाम रचना के मुख्य गुण, स्वरूप और प्रवृत्ति का बोधक हो।

नामकरण के सम्बन्ध में दूसरी बात यह कि नाम जहाँ तक हो सके अभिधात्मक न हो, कलात्मक व्यंजनात्मक होना चाहिए। सीधे अभिधात्मक नामों में कोई आकर्षण नहीं होता, कोई विशेषता नहीं होती। 'गोदान', 'सेवासदन', 'जहाज का पंछी', 'संन्यासी', 'थके पांव', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि व्यंजनापूर्ण नाम 'निर्मला', 'चित्रलेखा'-जैसे अभिधात्मक नामों की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं।

नामकरण के लिए तीसरा दृष्टि-बिन्दु यह है कि जहाँ तक हो, नाम एक-दो या तीन शब्दों का संक्षिप्त होना चाहिए। अधिक बड़े और लम्बे नाम भद्दे और अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

इन औचित्य-बिन्दुओं के आधार पर जब हम 'भूले-बिसरे चित्र' के नामकरण की उपयुक्तता पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि यह नामकरण सर्वथा सार्थक, आकर्षक और उपयुक्त है। इस रचना में वर्माजी का उद्देश्य बीते युग के भूले-बिसरे चित्रों को प्रस्तुत करके पुरानी यादें ताजा करानी—युगबोध कराना ही है। 'भूले-बिसरे चित्र' वर्माजी का एक बृहत्काय उपन्यास है, जिसकी चित्रावली, जिसकी चरित्र-सृष्टि विशाल है। इतने विस्तृत चित्रपट पर विराट् युग-बोध कराना ही लेखक का उद्देश्य है। सन् १८८५ से १९३० ई०

तक की दीर्घ कालावधि में लेखक ने बदलती हुई चार-चार पीढ़ियों के बदलते हुए पात्रों, पुरानी दुनिया के स्थान पर बदलती हुई नई दुनिया, अतीत युग के अनेक विस्मृत दृश्यों के चित्र प्रस्तुत किये हैं। युगबोधकारी 'भूले-बिसरे चित्र' में युग की बदलती हुई मान्यताओं, परिवर्तित होती हुई राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये गए हैं जो वर्तमान पीढ़ी के पाठकों के लिए भूले-बिसरे-से ही हैं। युग-चित्रों की सजीवता ही इस उपन्यास की विशेषता है, युग-चित्र ही इसकी विषय-सामग्री है, युग-चित्र ही इसकी 'थीम' है। सारी घटनाएँ, सारे प्रसंग, सारी परिस्थितियाँ, सब पात्र युग के सच्चे चित्रों के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इसी कारण 'भूले-बिसरे चित्र' देशकाल-वातावरण-प्रधान सामाजिक उपन्यास बना है।

मुंशी शिवलाल-जैसे पुराने ज़माने के अर्ज़ीनवीस अब कहाँ हैं? छिनकी, भीखू-जैसे परिजन-सेवक या 'खिदमतगार' अब कहाँ हैं? छिनकी-शिवलाल का-सा सम्बन्ध आज बीते युग की ही बात है। मीर सखावत हुसैन, ज्वालाप्रसाद-जैसे ईमानदार तहसीलदार अतीत की यादगार ही हैं। मुंशी शिवलाल, राधेलाल की कल्पना के सम्मिलित परिवार भी अतीत की कहानी-मात्र हैं। न वह महाजनी पूँजीवाद रहा है, न प्रभुदयाल-जैसा ज़मींदार महाजन। ज़मींदारी प्रथा भी समाप्त हो चुकी है। वह ब्रिटिश-शासन, वह वैभवपूर्ण दिल्ली-दरबार, अंग्रेज़-शासकों की वह शान, उनकी वह रंग-भेद-नीति, 'फूट डालो'-नीति, वह खिलाफ़त आन्दोलन, स्वदेशी, असहयोग, कर-बन्दी, नमक-कानून भंग करना आदि वे राष्ट्र-आन्दोलन, जिनके चित्र इस उपन्यास में प्रकट किये गए हैं, आज विस्मृति के गर्भ से निकालकर स्मृति-पट पर लाई जाने वाली बातें ही रह गई हैं। लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा ने इन सब भूले-बिसरे चित्रों की ही इस उपन्यास में याद ताज़ा कराई है। इन भूले-बिसरे दृश्यों के प्रति ही हमारी भाव-संवेदनाएँ उसने जगाई हैं।

'भूले-बिसरे चित्र' में घटनाओं और प्रसंगों की विविधता के साथ पात्रों की भी विविधता है। पाँचों खण्डों के अनेक कथा-प्रसंगों से संबंधित अनेक पात्रों की इसमें अवतारणा हुई है। इन सब पात्रों में व्यक्ति-सजीवता चाहे न आ पाई हो, पर सब पात्र अपने युग-वर्ग की सजीवता के भूले-बिसरे चित्र अवश्य हैं, इसमें सन्देह नहीं हो सकता। अनेक पात्रों का सृजन ही केवल युग-चित्र या युग-बोध के लिए किया गया है। दिल्ली-दरबार का प्रबन्ध देखने

वाले पंजाब के अंग्रेज लेफ्टिनेंट गवर्नर का शान से गश्त लगाना, गोरे अफसरों का अकड़ते हुए चलना, भारतीय मजदूरों और सिपाहियों को डाँटना, गाली देना आदि व्यक्ति-चरित्र या व्यक्ति-चित्र नहीं हैं, अपितु युग-पात्रों के अतीत-चित्र हैं। विलियम ग्रिफ़िथ्स की अवतारणा युग-चित्र प्रस्तुत करने के लिए ही हुई है। उसका व्यक्तिगत चरित्र प्रकट नहीं हुआ है, केवल ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक उदार सदस्य के रूप में उसका युगबोधकारी अतीत चित्र ही प्रस्तुत हुआ है। इसी प्रकार स्वामी जटिलानन्द, अल्लामा वहशी, पण्डित सोमेश्वरदत्त आदि पात्रों को लेखक ने युग-चित्र प्रस्तुत करने के लिए—आर्यसमाज के प्रचार और शास्त्रार्थ का दृश्य उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत किया है। डिप्टी अब्दुलहक़, फरहतुल्ला, समीउल्ला आदि पात्रों का सृजन तत्कालीन मुस्लिम राजनीति तथा हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का चित्र प्रकट करने के लिए हुआ है। अंग्रेज उद्योगपति हैरिसन की अवतारणा से वर्माजी ने यह दिखाया है कि उस युग में अंग्रेज अंग्रेज थे, भारतीय भारतीय थे; एक शासक थे, दूसरे शासित।

इस प्रकार 'भूले-बिसरे चित्र' के पात्रों की इतनी बड़ी भीड़ में अधिकांश पात्र युग-चित्र प्रस्तुत करने के हेतु ही प्रस्तुत किये गए हैं। वे व्यक्ति-चरित्र नहीं हैं, अपितु युग-चित्र हैं। मुंशी शिवलाल, मुंशी राधेलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवल, छिनकी, जैदेई, विद्या, ज्ञानप्रकाश आदि जो पात्र व्यक्ति-चरित्र हैं, उनमें भी युग-चित्रण की विशेषता पाई जाती है। वे निजी व्यक्तित्व के साथ-साथ अपने-अपने युग और वर्ग का प्रतिनिधित्व करने से युग-चित्र भी हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि 'भूले-बिसरे चित्र' 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत के अनुसार अपने नाम की सार्थकता प्रमाणित करता है। निस्संदेह उसमें बीते युग की विस्मृति के गर्त में पड़ी घटनाओं, प्रसंगों, पात्रों के चित्रों को वर्माजी ने एक विशाल चित्रपट पर अंकित किया है। इस नाम के सामने आते ही उपन्यास की आन्तरिक तस्वीरें मनः-चक्षु के सामने प्रत्यक्ष हो उठती हैं। इस उपन्यास में कोई एक कहानी या जीवन का किसी एक नायक से सम्बन्धित कोई एक चित्र नहीं है, अपितु युग के अनेक चित्र हैं, अनेक चरित्र हैं। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' नाम पर्याप्त सार्थक है।

उपर्युक्त सार्थकता के साथ ही यह नाम व्यंजनापूर्ण भी है। उपन्यास का नाम

किसी एक पात्र या घटना के आधार पर अभिधा रूप में नहीं रखा गया है। 'भूले-बिसरे' शब्द में अतीत-युग की ध्वनि है। 'चित्र' अपने में कलात्मक अभिधान है। अतः 'भूले-बिसरे चित्र' नाम पर्याप्त आकर्षक, व्यंजनापूर्ण और कलात्मक है।

'भूले-बिसरे चित्र' नाम केवल दो शब्दों का संक्षिप्त नाम है। अतः संक्षिप्तता की दृष्टि से भी वह अपनी उपयुक्तता सिद्ध करता है। शब्द भी अधिक वर्णों के बड़े शब्द नहीं हैं। 'भूले-बिसरे' शब्द द्वित्व शब्दों का लोक-प्रचलित रूप है। उसकी अर्थ-ध्वनि सरल भी है और मार्मिक भी।

अतः सब दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'भूल-बिसरे चित्र' नाम सार्थक, कलात्मक, व्यंजनापूर्ण, संक्षिप्त और उपयुक्त है। उसमें किसी प्रकार का अनौचित्य तो है ही नहीं।

परिशिष्ठ

महत्त्वपूर्ण स्थलों की संदर्भ-सहित व्याख्या

(१) 'बरखुरदार, पाप गले आकर पड़ता है, बुजुर्गों का कहना गलत नहीं है; और हम सब जानते हैं कि पाप को दूर ही रखना मुनासिब है। धन-दौलत से मुहब्बत हरेक इन्सान को होती है और होता ऐसा है कि यह धन-दौलत का देवता हमारे असली देवता को खा जाता है।' (संक्षिप्त संस्करण, पृ० ४३)

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' से उद्धृत किया गया है। इस उपन्यास के प्रथम खण्ड की कथा ज्वालाप्रसाद से सम्बन्धित है। ज्वालाप्रसाद घाटमपुर का नायब तहसील-दार है और मीर सखावत हुसैन तहसीलदार हैं। मीर साहब ज्वालाप्रसाद को अपने बेटे-जैसा समझते हैं। जब उन्हें मालूम होता है कि सूदखोर महाजन प्रभुदयाल का ज्वालाप्रसाद के साथ मेल-मिलाप बढ़ता जा रहा है और ठाकुर गजराजसिंह की लड़की के विवाह के अवसर पर शिवपुरा के नम्बरदार प्रभुदयाल का और नम्बरदारिन ज्वालाप्रसाद के यहाँ ठहरे थे, तो मीर सखावत हुसैन के पूछने पर ज्वालाप्रसाद कहता है, 'हाँ हुजूर, ठहरे तो वे लोग मेरे ही यहाँ थे, लेकिन मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने उसे अपने यहाँ ठहरने की दावत नहीं दी थी, जबरदस्ती वह हम लोगों के गले आ पड़ा.........।'

यह सुनकर, प्रस्तुत पंक्तियों में मीर सखावत हुसैन ज्वालाप्रसाद को समझाते हुए कहते हैं कि उसे प्रभुदयाल से दूर रहना चाहिए।

व्याख्या : मीर साहब बड़े अनुभवी आदमी हैं। वह प्रभुदयाल के चरित्र से पूर्ण परिचित हैं। उनका कथन है कि प्रभुदयाल का सारा दीन-ईमान पैसा है। इसलिए ऐसे 'टकाधर्म' वाले व्यक्ति के साथ हेल-मेल पाप को गले लगाने के समान है। ज्वालाप्रसाद को समझाते हुए मीर साहब कहते हैं, 'बेटा, यह ठीक है कि तुमने प्रभुदयाल को आमंत्रित नहीं किया होगा, वह जबरदस्ती तुम्हारे गले आ पड़ा होगा, क्योंकि यह बड़े लोगों का कहना है कि पाप गले

आकर पड़ता है। पर फिर भी समझदारी इसी में है कि पाप को दूर रखा जाये। प्रभुदयाल-जैसे पैसे का मीत तो अपने स्वार्थ के लिए तुम-जैसे सरकारी अफ़सर से मेल-मिलाप बढ़ाना चाहेगा ही। पर हमें ऐसे व्यक्ति को अपने से दूर ही रखना चाहिए। धन-दौलत का आकर्षण बड़ा मोहक होता है। धन के देवता को दूर से ही नमस्कार कहना चाहिये, क्योंकि उसका जाल बड़ा खतरनाक होता है। उसमें एक बार फंस जाने पर—इस धन के देवता के प्रभाव में आ जाने पर, वह मनुष्य के असली देवता अर्थात् मनुष्यता को चर जाता है, मनुष्य के सद्‌गुणों को समाप्त कर देता है, उसका धर्म बदल देता है, उसे भी 'टका धर्मी' बना देता है। अतः उससे सावधान रहना चाहिये। प्रभुदयाल के आकर्षण, धन-दौलत के लोभ-मोह से बचे रहने में ही भलाई है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए यह प्रभुदयाल रुपये-पैसे का लोभ देकर ज्वालाप्रसाद की ईमानदारी और न्यायप्रियता को कलंक लगा सकता है। इसलिए इसे दूर रखना चाहिये।

विशेष : संवाद बड़ा ही उपयुक्त है। 'पाप गले आकर पड़ता है' में कहावत का प्रयोग बड़ा सुन्दर है। 'धन-दौलत का देवता हमारे असली देवता को खा जाता है'—यह वाक्य सुन्दर लाक्षणिक शब्दों से युक्त है।

(२) 'यह जो धन का देवता होता है, इसके पुजारियों का भी एक मजहब है। मजहब का कुदरती गुण है फैलना, दूसरों को अपने में शामिल करना। इस रुपये-पैसे के मजहब का आदमी काफ़ी खतरनाक साबित हो सकता है, क्योंकि वह तुम्हारे मजहब को बदलने की कोशिश करेगा।'

(संक्षिप्त संस्करण, पृ० ४३)

प्रसंग : प्रसंग या संदर्भ उपर्युक्त ही है। ऊपर के अवतरण में देखें।

व्याख्या : मीर सखावत हुसैन ज्वालाप्रसाद को समझाते हुए कहते हैं कि प्रभुदयाल का सारा दीन-ईमान पैसा है। वह धन के देवता का ही पुजारी है। वह मनुष्यता से गिरा हुआ है। ऐसा व्यक्ति स्वयं ही पतित रहे तो भी शायद इतनी हानि की बात नहीं, पर वह तो दूसरों को भी गिराने की कोशिश करता है। उसके साथ जो भी आता है, गिरे बिना नहीं रहता। इसीलिए मीर साहब ज्वालाप्रसाद को सचेत करते हुए कहते हैं कि धन के देवता के पुजारियों का

भी एक मज़हब (धर्म) होता है और वह है 'टका धर्म'। मज़हब का स्वभाव है फैलना, दूसरे मज़हब वालों को अपने मज़हब में खींचना। अर्थात् 'टका धर्म' मज़हब वाला यह प्रभुदयाल ज्वालाप्रसाद को भी 'टका धर्मी' बनाने का प्रयत्न करेगा। इसलिए इस खतरनाक आदमी से दूर रहना चाहिये। यह स्वार्थी और पैसे को ही धर्म मानने वाला प्रभुदयाल ज्वालाप्रसाद के सच्चाई, ईमानदारी, निःस्वार्थ-भावना आदि उच्च मानवीय धर्मों को बदलने और उसे भी धन के देवता का दास बनाने की कोशिश करेगा, अतः इसे अपने से दूर रखना चाहिये।

विशेष : संवाद बड़े ही मार्मिक और उपयुक्त हैं। लाक्षणिक शब्दों के प्रभावपूर्ण प्रयोग से कथन बड़ा ही आकर्षक बन गया है। देवता, मज़हब, पुजारी आदि उपमानों के प्रयोग ने भाषा को अलंकृत किया है।

(३) 'सत्ता इस युग में भुज-बल में नहीं है, सत्ता अब रुपये में है। आखिर अंग्रेज लोग बनिये ही तो हैं। सात समुन्दर पार करके विलायत से यहाँ आए थे तिजारत करने और सारे हिन्दुस्तान पर राज कर रहे हैं।' (पृ० ४४)

प्रसंग : प्रस्तुत उद्धरण उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के प्रथम खण्ड से उद्धृत किया गया है। ठाकुर बरजोरसिंह ने अपनी खुदकाश्त जमीन लाला प्रभुदयाल के पास रेहन रखी हुई है। बरजोरसिंह अपने राजवंश के अभिमान के कारण लाला प्रभुदयाल का अपमान कर देता है, जिससे चिढ़कर लाला प्रभुदयाल बरजोरसिंह के विरुद्ध मुकदमा करके उसकी खुदकाश्त अपने नाम कराने और अतिशीघ्र उस जमीन पर कब्जा करने की ठान लेता है। बरजोरसिंह ठाकुर गजराजसिंह का साला है। प्रभुदयाल द्वारा मुकदमा कर देने से उत्तेजित होकर ठाकुर गजराजसिंह समस्या के हल के लिए ज्वालाप्रसाद के पास आता है और कहता है, 'नायब साहेब, बनिया राजा बनने चला है !' ज्वालाप्रसाद उसके संकेत पर ध्यान न देकर उसके कथन की सटिप्पण पुष्टि प्रस्तुत पंक्तियों में करता है।

व्याख्या : गजराजसिंह की बात का सहज समर्थन करता हुआ ज्वाला-प्रसाद कहता है कि आजकल की बनियों की दुनिया में इस बात पर क्या आश्चर्य कि बनिया राजा बनने चला है। अपने मत को स्पष्ट और पुष्ट करता हुआ ज्वालाप्रसाद कहता है कि आज के युग में अधिकार और शासन भुज-बल

अर्थात् शारीरिक शक्ति में नहीं है, अपितु रुपये-पैसे में ही शक्ति है। पैसा हो तो पुलिस, सेना सब खरीदी जा सकती है। अंग्रेज लोग इस देश में व्यापारी बनकर ही तो आए थे! वे बनिये ही तो हैं और सात समुन्दर पार से आकर इस देश के राजा बन गए हैं!

विशेष : स्पष्ट है कि ज्वालाप्रसाद जानकर या अनजाने ही ठाकुर गजराज सिंह की बात का समर्थन करते हुए अंग्रेजों का उदाहरण देते हैं। गजराजसिंह का लक्ष्य था प्रभुदयाल, पर ज्वालाप्रसाद बात को अंग्रेजों पर ढाल देते हैं, जिससे गजराजसिंह और झुँझला उठता है।

(४) 'कर्ज बुरी बला है और खासतौर से जब वह किसी बदनाम पेशेवर सूदखोर से लिया जाए। न जाने कितने घरों को तबाह कर दिया है इस कर्ज ने!' (पृ० ४५)

प्रसंग : उपर्युक्त ही है। जब गजराजसिंह ज्वालाप्रसाद को बताता है कि 'प्रभुदयाल ने बरजोरसिंह पर मुकदमा दायर कर दिया है, बरज़ोर की खुद-काश्त उसके यहाँ रेहन थी'—तब ज्वालाप्रसाद इन पंक्तियों में कर्ज की बुराई व्यक्त करते हैं।

व्याख्या : किसी का कर्ज़ सिर पर चढ़ा लेना बहुत बुरी बात है। विशेष रूप से ऐसा कर्ज जो किसी बदनाम सूदखोर से लिया जाय, बुरी बला है। ज्वालाप्रसाद का अभिप्राय यह है कि प्रभुदयाल-जैसे बदनाम बनिये से कर्ज़ लेकर बरज़ोरसिंह ने मुसीबत गले लगा ली है। प्रभुदयाल के फंदे में एक बार जो पड़ गया, उसका छूटना मुश्किल है। न जाने कितने घरों को इन सूदखोरों ने तबाह कर दिया है, न जाने कितनों को कर्ज़ ने उजाड़ दिया है!

इस प्रकार ज्वालाप्रसाद अपनी प्रतिक्रिया व्यंजित करता हुआ कहता है कि जो कुछ हुआ है, बहुत बुरा हुआ है। बरज़ोरसिंह को प्रभुदयाल से कर्ज़ नहीं लेना चाहिये था। ज्वालाप्रसाद बाद में यह भी कहता है कि बरज़ोरसिंह ने प्रभुदयाल का अपमान करके भी बुरा किया है, शायद उसी से चिढ़कर प्रभुदयाल ने बरज़ोरसिंह पर मुकदमा किया है।

(५) 'जो अयोग्य है, बुद्धिहीन है, असंयमी है उसे तो तबाह होना ही है। उसको तबाही को भला कोई कैसे बचा सकता है। इस सबको चिन्ता छोड़िए।

नियति का विधान एक अजीब ढंग से चलता भी। इस दुनिया में जीवित वह रह सकता है जो समर्थ है।' (पृ० ५१)

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' से उद्धृत की गई हैं। गजराजसिंह द्वारा यह सूचना पाकर कि प्रभुदयाल ने बरजोरसिंह पर मुकदमा कर दिया है और प्रभुदयाल अपने रुपये की वसूली बरजोरसिंह की खुदकाश्त जमीन पर कब्जा करके करना चाहता है और कि इससे बरजोर तबाह हो जायगा, ज्वालाप्रसाद इस मामले को सुलझाने का प्रयत्न करता है। ज्वालाप्रसाद को इस बात का भी पता चल जाता है कि बरजोरसिंह प्रभुदयाल की ज्यादतियों के कारण हिंसा पर उतारू है। इस परिस्थिति में ज्वालाप्रसाद इस उलझे मामले को सुलझाने के लिए शिवपुरा जाकर प्रभुदयाल से मिलता है और बरजोरसिंह के प्रति उसकी करुणा जगाता हुआ कहता है, 'लेकिन वह तबाह हो जायेगा लाला प्रभुदयाल, आप जरा इस बात पर तो सोचिए!'

व्याख्या—ज्वालाप्रसाद की यह बात सुनकर प्रभुदयाल जोर से हँस पड़ा। उसके मन में दया तो क्या आती, उल्टा वह निष्करुण होकर उत्तर देता है : 'नायब साहब, अगर मैं दूसरों की तबाही के बारे में सोचने लगूँ, तो मुझे लेन-देन का कारबार ही बंद कर देना पड़ेगा। एक तबाह होता है, उसकी तबाही पर दूसरा बनता है।' वह आगे कहता है कि फिर प्रकृति का भी यही नियम है कि जो अयोग्य है, मूर्ख है, संयम से रहना नहीं जानता, उसे तो तबाह होना ही चाहिये। उसके विनाश को कौन रोक सकता है? नायब साहब, आप इसकी चिन्ता क्यों करते हैं। बरजोरसिंह मूर्ख है, निकम्मा है, उसे अपनी चादर में रहना नहीं आता, इसीसे उसकी जमीन मेरे पास रेहन पड़ी रही, वह छुड़ा नहीं सका। अतः उसकी तबाही तो होनी ही है। आप क्यों उसकी तबाही के बारे में चिन्तित हैं। नियति (प्रकृति) या भाग्य का विचित्र खेल चलता है। इस दुनिया में जीवित रहने का अधिकार उसी को है, जो समर्थ और योग्य है : 'Survival of the fittest'.

विशेष—इन पंक्तियों में उपन्यासकार ने एक अत्याचारी और स्वार्थी सूदखोर महाजन के मुँह से जीवन के सत्य का कथन कराया है, जो अपने में बहुत ही साभिप्राय है। एक ओर तो इससे बरजोर के निकम्मेपन की सत्य

ध्वनि प्रकट हुई है, दूसरी ओर स्वार्थी व्यक्ति अपने कृत्य का औचित्य प्रकट करने के लिए किस तरह तर्क और न्याय का सहारा लिया करते हैं—यह भी स्पष्ट हुआ है।

(६) 'भौजी, जो कुछ मैंने किया वह अपना कर्त्तव्य समझ कर किया। ममता और न्याय—न ये बिकते हैं और न खरीदे जाते हैं। यह रुपया-पैसा जीवन में सब बुराइयों की जड़ है।' (पृ० ६२)

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के प्रथम खण्ड से उद्धृत किया गया है। बरज़ोरसिंह एक रात चुपचाप प्रभुदयाल की हत्या कर देता है। जंदेई विधवा हो जाती है। उसकी इस असहाय अवस्था में ज्वालाप्रसाद सहायता करता है। वह अपने बयान देकर बरज़ोरसिंह के विरुद्ध वारंट जारी करा देता है। जंदेई ज्वालाप्रसाद के प्रति कृतज्ञ है। वह एक दिन सौ अशर्फियों की एक थैली लेकर ज्वालाप्रसाद के यहाँ आती है और थैली भेंट करती हुई कहती है, "······और देवर जी, तुमने जो हम लोगों का उपकार किया है, ये सौ अशर्फियाँ लाई हूँ उसकी भेंट में।'

व्याख्या—ज्वालाप्रसाद जैसा ईमानदार और निःस्वार्थ व्यक्ति भला यह भेंट कैसे स्वीकार करता! जंदेई ने उसे समझने में गलती की। वह जिस संस्कार में पली थी, 'वहाँ हर चीज़ बिकती थी, या खरीदी जाती थी।' जंदेई पैसे के प्रभाव से ज्वाला को जीतना चाहती थी। उसकी बात सुनकर और 'उस थैली को देखकर ज्वालाप्रसाद मुस्कराये' और बोले, 'भौजी, मैंने जो कुछ किया, वह अपना कर्त्तव्य समझकर किया है, किसी प्रकार के स्वार्थ या प्रलोभन से नहीं किया।' ज्वालाप्रसाद कहता है कि बरज़ोर के विरुद्ध बयान देकर मैंने सत्य और न्याय की ही रक्षा की है। उस हत्यारे को सज़ा न मिलना अन्याय होता। साथ ही जंदेई के प्रति जो सहानुभूति उसने जताई है, वह भी किसी लोभ से नहीं बल्कि ममता के कारण। ज्वालाप्रसाद कहते हैं, कि न्याय और ममता न कहीं बिकते हैं और न पैसों में खरीदे जा सकते हैं। अतः रुपये-पैसे का लालच देना बेकार है। उसकी वणिक्-वृत्ति पर चोट करता हुआ ज्वालाप्रसाद कहता है कि यह रुपया-पैसा ही दुनिया में सब बुराइयों की जड़ है। इस रुपये-पैसे के लोभ ने ही तो उसके पति लाला

प्रभुदयाल की जान ली है ! ज्वालाप्रसाद जैदेई को आगे के लिए भी मना करता है कि कभी भूल कर भी मुझे रुपये-पैसे का लोभ न देना ।

जैदेई ज्वालाप्रसाद की इस बात से बहुत प्रभावित होती है । वह उसे मनुष्य नहीं देवता समझने लगती है और श्रद्धा के भावावेश में उसके चरण छू लेती है ।

(७) 'न्याय और सत्य में सीमाएँ नहीं हुआ करतीं, मैं तो अभी तक यही समझता आया था, वहाँ भावना के लिए कोई गुंजाइश नहीं । लेकिन देख रहा हूँ मैं गलती पर था ।' (पृ० ६४-६५)

प्रसंग—प्रस्तुत संवाद-अंश श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के प्रथम खण्ड से उद्धृत किया गया है । ज्वालाप्रसाद ने बरजोरसिंह के विरुद्ध बयान देकर उसके वारंट निकलवा दिये । गिरफ्तारी, मुकदमे और बदनामी के भय से बरजोरसिंह आत्महत्या कर लेता है । गजराज सिंह से यह सूचना पाकर कि बरजोर ने आत्महत्या कर ली है और उसकी बीबी तथा बच्चे सर्वथा अनाथ और बेसहारा हो गए हैं, ज्वालाप्रसाद को बड़ी आत्मग्लानि होती है । वह अब समझने लगता है कि बरजोर की मृत्यु और उसके बच्चों की इस असहायावस्था का उत्तरदायित्व उस पर है । उसी ने बरज़ोर के विरुद्ध बयान देकर उसके वारंट निकलवाये थे । इससे पहले उसने समझा था कि अपराधी को दण्डित कराने का प्रयत्न न्याय की रक्षा का प्रयत्न माना जायेगा । अब तहसीलदार मीर सखावत हुसैन के सामने उसके मन में फिर तर्क-वितर्क उठता है । मीर साहब उससे कहते हैं, 'सुन रहे हो बरखुरदार, कि तुम्हारे इन्साफ़ और धर्म का क्या नतीजा हुआ ?' ज्वालाप्रसाद के हृदय में द्वन्द्व मच जाता है । वह मीर साहब से सवाल कर बैठता है, 'अगर हुज़ूर मेरी जगह होते तो इस मामले में क्या करते ?' मीर साहब उसके प्रश्न को बड़ा टेढ़ा कहकर टालना चाहते हैं । पर ज्वालाप्रसाद को अब अनुभव होता है कि शायद उसने गलती की है । वह कहता है, 'अब मुझे यकीन हो गया कि आप वह न करते जो मैंने किया है । मेरे मामा मुंशी रामसहाय ने भी कुछ ऐसी ही सलाह दी थी मुझे ।'

व्याख्या—और यह कहकर ज्वालाप्रसाद करुणाभिभूत हो गया । उसका

गला रुंध गया। वह बोला कि अब तक तो मैं यही समझता था कि सत्य और न्याय में अपवाद नहीं होता, सीमाएँ नहीं होतीं। न्याय और सत्य में भावुकता के लिए जगह नहीं होती—मैं ऐसा समझा था। भावना में बहकर न्याय से विमुख नहीं होना चाहिये—ऐसी मेरी धारणा थी। ज्वालाप्रसाद कहना चाहता है कि इसी धारणा के कारण मैंने यह नहीं सोचा था कि बरजोरसिंह का क्या होगा या उसके बाल-बच्चे अनाथ हो जायेंगे। लेकिन अब उसे महसूस हो रहा है कि उसने गलती की है, भावना भी बड़ी प्रबल होती है। अब उसका हृदय बरजोरसिंह के परिवार की करुण दशा से अभिभूत हो गया है। इसलिए वह सोचता है कि उसने न्याय के नाम पर बरजोरसिंह के विरुद्ध बयान देकर गलती की थी। जज़बात से ऊपर उठकर सत्य और न्याय की रक्षा करना भी जरूरी होता है और अब उसका यह भी विश्वास हो गया है कि न्याय का पक्ष लेते समय यह भी देख लेना चाहिये कि उसका भावनात्मक परिणाम क्या होगा। यदि बयान देने से पहले उसके मन में दया का भाव आ जाता तो वह बरजोर के विरुद्ध बयान कभी न देता।

विशेष—इन पंक्तियों में सत्य और न्याय को केवल बुद्धि-चालित जड़ सिद्धांत मानने की बजाय उन्हें भावना-सापेक्ष माना गया है, जो उचित और व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

'बरखुरदार, कदम जब एक दफा······तरक्की पर ही जाओगे।'

(८) 'बरखुरदार, कदम जब एक दफ़ा उठ जाता है, तब वापस नहीं होता। और इसलिए मैं तुम्हारे वायदों पर, तुम्हारी कसमों पर भरोसा नहीं कर सकता। फिर तुम जानते ही हो कि जहाँ ममता और न्याय में चुनाव करना पड़े, वहाँ न्याय को ही चुनना पड़ेगा। लेकिन वह न्याय भी ममता से भरा होना चाहिए। तुम यहाँ से तरक्की पर ही जाओगे।' (पृ० ८६-८७)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के प्रथम खण्ड में जब घाटमपुर के तहसीलदार मीर सखावत हुसैन को पता चलता है कि ज्वालाप्रसाद ने अपने प्रभाव से जैदेई से सौ अशर्फियाँ लेकर बरजोरसिंह की बेवा को दी थीं ताकि वह जैदेई से अपनी ज़मीन छुड़ा ले, तो मीर सखावत हुसैन सारा भेद समझ जाते हैं। वह समझ जाते हैं कि जैदेई ने, जो बरजोरसिंह की खुदकाश्त ज़मीन वापस कर दी है, वह सब ज्वाला-

प्रसाद के कारण। वह समझ जाते हैं कि ज्वालाप्रसाद जँदेई के मोह-पाश में फँस गया है। ज्वालाप्रसाद अपनी गलती स्वीकार कर लेता है और क्षमा-याचना करना चाहता है। पर मीर सखावत हुसैन उसे रोकते हुए कहते हैं कि 'गुनाह को गुनाह तभी तक समझा जाता है, जब तक इन्सान उस गुनाह को छिपाना चाहे। जहाँ इन्सान में गुनाह को ज़ाहिर करने की हिम्मत आ गई, वहीं वह गुनाह उसके लिए गुनाह नहीं रहता।'

पर मीर सखावत हुसैन बहुत ही न्यायप्रिय व्यक्ति हैं। ज्वालाप्रसाद के लिए उनके हृदय में ममता है। वह अपनी औलाद की तौर से ज्वाला को मानने लगे थे। इसीलिए कहते हैं कि 'मुझे वालदैन का फ़र्ज़ निभाने के लिए तुम्हें बचाना पड़ेगा। तुममें नेकी है, तुममें भोलापन है, तुमसे जुदा होने में मुझे दर्द होगा, लेकिन वह सब बरदास्त करूँगा। तुम्हें बचाने का सिर्फ एक तरीका नज़र आता है मुझे, वह यह कि मैं तुम्हारा तबादला यहाँ से करा दूँ।' इस पर ज्वालाप्रसाद फूट पड़ता है, 'हुज़ूर, मैं गुनहगार हूँ, लेकिन आप अपने से मुझे जुदा न करें। मैं आपसे कसम खाता हूँ कि अब आगे चलकर आपको मुझसे शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।'

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में मीर सखावत हुसैन अपने चरित्र की दृढ़ता और न्यायप्रियता का परिचय देते हुए कहते हैं कि 'नहीं बेटा, जो कदम उठाने की मैंने सोच ली है, उससे पीछे नहीं हटा जा सकता। मैं अब तुम्हारे वायदों और विश्वासों पर भरोसा नहीं कर सकता। यह ठीक है कि तुम्हारे प्रति ममता का भाव मुझे तुम्हें जुदा करने में कष्ट का अनुभव करायेगा, पर जहाँ न्याय और ममता में चुनाव करना हो, तो न्याय को ही चुनना चाहिए। न्याय का यही तकाजा है कि यहाँ से तुम्हारा तबादला करा दिया जाए। यह तुम्हारे लिए भी भला होगा और जनहित की भी बात होगी। पर मेरा यह न्याय भी ममता से भरा होगा क्योंकि तुम यहाँ से तहसीलदार का ऊँचा पद पाकर ही सोरांव जाओगे।' इस प्रकार ज्वालाप्रसाद के चरित्र की ज़रा-सी भी कमजोरी का आभास पाकर मीर सखावत हुसैन उसका तबादल करा देते हैं।

(९) मुंशी शिवलाल चुपचाप सोचने लगे अधिकार और शक्ति अपना

स्थान बदल रहे थे, एक जगह से हट कर दूसरी जगह जा रहे थे। परिवार की परम्परा टूट रही थी। (पृ० १००)

प्रसंग—प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र' नामक उपन्यास की इन पंक्तियों में सम्मिलित परिवार की परम्परागत पद्धति पर प्रहार किया गया है। सोरांव में ज्वालाप्रसाद तहसीलदार है। उसके पिता मुंशी शिवलाल छिनकी सहित अपने बेटे के पास आकर रहने लगते हैं। कुछ दिनों बाद मुंशी शिवलाल के छोटे भाई राधेलाल और राधे की पत्नी भी फतेहपुर से सोरांव आ जाते हैं। फतेहपुर में मुंशी शिवलाल और राधेलाल का सम्मिलित परिवार था। पर अब ज्वाला के बाहर नियुक्त हो जाने पर सम्मिलित परिवार-परम्परा की स्थान की इकाई टूट जाती है। फतेहपुर में तो घर की मालकिन राधे की पत्नी ही थी, पर सोरांव में ज्वाला की बहू यमुना ही अपने घर की मालकिन थी। अब राधे की पत्नी के सोरांव आ जाने पर राधे की पत्नी यहाँ की भी मालकिन बनना चाहती है। सम्मिलित परिवार की परम्परा के बल पर वह इस घर को भी अपना ही समझती है और भण्डार-घर की चाभी अपने कब्जे में करना चाहती है। छिनकी को यह बुरा लगता है। राधे की पत्नी छिनकी से चाभी ले लेती है। पर छिनकी उसके पीछे-पीछे भण्डार-घर में जाती है। मुंशी शिवलाल जब उससे पूछते हैं कि तू राधे की बहू के पीछे-पीछे भण्डार घर में क्यों जा रही थी?—तो छिनकी कहती है कि "छोटी हमसे चाभी मांग कर ले गई, चीज-वस्त सब हमारे हाथ की रखी हैं। मैं इसलिए गई थी कि कहीं चीजें उलट-पुलट न कर दे और जो चीज मांगे मैं निकाल कर दे दूँ।"

व्याख्या—छिनकी की यह बात सुनकर मुंशी शिवलाल अपने मन में सोचने लगे कि अधिकार और शक्ति अपना स्थान बदल रहे हैं। सम्मिलित परिवार की पुरानी परम्परा टूट रही है। जो राधे की पत्नी इस सम्मिलित परिवार के घर की मालकिन थी, उसकी वह स्थिति अब नहीं रही है। ज्वालाप्रसाद की निजी कमाई के कारण ज्वालाप्रसाद के घर की मालकिन ज्वाला की बहू यमुना है। छिनकी समझती है कि यहाँ सोरांव में राधे की पत्नी मालकिन नहीं बन सकती। इसीसे वह भण्डार-घर की चाभी राधे की पत्नी को नहीं देना चाहती। चाभी देकर भी अपने सामने ही सामान निकलवाना चाहती है। मुंशी शिवलाल परिस्थिति का यह परिवर्तन अनुभव

कर लेते हैं। इसीसे वह सोचते हैं कि घर के अधिकार अब बदल रहे हैं। सत्ता और अधिकार राधे की पत्नी के हाथ से निकल कर यमुना और छिनकी के हाथ में आ रहे हैं, क्योंकि ज्वाला का घर अब राधे से अलग हो गया है और इस घर की मालकिन अब राधे की पत्नी नहीं रह सकती। उनका मन कह रहा था कि परम्परागत सम्मिलित परिवार-प्रथा टूट रही है। फिर भी वह ऊपर से उसी सम्मिलित परिवार-परम्परा का ढोंग कायम रखने के लिए छिनकी को धीमे स्वर में कहते हैं, "तू छोटी को चाभी क्यों नहीं दे देती ? घर की मालकिन तो वह है। उसे कितना बुरा लगता होगा ?"

विशेष—लेखक ने इस प्रसंग में सम्मिलित परिवार-परम्परा के टूटने का बड़ा यथार्थ चित्रण किया है।

(१०) यह डांट, यह अन्याय, यह सब छिनकी के लिए नया नहीं था। जिन्दगी भर उसे प्रायः नित्य ही इस प्रकार के अपमानों और प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा था। ये सब तो उसके जीवन के भाग ही थे। वह बैठी हुई रोती रही और मुंशी शिवलाल का सिर खाती रही और मुंशी शिवलाल शान्त भाव से लेटे थे, जैसे उन्हें छिनकी की भावनाओं को, भावना ही नहीं छिनकी के अस्तित्व तक का पता नहीं है। (पृ० १००-१०१)

प्रसंग—उपर्युक्त है। मुंशी शिवलाल द्वारा यह कहने पर कि घर की मालकिन राधे की बहू है, छिनकी तमक उठती है, 'घर की मालकिन ज्वाला की बहू है। यह जो राज-पाट सब भोग रहे हैं, वह सब ज्वाला की बदौलत ही तो है। तो ज्वाला की बहू है लौंडी और मालकिन हो गई छोटी !'

छिनकी के इस कथन से उत्तेजित होकर मुंशी शिवलाल उसे डाँटते हुए कहते हैं, "नहीं, कुछ भी हो जाए, घर की मालकिन छोटी है, समझी ! जब तक राधे की बीवी जिन्दा है और यहाँ पर है, तब तक इस घर की मालकिन वही रहेगी, यह भी समझ ले। इस घर के मामले में तू दखल देने वाली कौन होती है ?"

व्याख्या—इस उत्तर से छिनकी मर्माहत हो गई। उसकी 'आँखों में आँसू भर आए, लेकिन वह उसी तरह मुंशी शिवलाल का सिर दबाती रही।' प्रस्तुत

पंक्तियों में लेखक ने छिनकी की करुण स्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। छिनकी मुंशी शिवलाल और उसके परिवार पर कितनी जान देती है! कितनी ममता है उसमें! उसने अपनी समस्त सेवाएँ, अपना सब कुछ मुंशी शिवलाल को अर्पित किया हुआ है। पर निम्न वर्ण की होने के कारण उसे मुंशी शिवलाल के घर में कोई अधिकार प्राप्त नहीं। ऐसी डांट-फटकार, उसके प्रति ऐसा अन्याय, यह अपमान छिनकी के लिए नया नहीं था। समय-समय पर उसे नित्य ही जीवन भर ऐसे अपमानों और डांट-फटकार को सहना पड़ता रहा है। ये सब तो जैसे उसके जीवन के स्वाभाविक अंग बन गए थे। अतः इस अपमान से दुखी हुई वह रोती रही और मुंशी शिवलाल का सिर दबाती रही, सेवा करती रही। मुंशी शिवलाल निर्दयतापूर्वक चुपचाप लेटे रहे; जैसे उन्हें छिनकी की भावनाओं का, भावना ही नहीं, छिनकी के अस्तित्व तक का पता ही न हो। जैसे छिनकी का कोई अस्तित्व ही न हो, उसके अस्तित्व का कोई महत्त्व ही न हो!—ऐसी निर्मम उपेक्षा की मुंशी शिवलाल ने छिनकी की!

(११) "जी हाँ, यह कलियुग है। फिर मेरे रथ का पहिया जमीन से ऊपर उठकर चलता भी नहीं कि वह जमीन से लग जाएगा। सब कुछ जानता हूँ; लेकिन सरकार का ऊँचा हाकिम होने के नाते मैं झूठ तो नहीं बोल सकूँगा। और जहाँ तक अर्द्ध-सत्य का सवाल है वहाँ पण्डित गिरिजाशंकर द्रोणाचार्य नहीं हैं कि हथियार डालकर बैठ जाएँ। वह हैं सदरआला! वह जिरह करेंगे और उसमें यह अर्द्धसत्य आसानी से पूरा सत्य बन जाएगा, क्योंकि झूठ मैं बोलूँगा नहीं।" (पृ० १३०)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास (लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा) में मुंशी राधेलाल और उनके लड़के श्यामू जालसाजी से विधवा सलीमा की भौजा रहीमन की जमीन हड़पना चाहते हैं। श्यामू ने सलीमा को अफीम खिलाकर कोरे कागज पर उसके निशान ले लिए और उसकी जमीन अपने नाम बना ली। जमीन का मुकदमा सदरआला पण्डित गिरिजाशंकर की अदालत में चल रहा था। राधेलाल अपने भाई मुंशी शिवलाल को भी अपने इस षड्यंत्र में शामिल कर लेते हैं। मुंशी शिवलाल भी चाहते हैं कि उनके तहसीलदार के

खानदान में जमीन-जायदाद होनी ही चाहिये। मुंशी शिवलाल और राधेलाल चाहते हैं कि ज्वालाप्रसाद अपने प्रभाव से मुकदमा श्यामलाल के हक में करा लें। मुंशी राधेलाल और श्यामू प्रस्ताव करते हैं कि वह जमीन श्यामू ज्वाला-प्रसाद के नाम कर देने को तैयार है और इस प्रकार ज्वालाप्रसाद के नाम हुई जमीन का मुकदमा उनके हक में हो जायगा क्योंकि सदरआला पं० गिरिजाशंकर ज्वालाप्रसाद को बहुत मानते हैं। पर ज्वालाप्रसाद उनकी बात मानने से जवाब दे देता है। वह कहता है कि उसे जमीन नहीं चाहिए।

मुंशी शिवलाल स्वयं पं० गिरिजाशंकर से मिलते हैं और ज्वाला का नाम लेकर और झूठ बोलकर सदरआला को प्रभावित करना चाहते हैं। पर सदरआला गिरिजाशंकर मुंशी शिवलाल की बात नहीं मानते और कहते हैं कि यदि ज्वालाप्रसाद कह देगा कि मैंने जमीन खरीदने के लिए श्यामू को पैसे दिये थे, तो वह सच मान लेंगे। मुंशी शिवलाल अब अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को यह कहने के लिए कहते हैं। पर ज्वालाप्रसाद झूठ बोलने से जवाब दे देता है। मुंशी शिवलाल कहते हैं कि तुम केवल इतना कह देना कि मैंने जमीन खरीदने के लिए रुपये दिये थे। यह झूठ भी नहीं है क्योंकि तुम्हारे दिये गए रुपये से श्यामू ने वह नहीं तो फतेहपुर की कुछ जमीन खरीदी भी है। इस पर ज्वालाप्रसाद महाभारत का उदाहरण देता हुआ व्यंग्य से कहता है, "जी, युधिष्ठिर का कथन है कि अश्वत्थामा मारा गया, नर है या कुंजर।" इस पर मुंशी शिवलाल ने तीखे स्वर में कहा, "महाभारत की कथा यहाँ नहीं लागू होती।"

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में ज्वालाप्रसाद व्यंग्य करता हुआ उत्तर देता है : 'जी हाँ, वह त्रेता युग था, यह कलियुग है। उस काल की युधिष्ठिर की झूठ और थी।' ज्वालाप्रसाद व्यंग्य की भाषा में कहता है कि महाभारत की कथा के विपरीत मेरा रथ जमीन से ऊपर उठकर नहीं चलता कि जमीन से लग जायगा। अर्थात् महाभारत की बातें और थीं, और आज की और हैं—यह मैं सब जानता हूँ। पर उच्च सरकारी अफसर होने के नाते, मैं झूठ नहीं बोल सकता। दूसरी बात यह कि युधिष्ठिर के आधे सत्य को तो द्रोणाचार्य ने पूर्ण सत्य मान लिया था—बिना सोचे-समझे, पर पंडित गिरिजाशंकर द्रोणाचार्य नहीं हैं जो सुनते ही हथियार डाल देंगे और मेरे कथन को सत्य मान लेंगे।

वह तो जिरह करके मेरे अर्द्धसत्य के सत्य का पता लगा लेंगे, क्योंकि मैं झूठ नहीं बोलूँगा।

विशेष—इस अवतरण में महाभारत के उदाहरण और व्यंग्य-शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(१२) जैदेई ने अब राधा की ओर देखा। उसकी उस दृष्टि में उदासी से भरी कृतज्ञता का भाव था। कानपुर के गृह की स्वामिनी राधा थी, जैदेई नहीं थी, यह स्पष्ट था और कानपुर में आकर जैदेई के रहने के अर्थ होते राधा की अधीनता में रहना, या फिर घर में निरन्तर कलह। (पृ० १८८)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' से उद्धृत की गई हैं। इलाहाबाद में जैदेई अकेली रहती है। उसके पुत्र लक्ष्मीचन्द और पुत्र-वधू राधा कानपुर में रहते हैं। लक्ष्मीचन्द को 'सर' की उपाधि मिली है। इस खुशी में उत्सव-समारोह मनाया गया है। जैदेई भी इस अवसर पर इलाहाबाद से कानपुर आती है। पर वह अनुभव करती है कि लक्ष्मीचन्द और राधा का उसके प्रति व्यवहार बड़ा ही उपेक्षापूर्ण है। उसका मन खिन्न हो उठता है। वह अपने बेटे लक्ष्मीचंद से कहती है कि 'अब तेरा आना-जाना भी कम हो जायेगा, बिल्कुल अकेली हूँ वहाँ, कुछ समझ में नहीं आता।' लक्ष्मीचंद औपचारिक रूप में कहता है कि यहाँ आकर रहो। पर तुरंत राधा बोल उठती है, 'वहाँ अकेली कैसे हैं अम्मा जी? नौकर-चाकर तो सब हैं वहाँ, इतना बड़ा बंगला, सवारी, क्या नहीं है?...... अम्मा जी अगर कानपुर में आकर नहीं रहना चाहतीं तो इसमें हर्ज क्या है?'

व्याख्या—राधा की यह बात सुनकर जैदेई ने उसकी ओर देखा। वह राधा के कथन का अभिप्राय समझ गई थी। उसकी दृष्टि में राधा के प्रति उदासीनता का भाव था और साथ ही ऊपर के मन से राधा की बात स्वीकार करने का भाव था। राधा के व्यवहार और इस कथन से जैदेई ने स्पष्ट अनुभव कर लिया था कि कानपुर के घर की मालकिन राधा है, यहाँ जैदेई का कोई अधिकार नहीं चल सकता। इस स्थिति में कानपुर में आकर रहने का अर्थ होता राधा की अधीनता में रहना, राधा की इच्छा के अनुसार जीवन बिताना या फिर घर में रोज़ का आपसी झगड़ा रहना। ये दोनों ही स्थितियाँ जैदेई को

स्वीकार नहीं हो सकती थीं। इसीसे वह अलग-थलग इलाहाबाद में रहना ही अच्छा समझती है। अपने बेटे और बहू की बेमुरव्वती से वह उदास है।

विशेष—लेखक ने जैदेई की इस स्थिति से सम्मिलित परिवार-प्रथा के टूटने का एक संकेत किया है तथा परंपरागत सास-बहू के कलह की सम्मिलित परिवार की बुराई का पर्दाफाश किया है।

(१३) **"हरेक आदमी अपनी आधारभूत प्रवृत्तियों के अनुसार ही कर्म करता है। उस लक्ष्मीचन्द और उसके पिता प्रभुदयाल में कोई अन्तर नहीं है, किसी भी तरह का कोई अन्तर नहीं है।"** (पृ० १६६)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' में मरणासन्न जैदेई अपनी निजी जमा-जथा गंगाप्रसाद को देना चाहती है। ज्वालाप्रसाद के पुत्र गंगाप्रसाद को उसने अपने बेटे की तरह पाला, पढ़ाया और बढ़ाया है। जैदेई के पुत्र लक्ष्मीचन्द को यह असह्य हो जाता है। वह अपनी माँ के हाथ से तिजोरी की चाभी छीन लेता है और उसे बुरा-भला ही नहीं कहता, गाली तक दे डालता है। लक्ष्मीचन्द ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद का भी अपमान करता है। इस अवसर पर स्वाभाविक था कि गंगाप्रसाद उत्तेजित हो जाता, पर ज्वालाप्रसाद उसे शांत रखते हैं।

ज्वालाप्रसाद कई रात जागकर जैदेई की सेवा करते रहे हैं। गंगाप्रसाद अपने पिता को कहता है, 'तीन रात आप लगातार जागे हैं बप्पा! थोड़ा-सा सो लीजिए। मैं बैठा हूँ, यहाँ पर तब तक।' ज्वालाप्रसाद वहाँ से नहीं हटते, उल्टा वह गंगाप्रसाद को खाना खाने को कहते हैं।

व्याख्या—लक्ष्मीचन्द के दुर्व्यवहार से गंगाप्रसाद और ज्वालाप्रसाद का मन खिन्न है। ज्वालाप्रसाद अपने पुत्र गंगाप्रसाद का मन हल्का करने के लिए कहते हैं कि तुम जाकर खाना खा लो। वह कटुता को दूर करने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मीचन्द ने जो कटु वचन कहे हैं, उनपर ध्यान न देना। लक्ष्मीचन्द का तो मूल स्वभाव ही ऐसा है। हर आदमी अपनी मूल प्रवृत्तियों, मूल संस्कारों के अनुसार आचरण करता है। लक्ष्मीचन्द अपने पिता प्रभुदयाल के ही संस्कार अपनाये हुए हैं। दोनों बाप-बेटों की मूल प्रकृति एक है, कोई अन्तर नहीं। जैसा स्वार्थी, भावनाहीन, अर्थ-लोलुप और निर्मम प्रभुदयाल था,

वैसा ही उसका बेटा यह लक्ष्मीचन्द है। अपने पिता से ही उसे परम्परा मिली है। अतः उसके इस व्यवहार पर खेद नहीं करना चाहिये। ज्वालाप्रसाद चाहते हैं कि उनका बेटा गंगाप्रसाद मन की ग्लानि दूर करके स्वस्थ-मन हो जायं और जाकर खाना खा ले।

विशेष—इन पंक्तियों से वर्मा जी के प्रकृतिवादी जीवन-दर्शन का भी संकेत मिलता है। वर्मा जी चरित्र के निर्माण में मूल प्रवृत्तियों का महत्व मानते हैं।

(१४) 'बिलकुल यही बात तुमसे सुनने की आशा थी बरखुरदार! डिप्टी-कलक्टर हो न! मौज करते हो, चैन की जिन्दगी है। लेकिन मुझसे पूछो, मैं जो यूरोप से लौट रहा हूँ। हम लोग गुलाम हैं, हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं। तुमने यह सब अनुभव नहीं किया, क्योंकि तुम्हें हिन्दुस्तान से बाहर निकलकर यह सब अनुभव करने का मौका ही नहीं मिला। लाखों आदमियों का भाग्य-विधाता बनाकर तुम्हें अधिकार-मद में बुत बना दिया गया है।' (पृ० २०४)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' (लेखक भगवती बाबू) में ज्वालाप्रसाद के मामा का लड़का ज्ञानप्रकाश इंगलैंड से भारत लौटता है। वह राष्ट्र की नई चेतना का प्रतीक है। भारत की परतन्त्रता का उसे बहुत दुःख है। विदेशों में भारत की गुलामी के चर्चे से उसे बहुत ग्लानि का अनुभव होता रहा है। इसीसे वह देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना चाहता है। वह देश की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहता है। वह अमृतसर कांग्रेस का अधिवेशन देखने के लिए जाना चाहता है। गंगाप्रसाद उसकी इच्छा जानकर गंभीरता के साथ कहता है, 'चचा जान, अगर मेरी मानो तो इस कांग्रेस-वांग्रेस से दूर रहो, इसमें कुछ है नहीं!'

व्याख्या—गंगाप्रसाद डिप्टी कलेक्टर है, ब्रिटिश सरकार का नौकर है। उसके मुँह से उपर्युक्त बात सुनकर ज्ञानप्रकाश कहता है, 'तुम्हारे मुँह से यही बात सुनने की आशा थी मुझे, बरखुरदार! तुम सरकारी अफसर हो, डिप्टी कलेक्टर हो! सुख-मौज की जिन्दगी बिताते हो, तुम्हारे दिल में देश की गुलामी का क्या दर्द होगा! मैं यूरोप से लौटा हूँ, मुझसे

पूछो, दुनिया के लोग हमें क्या समझते हैं। हम गुलाम हैं, अशिक्षित और असभ्य हैं, अंग्रेज हमें अछूत समझते हैं—काले आदमी कहते हैं! तुम्हें गुलामी का यह एहसास नहीं होगा, क्योंकि तुम ब्रिटिश सरकार के सिर पर मौज उड़ाते हो, बाहर विदेशों में नहीं गए हो। तुम्हें अपने देश की अपमानित अवस्था का दुख-दर्द नहीं। अंग्रेज सरकार ने तुम्हें हजारों-लाखों आदमियों का भाग्य-विधाता और अफसर बनाकर अधिकार के नशे में डुबा दिया है। इस नशे में चूर तुम देश की गुलामी का अनुभव नहीं कर पा रहे हो।

(१५) 'राजबिहारी जी, इतिहास तो सत्य है, केवल ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण सही या गलत हो सकता है। सन् १८५७ की बगावत, विद्रोह, क्रान्ति—उसे आप जो चाहें कहें—उसकी क्या दशा हुई यह तो आप जानते ही हैं। जनता ने उसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली, वह असफल रही थी। फिर १८५७ से आज की तुलना नहीं करनी चाहिए। जो लोग समझते हैं कि हमें इतिहास के पृष्ठों से सबक मिलता है, वे लोग बहुत बड़े भ्रम में हैं। इतिहास मर चुका है। प्रत्येक क्षण परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, मान्यताएँ बदलती रहती हैं, व्यक्ति बदलते रहते हैं, और इन सबके अलावा सबसे बड़ी बात यह है कि मानव-चेतना का विकास होता रहता है।" (पृ० २०९-२१०)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' का सशक्त पात्र ज्ञानप्रकाश राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। कलकत्ता-कांग्रेस की तैयारी हो रही थी। ज्ञानप्रकाश के यहाँ नगर के कुछ प्रमुख कांग्रेसी परस्पर परामर्श में व्यस्त हैं। ज्ञानप्रकाश कहता है कि हमारे देश का भाग्य हम शिक्षित और मध्यवर्ग के लोगों पर कायम है। जमींदार वर्ग तो हमेशा राजाओं और सरकार की गुलामी करता आया है, उनसे कोई आशा नहीं करनी चाहिए। ज्ञानप्रकाश की यह बात राजबिहारी को अच्छी नहीं लगी क्योंकि राजबिहारी स्वयं जमींदार कांग्रेसी थे। राजबिहारी जी कहते हैं कि सन् १८५७ का विद्रोह देशी नरेशों और जमींदारों का ही विद्रोह था—इतिहास को झुठलाया नहीं जा सकता।

व्याख्या—इन पंक्तियों में राजबिहारी जी के कथन का उत्तर देते हुए ज्ञानप्रकाश बड़े शांत भाव से कहते हैं, 'राजबिहारी जी, इतिहास तो सच्चा ही होता है, केवल इतिहास की घटनाओं की व्याख्या सही या गलत हो सकती है। अर्थात् यह तो सत्य है कि सन् १८५७ की क्रांति या विद्रोह, जो भी

उसे कहा जाय, राजवंशों की प्रेरणा का परिणाम था, पर उसकी क्या दशा हुई, यह सब जानते हैं। जनता ने उसमें कोई रुचि नहीं ली थी, विशेष भाग नहीं लिया था, इसीसे वह असफल रहा और दबा दिया गया। वैसे भी उस युग की आज के युग से तुलना नहीं की जा सकती। हर समय परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, जीवन के आदर्श बदलते हैं, व्यक्तियों में परिवर्तन आता है और मानव-चेतना का विकास होता रहता है। इसलिए यह समझना कि इतिहास से ही हमें शिक्षा-दीक्षा मिलती है, भूल है। इस दृष्टि से इतिहास मर चुका है। केवल अतीत की बात पर अड़े रहना ठीक नहीं। वर्तमान की परिस्थिति के अनुसार अपनी कार्य-पद्धति बनानी चाहिये। आज जनता के सामूहिक सहयोग और सक्रिय योगदान के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। इतिहास की वह परिस्थिति समाप्त हो गई है जब कोई राजवंश ही राज्य-सत्ता के बारे में सक्रिय होता था। अब तो हमें जनता में असहयोग आन्दोलन चलाना है।

(१६) 'राजबिहारी जी, कारणों पर ध्यान मत दीजिए, कारण विगत की चीज हैं। इस समय सचाई यह है कि अंग्रेजों के विरोध में हिन्दू-मुसलमान एकमत हैं। हो सकता है कि इन दोनों के विरोध के कारण अलग-अलग हों। लेकिन इस विरोध और असन्तोष से जनित विद्रोह और क्रान्ति हिन्दुओं और मुसलमानों के भेदभाव को एकबारगी ही मिटा देगी। हमें एक स्वर में गांधी जी का साथ देना चाहिए। (पृ० २११)

प्रसंग—उपर्युक्त ही है। ज्ञानप्रकाश कहते हैं कि मुसलमानों में भी इस समय उत्तेजना है। खिलाफ़त आन्दोलन से असहयोग आन्दोलन को बल मिल रहा है। भारत के मुसलमान भी अंग्रेजों के विरोध में खड़े हो गए हैं। असहयोग आन्दोलन को सिद्धान्त रूप में मुसलमानों ने स्वीकार कर लिया है। बड़ी मुश्किल से अब हिन्दू-मुस्लिम एकता का मौका आया है। हमें इस एकता को दृढ़ बनाना चाहिए।

ज्ञानप्रकाश के इस कथन का उत्तर देते हुए राजबिहारी जी कहते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता जो कुछ प्रतीत हो रही है, वह केवल अंग्रेजों का विरोध करने के लिए है और मुसलमान केवल खिलाफ़त आन्दोलन के कारण ही कांग्रेस या हिन्दुओं के निकट आए हैं।

व्याख्या—राजबिहारी जी के इन्हीं विचारों का जवाब देते हुए ज्ञानप्रकाश इन पंक्तियों में कहते हैं कि कारण चाहे जो हों, हमें कारणों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। कारण बीती बात है। इस समय वास्तविकता यह है कि अंग्रेज़ों के विरोध में देश के हिन्दू और मुसलमान एक-जुट हो गए हैं। चाहे दोनों जातियों के विरोध के कारण अलग-अलग हों—अर्थात् यदि आपकी बात मान ली जाये कि मुसलमान तुर्की के खलीफा की सहानुभूति में अंग्रेजों का विरोध कर रहे हैं और हिन्दू भारत की गुलामी दूर करने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध सक्रिय हैं—तो भी यह अवश्य मानना पड़ेगा कि विरोध और असंतोष का यह समान लक्ष्य हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के निकट लाएगा, उनके पारस्परिक भेदभावों को मिटा देगा। इसलिए हमें इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए और हिन्दू-मुस्लिम एकता को दृढ़ करना चाहिये। गांधीजी ने जिस सूझ-बूझ के साथ ये आन्दोलन छेड़े हैं, उनमें हमें एकस्वर से गांधीजी का साथ देना चाहिये।

विशेष—प्रस्तुत संवाद में देश की तत्कालीन राजनीति और असहयोग-खिलाफ़त आन्दोलन पर अच्छा प्रकाश पड़ा है।

(१७) **'इसका भय तो मुझे भी था भैया, शक्ति और सम्पन्नता के साथ एक बहुत बड़ा अभिशाप लगा रहता है, वह यह है कि आदमी इनके मद में अपना विवेक और समय खो देता है और चरित्र-हीन बन जाता है। फिर आपने सोचा इस सम्बन्ध में?'** (पृ० २१२)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' में जब छिनकी की मृत्यु के समय भीखू जौनपुर से इलाहाबाद आता है और ज्वालाप्रसाद को बताता है कि गंगाप्रसाद ऐयाशी में डूबा है, उसे संभालना जरूरी है, तो ज्वालाप्रसाद चिंतित हो उठते हैं। भीखू उन्हें बताता है कि गंगा बेतहाशा रुपया उड़ा रहा है, उस पर दो-तीन हज़ार का कर्ज़ा सिर चढ़ गया है और उसने एक रण्डी बिठा ली है। भीखू आग्रह करता है कि वे सब जौनपुर चलकर रहें ताकि गंगा कुछ सुधर जाय। भीखू की बातों से चिंतित होकर ज्वालाप्रसाद ज्ञानप्रकाश से बात करते हैं और उसे सारी स्थिति बताते हुए कहते हैं कि 'गंगा हाथ से निकला जा रहा है, उसे किस तरह बचाया जाये, यह सोचने तुम्हारे पास आया हूँ।'

व्याख्या—ज्वालाप्रसाद के मुख से सारी बात सुनकर ज्ञानप्रकाश ने भी चिन्ता प्रकट की। ज्ञानप्रकाश प्रस्तुत पंक्तियों में कहते हैं कि गंगाप्रसाद के इस तरह चरित्र-भ्रष्ट हो जाने का मुझे पहले से ही डर था क्योंकि शक्ति और अधिकार तथा धन-सम्पन्नता मनुष्य को अंधा बना देते हैं। अधिकार और समृद्धि के साथ बड़ा भारी अभिशाप यह लगा रहता है कि मनुष्य इनके अभिमान में चूर होकर अपना संयम और विवेक-बुद्धि खो बैठता है और चरित्र-हीन बन जाता है। गंगा के पास अफसरी या अधिकार भी है और तनखाह भी अच्छी पाता है, इस कारण मुझे पहले से ही भय था कि इनके नशे में डूबा वह अपने चरित्र को बिगाड़ लेगा। अब आपसे यह बात सुनकर दुःख हुआ। ज्ञानप्रकाश ज्वालाप्रसाद से पूछते हैं कि आपने इस बारे में क्या सोचा है; गंगाप्रसाद को इस राह से हटाने का क्या उपाय विचारा है?

(१८) **'बीवी-बच्चे, कुल-समाज, मान-मर्यादा, इन संकरे दायरों में जिन्दगी को बाँधकर हमने उसे कितना कुरूप और रसहीन बना दिया है! चचा, इन बन्धनों को तोड़े बिना मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें यह मालूम होना चाहिए, क्योंकि तुम राजनीति में हो। जेल जाना, छूत-अछूत का भेदभाव मिटा देना, बीवी-बच्चों के मोह में पड़कर कायर न बन जाना, इस सबको स्वीकार करके ही आज की सक्रिय राजनीति में आया जा सकता है। तुम इस मान-मर्यादा, कुल और समाज की दुहाई देते हो!** (पृ० २१७)

प्रसंग—भगवतीचरण वर्मा जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' में गंगाप्रसाद जौनपुर में डिप्टी कलेक्टर है। वह ऐयाशी का जीवन बिताता है। अपने बीवी-बच्चों में उसका मोह नहीं। जौनपुर की प्रसिद्ध रण्डी मलका को उसने बिठा रखा है और अनाप-शनाप खर्च करता है। ज्ञानप्रकाश उसे इस रास्ते से हटने का आग्रह करते हुए कहते हैं, 'नहीं गंगा, तुम्हें अपनी आदतें बदलनी पड़ेंगी, तुम्हें यह सब छोड़ना पड़ेगा। तुम्हारे बीवी है, तुम्हारे बच्चे हैं, तुम संभ्रांत कुल और समाज के हो, तुम्हारे पास मान-मर्यादा है।'

व्याख्या—ज्ञानप्रकाश के इस उपदेशपूर्ण कथन को सुनकर गंगाप्रसाद कुछ देर मौन रहता है और फिर एक ठण्डी साँस भर कर प्रस्तुत पंक्तियों में कहता है कि घर-गृहस्थी, बीवी-बच्चे, कुल और समाज की मर्यादा के बंधनों में बाँध कर हमने जीवन को कितना सीमित, कितना भौंडा और नीरस बना

दिया है ! इन तंग घेरों में जिन्दगी का साँस ही घुटने लगता है। गंगाप्रसाद बुद्धिवादी है। अतः वह अपनी बुराइयों का भी बौद्धिक औचित्य सिद्ध करके उन्हें झुठलाना चाहता है। वह कहता है, 'चचा जान, तुम तो राजनीति में सक्रिय भाग ले रहे हो, तुम्हें तो यह मालूम है कि इन बंधनों को तोड़े बिना मनुष्य जीवन में कुछ नहीं कर सकता। तुम कैसे घर-गृहस्थी, मान-मर्यादा तथा कुल-समाज की दुहाई मचाते हो ! तुम्हें तो पता है कि राष्ट्रीय कार्यों—जेल जाना, असहयोग आन्दोलन चलाना, अछूतोद्धार या छुआछूत को मिटाने के प्रयत्न—सब में भाग लेने के लिए बीवी-बच्चों के मोह और कुल-मर्यादा के बंधनों को तोड़ना जरूरी होता है। अतः तुम मुझे घर-गृहस्थी के बंधनों में सीमित रहने की बात क्यों कहते हो ? तुम्हारे मुँह से यह बात अजीब-सी लगती है।

विशेष—ज्ञानप्रकाश गंगाप्रसाद के इस तर्क पर मुस्करा उठते हैं। सचमुच आज का बुद्धिवादी मानव कितना तर्कप्रिय हो गया है ! वह अपने कृत्य का बौद्धिक औचित्य तुरन्त निकाल लेता है !

(१६) ये जो परिवार, प्रतिष्ठा, मान आदि चीजें हैं, इनके ऊपर भी कोई चीज है—त्याग, बलिदान आदि। जो ऐसा समझते हैं उनका मार्ग विश्वास का है। उन्हें इस जीवन की प्रचलित मान्यताओं पर इतना अधिक अविश्वास नहीं है जितना उन्हें त्याग, बलिदान, सत्य पर विश्वास है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें उन ऊपर वाली चीजों पर विश्वास तो दूर रहा, जीवन में इन मान और प्रतिष्ठा वाले मार्ग पर भी विश्वास नहीं है। और मैं कहूँगा कि उनका पथ अविश्वास का है।' (पृ० २१८)

प्रसंग—उपर्युक्त ही है। गंगाप्रसाद के तर्कपूर्ण कथन पर ज्ञानप्रकाश मुस्करा कर कहते हैं, 'बहुत समझदार हो गए हो बरखुरदार ! बात गलत नहीं की है, लेकिन तुमने केवल अर्द्धसत्य का सहारा लिया है। अगर तुम यह कहो कि वास्तविक जीवन और उसकी प्रगति प्रचलित मान्यताओं के विद्रोह में है, तो मैं इस बात को मान लेता हूँ। लेकिन इस विद्रोह की दो शक्लें हैं—एक विश्वास की और दूसरी अविश्वास की। तुम्हारा रास्ता अविश्वास का है, मेरा रास्ता विश्वास का !'

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में अपनी इसी विश्वास-अविश्वास की बात

को स्पष्ट करते हुए ज्ञानप्रकाश कहते हैं कि ये जो परिवार, घर-गृहस्थी, बीवी-बच्चे, कुल-मर्यादा आदि की बातें हैं, इनसे भी ऊपर है त्याग, बलिदान आदि उच्च मानवीय प्रवृत्तियाँ। जीवन के मोह स्वार्थ से श्रेष्ठ है परोपकार और त्याग का मार्ग—इसमें संदेह नहीं। पर तुम जो बीवी-बच्चों के मोह-बंधन के त्याग की बात कर रहे हो, वह विश्वास का मार्ग नहीं है, अविश्वास का मार्ग है। जो मोह-माया से त्याग और परोपकार आदि को ऊँचा समझते हैं और देश के लिए त्याग करते हैं उनका मार्ग—हमारा रास्ता—विश्वास का है। ऐसे लोगों का जीवन की प्रचलित मान्यताओं—कुल-समाज-मर्यादा आदि पर इतना अधिक अविश्वास नहीं होता, जितना उन्हें त्याग, सेवा, बलिदान, सत्य आदि पर विश्वास होता है। पर कुछ लोग तुम्हारे जैसे ऐसे हैं जिन्हें त्याग, बलिदान आदि उच्च प्रवृत्तियों पर तो क्या जीवन के घर-गृहस्थी, कुल-समाज-मर्यादा के मार्ग पर भी विश्वास नहीं होता। ऐसे लोगों का मार्ग अविश्वास का मार्ग है। अतः ज्ञानप्रकाश कहते हैं कि गंगाप्रसाद का रास्ता अविश्वास का है क्योंकि न तो वह सेवा, परोपकार, त्याग, बलिदान आदि उच्च प्रवृत्तियों पर विश्वास रखता है, न घर-गृहस्थी की मान-मर्यादा पर विश्वास रखता है। केवल तर्क के लिए प्रचलित घर-गृहस्थी के कर्त्तव्यों और मर्यादाओं का खण्डन करता है। देश के लिए जेल जाने वाले विश्वास मार्ग के मनुष्यों का तो घर-गृहस्थी के बंधनों को तोड़ना शोभा देता है क्योंकि वे कुल-मर्यादा से ऊँची राष्ट्र-मर्यादा का, त्याग और बलिदान का मार्ग अपनाते हैं, पर गंगाप्रसाद जैसे स्वार्थी, ऐयाश और सुख-मौजी का कुल-समाज की मर्यादाओं का विरोध सर्वथा अनुचित है, अविश्वास का मार्ग है।

(२०) **'जी, अभी सहयोग लीजिए, और हम लोगों को खत्म करके रख दीजिए। जहाँ बैठने का अधिकार भी लोग हमें न दें, वहाँ बातचीत ही क्या होगी? आन्दोलन कीजिए, स्वराज्य लीजिए, लेकिन हम लोगों को जिन्दा रहने दीजिए। हम लोग तो आप लोगों की गुलामी करने के लिए ही पैदा हुए हैं।'** (पृ० २२६)

प्रसंग—श्री भगवती बाबू के 'भूले-बिसरे चित्र' में ज्ञानप्रकाश राष्ट्रीय जागृति का प्रतीक है। वह कांग्रेस का प्रमुख कार्यकर्त्ता है, गांधीजी का अनुयायी है। गांधीजी छः करोड़ अछूतों का सुधार और उद्धार करने को प्रयत्नशील हैं। वह उनका सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं। इसी से ज्ञानप्रकाश चाहता है कि

अछूतों को भी असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए तैयार किया जाय। वह गेंदालाल नामक एक शिक्षित हरिजन युवक को बुलाता है। उसे गंगाप्रसाद के ड्राइंगरूम में बिठाता है। ज्ञानप्रकाश उसे कहता है, 'गेंदालाल जी, देश के असहयोग आन्दोलन में आप लोग भी सहयोग दीजिए।' इसी समय गंगाप्रसाद वहाँ आ जाता है और यह पता चलने पर कि गेंदालाल चमार है, अछूत है, गंगाप्रसाद एकदम भड़क उठता है और गेंदालाल को अपमानित करता हुआ अपने ड्राइंगरूम से निकल जाने को कहता है। ज्ञानप्रकाश को गंगाप्रसाद से इस व्यवहार की आशा न थी। वह गंगाप्रसाद को रोकता है और कहता है कि "हमने ही गेंदालाल जी को बातचीत के लिए बुलाया है। इस आन्दोलन में हमारे देश के अछूतों का कोई योग नहीं है, इन लोगों का सहयोग हमें चाहिये।'

व्याख्या—गेंदालाल अपने अपमान से तिलमिला उठा था। ज्ञानप्रकाश की बात को काटता हुआ वह जाते हुए व्यंग्य से कहता है, "वाह खूब रही! अब हमसे सहयोग लीजिए और बाद में जात-पांत के भेदभाव रखकर हमें खत्म कर दीजिए। जहाँ कमरे में बैठने का अधिकार भी हमें न हो, वहाँ सहयोग की बातचीत क्या हो सकती है? आपके आन्दोलन आपको मुबारक! आप आंदोलन कीजिए, स्वराज्य लीजिए, पर हम लोगों को जिन्दा रहने दीजिए! हमें हमारे हाल पर छोड़ दीजिए! हम अछूत तो आप सवर्णों की गुलामी के लिए ही पैदा हुए हैं! हमें कम से कम जीवित तो रहने दीजिए।"

विशेष—इन पंक्तियों में गेंदालाल के हृदय का क्षोभ व्यंग्य-शैली लेकर प्रकट हुआ है।

(२१) 'यह पूँजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है। उस मुनाफे का एक छोटा-सा हिस्सा सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी का आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके। इस मुनाफे का छोटा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द, जो लूट-खसोट, बेईमानी करता है, उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखें बन्द कर लें। रुपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है।" (पृ० २३६)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' में

गंगाप्रसाद कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट है। असहयोग आन्दोलन को दबाने का वह भरसक प्रयत्न करता है। वह समझ जाता है कि स्वदेशी आन्दोलन देशी पूँजीपतियों और उद्योगपतियों के पैसे से चल रहा है। ज्ञानप्रकाश भी उसे बताता है कि लक्ष्मीचन्द आन्दोलन के लिए खूब चन्दा देता है। गंगाप्रसाद आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है, 'आश्चर्य की बात है कि लक्ष्मीचन्द सरकार को रुपया देता है, और कांग्रेस को भी रुपया देता है।'

व्याख्या—ज्ञानप्रकाश मुस्कराकर कहता है, 'और तुम्हें रुपया देता है—कार के रूप में।' ज्ञानप्रकाश फिर कहता है, 'लेकिन गंगा, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। यह देशी पूँजीपति जबरदस्त मुनाफा कमाता है। उस मुनाफे का एक थोड़ा-सा अंश वह सरकार को देता है ताकि सरकार से सब सुविधाएँ और 'सर' आदि की उपाधियों का सम्मान प्राप्त होता रहे। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा वह कांग्रेस को देता है ताकि स्वदेशी आन्दोलन खूब जोर से चले और विदेशी माल के अभाव में उसका माल जोरों से बिके। अपने मुनाफे का एक थोड़ा-सा अंश वह तुम्हारे जैसे सरकारी अफसर को देता है ताकि लक्ष्मीचन्द जो बेईमानी, लूट-खसोट और शोषण करता है, उससे सरकारी अफ़सर आँखें बन्द रखें। इस प्रकार यह पूँजीपति रुपये का खेल खेलता है। रुपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है, क्योंकि सरकार को भी रुपया चाहिये, कांग्रेस को भी आन्दोलन चलाने के लिए रुपया चाहिए। अतः सबको मजबूर होकर इस पूँजीपति की पाप की कमाई का रुपया स्वीकार करना पड़ता है।

(२२) 'जंट साहेब, मैं यह जानता हूँ कि गुलामी से विद्रोह करना, गुलामी से लड़ना हम लोगों का धर्म है। इस विद्रोह का और इस युद्ध का नतीजा क्या होगा, इस पर सोचना और वाद-विवाद करना कायरता है, और इसी कायरता के कारण हम हिन्दुस्तानियों का अस्तित्व भेड़-बकरियों का-सा हो गया है।' (पृ० २४०)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा-रचित 'भूले-बिसरे चित्र' नामक उपन्यास में गंगाप्रसाद कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट है। सत्यव्रत एक प्रबुद्ध कांग्रेसी युवक है। वह ज्ञानप्रकाश के साथ गंगाप्रसाद के यहाँ आता है। देश की राजनीति के सम्बन्ध में चर्चा चलती है। इसी बीच कलक्टर का चपरासी चौरीचौरा कांड की सरकारी सूचना लाता है। गंगाप्रसाद कहता है कि यदि इस प्रकार की

दो-चार और हिंसात्मक घटनाएँ हो जायँ, तो सारे देश में मार्शल-ला जारी हो जायगा। सत्यव्रत कहता है कि नौकरशाही से तो सैनिक राज्य अच्छा। पर गंगाप्रसाद कहता है कि सैनिक शासन के सामने कांग्रेस के आन्दोलन कहीं नहीं ठहर सकेंगे।

व्याख्या—गंगाप्रसाद की बात का उत्तर देता हुआ सत्यव्रत प्रस्तुत पंक्तियों में कहता है, 'जंट साहब, हमें तो गुलामी से विद्रोह करना है, स्वतन्त्रता के लिए लड़ना हमारा धर्म है। चाहे शासन सेना का हो या नौकरशाही का। हमारे संघर्ष का चाहे जो परिणाम हो, चाहे सेना कुचलने के लिए कितना ही दमन क्यों न करे, हमें हर हालत में संघर्ष करना है, लड़ना है। परिणाम के बारे में सो चना या तर्क-वितर्क करना कायरता है। कर्म ही हमारा धर्म है, फल चाहे जो हो। मन की दुर्बलता ने ही हम भारतीयों का जीवन भेड़--संघर्ष जारी रखेंगे, सैनिक अतः चाहे जो हो, हम दृढ़ता के साथ स्वतन्त्रता बकरियों का-सा बना डाला है। शासन से भी टक्कर लेंगे।

विशेष—इन पंक्तियों से सत्यव्रत-जैसे कांग्रेसी कार्यकर्त्ता की दृढ़ता का परिचय मिलता है। और साथ ही वर्मा जी का कर्मवादी जीवन-दर्शन प्रकट हुआ है।

(२३) **'सत्य, न्याय, मानवता, गुलाम के लिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है। एक गुलाम की हैसियत से उसका अस्तित्व एक पालतू जानवर की भाँति था, जिसे अपने मालिक के इशारों पर चलना होता है, जिसमें न कोई चेतना होती है और न कोई भावना ही। वह अपने अन्दर वाले विद्रोह को जितना अधिक दबाने का प्रयत्न करता था, उतना ही अधिक वह विद्रोह बढ़ता जाता था।'**

(पृ० २५०-५१)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' से उद्धृत की गई हैं। गंगाप्रसाद कानपुर का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट नियुक्त है। उसने असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन को बड़ी निर्ममता से दबाकर अंग्रेजी सरकार की बड़ी सेवा की है। एक दिन, गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद, कानपुर का एक अंग्रेज उद्योगपति मि० हैरिसन दावत में गंगाप्रसाद को बुलाता है। हैरिसन गांधी को बुरा-भला कहता है, गाली दे डालता है। गंगाप्रसाद को यह असह्य हो उठता है और वह हैरिसन को मुँह-

तोड़ जवाब देकर, बदले में गाली सुना कर चुप करा देता है। हैरिसन की शिकायत पर गंगाप्रसाद को पुनः डिप्टी कलक्टर बनाकर एटा भेज दिये जाने के आर्डर जारी हो जाते हैं। गंगाप्रसाद को बहुत दुःख होता है। वह चीफ़ सेक्रेटरी से भी मिलता है, पर उसकी कोई नहीं सुनता। इतनी सेवा का उसे यह फल मिला! गंगाप्रसाद की विदाई के अवसर पर हैरिसन गंगाप्रसाद से कहता है, 'मिस्टर गंगाप्रसाद, अब आगे से किसी अंग्रेज से उलझने की धृष्टता न करना!'

व्याख्या—हैरिसन के ये शब्द सुनकर गंगाप्रसाद को मर्मांतक पीड़ा हुई। उसे लगा 'कि वह एक असभ्य और उद्दण्ड अंग्रेज़ से बुरी तरह पराजित हुआ है, केवल इसलिए कि वह हिन्दुस्तानी है। उसकी इस पराजय का मूल कारण था ब्रिटिश सरकार की रंग-भेद की भावना।' उसे कमिश्नर के ये शब्द याद आए, 'अंग्रेज अंग्रेज है, हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी। एक शासक है, दूसरा शासित।' हिन्दुस्तानी गुलाम है। गुलाम के लिए न्याय, सच्चाई, मानवता आदि का व्यवहार नहीं किया जाता। अंग्रेज और अंग्रेजी सरकार भारतीयों को गुलाम समझते हैं। गुलाम की स्थिति एक पालतू जानवर की ही तो होती है! गंगाप्रसाद अपने मन में सोचता है कि गुलाम का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। उसे अपने मालिक के इशारों पर नाचना पड़ता है। उसमें कोई चेतना नहीं होती, कोई भावना नहीं होती! उसे अपमान का जहरीला घूंट पीकर रह जाना पड़ता है। गंगाप्रसाद का हृदय विद्रोह कर रहा था। उसका चेतन जितना अधिक विद्रोह को दबाने का प्रयत्न करता था, उतना ही वह अधिक अन्तर्मन में बढ़ता जाता था। वह भावनात्मक रूप से ज्ञानप्रकाश के निकट आता जा रहा था। इसी मानसिक स्थिति के फलस्वरूप वह आगे चलकर नौकरी से इस्तीफा देने की सोच लेता है।

(२४) ये फूल खिलते हैं, ये फूल मुरझा जाते हैं। यह खिलना और यह मुरझाना, यह सब क्यों? और यह शंका, यह प्रश्न, यह सब फूलों के सम्बन्ध में ही क्यों? यह प्रश्न समस्त सृष्टि पर लागू होता है। मनुष्य पैदा होता है, मनुष्य मरता है। बनना और मिटना, यही प्रकृति का नियम है। (पृ० २५७)

प्रसंग—श्री भगवती बाबू-रचित 'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड के आरम्भ में नवल बी० ए० की परीक्षा देकर निवृत्त हुआ है। परीक्षा के बोझ से वह

हल्का महसूस कर रहा है। उसके मन में एक उत्साह भर आया। अपने होस्टल के कमरे के सामने उसने खिले हुए रंग-बिरंगे फूल देखे। फूलों को देखकर वह विचारों में डूब जाता है। नवल की नजर उन फूलों से उलझ गई और वह सोचने लगा—कैसे एकबारगी ही रंग-बिरंगे हजारों-लाखों फूल खिल उठते हैं? इनका स्रोत कहाँ है? बीज में है, या मिट्टी में अथवा पानी में? या कि ऋतु ही इन्हें खिलाती है?

व्याख्या—वह सोचने लगा : ये फूल खिलते हैं, खिलकर मुरझा जाते हैं। खिलना और मुरझा जाना—यह क्यों? और फूल ही क्यों, यह प्रश्न तो सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पर लागू होता है। मनुष्य भी पैदा होता है, फिर मर जाता है! बनना और मिटना—यह प्रकृति का नियम है। जन्म और मृत्यु जीवन के दो आवश्यक छोर हैं। प्रकृति का यह कैसा विधान है! नवल इस पर आश्चर्य करता है।

विशेष—लेखक ने नवल के इस चिंतन द्वारा अपने प्रकृतिवादी या नियतिवादी जीवन-दर्शन को प्रकट किया है।

(२५) 'पापा, कैरियर आदमी के जीवन में ममता और भावना से बढ़कर नहीं होता। बाबू जी को इस हालत में छोड़कर मैं कहीं जाने की कल्पना नहीं कर सकता। आप बेकार मुझे कर्त्तव्य से डिगाने की कोशिश कर रहे हैं।'

(पृ० २७८)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' (लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा) के अन्तिम खण्ड में नवल की कथा प्रमुख है। उसने बी० ए० पास किया है और आई० सी० एस० के लिए इंगलैंड जाने का विचार रखता था। पर पिता गंगाप्रसाद की बीमारी के कारण, वह अपना विचार बदल देता है। रायबहादुर कामतानाथ अपनी लड़की उषा का विवाह नवल के साथ करना चाहते हैं। वह नवल को आई० सी० एस० के लिए इंगलैंड जाने पर जोर देते हैं। वह उसका समस्त खर्चा भी उठाने को तैयार हैं। पर नवल अपने पिता के साथ भुवाली सैनिटोरियम जाने को तैयार हो जाता है। वह बीमार पिता को छोड़कर इंगलैंड जाने से जवाब दे देता है। रायबहादुर कामतानाथ नहीं चाहते कि नवल कीटाणुओं से युक्त भुवाली सैनिटोरियम जाए। अतः वह आग्रहपूर्वक नवल को इंगलैंड जाने को कहते हैं, 'नवल, इस तरह की जिद नहीं की जाती; यह तुम्हारे कैरियर का सवाल है।'

व्याख्या—रायबहादुर कामतानाथ के इस कथन का शांत भाव से उत्तर देता हुआ इन पंक्तियों में नवल कहता है, 'पापा, कैरियर अर्थात् अपना भविष्य उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न मनुष्य के जीवन में इतनी बड़ी बात नहीं है कि वह ममता और भावना को भी तिलांजलि दे दे। प्यार-मुहब्बत, स्नेह-सम्बन्ध क्या कुछ नहीं ? क्या अपने पिता के प्रति मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है ? मैं अपने पिता को इस हालत में छोड़कर अपने कैरियर के लिए इंगलैंड कैसे जा सकता हूँ ? आप व्यर्थ ही बार-बार जोर देकर मुझे मेरे कर्त्तव्य से डिगाने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने एक बार कह दिया कि मैं इस परिस्थिति में आई० सी० एस० के लिए इंगलैंड नहीं जाऊँगा और इसका मतलब है कि मैं नहीं जाऊँगा। कैरियर फिर भी बन सकता है, उसके लिए कर्त्तव्य से गिरना अनुचित है।"

इससे पूर्व भी नवल कामतानाथ को स्पष्ट कह चुका था कि 'पापा, मैं अपने पिता से अलग रहूँ, आप यह कहते हैं ? यह जघन्य पाप करने की सलाह आप मुझे दे रहे हैं ? फिर तो दुनिया में कोई भी अपना-पराया न रह जायगा। यह दुनिया दुनिया न रहकर नरक बन जायगी।'

(२६) 'नवल, जानते हो मैं क्यों टूटा और कैसे टूटा ? तुम ताज्जुब करोगे यह जानकर कि अपने को तोड़ने वाला स्वयं मैं हूँ। मेरे अन्दर वाली कायरता और उस कायरता की घुटन ने मुझे तोड़ दिया।' (पृ० २८०)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा-रचित 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास में गंगाप्रसाद को 'गैलपिंग थाइसिज' हो जाता है। मृत्यु से पूर्व जब गंगाप्रसाद अपने पुत्र नवल की दृढ़ता, स्वाभिमानी प्रकृति और कर्त्तव्य-भावना का परिचय पाता है तो उसे अपार प्रसन्नता होती है। वह नवल की प्रशंसा करते हैं। नवल अपने पिता को रोकता हुआ कहता है, 'अब बस कीजिए बाबू जी, आप बहुत थक गए हैं।' इस पर गंगाप्रसाद नवल को डांटते हैं, 'मेरी बात सुनो, और मेरी बात काटो मत ! तुम नहीं जानते मेरे प्राणों की थकावट उतर गई; अब मुझे कोई चिन्ता नहीं, कोई क्लेश नहीं। मैं शांतिपूर्वक मर सकूँगा। तुम सब कुछ सम्भाल लोगे, मुझे मालूम हो गया। मुझ से कहीं ज्यादा अच्छी तरह संभाल सकोगे।"

व्याख्या—कुछ रुक कर गंगाप्रसाद ने प्रस्तुत पंक्तियों में फिर कहा, 'नवल बेटा, मैं तुम्हें अपने टूटने, अपने हारने और इस तरह रोग-ग्रस्त हो जाने का कारण बताना चाहता हूँ। जानते हो मैं कैसे टूटा, क्यों टूटा ? तुम्हें यह सुनकर

आश्चर्य होगा कि अपने को तोड़ने वाला मैं स्वयं हूँ। मेरी आत्मा की दुर्बलता और उस दुर्बलता की घुटन ने मुझे तोड़ दिया। मैंने अपनी आत्मा की आवाज कभी नहीं सुनी। मेरा हृदय सत्य के प्रति कायर रहा और मेरे मन की कायरता ने मुझे घुला-घुला कर तोड़ दिया।' अपने अभिप्राय को और स्पष्ट करते हुए गंगाप्रसाद कहता है कि 'मेरे मन ने अपनी नौकरी, गुलामी और विवशता से कई बार विद्रोह किया। एक बार तो मैंने इस्तीफा भी लिख डाला था। किन्तु अनायास ही मेरे हृदय की कायरता मुझ पर हावी होती रही। मैंने अपना इस्तीफा फाड़ डाला था और अपमान का जहर पी लिया था। किन्तु वह जहर कितना घातक सिद्ध हुआ, यह तुम देख रहे हो। मैं उसी दिन टूट गया था जब मैंने अपना इस्तीफा फाड़ डाला था।'

(२७) 'यह क्रांतिकारी आन्दोलन'''आखिर यह इसी बेकारी का अभिशाप है न! बहुत दिनों तक अंग्रेजों ने शिक्षित लोगों की बेकारी के असन्तोष को हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न खड़ा करके तथा हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़वाकर दबाए रखा। लेकिन झूठे उपचारों से तो सत्य समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं। आज हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव का प्रश्न दब-सा गया है। बेकारी और असन्तोष हिन्दू और मुसलमानों में समान भाव से है और यह प्रकट होता है आज के घटना क्रम से। मैं समझता हूँ कि देश की राजनीतिक स्थिति में यह सड़न अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकेगी।' (पृ० ३०२-३०३)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा-रचित 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास के अन्तिम खण्ड में ज्ञानप्रकाश और नवल नई राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। एक दिन जब नवल सुबह उठा और उसने क्रांतिकारियों के दमन की खबर अखबार में पढ़ी तो वह उदास हो जाता है। वह अपने ज्ञान बाबा से पूछता है कि इस दमन-चक्र में स्वतंत्रता की प्राप्ति कैसे सम्भव होगी? ज्ञानप्रकाश उसे बताते हैं कि शिक्षित मध्यवर्ग में बुरी तरह बढ़ती हुई बेकारी अपना रंग दिखलाएगी।

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में ज्ञानप्रकाश नवल को बताते हैं कि अब देश में हजारों-लाखों ऐसे युवक हैं जो शिक्षित हैं, पर बेकार हैं, असंतुष्ट हैं। देश में बढ़ता हुआ यह क्रांतिकारी आन्दोलन भी इसी बेकारी का परिणाम है। शिक्षित मध्यवर्ग में यह बेकारी यद्यपि बहुत अर्से से असंतोष की स्थिति तक बढ़ती रही है, पर अंग्रेज सरकार ने बहुत दिनों तक उस असंतोष को हिन्दू-मुस्लिम झगड़े

खड़े कर तथा दोनों जातियों को आपस में लड़ाकर दबाए रखा। हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़ते रहे और अंग्रेज सरकार के विरुद्ध खुलकर असंतोष और विद्रोह प्रकट नहीं किया। पर झूठे उपायों से कब तक जनता को बहकाया जा सकता था? आज हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव दूर हुआ है। देश के प्रबुद्ध युवक और शिक्षित समाज इस गरीबी और बेकारी के प्रति जागरूक हो गए हैं। गरीबी और बेकारी हिन्दुओं तथा मुसलमानों में समान रूप से है। आज की परिस्थितियाँ इस तथ्य को स्पष्ट कर रही हैं। अतः देश की राजनीति में शीघ्र ही परिवर्तन की हलचल आएगी, यह स्थिरता और सड़ांध की स्थिति बहुत देर तक नहीं रह सकती। न बहुत दिनों तक दमन-चक्र चलता रह सकता है और न अधिक देर तक जनता सोई पड़ी रहेगी।

(२८) लेकिन उसे सरदी नहीं लग रही थी, उसकी धमनियों में गरम रक्त प्रवाहित हो रहा था। उस चुभती हुई सरद हवा से उसके अन्दर एक पुलकन सी हो रही थी। विद्या ने अनुभव किया कि इस चुभने वाले और काटने वाले हिम-सदृश जीवन का मुकाबला कर सकती है हृदय की उष्णता और धमनियों में निरन्तर गति से संचरित होने वाला गरम रक्त। (पृ० ३२०)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में नवल और विद्या राष्ट्र की नवचेतना के प्रतीक हैं। वे दोनों अपने ज्ञान बाबा के साथ लाहौर-कांग्रेस में जाते हैं। वहाँ विद्या ने एक नई दुनिया देखी, जिसमें कर्म था, संघर्ष था। उसने देखा, हजारों स्त्री-पुरुष सर्वस्व त्याग और बलिदान का जीवन अपनाने को कटिबद्ध हैं, और उसे अपने जीवन का दुःख बहुत छोटा लगा। अधिवेशन के बाद शाम को बला की सर्दी पड़ रही थी। बरफीली हवा चल रही थी, पर विद्या को सर्दी का जरा भी आभास नहीं हो रहा था। उसने नवल से घूमने का आग्रह किया। भयानक सरदी होते हुए भी नवल विद्या के आग्रह को नहीं टाल सका। विद्या कहती है, 'सरदी है तो क्या, इस सरदी में घुटन तो नहीं है।' दोनों घूमने निकल पड़ते हैं।

व्याख्या—विद्या जिन्दगी का नया रूप देख रही है। उस बरफीली रात में चुभन थी, पर विद्या को जैसे सरदी बिल्कुल नहीं लग रही थी। उसकी नसों में उत्साह, उमंग और संघर्ष के हर्ष का गरम रक्त दौड़ रहा था। सरदी से ठिठुरने की बजाय, सरदी की चुभती हवा से उसका हृदय पुलकित हो रहा

था। अन्दर की गरमी बाहर की सरदी का मुकाबला कर रही थी। मन का ओज और जोश उफन रहा था। उस उबाल को टकरा कर सरद हवायें असफल लौट जाती थीं। विद्या को विश्वास हो गया कि इस बरफानी सरदी की चुभन—जैसे कटुतापूर्ण जीवन का सामना हृदय की गरमी, मन का ओज और नसों में बहते हुए गरम खून की रवानी कर सकती है। सभापति पद से दिए गए पं० जवाहरलाल नेहरू के भाषण का उस पर अमिट प्रभाव पड़ा था। संघर्ष और त्याग का राग उसकी हृदय-विपंची में बज रहा था।

(२९) गांधी चुप है, शान्त है, दृढ़ है और अडिग है। गांधी ही नेतृत्व कर सकता है, लेकिन गांधी की शर्तें हैं। बड़ी कठिन शर्तें हैं इस गांधी की। क्या इन शर्तों का पालन किया जा सकेगा? प्रेम, अहिंसा, और त्याग। घृणा मत करो लेकिन भयानक विरोध करो, हिंसा मत करो, लेकिन जीवन-मरण वाला युद्ध करो; सब कुछ छोड़ दो, लेकिन अपने अधिकारों को जबरदस्ती ले लो। क्या इन शर्तों का पालन किया जा सकेगा? यही नहीं, प्रश्न यह है कि क्या इन शर्तों का पालन किया जा सकता है? जेल जाओ, लाठियाँ खाओ, गोलियाँ खाओ, लेकिन उफ मत करो। क्या यह सम्भव है? क्या यह हो सकेगा?

(पृ० ३२१)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में श्री भगवतीचरण वर्मा ने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का बड़ा सजीव चित्रण किया है। विद्या और नवल अपने ज्ञान बाबा के साथ कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन देखकर आए हैं। 'लाहौर-कांग्रेस का समस्त वातावरण उद्विग्नता से भरा था। महात्मा गांधी और लार्ड इरविन में समझौते की बात टूट चुकी थी। देश में निराशा और क्रोध का एक वातावरण भर गया था।' सबके सामने प्रश्न था कि अब कैसे होगा? क्या होगा? यह बात स्पष्ट हो गई थी कि मांगे से कुछ नहीं मिलने का। जो कुछ लेना है उसे जबरदस्ती लेना होगा, संघर्ष करना होगा, लड़ना होगा। देश का गरम रक्त इसके लिए तैयार है। पर नेतृत्व किसका स्वीकार करें?

व्याख्या—तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का चित्रण करते हुए वर्मा जी कहते हैं कि गांधी का मार्ग अहिंसा और प्रेम का मार्ग है। इस विक्षुब्ध परिस्थिति में भी गांधी शांत है किन्तु अपने अहिंसा के सिद्धांत पर अडिग है। देश के कोटि-कोटि जनों का नेतृत्व गांधी ही कर सकता है। पर आन्दोलन चलाने में गांधी

की कुछ शर्तें हैं—बड़ी कठिन शर्तें ! क्या देशवासी उनका पालन कर सकेंगे ? प्रेम, अहिंसा और आत्मत्याग—यह है गांधी का मूलमंत्र। अंग्रेजों से घृणा मत करो, पर अंग्रेजी सरकार का प्रबल विरोध करो; जीवन-मरण की बाजी लगा दो, पर हिंसा से दूर रहो ! सब कुछ त्याग दो, पर अपने अधिकारों को जबरदस्ती प्राप्त करो ! क्या इस कठिन मार्ग पर चला जा सकेगा ? गांधी का भी हजारों-लाखों लोगों से यही प्रश्न था—क्या इसके लिए तैयार हो ?

नवल ने अनुभव किया कि गांधी के इस प्रश्न का उत्तर जवाहरलाल में है। जवाहरलाल इस गांधी-मार्ग पर नवयुवकों को चला सकता है। वह देश की नई चेतना का नेतृत्व कर सकता है।

(३०) 'कोई किसी के कारण नहीं जाता विद्या, वह जाता है इसलिए कि उसे जाना है। तुम्हारे बाबा भी चले जायेंगे, मैं भी चला जाऊँगा और एक दिन तुम भी चली जाओगी। जो हो गया उसे रोका नहीं जा सकता था, जो होने वाला है उसे रोका नहीं जा सकेगा।' (पृ० ३२६)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा-विरचित 'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में विद्या की दादी यमुना टूटकर दम तोड़ देती है। उसे अपने बेटे गंगा की मृत्यु का दुःख हुआ था और अब विद्या के जीवन की विडम्बना ने भारी सदमा पहुँचाया था। विद्या उदास रहती है। ज्ञानप्रकाश उसकी उदासी का कारण पूछते हैं। तब विद्या कहती है, 'क्या करूँ ज्ञान बाबा, मेरे ही कारण दादी गई हैं।'

व्याख्या—विद्या के इस कथन पर ज्ञानप्रकाश मुस्करा कर कहते हैं, 'तुम गलत कहती हो विद्या ! कोई किसी के कारण नहीं जाता। वह जाता है इसलिए कि उसे जाना है। आना और जाना—जन्म और मृत्यु—यह तो इस दुनिया की शाश्वत चाल है। एक दिन तुम्हारे बाबा भी चले जायेंगे, मैं भी नहीं रहूँगा और एक दिन तुम भी चली जाओगी। प्रकृति के इस विधान को कोई नहीं रोक सकता। जो हो गया है अर्थात् तुम्हारी दादी की जो मृत्यु हो गई है, उसे रोका नहीं जा सकता था। और आगे भी जो होने वाला है, उसे नहीं रोका जा सकेगा। होनहार प्रबल होती है। हम सब खिलौनों की तरह उसके संकेत पर नाचते हैं। इसलिए किसी भी कारण से उदास और दुःखी रहना ठीक नहीं, अपना कार्यक्रम निश्चित करो और जीवन की बाजी खेलते रहे।

विशेष—इस अवतरण में लेखक ने ज्ञानप्रकाश के माध्यम से अपना

नियतिवादी या प्रकृतिवादी जीवन-दर्शन प्रकट किया है। यह नियतिवाद अकर्मण्य भाग्यवाद नहीं है, अपितु कर्मण्य नियतिवाद है।

(३१) 'स्त्री की स्वतन्त्रता के यह अर्थ नहीं होते कि उसे गुलामी करने के लिए दुनिया में भटकना पड़े। स्त्री की स्वतन्त्रता के यह अर्थ होते हैं कि वह घर की चाहरदीवारी के बाहर निकल सके, उसे घर के बन्धनों से मुक्ति मिले, वह बाहर घूम-फिर सके, परदे से निकलकर वह सभा-सोसायटियों में मिल-जुल सके। और यह स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सम्पन्नता चाहिए नवल बाबू !' (पृ० ३३५)

प्रसंग—श्री भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में यह उषा का कथन है। उषा रायबहादुर कामतानाथ की, सम्पन्नता में पली, इकलौती बेटी है। उषा नवल से प्रेम करती है, पर जब वह देखती है कि नवल आई० सी० एस० के लिए इंगलैंड जाने की बजाय, खद्दर-धारी कांग्रेसी बनती जा रहा है, तो वह नवल से मुँह मोड़ने लगती है। वह वैभव और ऐश्वर्य-विलास का जीवन चाहती है। जब विद्या बताती है कि उसे 'नारी शिक्षा सदन' में नौकरी मिल गई है तो उषा उसके नौकरी करने के विचार से चकित हो उठती है। विद्या कहती है कि 'मुझे तो नौकरी करना अच्छा लगेगा, अपने पाँव पर खड़ी हो रही हूँ, मुझे इस पर गर्व है। दूसरे क्या कहेंगे, इसकी मुझे चिंता नहीं।' नवल भी नारी के नौकरी करने और स्वतंत्र होने का मत प्रकट करता है। उषा नौकरी करना नारी की विवशता मानती है। उसका कथन है कि विदेशों में भी जो नारियाँ सम्पन्न हैं, वे नौकरी नहीं करतीं। नौकरी वही करती हैं, जो आर्थिक दृष्टि से अभाव-ग्रस्त हैं—ठीक वैसे ही जैसे हमारे यहाँ निम्न वर्ग की स्त्रियाँ काम करने को विवश हैं। वह विद्या को भी यही कहती है कि 'कोई दूसरा सहारा न होने के कारण ही तो तुम्हें नौकरी करनी पड़ रही है ?'

व्याख्या—उषा फिर कहती है कि नारी की स्वतन्त्रता से यह अभिप्राय नहीं है कि उसे नौकरी या गुलामी करने के लिए दुनिया में भटकना पड़े। नौकरी करना ही नारी की स्वतन्त्रता का अर्थ नहीं है। नारी की स्वतन्त्रता का अर्थ है कि वह घर की चाहरदीवारी से बाहर निकल सके, उसे घर के बन्धनों से छुटकारा मिले, वह बाहर सभा-सोसाइटियों में आ-जा सके, बाहर

घूम-फिर सके, पर्दे में बन्द न रहकर समाज में घुल-मिल सके, स्वेच्छा से घर और घर के बाहर विचरण कर सके। आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त और नौकरी करने वाली नारी यह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकती, क्योंकि सुख-स्वच्छन्दता के ऐसे जीवन के लिए सम्पन्नता चाहिये, समृद्धि चाहिये। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नारी ही वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती है। उषा नवल बाबू को अंतिम वाक्य में विशेष अभिप्राय से सम्बोधित करती है : 'और यह स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सम्पन्नता चाहिए नवल बाबू!' इससे एक ओर तो यह संकेत है कि नवल जो आई० सी० एस० का विचार छोड़कर वकालत की ओर उन्मुख हुआ है या कांग्रेस की ओर झुका है, वह आर्थिक सम्पन्नता के स्थान पर विपन्नता का मार्ग है। दूसरी ओर उषा यह संकेत देना चाहती है कि मैं ऐसी नारी हूँ जो सम्पन्नता का जीवन चाहती है। उषा का नवल के स्थान पर राजेन्द्र किशोर की ओर झुकाव भी इसी कारण हुआ है। यदि नवल उषा को पाना चाहता है तो उसे सम्पन्नता का मार्ग अपनाना होगा।

(३२) **'दादा, तुम टूटकर फिर से बन रहे हो, खोकर अपने को पा रहे हो। फिर यह अविश्वास और कायरता क्यों? साहस करो, अपने को बटोरो?'** (पृ० ३३९)

प्रसंग—भगवती बाबू के उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में नवल उषा से प्रेम करता है। पर उषा से उसके विचार मेल नहीं खाते। उषा वैभव और सम्पन्नता की दीवानी है। वह चाहती है कि नवल आई० सी० एस० के लिए जाए। पर नवल को ब्रिटिश सरकार और उसकी नौकरी से घृणा है। वह कांग्रेसी बन जाता है। उषा उससे मुँह मोड़कर राजेन्द्र किशोर आई० सी० एस० की ओर आकर्षित होती है। नवल उषा के घर जाता है, पर उषा का भाव बदला हुआ पाता है। उसे बहुत दुःख होता है। उषा का भाई सीतानाथ भी नवल को अपना दृष्टिकोण बदलने को कहता है। पर नवल अपने आदर्शवादी मार्ग पर अडिग है। वह स्वयं भी उषा से दूर हट जाता है।

व्याख्या—उषा के घर से लौट आने पर विद्या नवल से उसकी उदासी का कारण पूछती है। नवल करुण स्वर में कहता है, 'एक ओर निराशा सामने आई, एक ओर धक्का लगा। उषा मुझसे दूर हट गई।' विद्या कहती है, 'दादा, गलत कह रहे हो! सत्य यह है कि तुम उषा से दूर हट गए हो। इसमें तुम्हारी

पराजय नहीं, विजय है।' नवल पागल की भाँति हँसता हुआ कहता है, 'विजय ! पराजय ! कौन जानता है इनके क्या अर्थ हैं विद्या ! मैं तो इतना जानता हूँ कि मैं बराबर खोता जा रहा हूँ, टूटता जा रहा हूँ।' विद्या ने कड़ी दृष्टि से नवल को देखा और दृढ़ शब्दों में कहा, 'दादा, तुम टूटकर फिर से बन रहे हो अर्थात् उषा से तुम्हारा हटना टूटकर बनने के समान है। उषा को खोकर तुम अपने को पा रहे हो क्योंकि उषा एक छलना थी, एक मोह था ! उसे पाना अपनी आत्मा को खोना था। दो असमान विचारधाराओं और असमान परिवारों में मेल संभव नहीं था। अतः उषा से टूटना भला ही है। यह तुम्हारा टूटना नहीं, बल्कि तुम्हारा बनना है।' विद्या निराश और हताश नवल को साहस दिलाती हुई कहती है : 'यह दुर्बलता तुममें क्यों आ घुसी है ? यह अविश्वास, कायरता और निराशा क्यों ? साहस करो, अपने को संभालो, हिम्मत से काम लो। तुम्हारा तो व्यक्तित्व निखरा है, उषा से अलग होने में। फिर दुर्बलता क्यों ?'

विशेष—यहाँ विद्या के चरित्र की दृढ़ता, भलाई-बुराई का विवेक और प्रेरणापूर्ण व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर रूप में प्रकट हुआ है।

(३३) 'और भैया, शादी-ब्याह करके ही किसी ने क्या पा लिया है ? यह चिन्ता, भय, शंका, इन सबसे तो मैं मुक्त हूँ। और जहाँ तक शागिर्दी का सवाल है, वहाँ कोई किसी का शागिर्द नहीं बना करता, सब लोग अपनी आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर ही काम करते हैं।' (पृ० ३४२)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' (लेखक भगवती बाबू) के अंत में नवल सत्याग्रह कर जेल जाने का निश्चय कर लेता है। उसके बाबा ज्वालाप्रसाद उसके जेल जाने के विरुद्ध हैं, पर विवश हैं। वह नवल को नहीं रोक सकते। ज्वालाप्रसाद को दुःख है कि नवल ने सत्याग्रह की खातिर एल०-एल०बी० की फाइनल परीक्षा भी छोड़ डाली है। ज्वालाप्रसाद समझते हैं कि नवल को सत्याग्रह के लिए ज्ञानप्रकाश ने बहकाया है। वह कहते भी हैं, 'ज्ञानू तो तुम्हारी हाँ-में-हाँ मिलाएगा ही। इन्हीं ज्ञानू की शागिर्दी तो कर रहे हो तुम, जिन्होंने न शादी की है, न जिन्दगी-भर कोई काम किया है।'

व्याख्या—इस बात को सुनकर ज्ञानप्रकाश तिलमिला उठते हैं। इस सीधे आक्षेप से तड़पकर व्यंग्यपूर्ण शैली में उन्होंने कहा, 'घर-गृहस्थी रचाकर, शादी-

ब्याह करके किसी ने अर्थात् आप लोगों ने क्या पा लिया ? आप सबकी गृहस्थी चिंताओं का कारण बनी हुई है। मैंने शादी-ब्याह नहीं किया, घर-गृहस्थी के चक्कर में नहीं पड़ा, तो चिन्ताओं से तो मुक्त हूँ। और आप जो शागिर्दी की बात कहते हैं, कोई किसी का शागिर्द नहीं बनता, सब अपनी अन्तःप्रेरणा से ही काम करते हैं।' ज्ञानप्रकाश स्पष्ट कहता है कि मैंने नवल को नहीं बहकाया। वह स्वयं ही राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर उन्मुख है।

(३४) जाओ नवल, जाओ ज्ञानू, मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है, बिलकुल कुछ नहीं है ; फिर चिन्ता किस बात की की जाए। जो होना है, वह हो चुका है, उसे नहीं रोका जा सकता।' (पृ० ३५०)

प्रसंग—'भूले-बिसरे चित्र' के अंतिम खण्ड में नवल और ज्ञानप्रकाश नमक सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार हो जाते हैं। ज्वालाप्रसाद को बहुत दुःख है। उन्हें इनका जेल जाना अच्छा नहीं लग रहा। वह कहते भी हैं, 'नवल, कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। यह क्या हो गया है इस दुनिया को ! कल तुम जेल जाने की तैयारी कर चुके हो, दो-चार दिन बाद ज्ञानू जा रहे हैं। मैं अकेला रह जाऊँगा।' ज्ञानप्रकाश कहता है कि वे पुण्य कार्य के लिए जा रहे हैं, उनके साथ धर्म है, भगवान् है। ज्वालाप्रसाद भी स्वीकार करते हैं, 'हाँ ज्ञानू, तुम्हारे साथ धर्म है और भगवान् है, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए मैं रोक नहीं रहा हूँ तुम लोगों को। लेकिन अपने मन का क्या करूँ ?'

व्याख्या—आखिर अपने मन को कड़ा करके ज्वालाप्रसाद इन पंक्तियों में कहते हैं, 'अच्छा जाओ ! जाओ नवल, जाओ ज्ञानू ! होनहार बड़ी प्रबल है। मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं है। जो होना है, होगा ही, फिर चिन्ता किस बात की ? जो होना है, उसे रोका नहीं जा सकता। मैं होनहार को रोकने में असमर्थ हूँ। फिर अदृष्ट या भविष्य की चिन्ता क्यों करूँ। जो होने वाला है, वह हो चुका है। जो आगे होगा, देखा जाएगा।'

विशेष—श्री भगवतीचरण वर्मा ने इन पंक्तियों में भी अपना नियतिवाद प्रकट किया है जो प्रसाद के नियतिवाद से मिलता-जुलता है और अकर्मण्यता के स्थान पर कर्मण्यता का संदेश देता है।